भविष्यपुराण की भूमिका ।

विदित हो कि धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चार पदार्थ इस संसार में सार हैं इसीलिये सब मनुष्य अपनी २ रुचि के अनुसार इनकी प्राप्ति के लिये यत्न करते हैं परन्तु इन चारों में धर्म मुख्य है धर्म के सेवन से ये सब प्राप्त होसक्ते हैं श्रीवेदव्यासजी ने भी कहा है कि (ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे । धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते) धर्मकी प्राप्ति अपने २ वर्ण और आश्रम के लिये कहे वैदिक कर्मों के यथोक्त आचरण से होती है इसीकारण पूर्वकाल में सब त्रैवर्णिक अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वेद पढ़ने में अति परिश्रम करते थे और वेदपढ़ तदुक्त कर्म कर अपने अभीष्ट फल पाते थे परन्तु कलियुग के मनुष्य ऐसे अल्पायुष् और मन्दबुद्धि हुये कि जो संपूर्ण वेदको अपने जन्मभर में अति परिश्रम से भी न पढ़सके यह देख परमकारुणिक श्रीकृष्ण द्वैपायनमुनि ने वेद के चार भाग किये इसीसे उनका नाम वेदव्यास भया और द्वापरयुग के अन्त में अठारहपुराण और महाभारत रचे कि जिनसे थोड़े परिश्रम करके भी कलियुग के मन्दबुद्धि आर्यमनुष्यों को धर्म का ज्ञान होजाता था और उसके आचरण से अभीष्ट फल पाते थे परन्तु पुराण आदि का तात्पर्य जानने के लिये भी संस्कृत वाणी का भलीभांति ज्ञान होना चाहिये और वर्त्तमानकाल के आर्यजनों से प्रायः संस्कृत विद्या का अभ्यास छूट गया इसी से पुराण आदि का परिशीलन नहीं होसकता और अपने वर्णाश्रम धर्म को नहीं जानते जब धर्म का ज्ञानही नहीं तो आचरण क्योंकर होसकता है धर्माचरण के न होने से प्रतिदिन धन आयुष् बुद्धि बल विद्या ऐश्वर्य तेज पुरुषार्थ संतान यश आदि से हीन होते जाते हैं यह दशा अपने बन्धु आर्यजनों की देख और सब पुरुषार्थ प्राप्ति का मूल ज्ञानपूर्वक धर्माचरण और धर्मज्ञान का मूल पुराण इतिहास आदि का परि-

शीलन जान और आर्यजनों को प्रायः संस्कृतवाणी के अनभिज्ञ देख विज्ञातिविज्ञ, भरतखण्ड के परमहितैषी दूसरवंशावतंस अति दक्ष आर्यजनों की उन्नति के लिये बद्धकक्ष अवधसमाचारपत्र-संपादक श्रीयुत मुंशीनवलकिशोर साहब सी. आई. ई., ने यह इच्छा की कि ये सब पुराण यदि आर्यभाषा में अनुवाद किये जायँ तो सब आर्यजन इनका तात्पर्य्य सुगमता से जानसकें और यथार्थस्वरूप अपने धर्मको पहिंचान दुराचरण से निवृत्त हो सत्कर्म में प्रवृत्त होवें और ईश्वर के अनुग्रह से सब प्रकार के क्लेशों से छूट अपरिमित आनंद पावें यह मनमें निश्चय कर मुंशीसाहबने इस कार्य में सत्कारपूर्वक हमको नियुक्त किया हमने भी उनकी इच्छानुसार अठारह पुराणों में बारहवें पुराण और साढ़े चौदहसहस्र श्लोक प्रमाण श्रीभविष्यपुराण का आर्यभाषा में अनुवाद किया। इस पुराण में अनेक उत्तम २ विषय भरे हैं जिनके देखने से धर्मका स्वरूप संसार का व्यवहार परमेश्वर का प्रभाव जाना जाता है और अनन्त पुण्य प्राप्त होता है और चित्तको अति हर्ष होता है यह भविष्यपुराण का अनुवाद हमने अति सावधानता से किया है और हमारे परममित्र पण्डितवर श्रीयुत श्रीसरयूप्रसादजी ने इसको भली भांति शुद्ध किया है तौ भी जो कहीं किसी प्रकार अशुद्ध होय तो सरल हृदय क्षमाशील अति सज्जन इस पुराण के पाठकगण दोषकी ओर दृष्टि न देकर केवल गुणही ग्रहण करेंगे और ईश्वर के अनुग्रह से सब प्रकार का आनन्द पावेंगे।

भवदीय

पण्डित दुर्गाप्रसाद शर्मा

भविष्यपुराण भाषा पूर्वार्द्ध का सूचीपत्र।

श्रीभविष्यपुराण भाषा पूर्वार्द्ध का सूचीपत्र समाप्त भया ।

भविष्यपुराण भाषा उत्तरार्द्ध का सूचीपत्र ।

इति।

भविष्यपुराण भाषा

पूर्वार्द्ध ।

पहिला अध्याय १

युगों की संख्या व धर्म और चारों वर्णों की उत्पत्ति व संस्कार ।

दो० विबुध मुकुटमणि दीपिका, नीराजित दिनरैन ।
विघन हरैं हेरंब के, चरणकमल सुखदैन १
भजौं नित्य गौरी गिरिश, सकल सिद्धि के हेतु ।
भक्त मनोरथ कल्पतरु, भवसागर के सेतु २

कथा का प्रारम्भः ।

एक समय व्यासजी के शिष्य सुमन्तु मुनि पाण्डववंश के राजा शतानीक की सभा में जाते भये। राजा ने भी मुनि को देख बहुत आदर-सत्कार कर उत्तम आसन पर बैठाया और भली भाँति उनका पूजन कर कर जोर विनय से प्रार्थना करी कि महाराज ! आपके आगमन से हम सपरिवार कृतार्थ भये और आप ऐसे महात्माओं का आगमन केवल परोपकार के ही अर्थ है क्योंकि आप तो परमेश्वर के परमभक्त हैं इसीसे सदा कृतकृत्य हैं। अब आपके मुखारविंद से अमृतभरी वाणी

श्रवण किया चाहते हैं कि जिसके श्रवण से अनेक पातक निवृत्त हों और शुभ फल की निरन्तर प्राप्ति हो। यह राजा का वचन सुन, प्रसन्न हो सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! हम आपको भविष्यपुराण का श्रवण कराते हैं, जिसके श्रवण करने से ब्रह्महत्या आदि बड़े-बड़े पातक बिलीन हो जाते हैं। इस पुराण में पाँच पर्व ब्रह्माजी ने कहे हैं—पहिला ब्रह्मपर्व, दूसरा विष्णुपर्व, तीसरा शिवपर्व, चौथा त्वाष्ट्रपर्व और पाँचवाँ प्रतिसर्ग नाम पर्व है। ये पाँच तो पर्व हैं और पुराण में पाँच लक्षण होते हैं उनको हम कथन करते हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर और वंशानुचरित। इन पाँच लक्षणों से युक्त और चौदह विद्याओं करके युक्त पुराण होता है। चार वेद, उनके छः अङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र, मीमांसा और न्याय ये चौदह विद्याएँ हैं। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गांधर्व और नीतिशास्त्र के मिलने से अठारह विद्याएँ हो जाती हैं। हे राजन्! अब हम भूतों के सर्ग का अर्थात् जीवों की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं जिसके सुनने से सब पापों से निर्मुक्त हो मनुष्य को शांति प्राप्त होती है। पूर्व काल में यह सम्पूर्ण जगत् अंधकार से व्याप्त था और किसी पदार्थ का लक्षण नहीं विदित होता था। उस समय सूक्ष्म, अतीन्द्रिय और सर्वभूतमय परमात्मा की सृष्टि करने की इच्छा भई और प्रथम ही परमेश्वर ने जल को सिरजा और उसमें अपना वीर्य डाला जिससे देवता, असुर, मनुष्य आदि सब जगत् उत्पन्न भया। ब्रह्माजी ने बीज, शुक्र, रेत, उग्रवीर्य आदि नाम वीर्य के कहे हैं वह वीर्य जल में गिरने से अत्यन्त प्रकाशवान् सुवर्ण का अण्ड हो गया। उस अण्ड के मध्य से सब लोगों के रचनेहारे ब्रह्माजी उत्पन्न भये। क्षेत्रज्ञ, पुरुष, वेधा, शम्भु, नारायण, विरंचि, कमलासन आदि सब नाम ब्रह्म के ही हैं और ये शब्द आपस में पर्याय शब्द हैं अर्थात् इन सब शब्दों का एक ही

अर्थ है । जल का नाम नार है और जल नरसूनु है । वह नार अर्थात् जल उसका अयन अर्थात् निवासस्थान है इसलिये उसको नारायण कहते हैं । उस सत् असत्‌रूप अव्यक्त नित्य कारण से उत्पन्न भये इससे उनका नाम ब्रह्मा भया । ब्रह्माजी ने बहुत काल ध्यान किया और उस अण्ड के दो खण्ड किये । एक खण्ड से भूमि और दूसरे से आकाश को रचा और आठो दिशा तथा वरुण का स्थान अर्थात् समुद्र बनाया । महत्तत्त्व अहंकार तीन गुण ये ही सब भूतों की उत्पत्ति के हेतु हैं । प्रथम परमात्मा ने आकाश को उत्पन्न किया और पीछे क्रम से वायु आदि तत्त्व रचे, और देवताओं के तुषित आदि गण, ग्रह, नदी, समुद्र, पर्वत आदि उत्पन्न कर काल के विभाग और ऋतु कल्पना किये । काम, क्रोध आदि को रच कर्मों के विवेक के लिये धर्म और अधर्म को सिरजा और भाँति-भाँति की प्रजा सिरजकर उनको सुख-दुःख आदि द्वंद्वों से युक्त किया । जो कर्म जिसने पहिले किया था वह कर्म उसको आप ही प्राप्त हो गया । हिंस्र अर्थात् हिंसा करनेहारा, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य आदि जीवों को आपही प्राप्त भये जैसे ऋतु में वृक्ष के पुष्प, फल आदि आपही प्राप्त होते हैं । लोक की वृद्धि के अर्थ ब्रह्माजी ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, ऊरु अर्थात् जाँघ से वैश्य और चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया । ब्रह्माजी के पूर्व मुख से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ उसको वशिष्ठ मुनि ने ग्रहण किया । दक्षिण मुख से यजुर्वेद प्रकट भया वह याज्ञवल्क्य मुनि ने पाया । पश्चिम मुख से सामवेद निकला वह गौतम ऋषि ने धारण किया, और उत्तर मुख से अथर्वण वेद की उत्पत्ति भई वह शौनक ऋषि ने ग्रहण किया, और ब्रह्माजी के लोक-प्रसिद्ध पंचम मुख से अठारह पुराण, इतिहास और स्मृति उत्पन्न भई इस भाँति चार वेदों को उत्पन्न

कर ब्रह्माजी ने अपने देह के दो भाग किये, दहिने भाग को पुरुष और बायें भाग को स्त्री बनाया, और उनसे विराट् उत्पन्न भया और भाँति-भाँति की प्रजा उत्पन्न करने के अर्थ बहुत काल तप किया, और प्रथम दश ऋषियों को उत्पन्न किया जो प्रजापति कहलाये। उनके नाम ये हैं—नारद, भृगु, प्रचेता, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, अंगिरा और मरीचि जो पहिला प्रजापति है, इस भाँति और भी बड़े-बड़े तेजस्वी उत्पन्न किये, पीछे देवता, ऋषि, दैत्य, यक्ष, राक्षस, पिशाच, गंधर्व, अप्सरा, पितर, मनुष्य, नाग, सर्प आदिकों के अनेक गण उत्पन्न किये। बिजली, बादल, वज्र, इंद्रधनुष, धूमकेतु अर्थात् पूँछलतारे, उल्का, निर्घात और नक्षत्र आदि रचे। किन्नर, वानर, मत्स्य, शूकर, पक्षी, हाथी, घोड़े, मृग, कीट, पतंग, मक्खी, मच्छर आदि छोटे-छोटे जीव सिरजे इस भाँति ब्रह्माजी ने सब सृष्टि को रचा। जिन जीवों का जैसा कर्म है और जन्म में जो क्रम है, अब हम वह वर्णन करते हैं। हाथी मृग भाँति-भाँति के पशु, पिशाच, मनुष्य आदि जरायुज हैं; मत्स्य, कछुवे, मगर, अनेक प्रकार के पक्षी अण्डज हैं अर्थात् अण्डे से उत्पन्न होते हैं; मक्खी, मच्छर, जूं, खटमल आदि जीव स्वेदज हैं अर्थात् पसीने की ऊष्मा से उपजते हैं; वृक्ष, ओषधी आदि उद्भिज हैं अर्थात् भूमि को उद्भेदन करके उत्पन्न होते हैं; जो फल के पकने तक रहें और पीछे नष्ट होजायँ वे ओषधी कहाती हैं; विना पुष्प जिनके फल लगें वे वनस्पति हैं; पुष्प और फल करके जो युक्त हों उनको वृक्ष कहते हैं; इसी भाँति गुल्म, वल्ली, प्रतान आदि और भी भेद जानो। ये सब बीज से और काण्ड से अर्थात् उस वृक्ष की छोटी सी शाखा काटकर भूमि में गाड़ देने से उत्पन्न होते हैं। वृक्ष आदि भी अंतःसंज्ञ हैं अर्थात् हृदयमें सुख-दुःख आदि सब समझते हैं परन्तु कर्मरूप घोरतम से घिर रहे हैं इस हेतु मनुष्यों की भाँति

बातचीत आदि नहीं कर सके इस प्रकार यह अति विचित्र संसार ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। जब वह परमात्मा निद्रावश होकर शयन करता है, तब यह सब संसार उसमें लीन हो जाता है, और जब निद्रा का त्याग करता है तब सब सृष्टि उत्पन्न होती है और जीव पहिली भाँति अपने-अपने धंधे में लगते हैं। कल्पके प्रारम्भ में सृष्टि, और कल्प के अन्त में प्रलय परमेश्वर करता है। कल्प परमेश्वर का दिन है इसकारण परमेश्वर के दिन में सृष्टि और रात्रि में प्रलय होता है। हे राजा शतानीक! अब हम कल्प की संख्या कहते हैं—अठारह निमेष अर्थात् आँख के झप-कने से एक काष्ठा होती है अर्थात् जितने काल में अठारह बार नेत्र का निमेष हो उतने काल को काष्ठा कहते हैं। तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक क्षण, बारह क्षण का एक मुहूर्त्त, तीस मुहूर्त्त का एक दिन-रात, तीस दिन-रात्रि का एक महीना, दो महीनों का एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष होता है। इस प्रकार सूर्य भगवान् दिन-रात्रि करके काल के विभाग करते हैं। सम्पूर्ण जीव रात्रि को विश्राम करते हैं और दिन में अपने-अपने कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इसी भाँति पितरों का दिन-रात्रि एक महीने का होता है अर्थात् शुक्लपक्ष रात्रि और कृष्णपक्ष दिन होता है। देवताओं का अहोरात्र एक वर्ष का है अर्थात् उत्तरायण दिन और दक्षिणायन देवताओं की रात्रि गिनी जाती है। अब हम ब्रह्माजी के दिन-रात्रि और युगों का प्रमाण कहते हैं। सत्ययुग चार हजार वर्ष का है, और आठ-सौ वर्ष उसकी सन्ध्या, और सन्ध्यांश हैं अर्थात् चार-सौ वर्ष सन्ध्या और चार-सौ वर्ष सन्ध्यांश गिना जाताहै। इसी भाँति तीन हजार वर्ष का त्रेतायुग होता है और तीन-तीन सौ वर्ष के उस के सन्ध्या-सन्ध्यांश हैं। द्वापर युग दो हजार वर्ष का है, और चार-सौ वर्ष द्वापर के सन्ध्या-सन्ध्यांश हैं। कलियुग का प्रमाण एक

हजार वर्ष है, और दो-सौ वर्ष कलि के सन्ध्या और सन्ध्यांश गिने जाते हैं, ये सब वर्ष मिलके बारह हजार वर्ष होते हैं, यही देवताओं का एक युग कहलाता है। देवताओं के हजार युग होने से ब्रह्माजी का एक दिन होता है और यही प्रमाण उनकी रात्रि का है अर्थात् एक हजार युग की ही ब्रह्माजी की रात्रि होती है। जब ब्रह्माजी अपनी रात्रि के अन्त में सोकर उठते हैं तब सत् असत्‌रूप मनको उत्पन्न करते हैं, वह मन सृष्टि करने की इच्छा से विकार को प्राप्त होता है तब उससे आकाश उत्पन्न होता है जिसका गुण शब्द है, आकाश विकृत होता है तब अति बलवान् वायु को उत्पन्न करता है, जिस वायु का गुण स्पर्श है इसी प्रकार वायु से रूपगुण करके युक्त तेज, तेज से रसगुण करके युक्त जल, और जलसे गंध गुणयुक्त भूमि की उत्पत्ति होती है जो हमने बारह हजार वर्ष का एक दिव्य युग कहा वैसे इकहत्तर युग होने से एक मन्वन्तर होता है, और ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मन्वन्तर व्यतीत होते हैं। अब युगों की व्यवस्था कहते हैं— सत्ययुग में धर्म के चारों पाद वर्त्तमान रहते हैं, फिर त्रेता आदि युगों में क्रम से एक-एक चरण घटता जाता है। सत्ययुग के मनुष्य आरोग्य, धर्मनिष्ठ, सत्यवादी होते हैं और चार-सौ वर्ष तक जीते हैं। फिर त्रेता आदियुगों में इन सब बातों का एक-एक चतुर्थांश न्यून होता जाता है। त्रेता के मनुष्यों का आयुष् तीन-सौ वर्ष, द्वापर के मनुष्यों का दो-सौ और कलियुग के मनुष्यों का आयुष् एक-सौ वर्ष होता है, और इन चारों युगों में धर्म भी भिन्न-भिन्न भाँति के हैं। सत्ययुग में तप, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलियुग में दान करना ही मुख्य है। ब्रह्माजीने सम्पूर्ण सृष्टि की रक्षा के हेतु अपने मुख, भुजा, ऊरु अर्थात् जाँघ और चरणों से ब्राह्मण आदि चार वर्ण उत्पन्न किये। पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मण के

अर्थ नियत किये गये । पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, प्रजा का पालन करना और विषयों का भोग करना ये सब बातें क्षत्रियों के लिये कल्पित की गईं । पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना, पशुओं की रक्षा करना, खेती करना, व्यापार से धनसम्पादन करना ये काम वैश्यों के लिये ठहराये गये, और शूद्र के लिये इन तीन वर्णों की सेवा करना यही मुख्य कर्म नियत किया गया । पुरुष के देह में नाभि से ऊपर का भाग उत्तम है, उसमें भी मुख प्रधान है, और ब्राह्मण ब्रह्म के मुख से उत्पन्न हुआ इसलिये ब्राह्मण सबसे उत्तम है यह वेद की श्रुति है । ब्रह्माजी ने बहुत काल तप करके ब्राह्मण को उत्पन्न किया इससे ब्राह्मण सृष्टि भर का स्वामी है, देवता और पितर हव्य और कव्य को मुख से भक्षण करते हैं और ब्राह्मण मुखस्वरूप है इसलिये सबमें प्रधान है । सब भूतों में प्राणी श्रेष्ठ है, प्राणियों में बुद्धिमान्, बुद्धिमानों में मनुष्य, मनुष्यों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों में कृतबुद्धि, कृतबुद्धियों में कर्म करनेहारे और कर्म करनेहारों में भी ब्रह्मवेत्ता श्रेष्ठ होते हैं । ब्राह्मण का जन्म धर्मसम्पादन करने के लिये है, और धर्म के आचरण से ब्राह्मण ब्रह्मलोक को जाता है । धर्म की रक्षा और सृष्टि की उत्पत्ति के लिये ब्राह्मण का जन्म है । सृष्टि में जितने पदार्थ हैं सबका स्वामी ब्राह्मण है । ब्राह्मण अपने धन का उपभोग करता है, और वर्ण ब्राह्मण की कृपा से ब्राह्मण के ही धन से अपना कालक्षेप करते हैं । तीनवर्णों के भाव और अभाव करने में ब्राह्मण समर्थ है । जो प्रसन्न हो तो तीनों वर्णों का कल्याण, और क्रोध करे तो तीनों वर्णों का अभाव कर सक्ता है इसलिये ब्राह्मण सदा पूजनीय है, ब्राह्मण के आगे किसी का प्रभुत्व नहीं चलसक्ता; ब्राह्मण अपनी इच्छा से स्वर्ग में जाता है, स्वर्ग से महर्लोक, महर्लोक से जनलोक को चला जाता है और ब्रह्मत्व को भी प्राप्त होता है । इतनी कथा सुन राजा शतानीक बोले कि

हे सुमन्तु मुनि ! ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्व अति दुर्लभ है, किन गुणों करके युक्त ब्राह्मण ब्रह्मलोक को जाता है और ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है यह आप कृपा करके वर्णन करें। यह राजा का वचन सुन मुनिने कहा कि हे राजन् ! जिस ब्राह्मण के गर्भाधान आदि अड़तालीस संस्कार विधिपूर्वक हुए हों वही ब्राह्मण ब्रह्मलोक और ब्रह्मत्व को प्राप्त होता है, संस्कार ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति का कारण है। यह सुन राजा ने कहा कि हे मुनीश्वरजी ! वे संस्कार कौन से हैं आप सुनाइए तब मुनि बोले कि हे राजन् ! आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया, वेद में और शास्त्र में जो संस्कार कहे हैं वे हम वर्णन करते हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौड़, मेखला, चार प्रकार का वेदव्रत, स्नान, विवाह पंच महायज्ञों का करना जिनसे देवता, पितर, मनुष्य, भूत और ब्रह्म की तृप्ति होती है। अ-ष्टकाश्राद्ध, पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री, आश्व-युजी, अग्निहोत्रदर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, निरूढ, पशुबन्ध सौत्रामणी, अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, षोड़शी, वाजपेय, अति-रात्र और सप्तसोम ये सब ब्राह्मण के संस्कार हैं, और आठ गुण भी ब्राह्मण में होने चाहिए जिनसे ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वे ये हैं—अनसूया, दया, क्षांति, अनायास, मङ्गल, अकार्पण्य, शौच और स्पृहा। अब इन आठ गुणों के लक्षण सुनिए। गुणी के गुणों को न छिपाना, निर्गुणी की भी स्तुति करना, दूसरे के दोष से भी अप्रसन्न न होना अनसूया कहाता है। अपने में, पराये में; मित्र में और शत्रु में अपने समान बर्तना और दू-सरे का दुःख दूर करने की इच्छा रखना इसका नाम दया है। मन, वचन, कर्म करके कोई पुरुष दुःख देवे तोभी उस पर क्रोध न करना इसको क्षमा कहते हैं। अभक्ष्य वस्तु न खाना, निंदित पुरुषों का सङ्ग न करना और आचार में रहना इसका नाम

शौच है। जिस शुभ कर्म करके भी शरीर को कष्ट हो उस कर्म को अत्यन्त न करना यही अनायास है। नित्य भले काम करना और बुरे कर्मों को त्यागना इसको मङ्गल कहते हैं। कष्ट से उपार्जित किये हुए धन से भी थोड़ा-बहुत नित्य देना इसका नाम अकार्पण्य है। ईश्वर की इच्छासे जो थोड़ा-बहुत मिल जाय उतनेही में सन्तुष्ट होजाना और पराये धन की इच्छा न रखना इसका नाम स्पृहा है। इन आठ गुणों और संस्कारों करके जो ब्राह्मण युक्त हो वही ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्मलोक को जाता है। निषेक आदि वैदिक पवित्र संस्कारों से शरीर को शुद्ध करना चाहिए जिसकी गर्भ-शुद्धि हो और सब संस्कार हुए हों, और वर्णाश्रम धर्म का आचरण करता रहे वह अवश्य मुक्ति पाता है यह निश्चय इस पुराण का है। इन संस्कारों को जो सुने अथवा पढ़े वह ऋद्धि, लक्ष्मी, कीर्त्ति, धन, धान्य, यश, पुत्र, बन्धु और उत्तमरूप को पाता है और कुछ काल सूर्यलोक में रहकर ब्रह्मलोक में प्राप्त होता है।

दूसरा अध्याय।

यज्ञोपवीतादि संस्कारों की विधि और भोजन-विधि व निषेध।

इतना सुन राजा शतानीक ने कहा कि महाराज इन संस्कारों के लक्षण और वर्णाश्रम धर्म आप मुझे श्रवण कराइये। यह राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौड़ और यज्ञोपवीत इन संस्कारों करके बीज के और गर्भ के सब दोष निवृत्त हो जाते हैं और स्वाध्याय, व्रत, होम, महायज्ञ, यज्ञ और इज्या आदि से यह शरीर ब्रह्मरूप हो जाता है। नालच्छेदन से पहिले जातकर्म होता है जिससे वेद के मन्त्रों करके सुवर्ण, शहद और घृत का बालक को प्राशन कराया जाता है। दशवें दिन, बारहवें दिन, अठारहवें दिन

अथवा एक महीना पूरा होने पर नामकरण अच्छे मुहूर्त्त में किया जाता है। उस समय ब्राह्मण का नाम मङ्गलदायक रखना चाहिए जैसा शिवशर्मा, क्षत्रिय का बलयुक्त नाम जैसा इन्द्र-वर्मा, वैश्य का धनयुक्त, जैसा धनवर्द्धन, और शूद्र का नाम जुगुप्सित अर्थात् बुरा रखना चाहिए जैसा सर्वदास। मनुजी ने कहा है कि ब्राह्मण के नाम में शर्मा लगा देना, क्षत्रिय का नाम रक्षायुक्त, वैश्य का पुष्टिसंयुक्त, और शूद्र का दासान्त नाम रखना अर्थात् जिसके अन्त में दास आदि शब्द हों, और स्त्रियों का नाम ऐसा रखना चाहिए कि जिसके बोलने में कष्ट न पड़े, क्रूर न हो, अर्थ स्पष्ट और अच्छा हो, जिसके सुनने से मन प्रसन्न हो, मङ्गलदायक, आशीर्वादयुक्त और जिसके अन्त में आकार ईकार आदि दीर्घस्वर हों। बारहवें दिन अथवा चौथे महीने बालक को घर से बाहर ले जाना, छठे मास अन्नप्राशन कराना, पहिले वर्ष अथवा तीसरे वर्ष चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन करना, गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का यज्ञोपवीत, गर्भ से ग्यारहवें में क्षत्रिय का, और गर्भ से बारहवें वर्ष में वैश्य का करना चाहिए, परन्तु ब्रह्मवर्चस की इच्छावाला ब्राह्मण पाँचवें वर्ष में, बल की इच्छावाला क्षत्रिय छठे वर्ष में, और धन की कामनावाला वैश्य आठवें वर्ष में अपने-अपने बालकों का यज्ञोपवीत करें। सोलह वर्ष तक ब्राह्मण, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय, और चौबीस वर्ष तक वैश्य गायत्री के अधिकारी रहते हैं। इसके अनन्तर गायत्री के अधिकारी नहीं रहते और व्रात्य कहाते हैं। जब तक व्रात्यस्तोम नामक संस्कार उनका न किया जाय तबतक शुद्ध नहीं होते। इन व्रात्यों के साथ आपत्ति में भी कभी पठन-पाठन का अथवा विवाह आदि का सम्बन्ध न करे। यज्ञोपवीत के समय तीन वर्णों के लिये क्रम से तीन चर्म होते हैं--सिंह का, रुरुनाम मृग का

और बकरे का। इसी प्रकार तीन प्रकार के वस्त्र—शण के, अलसी के और भेड़ की ऊँन के तीन वर्णों के लिये कहे हैं। तीन लड़ी की सुन्दर चिकनी मूँज की मेखला ब्राह्मण के लिये, मुरा नाम तृण की क्षत्रिय के लिये और शण तन्तुओं की वैश्य के लिये कही है। मूँज आदि न मिले तो कुशा, अश्मतक और बल्वज नाम तृण की मेखला बनावे। मेखला को तिलड़ा करके एक; तीन अथवा पांच ग्रन्थि उसमें लगावे। ब्राह्मण कर्पास के सूत्र का यज्ञोपवीत पहिने, क्षत्रिय शण के सूत्र का, और वैश्य भेड़ के ऊन का जनेऊ धारण करे। ब्राह्मण बिल्व और पलाश के काष्ठ का दण्ड शिर तक ऊँचा धारे, क्षत्रिय बड़ और खैर के काष्ठ का दण्ड मस्तक पर्यंत ऊँचा ग्रहण करे; और वैश्य पीपल और गूलर के काष्ठ का दण्ड नासिकापर्यंत ऊँचा धारण करे, ये दण्ड सूधे, चिकने और व्रण-रहित होने चाहिए। यज्ञोपवीत के समय माता, बहिन अथवा मौसी से पहिले भिक्षा माँगे जो इसका अपमान न करे वह भी सुवर्ण चांदी और अन्न इसके पात्र में डाले, इस भांति भिक्षा ग्रहणकर गुरु के आगे निवेदन करे, और गुरु की आज्ञा पाकर आचमन करके पूर्वाभिमुख बैठ उसी अन्न को भक्षण करे। पूर्व को मुख करके भोजन करने से आयुष् की, दक्षिण को यश की, पश्चिम को लक्ष्मी की, और उत्तर को सत्य की वृद्धि होती है। आचमन करके एकाग्रचित्त हो उत्तम अन्न को भोजन करे, और भोजन करके फिर आचमनकर सब इन्द्रियों को जल से स्पर्श करे, अन्न की नित्य स्तुति करे, और अन्न को देख प्रसन्न होजाय और हर्ष से भोजन करे, कभी अन्न की निन्दा न करे यह मनुजी की आज्ञा है। पूजित अन्न के भोजन से बल और तेज की वृद्धि होती है और निन्दित अन्न के भोजन से दोनों की हानि। इस कारण सदा सुन्दर अन्न को भोजन करे, उच्छिष्ट किसी को न देवे और भोजन करके जिस अन्न को छोड़ देवे,

उसको फिर न भक्षण करे अर्थात् बार बार छोड़कर भोजन न करे, एकबार बैठकर तृप्तिपूर्वक भोजन कर लेवे। जो पुरुष बीच-बीच में विच्छेद कर के भोजन करता है उस के दोनों लोक नष्ट होते हैं, जिसभाँति पूर्वकाल में धनवर्द्धन नाम वैश्य के भये। यह सुन राजा ने पूछा कि महाराज! वैश्य ने क्यों-कर भोजन किया और उसको क्या फल प्राप्त हुआ? यह आप वर्णन करें, तब सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! सत्ययुग में एक धनवर्द्धन नामक वैश्य पुष्कर में रहता था। एक दिन ग्रीष्मऋतु में मध्याह्न के समय बलिवैश्वदेव कर अपने पुत्र, मित्र, बन्धु आदि के संग बैठा भोजन करता था इतने में अकस्मात् एक बड़ा दीन शब्द बाहर हुआ। वह उस शब्द को सुनते ही दया से भोजन छोड़ उठ धाया, बाहर गया तबतक वह शब्द निवृत्त होगया और वैश्य ने भी अपने घर में आकर उसी भोजन को खाया जो पात्र में छोड़ गया था, भोजन करते ही वह मृत्युवश हुआ और इसी अपराध से परलोक में भी उसकी दुर्गति भई इसलिये अन्तर करके भोजन न करे; अधिक भोजन भी न करे और उच्छिष्ट होकर अर्थात् जूठे मुख से कहीं बाहर न जाय, बहुत खाने से रस की उत्पत्ति होती है और रस होने से अनेक भाँति के रोग शरीर में खड़े होते हैं। जब अजीर्ण हो तब स्नान, दान, जप, होम, तर्पण, पूजा-पाठ आदि कोई कर्म नहीं बन पड़ता, अति भोजन करने से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, आयुष् घटता है, लोक में निन्दा होती है और अन्त में सद्गति भी नहीं होती इस कारण कभी बहुत भोजन न करे। जो पुरुष उच्छिष्ट हो उसको यक्ष, भूत, पिशाच, राक्षस आदि दबा लेते हैं और पवित्र पुरुष के समीप नहीं आते इससे सदा शुचि रहना चाहिए। पवित्र मनुष्य यहाँ सुख से रहता है और अन्त में स्वर्ग को जाता है। इतना

सुन राजा ने पूछा कि हे मुनीश्वर! ब्राह्मण कौन कर्म से पवित्र होता है यह आप वर्णन करें। यह राजा का वचन सुनि मुनि कहने लगे कि हे राजन्! विधि से जो ब्राह्मण आचमन करे वह पवित्र होजाता है और आचमन की विधि यह है कि हाथ पाँव धोकर पवित्र स्थान में आसन के ऊपर पूर्व की ओर अथवा उत्तर की ओर मुख करके बैठे और दहिने हाथ को जानु के भीतर कर, दोनों चरण बराबर रख, शिखा में ग्रंथि लगाय, निर्मल और शीतल जल से आचमन करे, खड़े-खड़े बात करते, इधर-उधर देखते, शीघ्रता से और क्रोधयुक्त होकर आचमन न करे और गरम जल से अथवा मलिन जल से भी आचमन न करे। ब्राह्मण के हाथ में पाँच तीर्थ हैं—देवतीर्थ, पितृतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, प्राजापत्य और सौम्य। अब इनके लक्षण कहते हैं—अँगुलियों के आगे देवतीर्थ, तर्जनी और अंगुष्ठ के बीच पितृतीर्थ, अंगुष्ठ के मूल में ब्रह्मतीर्थ, कनिष्ठा के मूल में प्राजापत्य तीर्थ, और हाथ के मध्यभाग में सौम्यतीर्थ है। देवपूजा और बलि देवतीर्थ से करे, और ब्राह्मण को दक्षिणा भी देवतीर्थ से ही देवे। तर्पण, पिण्डदान आदि कर्म पितृतीर्थ करके करे, ब्रह्मतीर्थ करके आचमन करे, विवाह के समय लाजा होम और सोमपान प्राजापत्यतीर्थ करके करे, कमण्डलु ग्रहण और दधिप्राशन नामक कर्म सौम्यतीर्थ से करे। हाथ की अँगुलियों को इकट्ठा कर एकाग्रचित्त हो तीन आचमन पवित्र जल से करे, और मुख से शब्द न करे उसको बहुत फल होता है। पहिले आचमन से ऋग्वेद की तृप्ति होती है, दूसरे आचमन से यजुर्वेद की, और तीसरे से सामवेद की तृप्ति होती है। आचमन करके दहिने अंगुष्ठ से जल करके मुख को स्पर्श करे तो अथर्वण वेद की तृप्ति होती है। ओष्ठ के मार्जन से इतिहास और पुराणों की तृप्ति होती है, मस्तक में अभिषेक करने से रुद्र भगवान्

प्रसन्न होते हैं, शिखा के स्पर्श से ऋषि, दक्षिण-वाम नेत्र के स्पर्श से सूर्य और चन्द्र, नासिका-स्पर्श से वायु, कर्णों के स्पर्श से दिशा, भुजा के स्पर्श से यम, कुबेर, वरुण, इन्द्र और अग्नि तृप्त होते हैं। पैर धोने से विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं, भूमि में जल छोड़ने से वासुकि आदि नाग सन्तुष्ट होते हैं, और बीच में जो जलबिन्दु गिरें उनसे चार प्रकार के भूतग्राम की तृप्ति होती है, अंगुष्ठ और तर्जनी से नेत्र स्पर्श करे, अंगुष्ठ-अनामिका से नासिका, अंगुष्ठ मध्यमा से मुख, अंगुष्ठ-कनिष्ठा से कर्ण और सब अँगुलियों से भुजाओं को स्पर्श करे। अंगुष्ठ करके नाभि और सब अँगुलियों से शिर को स्पर्श करे। अंगुष्ठ अग्नि-रूप है, तर्जनी वायुरूप, मध्यमा प्रजापतिरूप, अनामिका सूर्यरूप और कनिष्ठा इन्द्ररूप है। इस विधि से ब्राह्मण आचमन करे तो सम्पूर्ण जगत् देवता और लोक तृप्त होते हैं। ब्राह्मण सदा पूजनीय है क्योंकि वह सर्व देवमय है। ब्राह्मतीर्थ करके आचमन करे अथवा प्राजापत्य और देवतीर्थ करके करे परन्तु पितृतीर्थ करके कभी आचमन न करे। ब्राह्मण इतने जल से आचमन करे कि जल हृदय तक जाय तब पवित्र होता है। क्षत्रिय कण्ठ तक जाने से, और वैश्य जल के प्राशनमात्र से शुद्ध होजाता है, और शूद्र भी जल के स्पर्श से शुद्ध होता है। दहिना हाथ उठा रहे और वाम के ऊपर यज्ञोपवीत रहे उसको उपवीत कहते हैं। वाम हाथ उठे रहने से प्राचीनावीती, और जिसका जनेऊ कण्ठ में लटके वह निवीती कहाता है। मेखला, मृगचर्म, दण्ड, यज्ञोपवीत और कमण्डलु इनमें से कोई वस्तु नष्ट होजाय तो आचमन कर दूसरी वस्तु का ग्रहण करे। उपवीती होकर और दहिने हाथ को जानु अर्थात् घुटने के भीतर रखकर जो ब्राह्मण आचमन करे वह पवित्र हो जाता है। ब्राह्मण के हाथ की सब रेखाएँ गंगा आदि

नदियाँ हैं और अँगुलियों के पर्व हिमालय आदि पर्वत हैं इसलिये ब्राह्मण का दहिना हाथ सर्व देवमय है हे राजन्! हमने जो यह आचमन का विधान कहा, इस विधि से जो आचमन करे यह अवश्य स्वर्ग को जाय।

तीसरा अध्याय।

वेद व विद्याध्ययनविधि और गायत्रीमाहात्म्य व फल आचारादि का अभिवादन।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! केशांत नाम संस्कार ब्राह्मण का सोलहवें वर्ष में, क्षत्रिय का बाईसवें में और वैश्य का पचीसवें वर्ष में होता है। केशांत संस्कार होने के अनन्तर चाहे तो गुरु के घर में रहे अथवा अपने घर में आकर विवाह करके अग्निहोत्र का ग्रहण करे, स्त्रियों के लिये मुख्य संस्कार विवाह है, हे राजन्! यह उपनयन का विधान हमने कहा, अब इसके आगे का कर्म कहते हैं। शिष्य का यज्ञोपवीत कर गुरु पहिले उसको शौच, आचार, सन्ध्योपासन और अग्नि कार्य सिखावे और वेद पढ़ावे। शिष्य भी आचमन कर उत्तराभिमुख बैठ दोनों हाथों करके ब्रह्माञ्जलि बाँध, एकाग्रचित्त हो वेद पढ़े। पढ़ने के आरम्भ और समाप्ति में गुरु के चरणों का वन्दन करे। पढ़ने के समय दोनों हाथों की जो अञ्जली बाँधी जाती है उसको ब्रह्माञ्जली कहते हैं। शिष्य दहिने हाथ से गुरु का दहिना चरण और बायें से बायाँ ग्रहण करे। पढ़ने के आरम्भ में (अधीष्व भोः) यह वाक्य शिष्य से गुरु कहे और समाप्ति के समय (विरामोऽस्तु) यह वाक्य कहे। वेद पढ़ने के समय आदि में और अन्त में ओंकार का उच्चारण करे, विना ओंकार के उच्चारण करने से फल नहीं होता। पहिले पवित्र हो तीन प्राणायाम करे, पीछे ओंकार का उच्चारण करे। प्रजापति ने अकार, उकार और मकार ये तीन वर्ण तीन वेदों का सार निकाले

हैं जिनसे ॐकार बनता है, और भूः, भुवः, स्वः ये तीनों व्याहृति और गायत्री के तीन पाद तीन वेदों से निकले हैं इसलिये जो ब्राह्मण दोनों सन्ध्याओं में इसको जपे वह वेदपाठ के फल को प्राप्त होता है। जो घर के बाहर नदी के तट पर बैठ एक सहस्र गायत्री नित्य जपे वह बड़े भारी पाप से भी एक महीने में छूट जाता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य अपनी क्रिया से हीन होते हैं उनकी साधु पुरुषों में निन्दा होती है और परलोक में भी कल्याण के भागी नहीं होते इस कारण कर्म का त्याग न करना चाहिए। प्रणव, तीन व्याहृति और त्रिपदा गायत्री ये सब मिलके जो मंत्र होता है वही ब्रह्मा का मुख है, इसको जो तीन वर्ष नित्य जपे वह परब्रह्म में लीन होता है, होम, दान, यज्ञ आदि क्रियाओं का क्षरण अर्थात् नाश होजाता है और प्रणवस्वरूप एकाक्षर ब्रह्म अक्षर है, विधियज्ञों से जपयज्ञ उत्तम है, जपों में भी उपांशु जप करने से सौगुणा फल होता है, और मानस जप से सहस्रगुणा, सम्पूर्ण विधि यज्ञ जप यज्ञ की सोलहवीं कला की भी तुल्यता नहीं कर सक्ती। ब्राह्मण को सब सिद्धियाँ जपही से प्राप्त होती हैं, और कुछ करे अथवा न करे परन्तु ब्राह्मण को गायत्री जप अवश्य करना चाहिए क्योंकि ब्राह्मण मैत्र कहलाता है, तारा दीखते होयँ तब प्रातः सन्ध्या का आरम्भ करे और सूर्योदयपर्यंत गायत्री जप करता रहे इसीभांति सूर्यास्त से पहिले ही सायंसन्ध्या का आरम्भ करे और तारा दर्शन तक गायत्री जपे। प्रातःकाल की सन्ध्या से रात्रि के किये पाप दूर होते हैं और सायंसन्ध्या से दिन के किये, इसलिये दोनों काल की सन्ध्या अवश्य करनी चाहिए। जो दोनों सन्ध्या न करे वह शूद्र के समान होता है। घर के बाहर जाकर जल के तट पर गायत्री-जप और सन्ध्या करने से बहुत फल है। सन्ध्या के मंत्र होममंत्र और जो ब्रह्मयज्ञ

आदि नित्य कर्म हैं इनके मंत्रों के उच्चारण में अनध्याय का विचार न करे। यज्ञोपवीत के अनन्तर समावर्त्तन संस्कार तक गुरु के घर में रहे, भूमिशयन करे और सर्व प्रकार से गुरुकी शुश्रूषा करता रहे और वेद पढ़े, विना पूछे किसी से न बोले और जो अन्याय से पूछे उससे भी कुछ न कहे, जानता हुआ भी जड़ की भाँति हो जाय, जो अधर्म से पूछे और अधर्म से कहे वे दोनों नरक में जाते हैं और जगत् में भी सबके अप्रिय होते हैं। जिसको पढ़ाने से धर्म अथवा अर्थ की प्राप्ति न हो और वह कुछ शुश्रूषा भी न करे उसको कभी न पढ़ावे क्योंकि ऐसे विद्यार्थी को विद्या देना ऊषर में बीज बोना है। विद्या ब्राह्मण से यह कहती है कि मेरी भली भाँति रक्षा कर तो मैं तेरे लिये शेवधि हूँ और असूयांवाले पुरुष को मुझे मत दे जिससे बलवती रहूँ। शेव नाम सुख और ज्ञान का है, इन दोनों को जो धारण करे वह शेवधि कहलाती है अर्थात् सुख और ज्ञान के देनेहारी, और विद्या यह भी कहती है कि जो ब्राह्मण शुचि, ब्रह्मचारी और प्रमाद से रहित हो उसको मुझे दे। जो गुरु के विना वेदशास्त्र आदि को आप ही ग्रहण करे वह अतिभयंकर रौरव नरक में वास करता है। जिससे वेद पढ़े सदा प्रथम उसको प्रणाम करे, केवल गायत्री जानता हो परन्तु शास्त्र की मर्यादा में चले वह सबसे उत्तम है और जो सब वेद और शास्त्र जानकर भी मर्यादा में न रहे, सब वस्तु भोजन करे, और सब पदार्थ बेचे वह अधम है। गुरु के आगे शय्या अथवा आसन आदि पर न बैठे, जो बैठा हो तो गुरु को आते देख नीचे उतरकर अभिवादन अर्थात् प्रणाम करे। वृद्ध को आते देख तरुण पुरुष के प्राण ऊपर को उठते हैं, जब वह वृद्ध को अभ्युत्थान देकर प्रणाम कर लेवे तब फिर ठिकाने आ जाते हैं। जो पुरुष वृद्धों की सेवा करे और उनको प्रणाम आदि करे उसके

आयुष्, बद्धि, यश और बल की वृद्धि होती है। बड़े को जब अभिवादन करे तब अपना नाम लेवे कि मैं अमुकशर्मा आपको अभिवादन करता हूँ अथवा केवल इतना ही कहे कि मैं प्रणाम करता हूँ। गुरु भी अभिवादन सुनकर आशीर्वाद देवे कि (आयुष्मान् भव) अर्थात् बड़े आयुष्वाला हो। जो अभिवादन के अनन्तर प्रत्यभिवादन अर्थात् लौटकर अभिवादन करना न जाने उसको कभी अभिवादन न करे वह शूद्र के तुल्य है, और जो अभिवादन करने पर अभिमान से प्रत्यभिवादन न करे अथवा आशीर्वाद न देवे वह नरक को जाता है। ब्राह्मण को कुशल पूछे, क्षत्रिय को अनामय, वैश्य को क्षेम और शूद्र को आरोग्य पूछे। जो यज्ञ की दीक्षा लिये हो वह चाहे अपने से छोटा भी हो परन्तु उसको नाम लेकर नहीं पुकारना, पराई स्त्री को जिससे कुछ सम्बन्ध न हो उसको भवति, सुभगे, भागिनि इन सम्बोधनों से बोले। पितृव्य अर्थात् चाचा और ताऊ, मामा, श्वशुर, ऋत्विक् और गुरु इनको सदा उत्थान देवे। मौसी, मामी, सासु, बूआ अर्थात् पिता की बहिन और गुरु की स्त्री ये सब मान्य हैं। बड़े भाई की जो सवर्णा स्त्री उसका नित्य जो आदर करे और माता के समान जाने वह विष्णुलोक पावे। माता की बहिन, पिता की बहिन और अपनी बड़ी बहिन ये तीनों भी माता के समान होती हैं, परन्तु माता का आदर सबसे अधिक रखना चाहिए। बड़ा पुत्र, मित्र और भानजा इनको अपने समान समझे। दश वर्ष का ब्राह्मण हो और सौ वर्ष का क्षत्रिय, परन्तु उनमें पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता है अर्थात् ब्राह्मण पिता और क्षत्रिय पुत्र, इस भाँति ब्राह्मण क्षत्रिय का पिता, वैश्य का पितामह और शूद्र का प्रपितामह होता है। धन, बन्धु, अवस्था, आचरण और विद्या ये पाँचो बड़ाई के हेतु हैं। इनमें पहिले से

दूसरा, और दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा और चौथे से पाँचवाँ अधिक है। अतिवृद्ध शूद्र भी मान के योग्य होता है। अतिवृद्ध रोगी, भारयुक्त स्त्री, ऋषि और राजा इनको रास्ता देना चाहिए अर्थात् ये आगे से आते हों तो मार्ग छोड़ अलग खड़ा हो जाय और विवाह करने के अर्थ जो वर जाता हो उसको भी मार्ग देवे, इनमें जो दो-तीन आगे से आ जावें तो ऋषि और राजा मुख्य हैं, और इन दोनों में भी ऋषि प्रधान है। जो यज्ञोपवीत करके शिष्य को रहस्य और कल्प के सहित वेद पढ़ावे उसको आचार्य कहते हैं। जो वेद का एक भाग अथवा वेद के अङ्ग जीविका के अर्थ पढ़ावे उसकी उपाध्याय संज्ञा है। जो निषेक अर्थात् गर्भाधान आदि सब संस्कार करे और खाने को अन्न देवे उसको गुरु कहते हैं। जो अग्निष्टोम आदि यज्ञ वरणी लेकर जिसके अर्थ करे वह उसका ऋत्विक् कहलाता है। जो पुरुष के दोनों कान वेद से भरता है और पवित्र करता है वही माता-पिता है, उसके साथ कभी द्रोह न करना चाहिए। उपाध्याय से दशगुणा गौरव आचार्य का, और आचार्य से सौगुणा पिता का, और पिता से हजारगुणा गौरव माता का करना चाहिए। जन्म देनेहारा और वेद पढ़ानेहारा ये दोनों पिता हैं, परन्तु वेद पढ़ानेहारा मुख्य है क्योंकि ब्राह्मण का मुख्य जन्म तो वेद पढ़ने से ही होता है, और माता-पिता तो काम से उत्पन्न करते हैं। ये उपाध्याय आदि जितने पूज्य हमने कहे इन सबसे अधिक गौरव के योग्य महागुरु होता है, और चारों वर्णों में पूजनीय है। यह सुन राजा ने पूछा कि महाराज! उपाध्याय आदि के लक्षण तो मैंने सुने, अब कृपा कर महागुरु का लक्षण भी वर्णन कीजिए। यह राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि ने कहा कि हे राजन्! जो ब्राह्मण जपोपजीवी हो अर्थात् जप से अपना उपजीवन करे और अठारह पुराण,

रामायण, भारत, विष्णुधर्म, आदित्यधर्म, शिवधर्म और वेद इन सबको भली भाँति जाने वह महागुरु कहाता है, वह सबका पूज्य है। हे राजा शतानीक! जो जिसको थोड़ा-बहुत पढ़ावे वह उसका गुरु होता है, चाहे अवस्था में छोटा ही हो। पढ़ाने से बालक वृद्ध का भी पिता हो सक्ता है। पूर्वकाल में अंगिरा मुनि का बालक पुत्र बृहस्पति बड़े वृद्ध पितरों को पढ़ाता था और पढ़ाने के समय वह कहता कि हे पुत्रो! भली भाँति पढ़ो। पितर बालक के इस वचन को सुन क्षोभ कर देवताओं के समीप गये और सब वृत्तान्त कहा, तब देवताओं ने कहा कि हे पितरो! जो अज्ञ हो अर्थात् कुछ न जानता हो वह बालक कहाता है और जो पढ़ावे वह पिता गिना जाता है, न तो अवस्था अधिक होने से, न श्वेत केश होने से, और न बहुत से मित्र-बन्धु होने से बड़ा होता है। ऋषियों ने यह धर्म नियत किया है कि जो विद्या में अधिक हो वही सबसे वृद्ध गिना जाय। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में जो ज्ञान, बल, जन्म, शील, विद्या आदि से बड़ा हो वही बड़ा होता है, शिर के बाल श्वेत हो जाने से वृद्ध नहीं होता जो तरुण भी हो परन्तु भली भाँति विद्या सम्पादन कर लेवे उसी को वृद्ध जानो जैसे काठ का हाथी अथवा केवल चर्म का मृग किसी काम का नहीं होता इसी भाँति विना पढ़ा ब्राह्मण नाममात्र को ब्राह्मण है, जिस भाँति स्त्रियों का परस्पर समागम निष्फल होता है, जैसे मूर्ख को दान देना विफल है, इसी भाँति वेद से हीन ब्राह्मण का जन्म वृथा है। जो वेद पढ़के भी वैश्वदेव आदि कर्म न करे वह शूद्रके समानहै। जो वेद न पढ़े, वैश्यकी वृत्ति करे, शूद्र की सेवा करे, नटवृत्ति, चोरी और चिकित्सा से अपना निर्वाह करे वह भी शूद्र ही कहाता है। जिस ग्राम में वेद विना पढ़े और व्रत से हीन ब्राह्मणों को भोजन मिले वह ग्राम राजा को दण्डनीय है।

वेद पढ़कर अग्निहोत्र का ग्रहण करे तब वेद पढ़ना सफल है। यह वेद में ही लिखा है जो वेद पढ़कर अग्निहोत्र नहीं करते उनका वेद पढ़ने का परिश्रम वृथा होता है। वेद कहते हैं कि जो हमको पढ़कर हमारा अनुष्ठान न करे वह हमारे पढ़ने का व्यर्थ क्लेश उठाता है इसलिये वेद पढ़कर वेद में कहे हुए कर्मों का अनुष्ठान करे तब वेद पढ़ना सफल है। वेद को जानकर जो धर्म का उपदेश करे वही उपदेश ठीक है। जो मूर्ख वेद विना जाने धर्म का उपदेश करते हैं वे बड़े पाप के भागी होते हैं। शौच से हीन, वेद से रहित, नष्टव्रत ब्राह्मण को जो अन्न दिया जाता है वह अन्न रोदन करता है कि मैंने क्या पाप किया था जो ऐसे मूर्ख ब्राह्मण के हाथ में पड़ा, और वही अन्न जो जपोपजीवी को दिया जाय तो प्रसन्नता से नाचता है कि मेरे बड़े भाग्य हैं जो ऐसे पात्र में आया। विद्या और तप करके युक्त ब्राह्मण जब घर में आवे तब सब ओषधी जो घर में विद्यमान हैं अति प्रसन्न होती हैं और कहती हैं कि अब हमारी भी सद्गति हो जायगी। व्रत, वेद और जप से हीन ब्राह्मण को कभी दान न देवे क्योंकि पत्थर की नाव नदी के पार नहीं उतार सक्ती, वेदपाठी को ही हव्य कव्य देने से देवता और पितरों की तृप्ति होती है। घर के समीप मूर्ख ब्राह्मण रहता हो और विद्वान् घर से दूर हो तो भी विद्वान् को ही बुलाकर दान देना। मूर्ख ब्राह्मण का त्याग करने में कुछ दोष नहीं क्योंकि प्रज्वलित अग्नि को छोड़कर कोई बुद्धिमान् भस्म में हवन नहीं करता है परन्तु घर के समीप रहनेहारा ब्राह्मण जो गायत्रीमात्र भी जानता हो तो उसका त्याग न करे, जो उसका त्याग करे तो रौरव नरक को जाय क्योंकि ब्राह्मण चाहे निर्गुण हो वा गुणवान्, परन्तु गायत्री जानता हो तो परमदेव स्वरूप है, परन्तु पतित न हो। धान्य से हीन ग्राम और जल बिन कूप जैसे किसी अर्थ

नहीं आते ऐसे ही विना पढ़ा ब्राह्मण है। जो पतित ब्राह्मण के साथ स्नेह से अथवा भय से भोजन आदि का व्यवहार रक्खे वह ब्रह्महत्या के समान पातक को प्राप्त होता है। सब जीवों को अहिंसा से शासन करे और सदा मीठा सच्चा वचन बोले। जिसके मन और वचन शुद्ध हैं वह वेद और यज्ञ का पूरा फल पाता है। ऐसा वचन कभी न कहे कि जिससे किसी का आत्मा दुःख पावे, और सुननेवालों को अच्छा न लगे। पुरुष को वैसा आनन्द न चन्द्र के किरणों से, न चन्दन से, न शीतल छाया से, और न ठंडे जल से मिले जैसा मीठे वचन सुनकर मिलता है। आदर से ब्राह्मण सदा डरता रहे जैसा विष से, और अवमान को सदा अमृत के समान माने क्योंकि जिसका अवमान करो उसकी कुछ हानि नहीं होती, अवमान करनेहारा ही नाश को प्राप्त हो जाता है। वेद पढ़कर तप करे वही वेद के फल को पाता है, जो सुख के अर्थ वेद पढ़े और उससे और जीविका करे वह शूद्र के समान होता है। ब्राह्मण के तीन जन्म होते हैं—एक तो माता के गर्भ से, दूसरा यज्ञोपवीत से और तीसरा यज्ञ की दीक्षा लेने से। यज्ञोपवीत के समय गायत्री माता, और आचार्य पिता होता है। यज्ञोपवीत के पहिले किसी कर्म का अधिकारी नहीं होता, इस कारण वह कभी वेद का उच्चारण न करे। जब यज्ञोपवीत हो जाय तब वेद पढ़ने का अधिकारी होता है। यज्ञोपवीत के समय से मेखला, चर्मदण्ड और यज्ञोपवीत का धारण करे और तभी से देवता, पितर, मनुष्यों का तर्पण किया करे। पुष्प, फल, जल, समिधा, मृत्तिका, कुशा और अनेक प्रकार के काष्ठों का संग्रह रक्खे। मद्य, मांस, गन्ध, पुष्पमाला, अनेक प्रकार के रस और स्त्रियों का त्याग रक्खे, अनेक प्रकार के शुक्त अर्थात् सिर्के और अर्कों का खाना-पीना, आँखों में सुर्मा डालना, शरीर में तेल लगाना, जूता और छत्र का धारण, गीत सुनना, नाच

देखना, जूआ खेलना, झूठ बोलना, निन्दा करना, स्त्रियों के समीप बैठना, काम, क्रोध, लोभ आदि के वश होना, व्यभिचारिणी स्त्रियों से बातचीत करना, वीर्यपात करना ये सब बातें ब्रह्मचारी के लिये निषिद्ध हैं अर्थात् ब्रह्मचारी ये बातें न करे। जो स्वप्न में ब्रह्मचारी का वीर्य स्खलित हो जाय तो उठकर स्नान करे और सूर्यनारायण की पूजा करके गायत्री जपे तब शुद्ध होता है। जल, पुष्प, गोबर, मृत्तिका, कुशा और भिक्षा इनको नित्य लाया करे परन्तु जो पुरुष अपने कर्म में तत्पर रहें और वेद पढ़े हैं, अतिथि का आदर करते हैं उनके घरों से ही भिक्षा ग्रहण करे। गुरु के कुल में और अपने जाति के घरों में भिक्षा न माँगे। जो अन्यत्र भिक्षा न मिले तो इनकी भी ग्रहण करे परन्तु जो किसी भाँति कलंकित हो उसकी भिक्षा न लेवे। नित्य समिधा लाकर सायङ्काल और प्रातःकाल हवन करे। भिक्षा माँगने के समय मौन रहे। जो ब्रह्मचारी भिक्षा के अन्न विना सात दिन पर्यन्त और अन्न खाय, और रोग आदि निमित्त के विना सात दिन अग्निहोत्र भी न करे वह नष्टव्रत हो जाता है। ब्रह्मचारी के लिये भिक्षा का अन्न मुख्य है, इस कारण एक का अन्न नित्य न लेवे। भिक्षान्न के भोजन से नित्य उपवास का फल होता है यह धर्म केवल ब्राह्मण का कहा है, क्षत्रिय और वैश्य के धर्म में कुछ भेद है। गुरु के सम्मुख हाथ जोड़ खड़ा रहे, जब गुरु की आज्ञा हो तब बैठे परन्तु आसन पर न बैठे। गुरु के उठने से पहिले सोकर उठे और सोने से पीछे शयन करे। गुरु के सम्मुख अति नम्रता से बैठे, किसी बात में गुरु का अनुकरण अर्थात् नकल न करे, गुरु की निन्दा न करे और जहाँ निन्दा होती हो वहाँ से उठकर चला जाय अथवा कान मूँद लेवे। गुरु की निन्दा सुनने से गर्दभ की योनि में जाता है और निन्दा करने से श्वान होता है। वाहन पर चढ़ा

हुआ गुरु को अभिवादन न करे अर्थात् सवारी से उतरकर प्रणाम करे, गुरु के साथ एक वाहन, शय्या, आसन, शिला, चटाई, पट्टा आदि पर न बैठे। जो गुरु समीप न हो तो यही आचरण गुरुपुत्र के साथ रक्खे परन्तु उच्छिष्ट भोजन गुरु का ही करे। गुरु की सवर्णा स्त्री को गुरु के समान माने परन्तु गुरु-पत्नी के देह में तैल लगाना, स्नान कराना इत्यादि कर्म न करे और तरुण शिष्य अनेक प्रकार के गुण-दोष समझकर गुरुपत्नी के पैर भी न दबावे क्योंकि स्त्रियों के संग से पुरुषों को अनेक दूषण लगते हैं इसलिये बुद्धिमान् पुरुष उनसे बचता रहे। माता, बहिन अथवा अपनी कन्या हो परन्तु इनके साथ भी एकान्त में बातचीत न करे क्योंकि ये इन्द्रिय बड़ी बलवान् हैं, विद्वान् की बुद्धि भी चला देती हैं। राजा की स्त्री और गुरु की स्त्री को अपना नाम लेकर प्रणाम करे। जिस प्रकार भूमि को खोदते-खोदते जल मिल जाता है, इसी भाँति शुश्रूषा करते करते गुरु से विद्या प्राप्त होती है। शिर मुड़ाये रहे अथवा जटा धारण करे, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय ग्राम में न रहे अर्थात् जल के तट पर जाय, सन्ध्यावन्दन करे, जिसके सोते-सोते सूर्योदय अथवा सूर्यास्त हो वह बड़े पाप का भागी होता है, विना प्रायश्चित्त शुद्ध नहीं होता। माता-पिता और आचार्य का विपत्ति में भी अनादर न करे। माता पृथिवी की मूर्त्ति है, पिता प्रजापति की, और आचार्य ब्रह्मा की, इस-लिये इनका सदा आदर रक्खे। पुत्र के उत्पन्न करने और पालन करने में माता-पिता जितना क्लेश उठाते हैं उसका बदला सौ वर्ष तक सेवा करने से भी पुत्र नहीं दे सकता, इस लिये सदा माता-पिता और गुरु की शुश्रूषा करे जिससे सब प्रकार के तप का फल हो और इनकी शुश्रूषा ही बड़ा तप है। ये तीनों तीन लोक हैं, तीन आश्रम हैं, तीन वेद हैं और ये ही तीन तीन

अग्नि हैं। माता गार्हपत्य नामक अग्नि है, पिता दक्षिणाग्नि है, और गुरु आहवनीय नाम अग्नि का रूप है। जिस पर ये तीन प्रसन्न हों वह तीनों लोक जीत लेता है और देवताओं की भाँति स्वर्ग में विहार करता है। जो इनका आदर न रक्खे उसकी सब क्रियाएँ निष्फल हैं। जब तक ये तीनों जीते रहें तब तक इनकी शुश्रूषा के विना और कोई धन्धा न करे, यही बड़ा तप, व्रत और धर्म है, और जो कुछ कर्म करे तो भी इनकी आज्ञा से करे। उत्तम विद्या अधम पुरुष में हो तो भी ग्रहण कर लेवे क्योंकि विष से अमृत, बालक से सुभाषित अर्थात् अच्छी बात, शत्रु से भी उत्तम आचरण, कर्दम अर्थात् कीच से भी काञ्चन और दुष्कुल से भी स्त्रीरत्न अर्थात् उत्तम स्त्री ग्रहण करते हैं। उत्तम स्त्री, रत्न, विद्या, धर्म, शौच, सुभाषित और अनेक प्रकार के शिल्प जहाँ से मिलें वहाँ से ही ग्रहण कर लेवे, और विपत्तिकाल में क्षत्रिय और वैश्य से भी वेद पढ़े परन्तु उतने कालतक ही उनके समीप रहे, और ब्राह्मण गुरु के समीप तो शरीर पर्यंत रहने में कुछ दोष नहीं। जो जन्म भर गुरु की शुश्रूषा करे वह ब्रह्मलोक में निवास करता है। पढ़ने के समय गुरु को कुछ देने की इच्छा न करे, पढ़ने के अनन्तर गुरु की आज्ञा पाकर भूमि, सुवर्ण, गौ, घोड़ा, छत्र, धान्य, वस्त्र आदि अपनी शक्ति के अनुसार समर्पण करे। गुरु का जब देहान्त हो जाय तब गुरुपुत्र और गुरुस्त्री को गुरु के स्थान में माने, और ये भी न हों तो जो गुरु के भाईबन्धु हों उनको माने, और अग्निहोत्र नित्य करता रहे इस भाँति जो ब्रह्मचारी धर्म का आचरण करे वह ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी के समीप निवास करे। इतना कह सुमन्तुमुनि बोले कि हे राजन्! यह हमने ब्रह्मचारी का धर्म वर्णन किया, अब गृहस्थ के धर्म का वर्णन करते हैं, आप सुनो। ब्राह्मण आदि अपने-अपने समय में व्रत की समाप्ति

करें, और ब्राह्मण का यज्ञोपवीत वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में, और वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिए।

चौथा अध्याय।

स्त्री के सर्वाङ्गों का लक्षण।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजन् ! यह ब्रह्मचारिव्रत जो कहा इतना करे, इससे आधा अथवा चतुर्थांश ही करे, व्रत के अन्त में गुरु को सिंहासन पर बैठाकर माला आदि से पूजा करे और उत्तम गो निवेदन करे, फिर समावर्त्तन नाम संस्कार करके गुरु की आज्ञानुसार घर आकर सुन्दर लक्षणों से युक्त अपने वर्ण की स्त्री से विवाह करे, यह सुन राजा ने कहा कि हे मुनीश्वर ! प्रथम आप स्त्रियों के लक्षण वर्णन कीजिए कि किन लक्षणों करके युक्त कन्या शुभदायक होती है, यह राजा का वचन सुन, मुनि कहने लगे कि हे राजन ! पूर्वकाल में ऋषियों के प्रति जो ब्रह्माजी ने स्त्रीलक्षण कहा है वह हम वर्णन करते हैं आप एकाग्रचित्त होकर सुनो, जिसके श्रवण करने से सब शुभाशुभ ज्ञात हो जावेंगे। एक समय ब्रह्माजी अपने लोक में सुखपूर्वक बैठे थे उस समय सम्पूर्ण ऋषि गये और ब्रह्माजी को प्रणामकर विनय से प्रार्थना की कि महाराज ! सम्पूर्ण लोकों के कल्याण के अर्थ हम स्त्री के लक्षण सुनना चाहते हैं, आप कृपाकर कथन कीजिए यह सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे मुनीश्वरो ! हम स्त्री लक्षण कहते हैं, आप सब एकाग्रचित्त हो श्रवण कीजिए जिस स्त्री के चरण रक्त कमल के समान और भूमि पर सम्पूर्ण टिकनेवाले अर्थात् बीच से ऊँचे न रहनेवाले और अति कोमल हों तो वे भोग के देनेवाले होते हैं और जिनके चरण रूखे, फटे हुए, मांस से हीन, नाड़ियों करके व्याप्त हों, वे स्त्रियाँ दरिद्रा और दुर्भगा होती हैं। पैर की अँगुली आपस में मिली हुई, सीधी, गोल, सूक्ष्म नखों करके युक्त, और लम्बी अति

ऐश्वर्य देनेहारी हैं और स्त्री को रानी बनाती हैं। छोटी-छोटी अँगुली होने से आयुष् न्यून होता है, और बिरली अँगुलियों से धन की हानि होती है। मूल में जो टेढ़ी हों तो दारिद्र्य करें और मोटी अँगुलियोंवाली स्त्रियाँ दासी हो। जिस स्त्री की अँगुली एक के ऊपर एक चढ़ जाय इस भाँति सब अँगुली हों वह अनेक पतियों को मार, अन्त में दासी। हो पैर की अँगुलियों के नख स्निग्ध अर्थात् चिकने, लाल, ऊँचे और छोटे हों तो सौभाग्य, धन, पुत्र और राज्य मिले। श्वेत रङ्ग के फूटे हुए, रूखे, नीले, धुँधले नखों से दरिद्र हो, और पीले नख हों तो अभक्ष्य वस्तु खावे, गुल्फ अर्थात् टकने गोल, स्निग्ध और नसें जिनमें न दीखती हों वे गुल्फ उत्तम होते हैं। रोमों से रहित, गोल, गौरवर्ण की जंघा सौभाग्य और चढ़ने के लिये हाथी पालकी देनेहारी होती हैं। रोमयुक्त जंघा हों तो वह स्त्री भ्रमण करे, जिसकी पिंडली ऊपर को खिंची हों वह स्त्री क्लेश भोगे, काक के समान जिसकी जंघा हों वह पति को हनन करे। जिसके जानु अर्थात् घुटने मार्जार अर्थात् बिल्ली और सिंह के जानु के समान हों वह पुत्र, धन और सौभाग्य को प्राप्ती है, और जिसके जानु घट के समान हों वह निर्द्धन हो।। निर्मांस जानुओं से कलह करनेवाली हो, नाड़ियाँ देख पड़ती हों तो हिंसा करे। जिस स्त्री के रोम अथवा केश कुंचित अर्थात् घूंघरवाले हों, रूखे, आगे से फटे, और एक-एक रोमकूप में तीन-तीन चार-चार हों, और उस स्त्री का पिंगलवर्ण हो वह विष के समान प्राण हरनेवाली होती है, वह सात दिन के भीतर अपने पति के प्राण हरे। स्त्रियों के ऊरु हाथी की सूँड़ के समान, गोल और केला के स्तंभ से गौर और कोमल हों तो कामदेव का सुख देने हारे होते हैं, और सूखे रोमों से व्याप्त ऊरु दौर्भाग्य देते हैं। जिसकी भग रोमों से हीन हो और उसकी सन्धि आपस में श्लिष्ट हों वह

स्त्री चाहे नीच कुल में भी उत्पन्न हुई हो परन्तु राजा की रानी हो। पीपल के पत्र के समान, कछुवा की पीठ के सदृश ऊँची, और चन्द्रबिम्ब के समान योनि अनेक प्रकार के सुख देती है। जो योनि तिलपुष्प के सम हो, और आगे से खुर के सदृश हो वह दरिद्र करनेवाली होती है। नितम्ब पुष्ट हो तो उत्तम होता है, ऊखल के समान हो तो शोक देनेवाला होता है। स्तनों के भार से नम्रमरोमावली से भूषित, अति कृश और त्रिवली करके शोभित मध्यभाग शुभ होता है, इससे विपरीत लक्षण हों तो अशुभ जानिए। पीठ ऊँची न हो और रोमों से रहित हो तो उत्तम होती है, और जो कुबड़ी और रोमों करके युक्त हो तो उसको कभी पति का सुख नहीं प्राप्त होता वह पति के प्राण हरती है। जिनके पेट सुकुमार और चौड़े हों उनके सन्तान बहुत होती है, जिसकी कुक्षि मण्डूक के समान हो वह राजा की माता हो, ऊँचे पेटवाली बन्ध्या, गोल पेट से व्यभिचारिणी और दासी होती है, और ऊँचे-नीचे पेटवाली स्त्री क्षुद्रा होती है। गोल, ऊँचे, भारी और विस्तारयुक्त स्तन उत्तम होते हैं। गर्भ के समय जिस स्त्री का दहिना कुच ऊँचा हो जाय उसके पुत्र उत्पन्न हो, और बायाँ कुच ऊँचा होने से कन्या। जिसका चिबुक अर्थात् ठोढ़ी लम्बी हो वह स्त्री धूर्त्त हो, और जिसकी ठोढ़ी दबी हुई हो वह पति के साथ द्वेष रक्खे। जिनके कुच सर्प के फण के समान अथवा कुत्ता की जीभ के तुल्य हों वे दरिद्रा होती हैं। जिसका वक्षःस्थल अर्थात् छाती मांस से पुष्ट, रोम और नाड़ियों से रहित हो वह अनेक प्रकार के भोग भोगे। गोल छातीवाली हिंसा करे, रोमयुक्त छाती हो तो कुशीला हो, निर्मांस हो तो विधवा और बहुत चौड़ी छाती होने से कलह करनेवाली हो। जिस स्त्री के हाथ की रेखाएँ गहरी, स्निग्ध और रक्तवर्ण हों वह सुख भोगे, और टूटी रेखाओं से दरिद्रा होती है। जिसके हाथ में कनिष्ठा के मूल

से तर्जनी तक एक पूरी रेखा चली जाय वह सौ वर्ष का आयुष् पावे, जो रेखा न्यून हो तो आयुष् भी न्यून हो। हाथ की अँगुलियाँ गोल, लम्बी, पतली, छिद्ररहित और कोमल तथा रक्तवर्ण हों तो अनेक प्रकार के भोग मिलें, अत्यंन्त लाल, ऊँचे और स्निग्ध नख हों तो ऐश्वर्य मिले, जो रूखे, श्वेत, नीले, पीले नख हों तो दौर्भाग्य और दरिद्र हो। स्त्री के हाथ फटे हुए, रूखे और विषम अर्थात् ऊँचे-नीचे व छोटे-बड़े हों वह क्लेश भोगे, और कोमल, रक्तवर्ण, स्निग्ध और छोटे-छोटे हाथोंवाली स्त्री सुख में रहती है। जिसके अँगुलियों के पर्वों में यव के चिह्न हों उसको बहुत सुख और धन-धान्य मिलता है। जिस स्त्री का मणिबंध अर्थात् हाथ की कलाई तीन रेखाओं से भूषित हो वह उत्तम भोग और दीर्घ आयुष् पाती है। जिसके हाथमें श्रीवत्स, ध्वजा, कमल, हाथी, घोड़ा, चक्र, स्वस्तिक, वज्र, खड्ग, पूर्ण कलश, अंकुश, प्रासाद अर्थात् महल, छत्र, मुकुट, हार, केयूर, कुंडल, शंख, तोरण आदि के चिह्न हों वह राजा की स्त्री होती है। तुला अर्थात् तखड़ी का चिह्न होने से धनवान् वैश्य की स्त्री हो। दराती, जूआ, हल, फाल, ऊखल आदि का चिह्न होने से धनाढ्य कृषीबल अर्थात् जमींदार की पत्नी हो। स्त्री की भुजाएँ ऊपर से नम्र, रोमरहित और गोपुच्छ के आकार हों तो उत्तम होते हैं। कूर्पर अर्थात् कुहनी भी रोमरहित और गूढ़ हो तो श्रेष्ठ है। स्कन्ध नत अर्थात् नया हुआ उत्तम है, स्थूल स्कन्ध होने से बन्ध्या होती है। जिसका कन्धा ऊँचा-नीचा हो वह व्यभिचारिणी हो। जिसकी ग्रीवा में तीन रेखाएँ हों वह सदा रत्नों के भूषण पहिने। दुर्बल ग्रीवावाली स्त्री निर्द्धन, स्थूल ग्रीवा-वाली दुःख भोगनेवाली, छोटी ग्रीवावाली मृतवत्सा अर्थात् जिसके सन्तान होकर मर जायँ और लम्बी ग्रीवावाली स्त्री व्यभिचारिणी हो। जिसके दोनों कन्धे और कृकाटिका अर्थात्

घेंटू ऊँचे न हों वह स्त्री दीर्घ आयुष् पाती है और उसका पति भी चिरकाल तक जीता है। जिसका मुख चौखूँटा हो वह स्त्री धूर्ता होती है। गोल मुखवाली शठ, छोटे मुखवाली सन्तान-हीन और बड़े मुखवाली दुर्भगा होती है। श्वान, शूकर, भेड़िया, उल्लू, बन्दर और काक के समान जिसका क्रूर मुख हो वह पापिनी और सन्तान तथा बंधुओं से हीन होती है। जिनका मुख कमल, दर्पण अथवा चन्द्र के समान हो वे सब उत्तम भोग पाती हैं। रक्तवर्ण, स्निग्ध और पतला ओष्ठ अच्छा होता है। जिसका ऊपर का ओष्ठ मोटा हो वह कलह करे, नीले आदि रंग का ओष्ठ हो तो दुःख भोगे और जिसका ऊपर का ओष्ठ तीक्ष्ण हो वह अति क्रोधयुक्त हो। जीभ लाल-वर्ण, थोड़े जल से युक्त, पतली और लम्बी अच्छी होती है। मोटी, छोटी, टेढ़ी, फटी हुई और बुरे रंग की अच्छी नहीं; अतिश्वेत, स्निग्ध और ऊँचे दाँत उत्तम होते हैं; छोटे, फूटे, बिरल, रूक्ष, विकट और ऊँचे-नीचे दाँत दुःखदायक हैं। न बहुत मोटी, न पतली, न बहुत लम्बी और ऊँची नासिका श्रेष्ठ है। नील कमल के समान और सुन्दर पक्ष्म अर्थात् बाँकन करके युक्त नेत्र उत्तम होते हैं। खंजनाक्षी, मृगाक्षी और वराह के समान नेत्रोंवाली स्त्री उत्तम भोग भोगती हैं, और सहत के समान पिंगलवर्ण, रेखायुक्त और मल आदि से रहित नेत्र ऐश्वर्य देते हैं। जिसके नेत्र गड़े हुए हों और अति पिंगल वर्ण हों वह दुःखभागिनी होती है। लाल नेत्र, छोटे-बड़े, धूम्रवर्ण, प्रेत के नेत्रों के समान और श्वान के नेत्रों के तुल्य जिसके नेत्र हों वह स्त्री सदा त्यागने योग्य है। जिसके नेत्र उद्भ्रान्त और केकर अर्थात् ऐंचेताने हों वह स्त्री व्यभिचारिणी हो, और मद्य-मांस खानेवाली हो। जिसके कान कोमल और लम्बे हों वह अनेक प्रकार के

भूषण पहिने और गर्दभ, ऊँट, नकुल, उल्लू अथवा वानर के समान जिसके कान हों वह दुःख भोगे। गोल कोमल और रोमों से रहित कपोल उत्तम होते हैं, अर्द्धचन्द्र के समान और चमकता हुआ ललाट अच्छा होता है, मस्तक न बहुत बड़ा, न छोटा अच्छा होता है, हाथी के समान मस्तक उत्तम नहीं। पतले, काले, स्निग्ध और लम्बे केश उत्तम होते हैं; हंस, कोयल, भ्रमर, मयूर, वीणा अथवा बाँसुरी के तुल्य जिनका स्वर हो वे भाग्य करके युक्त होती हैं, जिनका स्वर फूटी थाली के समान अथवा काक के तुल्य हो वे अनेक भाँति के दुःख भोगती हैं। हंस, वृष अथवा मस्त हाथी के समान जिसकी गति हो वह अपना कुल विख्यात करे, और राजा की रानी हो। जिसकी गति श्वान, जम्बुक, काक और मृग के समान हो और बहुत जल्दी चले वह दासी हो। गोरोचन, सुवर्ण, चम्पा के पुष्प अथवा केसरि के समान स्त्री का रंग उत्तम होता है। स्त्री के सम्पूर्ण अंग कोमल रोमों से और पसीने से रहित अच्छे होते हैं। कपिलवर्ण की स्त्री, हीनांगी, अधिकांगी, रोमों से रहित अथवा बहुत रोमों से व्याप्त जिसकी देह हो, वृक्ष, नदी और पर्वत के नामवाली अथवा यक्ष, प्रेत आदि के नामवाली स्त्री को न ब्याहे। जिसके अंग सब ठीक हों, और केश रोम दन्त सूक्ष्म हों ऐसी स्त्री से विवाह करे। क्रिया से हीन, पुरुषों से रहित, वेद शास्त्र से वर्जित, क्षय, कुष्ठ, अपस्मार आदि रोगों से पीड़ित और बहुत रोमों करके युक्त जो कुल हो उसकी कन्या से विवाह न करे। इतना कह ब्रह्माजी ने ऋषियों से कहा कि ये सब उत्तम लक्षण जिस स्त्री में हों, और आचरण भी अच्छा हो, ऐसी से विवाह करे तो धन, धान्य, सन्तान, कीर्त्ति और ऐश्वर्य पावे, हे मुनीश्वरो! सब लक्षणों से अधिक सद्वृत्त अर्थात् भला चालचलन है यह स्त्री में अवश्य देखना चाहिए।

पाँचवाँ अध्याय।

धन संपादन करने की आवश्यकता का कथन, तुल्य कुल में संबन्ध करने की प्रशंसा।

इतना सुन राजा शतानीक ने कहा कि महाराज ! स्त्रियों के लक्षण तो मैंने आपके मुखारविन्द से सुने, अब स्त्रियों का सद्वृत्त सुनना चाहता हूँ, यह राजा की विनती सुन, मुनि बोले कि हे राजन् ! ब्रह्माजी ने ही ऋषियों के प्रति सद्वृत्त भी कहा है, वही हम आपसे कहते हैं, ऋषियों के प्रश्न के अनन्तर ब्रह्माजी कहने लगे कि हे मुनीश्वरो ! पहिले गुरुकुल में विद्या पढ़कर धन सम्पादन करे, पीछे सुन्दर लक्षणों से युक्त और सुशीला स्त्री से शास्त्र की रीति करके विवाह करे, धन के विना गृहस्थाश्रम बड़ी विडम्बना है इस लिये धन सम्पादन करके, पीछे गृहस्थी बने; नरक का दुःख भोगना अच्छा परन्तु स्त्री पुत्रों को भूख के मारे रोते हुए देखना अच्छा नहीं, फटे और मैले वस्त्र पहिने, अतिदीन और भूखे स्त्री-पुत्रों को देख जिनका हृदय नहीं फटता वे अति कठोर हैं परन्तु उनके जीवन को धिक्कार है, उनके लिये मृत्यु परम उत्सव है इस लिये जो धन विना विवाह करे उसको स्त्री का सुख प्राप्त नहीं होता, केवल अपने गले में स्त्रीरूप फाँसी डालता है और स्त्री विना गृहस्थाश्रम नहीं होसक्ता इसलिये धन मुख्य है, कोई कहते हैं कि सन्तान से त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है परन्तु नीतिवेत्ताओं का यह मत है कि धन और उत्तम स्त्री ये दोनों त्रिवर्ग के हेतु हैं, दो प्रकार का धर्म है—एक तो इष्ट अर्थात् यज्ञ आदि करना, दूसरा पूर्त्त अर्थात् वापी, कूप, तालाब, धर्मशाला आदि बनाना, ये दोनों धन से हो सकते हैं, दरिद्री के बन्धु भी उससे लज्जा करते हैं और धनाढ्य के अनेक बन्धु बन जाते हैं, धन ही त्रिवर्ग का मूल है। धनवान्

में अनेक उत्तम गुण होजाते हैं, और निर्धन के विद्यमान गुण भी नष्ट होजाते हैं, सब वस्तुओं का साधन धन है, धन के विना अजागलस्तन अर्थात् बकरी के गलथने की भाँति पुरुष का जन्म व्यर्थ है, पूर्व जन्म के पुण्य से धन मिलता है और धन से पुण्य होता है इसलिये धन और पुण्य अन्योन्याश्रय अर्थात् एक दूसरे के सहारे हैं इस कारण पाहिले उत्तम रीति से धन सम्पादन करके विवाह करे, जब तक विवाह न करे तब तक पुरुष अर्द्ध शरीर होता है जिस भाँति एक पहिये का रथ अथवा एक पर का पक्षी किसी काम का नहीं होता इसी भांति स्त्रीहीन पुरुष भी किसी कर्म के योग्य नहीं। विवाह तीन प्रकार का होता है—नीच कुल में, समान कुल में, और उत्तम कुल में। नीच कुल में विवाह करने से निन्दा होती है, उत्तम कुलवाले अपना अनादर करते हैं इस कारण समान कुल में विवाह करना चाहिए और विजातीय सम्बन्ध भी ठीक नहीं, जैसा कोयल और हंस का। जिस सम्बन्ध में प्रतिदिन स्नेह की वृद्धि हो, और विपत्ति-सम्पत्ति के समय प्राण तक भी देने में विचार न करें वह उत्तम सम्बन्ध कहाता है परन्तु यह बात उनमें ही होती है जो कुल, शील और धन में समान होते हैं, मनुष्यों के स्नेह और कृतज्ञता की परीक्षा विपत्ति में ही होती है, विवाह और मंत्र अर्थात् सलाह समानों के साथ ही करे, उत्तम और अधमों के साथ कभी न करे जिससे सुख हो।

छठवाँ अध्याय।

चारों वर्णों के विवाह व उनसे उत्पन्न हुए पुत्रों के लक्षण।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! जो कन्या माता की सपिण्डा न हो, और पिता की सगोत्रा न हो वह तीन वर्णों को विवाह के योग्य होती है। धर्म साधन के लिये ब्राह्मण ब्राह्मण की कन्या से विवाह करे। और कामबश होकर क्षत्रिय

आदि तीन वर्णों की कन्या विवाहे इसी भाँति क्षत्रिय अपने वर्ण की कन्या को धर्म से, और वैश्य तथा शूद्र की कन्या को काम से विवाहे; वैश्य धर्म के लिये अपने वर्ण की कन्या से और कामवश होकर शूद्र की कन्या से भी विवाह करे परन्तु शूद्र के लिये शूद्र की कन्या ही भार्या कही गई है। ब्राह्मण के लिये चारों वर्ण की कन्याएँ ब्याहनी लिखी हैं परन्तु शूद्रा से विवाह करना योग्य नहीं। शूद्रा से विवाह कर और पुत्र उत्पन्न कर उतथ्य, शौनक, भृगु आदि ऋषि पतित हुए। शूद्रा के साथ संग करने से ब्राह्मण अधोगति को जाता है, और उसमें पुत्र उत्पन्न करके ब्राह्मणत्व से हीन हो जाता है अर्थात् वह भी शूद्र हो जाता है। देवता, पितर उसका हव्य कव्य ग्रहण नहीं करते। हे मुनीश्वरो! अब हम आठ प्रकार के विवाह कहते हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और आठवाँ पैशाचनामक विवाह होता है। इनमें पहिले चार विवाह ब्राह्मण को करने योग्य हैं, पिछले चार का अधिकारी क्षत्रिय है, आसुर और राक्षस का अधिकारी वैश्य है, और शूद्र भी इन दो का ही अधिकारी है। पहिले चार विवाह ब्राह्मण के लिये उत्तम हैं, राक्षसविवाह क्षत्रिय के लिये, और आसुर वैश्य और शूद्र के लिये मुख्य हैं। पैशाच और आसुर ये दो विवाह निन्द्य हैं। वेद शास्त्र पढ़े हुए उत्तम कुल के वर को बुलाकर विधिपूर्वक विवाह कर देना इसको ब्राह्म विवाह कहते हैं। यज्ञ हो रहा है और ऋत्विक् अपना कर्म कर रहे हैं, उस समय कन्या को अलंकृत कर उत्तम वर से विवाह देना इसका नाम दैवविवाह है। एक बैल और एक गौ वर से लेकर विधिपूर्वक उसको कन्या देना यह आर्षविवाह कहलाता है। बधूवर का विवाह कर देना और यह कह देना कि ये दोनों साथ धर्म का आचरण करें इसका नाम प्राजापत्य विवाह

है। कन्या के माता, पिता और बन्धुओं को धन देकर विवाह करना आसुर विवाह कहलाता है। कन्या और वर परस्पर अनुरक्त हो, बातचीत कर आपही विवाह कर लेवें इसका नाम गान्धर्वविवाह है। मारपीट करके रोती, चिल्लाती कन्या को ले आना राक्षसविवाह होता है। सोई हुई अथवा मत्तकन्या को गुप्त उठा लाना यह पैशाच नामक विवाह है। ब्राह्मविवाह से उत्पन्न हुआ पुत्र दश अगले और दश पिछले कुलों का उद्धार करता है, दैवविवाह से उपजा पुत्र सात सात अगले-पिछले कुलों को तारता है, आर्षविवाह से उत्पन्न हुआ सुत तीन अगले और तीन पिछले पुरुषों का उद्धार करता है, बाकी चार प्रकार के विवाहों से उत्पन्न हुए पुत्र क्रूरस्वभाव, धर्म के द्वेषी, झूठ बोलनेवाले और दुष्ट होते हैं। अनिन्दित विवाहों से सन्तान उत्तम होती है, और निन्दित विवाहों से निन्दित इस कारण आसुर आदि निन्दित विवाह न करे। विवाहरूप संस्कार सवर्णा स्त्री से विवाह करके ही होता है। कन्या का पिता यत्किञ्चित् धन भी वर से न लेवे, वर का धन लेने से वह अपत्य-विक्रयी अर्थात् सन्तान बेचनेवाला गिना जाता है। जो पुरुष कन्या के धन से अपना जीवन करते हैं, कन्या के दिये वस्त्र पहिनते हैं अथवा कन्या देकर मिले हुए वाहनों पर चढ़ते हैं वे नरक में जाते हैं। आर्षविवाह में गो-मिथुन अर्थात् एक बैल और एक गौ लेनी कही है परन्तु वह भी ठीक नहीं क्योंकि चाहे थोड़ा लो, चाहे बहुत परन्तु वह कन्या का मूल्य ही गिना जाता है इसलिये वर से कुछ भी न लेना चाहिए, इस भाँति विवाह करके ब्राह्मण उत्तम देश में निवास करे जिससे बहुत यश हो, यह ब्रह्माजी का वचन सुन ऋषियों ने पूछा कि महाराज! कौनसा देश निवास करने के योग्य है कि जहाँ बसने से धर्म और यश की वृद्धि हो, यह मुनि-वचन सुन, ब्रह्माजी कहने लगे कि हे मुनीश्वरो! जिस

देश में धर्म अपने चारों चरणों करके सहित हो, और विद्वान् लोग बसते हों, सब व्यवहार शास्त्र की रीति से होते हों वह देश उत्तम है, और निवास के योग्य है। इतना सुन ऋषियों ने पूछा कि महाराज! विद्वान् जिस आचरण को ग्रहण करें और धर्मशास्त्र में जो कहा है इसको आप कथन करें, तब ब्रह्माजी बोले कि उत्तम विद्वान् रागद्वेष से रहित होकर जिस धर्म का आचरण करें वह मुख्य है, न तो अत्यन्त निष्काम हो, और न सब कर्म कामना से ही करे, संकल्प से काम होता है। वेद पढ़ना, यज्ञ करना, व्रत, नियम, धर्म आदिक करना सब काम से ही होते हैं, ऐसी कोई क्रिया नहीं जिसमें कामना न हो। श्रुति, स्मृति, सदाचार और अपने मन की प्रसन्नता इन चार बातों से धर्म का निर्णय करे। श्रुति स्मृति में कहे हुए धर्म के आचरण से इस लोक में बहुत यश मिलता है, और परलोक में इन्द्रलोक की प्राप्ति होती है। श्रुति वेद को कहते हैं, स्मृति धर्मशास्त्र का नाम है, इन दोनों से सब बातों का विचार करे क्योंकि धर्म की जड़ ये ही हैं। जो इन दोनों को तर्कशास्त्र आदि से अवमान करे उस नास्तिक और वेदनिन्दक को सत्पुरुष अपने समीप न रहने देवें। निषेक से लेकर मरण पर्यन्त जिसके सब संस्कार वैदिक मन्त्रों से हुए हों उसी को वेद का अधिकार है। सरस्वती, दृषद्वती और गङ्गा इन तीन नदियों के बीच में जो देश हैं वह देवताओं का बनाया हुआ है उसको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं। जिस देश में चारों वर्ण और उपवर्णों में जो आचार परम्परा से चला आया हो उसका नाम सदाचार है। कुरुक्षेत्र, मत्स्यदेश, पाञ्चाल देश, शूरसेनदेश ये देश भी ब्रह्मर्षियों करके सेवित हैं परन्तु ब्रह्मावर्त्त से कुछ न्यून हैं। इन देशों में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों से सब देश के मनुष्य अपना-अपना आचार सीखते हैं। हिमालय और विन्ध्य पर्वत के बीच, कुरुक्षेत्र से पूर्व और प्रयाग से पश्चिम जो देश है इसका

नाम मध्यदेश है, और इन्हीं दोनों पर्वतों के बीच पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक जो देश है उसको आर्य्यावर्त्त कहते हैं। जिस देश में कृष्णसार मृग अपनी इच्छा से बिचरें वह देश यज्ञ करने के योग्य होता है, इनके विना और सब म्लेच्छ देश हैं। ब्राह्मण इन देशों में उत्तम स्थान देखकर कहीं निवास करे, हे मुनीश्वरो ! यह हमने संक्षेप से देश-अवस्था आपको सुनाई है विस्तार से नहीं।

सातवाँ अध्याय।

उत्तम देश में रहने व गृह बनाने का विचार व स्त्रियों के आचरण का कथन।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो ! इसके अनन्तर जो ब्राह्मण को करना चाहिए वह हम वर्णन करते हैं। पाहिली रीति से उत्तम देश में जाकर ऐसा स्थान ढूँढ़े कि जिसमें अपने धन और स्त्री की रक्षा भलीभाँति रहे क्योंकि ये दोनों ही त्रिवर्ग का हेतु हैं इसलिये इनकी रक्षा अवश्य करनी चाहिए। पुरुष, स्थान और आश्रय इन तीनों से धन आदि का रक्षण होता है। कुलीन, नीति जाननेवाला, विनय करके युक्त धर्मात्मा, त्यागी और दृढ़व्रत ऐसा पुरुष आश्रय के योग्य होता है। नगर, ग्राम, खर्वट अथवा खेट में निवास करे। जहाँ बहुत से धर्मात्मा मनुष्य बसते हों, वहाँ गुरु की आज्ञा से अथवा जो ग्राम में मुख्य हो उसकी सम्मति से रहने के लिये घर बनावे परन्तु किसी पड़ोसी को क्लेश न देवे। नगर का द्वार, चौक, शाला, शिल्पी अर्थात् कारीगरों के घर, जुआ खेलने का स्थान, मांस और मद्य बेचने का स्थान, नटों के, पाखण्डियों के और राजा के नौकरों के घर, देवता का स्थान, राजमार्ग और राजा के महल इन सबसे दूर अपना घर बनावे। ऐसे स्थान में घर बनावे जहाँ पड़ोसी उत्तम मनुष्य हों और उस भूमि का झुकाव पूर्व को अथवा उत्तर को हो, बहुत दृढ़, ऊँचा एक द्वार

करके युक्त, जिसमें दृढ़ कपाट लगे हों, सब ऋतुओं में सुख देनेवाला बनावे। स्नान का स्थान, रसोई का मकान, भण्डार, गोशाला, अश्वशाला, दासी-दास के रहने का स्थान, शौच का स्थान, शयन का घर, बैठने का और पढ़ने का स्थान, अग्निहोत्र-शाला, देवगृह और अन्तःपुर अर्थात् स्त्रियों के रहने का स्थान ये सब वास्तु शास्त्र की विधि से घर के बीच अलग-अलग बनावे, और गृहस्थ के सब उपकरण उसमें संचय करे। इस प्रकार के घर में निवास करके भी स्त्रियों की सदा रक्षा करनी चाहिए क्योंकि स्त्रियों की रक्षा न करने से वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं, और अनेक प्रकार के और भी दोष होते हैं। स्त्रियों को कभी स्वतंत्र न होने देवे, और रसोई आदि घर के काम विना और किसी काम का अधिकार भी न देवे, किसी समय भी स्त्री को खाली न बैठना चाहिए, घर का कुछ धन्धा करती रहें, घर में दरिद्र, अतिरूप, खोटा, संग, स्वतन्त्रता, खाली बैठना, पान करना, मेला आदि में जाना, भिक्षुकी कुट्टनी दाई नटी आदि दुष्टस्त्रियों का संग, निमंत्रण में जाना, बहुत तीर्थयात्रा अथवा देवता के दर्शनों के लिये घूमना, पति के साथ बहुत वियोग होना, पति का अतिक्रूर, अतिसौम्य, ईर्षालु, अति कृपण होना, और स्त्री के वश होजाना ये सब स्त्री के नाश होने के हेतु हैं, इनसे बुद्धिमान् पुरुष स्त्री को सदा बचावे। स्वामी अच्छा न हो तो भृत्य और स्त्री बिगड़ जाते हैं, ताड़न से और लालन से जिस भाँति होसके स्त्रियों की रक्षा करे, जो बहुत पत्नी हों तो सबका तुल्य आदर रक्खे, विना कारण उनका मान अथवा अपमान कभी न करे। भृत्य अर्थात् नौकर और स्त्रियों के साथ इस भाँति बरते जिससे सुख और यश मिले। स्त्री पुरुष का आधा शरीर है, उसके विना धर्म क्रियाओं का साधन नहीं हो सकता इस कारण सदा स्त्री का आदर रक्खे,

उनमें जो अधिक प्रिया हो उससे अपनी प्रीति एकांत में प्रकट करे, प्रकट में सबके साथ तुल्य व्यवहार रक्खे अर्थात् वृत्ति, वस्त्र, भूषण, आदि उपचार सबको समान देवे और ऋतुकाल में सबके समीप गमन करे और नित्य भी क्रम से सबके पास रहे, एक के साथ जो बात चीत एकांत में करे, वह दूसरी से न कहे, और जो एक दूसरी के दोष ईर्षा से कहे तो उसका अनादर न करे, सुन लेवे परन्तु अपने मन में सब विचार कर उनके जितने सन्तान हों उनको वस्त्र, भूषण और भोजन तुल्य देवे। माता के दोष से सन्तान पर पिता को स्नेह न्यून न करना चाहिए उन सबकी प्रीति, द्वेष, अभिप्राय, शौच, अशौच आदि गुप्त रीति से सब जानता रहे; पुराने सेवक, बूढ़ी दासी, दाई आदि अनेक प्रकार की कथा सुनाकर उनके अभिप्राय को जाने और कथा कहने के समय उनके नेत्र, मुख आदि की चेष्टा देखे जिससे अभिप्राय विदित हो जाय। सीता, अरुंधती, शकुन्तला आदि के चरित सुनाकर उनके भाव को भली भाँति जाने इन बातों से दुष्ट स्त्री को जान, उससे अपने प्राणों को बचाता रहे, अपने केशों में शस्त्र छिपाकर रानी ने राजा विदूरथ को मार दिया, मेखला मणि देने से सौवीर राजा के प्राण हरे, भाई से मिलकर रानी ने राजा भद्रसेन को यमलोक दिखाया, काशिराज और रैवतनाम राजा दोनों उनकी रानियों ने विष देकर मारे, इस भाँति स्त्रियों ने अनेक राजा और ब्राह्मण मारे हैं, औरों की तो क्या कथा है इस कारण सावधान हो स्त्रियों की रक्षा करे और दुष्ट स्त्रियों से आपभी बचें। स्त्री का अपराध देख उसके साथ संभोग न करे यही उनके लिये दण्ड है। भर्त्ता के साथ द्वेष हो जाने से स्त्री नष्ट होती है। और वह सत्कुल आचारधर्म, गुण आदि कुछ भी नहीं देखती इसलिये इन दोषों से बचावे। स्त्री के पति-

व्रता होने के तीन कारण हैं—पुरुष न मिले, एकान्तस्थान न हो, और घर के धन्धे से अवसर न मिले। उत्तम स्त्री को साम और दाम से अपने अधीन रक्खे, मध्यम को दाम और भेद से, और अधम स्त्री को भेद का और दण्ड से स्वाधीन करे परन्तु दण्ड देने के अनन्तर भी साम दाम आदि से उसको प्रसन्न कर लेवे। भर्त्ता का बुरा करनेवाली और व्यभिचारिणी स्त्री कालकूट नाम विष के समान होती है इसलिये उसका त्याग करे, उत्तम कुल में उत्पन्न, पतिव्रता, विनीता और भर्त्ता का हित चाहनेवाली स्त्री का सदा आदर रक्खे, हे मुनीश्वरो ! यह जो हमने स्त्रियों का व्यवहार वर्णन किया इस रीति पर जो पुरुष चले, वह त्रिवर्ग और संसार में सुख पावे।

आठवाँ अध्याय।

शास्त्र व परम्परा के धर्म व आचरण की आवश्यकता।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो ! यह मनुष्यों को स्त्रियों के साथ जैसे बरतना चाहिए वह हमने कहा, अब हम पुरुषों के साथ स्त्रियों को जिस विधि से बरतना योग्य है वह वर्णन करते हैं। संपूर्ण कार्य विधि से किये हुए उत्तम फल देते हैं, और विधिनिषेध शास्त्र से जाना जाता है परन्तु स्त्रियों को शास्त्र का अधिकार नहीं इसलिये उनको दूसरे से विधिनिषेध जानने की अपेक्षा रहती है। पहिले तो भर्त्ता सब धर्मों का उपदेश करता रहे, और भर्त्ता मरने के अनन्तर पुत्र सब विधवा और पतिव्रता के धर्म बतावे। कोई स्त्री शास्त्र को भी समझती हैं उनको उपदेश करना कुछ आवश्यक नहीं, सब बात शास्त्र से ही ज्ञात होती है परन्तु परम्परा से भी जानते हैं, जैसे व्याध, कहार, अहीर आदि ग्रामीण निकृष्ट मनुष्य भी भद्रा भौम-वार व्यतीपात आदि को बुरा जानते हैं इस वास्ते चारों वर्ण और आश्रमों में मुख्य और गौण भेद करके सब शास्त्र

के अधिकारी हैं अर्थात् कोई मुख्य अधिकारी है और कोई गौण है। लोक का और शास्त्र का पौर्वापर्य जानना कठिन है अर्थात् लोक-व्यवहार शास्त्र से निकला है अथवा लोक-व्यवहार के अनुकूल शास्त्र रचे गये, यह निश्चय होना कठिन है। नास्तिकपना और बुद्धि के विकल्पों को छोड़ शास्त्र के अनुसार अपने बड़े पुरुष जिस मार्ग में चले हों उस पर चला जाय इसी में सब प्रकार का कल्याण है। गृहस्थ के धर्मों का मूल पतिव्रता स्त्री है, वह पतिव्रता पति का आराधन किस विधि से करे, अब हम इसका वर्णन करते हैं।

नवाँ अध्याय।

पतिव्रता का आचरण।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! सब आराध्य अर्थात् आराधन करने के योग्य पुरुषों के आराधन की यह विधि है कि उनकी चित्तवृत्ति को भली-भाँति जानकर उसके अनुकूल चलना, और सदा उनका हित चाहना। भर्ता के चित्त के अनुकूल चलना यह पतिव्रता का मुख्य कार्य है। पति के माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, पितृव्य, गुरु, मामा, बहनोई आदि का बड़ा आदर रक्खे, और जो अपने से सम्बन्ध में छोटे हों उनको आज्ञा दिया करे। पति के मित्र और देवर आदि से भी हास्य न करे। किसी पुरुष के समीप एकांत में बैठना और हास्य की बात करना ये पतिव्रता-धर्म के नाश के हेतु हैं इस कारण उत्तम स्त्री इनको कभी न करे। दुष्टों का संग, स्वतन्त्रता, बहुत हँसी करना, अपने हाथ से किसी पुरुष को वस्तु देना अथवा लेना, घर के द्वार पर ठहरना, राजमार्ग का देखना, बहुत पुरुषों के आगे निकलना, ऊँचे स्वर से बोलना और हँसना, दृष्टि से, वचन से और शरीर से चंचलता करना, दुष्ट स्त्रियों का संग करना इत्यादि और भी बुरी बातें पतिव्रता स्त्री न करे। जो कोई पुरुष अपने को

कुदृष्टि से देखे उसको आप पिता अथवा भाई के समान माने इस रीति से स्त्री का शील नहीं बिगड़ता है और कुल की निन्दा भी नहीं होती है।

दशवाँ अध्याय।

गृहस्थ का व्यवहार।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! उत्तम स्त्री पति को मन वचन कर्म करके देवता के समान जाने और सदा उसके हित करने में तत्पर रहे। पति के मित्रों को मित्र जाने और शत्रुओं को शत्रु, अधर्म और अनर्थ से पति को बचावे। देवता और पितरों के कृत्य, अभ्यागतों का सत्कार, और पति के स्नान, भोजनादि कर्म समय पर सावधान होकर करे। रहने का घर और शरीर इन दोनों को तुल्य समझे, और शरीर से भी अधिक घर को स्वच्छ और भूषित रक्खे। प्रातःकाल, मध्याह्न और सायङ्काल के समय घर को मार्जन करके स्वच्छ करे। गोशाला से दासियों के हाथ गोबर उठवाकर वहाँ झाड़ू दिलावे, दास-दासियों को भोजन आदि से सन्तुष्ट कर अपने-अपने काम में लगा देवे। गृहस्थी को उचित है कि शाक मूल फल बेल कन्द ओषधी आदि का अपने-अपने समय पर संग्रह करावे, और समय पर इनको खेत आदि में बुआ दे। ताँबा काँसी पीतल लोह काष्ठ बाँस और मृत्तिका के बर्त्तनों का संग्रह रक्खे। जल के लिये कुंड, कूँड़ी, कलश, झारी, उदंचन अर्थात् बड़े पात्र से जल निकालने के छोटे पात्र, घी-तेल रखने के बर्तन, दूध दही छाछ आदि धरने के पात्र, भाँति-भाँति के रसोई के पात्र, मूसल, ऊखल, छाज, चलनी, सिल, लोढ़ी, चक्की, दही मथने की रई, सनसी, चिमटे, पली, कड़छी, कड़ाही, तवे, तखड़ी, तोलने के बाँट, पिटार, पिटारियाँ, सन्दूक, पलँग, चौकी आदि अनेक प्रकार के उपकरण, हींग, जीरा, धनिया, पीपल, राई, मिरच, सोंठि आदि अनेक प्रकार के मसाले, लवण, भाँति-भाँति

के खार, सिर्के, अचार, काँजी, सब भाँति की दाल, सब प्रकार के तेल, स्नेह, अनेक दूध-दही के पदार्थ, सूखा काष्ठ आदि जो जो वस्तु नित्य और नैमित्तिक कार्यों में अपेक्षित हो सब पहिले से संग्रह कर रक्खे कि समय के ऊपर ढूँढ़नी न पड़े। जिस वस्तु का आगे काम लगना हो वह पहिले ही संग्रह कर लेवे। सूखे, गीले, पीसे, बिनपीसे, कच्चे, पक्के आदि भाँति-भाँति के अन्नों का संग्रह विचार कर लेवे।

ग्यारहवाँ अध्याय।

गृहस्थ का व्यवहार।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! धान, कोदों, कँगुनी, गेहूँ आदि अन्न अपने-अपने समय पर संग्रह करे। पतिव्रता नारी शय्या, आसन, पीढ़े, कंचुकी, ओढ़नी, लहँगे, कुरते आदि अनेक वस्त्रों का संग्रह रक्खे। गुरु, बालक, वृद्ध, अभ्यागत और पति की शुश्रुषा में आलस्य न करे; देवर आदि के पहिने हुए माला, वस्त्र, भूषण आदि कभी न पहिने, और उनके शयन करने की शय्या को कभी आक्रमण न करे अर्थात् उस पर पैर भी न रक्खे; घर में पाक किया हुआ जो बासी अन्न बचे वह गौओं के खाने में डाल देवे; गौ का दूध इतना निकाले कि जिसमें उनके बछड़े भूखे न रहें; और दही को बिलोकर उससे घी निकाल लेवे। वर्षा, शरद् और वसन्त ऋतु में दोनों वक्त गौ दुहे, और बाक़ी ऋतुओं में एक बार ही दूध निकाले; छाछ करके घर की रक्षा के अर्थ पाले हुए कुत्तों का पोषण करे; गोप आदिकों को गौ की चराई में अन्न देवे अथवा रुपया देवें परन्तु यह भी दृष्टि रक्खे कि गाय-भैंसों का दूध न पी जावे; समय के ऊपर आकर दोहन करनेवाला गोप आदि दूध निकाल जाया करे। जब गौ ब्यावे तब एक महीने तक उसका दूध न निकाले, बछड़े को चूँखने देवे, पीछे एक महीने तक एक थन का, फिर एक

महीने तक दो थन का, और इसके अनन्तर तीन थन का दूध निकाले, एक थन सदा बछड़े के लिये छोड़ता रहे। तिल की खरी, कोमल तृण, लवण, आटा आदि से बछड़ों का पालन करे, और समय पर उनको जल पिलावे। बूढ़ी गौ, गर्भिणी, दूध देती हुई, और बछड़े-बछियाओं का बराबर पोषण करे, न्यून अधिक न समझे. तीन गौओं के अर्थ एक ग्वाल होना चाहिए, और पाँच बछड़ों के लिये भी एक ही हो। गौ के गले में घण्टा अवश्य बाँधना चाहिए, एक तो घण्टा बाँधने से शोभा होती है दूसरे उसके शब्द से कोई दुष्ट जीव गौ के समीप नहीं आता, और गौ कहीं दौड़कर चली जाय तो घण्टा के शब्द के अनुसार उसको ढूँढ़ सकते हैं। जहाँ सिंह, व्याघ्र आदि दुष्ट जीव न हों, तृण और जल बहुत हो, छाया के लिये घने वृक्ष हों, और पशुओं के कोई रोग न हो ऐसे स्थान में गोष्ठ अर्थात् गौओं के रहने का स्थान बनावे, और भेड़-बकरियों के लिये गुप्त स्थान बनावे, और वर्ष में दो बार चैत्र और आश्विन में उनका ऊन उतारे। गौओं के यूथ में चार अथवा पाँच साँड़ चाहिए, और बकरियों के यूथ में दश साँड़ होने आवश्यक हैं, घोड़े ऊँट और महिषों के यूथ में जितने हों उतने ही ठीक हैं, कुछ नियम नहीं। खेती कराने के अर्थ जिन सेवकों को रक्खे उनको भोजन और कुछ वेतन अर्थात् तनख़्वाह देवे, और जहाँ खेत खलिहान अथवा वाटिका आदि में वे काम करते हों वहाँ बार-बार जाकर देखे और उनमें जो अच्छा काम करता हो उसका सत्कार अधिक करे और उसको भोजन भी औरों से कुछ उत्तम देवे। समय-समय पर सब प्रकार के अन्न का संग्रह करे और समय पर सब खेत बोये जायँ। घर का मूल स्त्री है, और गृहस्थ का मूल अन्न इस कारण अन्न को व्यर्थ न ख़र्च करे, किंतु सदा संचय करता रहे।

संचय करने में और ख़र्च करने में अन्न को थोड़ा-सा समझ अवज्ञा न करे। देखो, थोड़ा-थोड़ा शहद इकट्ठा करते-करते मक्खी कितना इकट्ठा कर लेती है। चींटी थोड़ी-थोड़ी-सी मिट्टी लाकर कितना ऊँचा बल्मीक बना लेती हैं और बहुत-सा अंजन भी नित्य-नित्य आँख में डालते-डालते निबड़ जाता है। इसी भाँति सब वस्तुओं का संग्रह और ख़र्च भी होता है, इसमें थोड़ी वस्तु की अवज्ञा न करनी चाहिए। स्त्री पुरुष के एक मत होने से सब घर के काम अच्छे होते हैं और जगत् में ऐसे भी हज़ारों पुरुष हैं कि जिनके सब कामों में स्त्रियाँ ही प्रधान रहती हैं, परन्तु जो स्त्री बुद्धिमती और सुशीला हो, तो कुछ हानि नहीं होती नहीं तो अनेक प्रकार के दुःख भी होते हैं। इस कारण स्त्री की योग्यता अयोग्यता को समझकर बुद्धिमान् पुरुष उसको कार्य में नियुक्त करे। कँगुनी का पाँचवाँ भाग, धान का तीसरा भाग, यव, गेहूँ, मूँग, उड़द आदि का चौथा भाग भूनने से कमती हो जाता है और यही अन्न राँधने से द्विगुण हो जाते हैं। कँगुनी, कोदों, चीना, और चावल इनका भात चौगुना होता है और पुराने चावलों का चौगुने से भी अधिक होता है, परन्तु पाक करनेहारा चतुर चाहिए। लाई, परमल, खील और भुने हुए चने पाँचवाँ भाग अधिक होजाते हैं। इसी भाँति मूँग, उड़द, मसूर आदि भी जानो। अलसी में छठा भाग तेल निकलता है, सरसों, कैथे के बीज, और नींब के बीजों में पाँचवाँ भाग। तिल, महुआ, कुसुम के बीज और इंगदी अर्थात् एक प्रकार का पहाड़ी फल उसके बीज इनमें चौथाई तेल निकलता है, बाक़ी सब खली होती है। ये सब बातें अनुमान से कही हैं समय-भेद और देश-भेद से इनमें अन्तर भी पड़ जाता है। गौ के सोलह सेर दूध में एक सेर घी और भैंस के सोलह सेर में सवा सेर घी निकलता है, परन्तु भूमि और तृण अर्थात् चारे के भेद से न्यून

अधिक भी होता है। इसलिये इन सब बातों को अपने अनुभव से निश्चय कर लेवे। रेशम, कपास, शण आदि का सुधारना, लोढ़ना आदि कंर्घा, लँगड़ी, बहरी आदि स्त्रियों से करावे, जो थोड़ी मजूरी पंर कर देवें। बालक, वृद्ध, अंधे, भूखे आदि मनुष्यों से भोजन आदि देकर काम करा लेवे। भर्ता विदेश को गया हो, तो ये सब काम सावधान होकर स्त्री कराया करे, सूतों का व्यवहार भी भली भाँति जाने। अलसी और कपास में पाँचवाँ भाग सूत बैठता है, रुई के धुनने से तेईसवाँ भाग घट जाता है; परन्तु धुनियाँ जानकर न उड़ा देवे और छिपा भी न लेवे। अच्छे सूत का वस्त्र बनाने से पचासवाँ भाग घटता है, परन्तु माड़ी देकर तंतुवाय उसमें दशवाँ अथवा ग्यारहवाँ भाग बँधा देते हैं और सूत के मोटे महीन होने पर भी घटती बढ़ती देखी जाती है और बुनवाई भी सूत के ऊपर ही है। इन सब बातों को जो गृहस्थ भली भाँति जाने और देश काल के अनुसार सब व्यवहार समझे, वह सुख से रहता है।

बारहवाँ अध्याय।

गृहस्थ की स्त्री के आचरण।

ब्रह्मांजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! घर में स्त्री प्रातःकाल सबसे पहिले उठे और रात्रि को सबके पीछे भोजन करे और पीछे ही सोवे और आवश्यक कार्य के विना घर की देहली के बाहर पैर न धरे, जो बहुत प्रभात उठ बैठे, तो भर्ता के समीप बैठकर ही सब सेवकों को अपने-अपने काम की आज्ञा देवे, बाहर न जाय। जब पति भी जग उठे, तब वहाँ का आवश्यक कार्यकर घर के धंधे में लगे। रात्रि के पहिले उत्तम वस्त्र भूषण उतार घर के कार्य के योग्य वस्त्र पहिन सावधान हो सब काम करे। पहिले रसोई के मकान और चूल्हे को लीप पोतकर स्वच्छ करे और रसोई के पात्रों को माँजि धोय और पोंछकर वहाँ रक्खे और भी सब रसोई

की सामग्री वहाँ इकट्ठी करे। रसोई का स्थान भी न तो अति गुप्त, न बहुत प्रकट, स्वच्छ, विस्तीर्ण और जिसमें धुआँ न हो ऐसा होना चाहिए। दूध, दही के बर्तनों को सीपी रस्सी अथवा वृक्ष की त्वचा से खूब रगड़कर धो डाले पीछे धूप में सुखा लेवे, जिससे दही, दूध में कुछ विकृति न हो, बुरे पात्रों में दही, दूध बिगड़ जाते हैं। घी, दही, दूध, छाछ आदि को सावधानी से रक्खे फिर स्नानादि आवश्यक कृत्य करके पति के लिये अपने हाथ से रसोई बनावे और यह विचार करे कि कौन-सा पदार्थ उनको प्रिय है, अग्नि की वृद्धि किस भोजन से होती है क्या पथ्य है क्या अपथ्य है और आरोग्य देनेहारा देश-काल के अनुकूल कौन भोजन है। ये सब विचारकर प्रीति पूर्वक रसोई बनावे और रसोई के स्थान में ऐसे-वैसे स्त्री पुरुषों को न आने देवे। इस विधि से रसोई बनाकर सब पदार्थों को स्वच्छ पात्रों से ढक, बाहर आकर शरीर का प्रस्वेद पोंछ गन्ध, ताम्बूल, माला, वस्त्र आदि से अपने को थोड़ा-सा भूषित करे, फिर भोजन के लिये पति को बुलाकर सब प्रकार के व्यंजन, भात, रोटी, मिठाई आदि परसे जो देशकाल के विपरीत न हो और जिनका परस्पर विरोध भी न हो जैसा दूध और लवण का है। पति के भोजन समय आप पंखा लेकर धीरे-धीरे पवन करे और जिस पदार्थ पर पति की अति रुचि देखे, वह और परसे। इस भाँति पति को भोजन करावे सब सपत्नियों को अपनी सगी बहिन के समान जाने और उनके सन्तानों को अपनी संतान से भी अधिक प्रिय समझे, उनके भाई-बन्धुओं को अपने भाइयों के बराबर माने, भोजन, वस्त्र, अभ्यङ्ग, भूषण, ताम्बूल आदि जब तक सपत्नियों को न दे लेवे तब तक आप भी न ग्रहण करे। जो सपत्नी के अथवा अपने घर में और किसी मनुष्य के कुछ रोग हो जाय, तो उसकी भली

विधि चिकित्सा करावे, नौकर, बन्धु, सपत्नी आदि को दुःखी देख आप भी दुःख पावे और उनको प्रसन्न जान आप भी सुख माने घर का सब वृत्तान्त पति से एकान्त में सुना देवे, परन्तु सपत्नियों के दोष न कहे जो कोई व्यभिचार आदि बड़ा दोष देखे कि जिसके गुप्त रखने से कुछ अनर्थ हो ऐसे दोष को अवश्य पति से कह देवे। दुर्भगा जिसका पति सदा तिरस्कार करे और सन्तानहीन हो, ऐसी सपत्नी को भी सदा आश्वासन करे और भोजन, वस्त्र, भूषण आदि से दुःखी न होने देवे और भी जो किसी नौकर के ऊपर पति कोप करे, उसका भी आश्वासन कर देवे, परन्तु पहिले यह विचार लेवे कि इसका आश्वासन करने से कुछ हानि न हो। जो देखे कि बहुत काल व्यतीत हो गया और मेरे कोई सन्तान न भया, तो पति को दूसरा विवाह करने के लिये समझाकर प्रीति से अपने हाथ पति का विवाह करे और नई सपत्नी को छोटी बहिन के समान जाने और उसके भाई बन्धुओं का आदर प्रसन्नचित्त होकर करे और माता की भाँति घर के सब काम उसको सिखावे और सायंकाल के समय भली भाँति शृङ्गार कराके रात्रि को पति के समीप पहुँचा देवे। इस प्रकार सब रीति से पति को प्रसन्न रक्खे, क्योंकि स्त्रियों का देवता पति है, वर्णों का देवता ब्राह्मण, ब्राह्मणों का देवता अग्नि और प्रजाओं का देवता मेघ है। स्त्रियों का त्रिवर्ग प्राप्ति के दो उपाय हैं, एक तो सब प्रकार से पति को प्रसन्न रखना, दूसरे आचरण शुद्ध चित्त के अनुकूल चलने से जैसी पति की प्रीति स्त्री पर होती है वैसी न रूप से, न यौवन से, और न उत्तम शृङ्गार करने ही से होगी, क्योंकि प्रायः देखते हैं कि उत्तम रूप और तरुण अवस्था करके युक्त स्त्री भी पति के विपरीत आचरण कर दौर्भाग्य को प्राप्त होती है और अति कुरूपा और अवस्था से हीन भी पति के चित्त के अनुकूल चलनेहारी सुख भोगती है।

इसलिये पति के चित्त का अभिप्राय भली भाँति समझना और उसके अनुकूल चलना यही स्त्री के लिये सब सुखों का हेतु है। जब जाने कि बाहर से अब पति के आने का समय है, तब घर को स्वच्छ कर, उत्तम आसन बिछाय, सावधान होकर बैठे और पति के आते ही अपने हाथ उनके चरण धोय, आसन पर बैठाय, पंखा ले धीरे-धीरे पवन करे। ये सब काम दासी आदि से न करावे। अपने बन्धु और पति के बन्धुओं का सत्कार आदि पति की इच्छानुसार करे अर्थात् जिस पर पति की रुचि न देखे, उससे अधिक शिष्टाचार न करे। कोई कुलीन पुरुष अपनी कन्या से उपकार की आशा नहीं रखता और जो रक्खे वह पुरुष अधम होता है। कन्या का विवाह करके फिर उससे अपनी वृत्ति की इच्छा करना यह महात्मा और कुलीन पुरुषों की रीति नहीं, यह मार्ग नट, भाँड़, दास आदि नीच मनुष्यों का है। इसलिये स्त्री के बन्धु केवल प्रीति के लिये व्यवहार रक्खें और यथाशक्ति कुछ देते भी रहें, उनसे आप कोई वस्तु लेने की इच्छा न रक्खें। इस प्रकार जो स्त्री सद्वृत्त को जान सब कार्य करती है, वह पति और उसके सब बन्धुओं को प्रिय होती है, परन्तु पति की प्रिया और सुशीला होकर भी स्त्री को लोकापवाद से डरना चाहिए, क्योंकि सीता आदि उत्तम स्त्रियों को भी लोकापवाद होजाने से अनेक भाँति के दुःख भोगने पड़े थे। उत्तम आचरणवाली स्त्री भी जो बुरा सङ्ग करे, अपनी इच्छा से चाहे जहाँ चली जाय, उसको अवश्य कलङ्क लगता है और झूठा दोष लगने से भी कुल कलङ्कित हो जाता है। उत्तम कुल की स्त्रियों को ये बातें आवश्यक हैं कि किसी भाँति अपने कुल को दूषित न होने देना, पति के धर्म, अर्थ और काम का साधन करना और सन्तति का पालन करना। बुरे आचरण-वाली स्त्री अपने कुल को नरक में डालती है और भले आचरण-

वाली नरक में गिरे हुओं को भी निकालती है। पति के चित्त की अनुकूलता और शुद्ध आचरण ये दोनों स्त्रियों के भूषण हैं। सुवर्ण, रत्न आदि भूषण तो केवल शरीर पर बोझ लादना है। जो स्त्री पति को और लोक को भली भाँति आराधन करे अर्थात् पति के चित्त के अनुकूल चले और लोक-व्यवहार को भली भाँति समझ उसके ऊपर आचरण कर कीर्ति सम्पादन करे, किसी भाँति का कलङ्क अपने को न लगने देवे, वह नारी धर्म, अर्थ और काम को निर्विघ्न पाती है।

तेरहवाँ अध्याय।

प्रोषित पति का आचरण छोटी बड़ी सपत्नियों का परस्पर बर्तना।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! अब हम प्रोषित पति का अर्थात् जिसका भर्ता परदेश में गया हो, उसका आचरण कहते हैं। पति जब विदेश को गया हो, तब बहुत भूषण न पहिने, मङ्गल के लिये एक आध कण्ठसूत्र, नथ आदि पहिने रहे, पति ने जिस काम का आरम्भ किया हो, उसको अपनी शक्ति के अनुसार करती रहे, देह का अधिक संस्कार न करे, केशों की एक बेणी रक्खे, रात्रि को सास आदि पूज्य स्त्री के समीप सोवे, बहुत ख़र्च न करे, व्रत, उपवास आदि करती रहे, पति का वृत्तांत सदा पूछती रहे, नित्य उसके आने की बाट देखे और विदेश में उसके कल्याण के लिये नित्य देवपूजा आदि शुभकर्म करती रहे, जाति बिरादरी में किसी के घर न जाय, जो आवश्यक कार्य हो तो अपने बड़ों की आज्ञा ले घर से किसी शिष्ट दासी आदि को संग लेकर जाय, परन्तु वहाँ बहुत काल न ठहरे और स्नान, भोजन आदि भी न करे, जब पति विदेश से आ जाय, तब सुन्दर वस्त्र, भूषण पहिन देवताओं के जो उपयाचितक अर्थात् मन्नत मान रक्खी हो, सब पूरी करदेवे। अपने से बड़ी सपत्नी को माता के समान जाने

और उसके सन्तान को अपनी सन्तान से भी अधिक माने। पिता के घर से जो कुछ वस्तु आवे पहिले उसको देवे वह भी थोड़ीसी ग्रहण कर ले और बाक़ी को भली भाँति रख दे। जब-जब छोटी को उस वस्तु की अपेक्षा हो तब-तब देती रहे। छोटी सपत्नी के दिये हुए पदार्थ का आदर न करने से सपत्नियों में परमद्वेष हो जाता है, परन्तु बुद्धिमती स्त्री अपने उदार आचरण से कभी द्वेष नहीं होने देती है। ऋतुस्नान के अनन्तर बड़ी सपत्नी की प्रेरणा से और उसी से अपना शृङ्गार करवा लज्जा से संकुचित होती हुई पति के निकट जावे और वहाँ जाकर एकान्त में उस समय के योग्य हावभाव और बातचीत से पति का मन हर लेवे और प्रभात उठकर लज्जित होती हुई बड़ी सपत्नी के समीप जायं और सदा उसके साथ प्रीति रक्खे, परन्तु अपनी बुद्धिमानी से पति को अधीन कर लेवे। सब काल में लज्जा स्त्री का भूषण है, परन्तु एकान्त में पति के समीप प्रगल्भता ही परम भूषण है पति को सब प्रकार से अनुकूल करके भी बड़ी सपत्नी आदि का गौरव और आदर न्यून न करे और घर के काम में जो पति आज्ञा देवे, उसमें ऐसी बुद्धिमत्ता करे कि बड़ी सपत्नी की आज्ञा ले लेवे ज़िससे वह यही जाने कि मेरी ही आज्ञा से काम करती है बड़ी सपत्नी भी जब देखे कि पति का चित्त इसमें आसक्त हो गया है तब कुछ क्षोभ न करे और अपनी बेटीके समान उससे प्रीति रक्खे इसी से उसकी बड़ाई और पति की अनुकूलता होती है। मन वचन कर्म करके पति की अनुकूलता करे किसी भाँति पति के आगे उद्धतपना और द्वेष प्रकट न करे। इस प्रकार सौभाग्य की वृद्धि होती है और पति की अति प्यारी नारी से विरोध करने से पति से द्वेष हो जाता है इसलिये बड़ी स्त्री पति से और सपत्नी से प्रीति रक्खे घर का सब काम मन लगाकर करे नौकरों का भरण पोषण और पूज्यों की पूजा भली भाँति करती

रहे और सब प्रकार से अपने शील की रक्षा रक्खे तो वह इस लोक में और परलोक में सुख पाती है और यश कमाती है।

चौदहवाँ अध्याय।

दुर्भगा को योग्य आचरण का उपदेश जिससे पति अनुकूल हो जाय।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो ! अब हम दुर्भगा अर्थात् जिस पर पति अति क्रोधयुक्त हो और कभी उसका आदर न करे, उसके लिये जो आचरण योग्य है, उसका वर्णन करते हैं। दुर्भगा स्त्री व्रत, उपवास आदि किया करे और जिस दिन कुछ विशेष कृत्य घर में हो, उस दिन सब काम प्रीति से करे, अपनी निन्दा, सपत्नियों की प्रशंसा करे और भर्ता के आगे कभी ईर्षा प्रकट न करे और सदा यह कहती रहे कि मेरी सरीखी स्त्री को यही बहुत कुछ है कि ऐसे उत्तम पति की भार्या कहाती हूँ। भूषण, उत्तम वस्त्र आदि सदा पहिने रहे, परन्तु बहुत उद्धत भी न बने शरीर को, हाथ पैरों को, दांतों को अति स्वच्छ रक्खे, वैतसी वृत्ति धारणकर सब सपत्नियों में रहे अर्थात् जैसे वेत का वृक्ष बड़े वेग से आते हुए जल में झुक जाता है और जल का वेग निकल जाने पर फिर खड़ा हो जाता है और आनन्द से उसी स्थान पर बना रहता है और जो वृक्ष नहीं झुकते वे जड़ से उखड़कर जल के साथ ही बहे चले जाते हैं। इसका नाम वैतसीवृत्ति है। जो स्त्री पति की बहुत प्रिया हो, उससे बहुत स्नेह रक्खे। जिस कार्य में पति की इच्छा देखे, उसको करे। भण्डार, वस्त्र, अन्न, ताम्बूल, गन्ध, औषध, पान के द्रव्य आदि को आज्ञा विना हाथ न लगावे और घर में झाड़ू देना, चौका लगाना आदि काम आज्ञा विना भी करे, सपत्नी के सन्तानों की, स्नान, वस्त्र, भूषण, भोजन आदि से सदा शुश्रूषा करती रहे। जाति से कोई स्त्री दुर्भगा अथवा सुभगा नहीं है। उत्तम स्त्री भी भर्ता के चित्त का अभिप्राय न जानने से, उसके प्रतिकूल

चलने से और लोकविरुद्ध आचरण से दुर्भगा हो जाती है और पति के अनुकूल चलने से सुभगा होती है। इसलिये सब अवस्था में मन वचन कर्म करके पति के चित्त के अनुकूल चले। जिस सपत्नी की पति इच्छा करे, उसको पति से मिलाय देवे। पति की प्रिया जो मानवती होगई हो तो उसको समझा-बुझा क्रोध शान्तकर पतिके अनुकूल करदेवे। पैर दबाना, अंगों को मर्दन करना, शिर मलना आदि भली भाँति सीखे और पति की सेवा करे। अंगों का संवाहन अर्थात् दबाना तीन प्रकार का है—मृदु, मध्य और गाढ़। भुजा, ऊरु, कटि, पृष्ठ, कंधे, शिर और पैरों में गाढ़ मर्दन करना चाहिए अर्थात् इनको ज़ोर से दबावे इनके विना और अंगों में मध्यम और नीचे अंग नाभि, मर्मस्थान, हृदय, गल, कपोल आदि में मृदु संवाहन करे अर्थात् इन अंगों को धीरे-धीरे दबावे जो पति जागता हो तो गाढ़ मर्दन करे आधा सोया हो तो मध्य और भली भाँति सो गया हो तो मृदु मर्दन करे अथवा न करे ऐसी युक्ति से अंग-संवाहन करे कि पति को आनन्द हो रोमांच हो जाय और दबाते-दबाते निद्रा आ जाय सोता हो चाहे बैठा हो जब पतिको एकांत में देखे तब उसके अंगों को मर्दन करे और जिस अंग के मर्दन करने से आँख मूँदे रोमांच हो, काम का उद्दीपन हो, उस अंग को विशेष करके दबावे और ऊरुमूल को तथा जिस अंग पर पति बार-बार हाथ रक्खे, उस अंग को भली भाँति धीरे-धीरे संवाहन करे। इस भाँति जो दुर्भगा स्त्री भी पति का सेवन करे तो वह पति को अनुकूल कर लेती है और संसार के सुख भोगती है और त्रिवर्ग पाती है।

पन्द्रहवाँ अध्याय।

तिथियों के व्रत की विधि, प्रतिपदा व्रत का माहात्म्य।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक! इस प्रकार

स्त्रियों के सम्पूर्ण लक्षण और सदाचार ऋषियों के प्रति कहकर ब्रह्माजी हिमालय को गये और सब ऋषि भी प्रसन्न होते हुए अपने-अपने आश्रम को जाते भये। हे राजन्! यह स्त्री-लक्षण और स्त्री का आचरण जान आगे जो कुछ गृहस्थी को करना चाहिए, वह हम वर्णन करते हैं। वैवाहिक अग्नि में गृह्यकर्म करना चाहिए। गृहस्थी के घर पंचसूना अर्थात् जीवहिंसा के स्थान हैं वहाँ जीव मरने से गृहस्थ स्वर्ग को नहीं जाता। उखली, चक्की, चूल्हा, मार्जनी अर्थात् झाड़ू और उदकुंभी अर्थात् जल का घड़ा इन पाँचों स्थानों में जीवहिंसा होती है उस हिंसा-दोष की निवृत्ति के लिये पाँच महायज्ञ गृहस्थी को अवश्य करने चाहिए— ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ। वेदपाठ को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं, तर्पण का नाम पितृयज्ञ है, होम देवयज्ञ कहाता है, भूतयज्ञ बलिवैश्वदेव की संज्ञा है और अतिथियज्ञ अभ्यागत के सत्कार को कहते हैं। इन पाँच यज्ञों को जो नियम से करे, वह घर में बसकर भी पंचसूना दोषों से लिप्त नहीं होता और जो समर्थ होकर भी न करे, वह वृथा जीता है, श्वास लेता हुआ भी मरे के समान है। इतना सुनकर राजा शतानीक ने पूछा कि महाराज से जिस ब्राह्मण के घर में अग्निहोत्र नहीं होता, वह मृतक के समान है। यह तो आपने कहा, परन्तु वह देवपूजा आदि क्योंकर करे ? देवता, पितर उससे संतुष्ट कैसे हों और उसका उद्धार किस विधि से हो ? यह आप मेरा सन्देह निवृत्त करें। राजा का यह प्रश्न सुनकर सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! जिन ब्राह्मणों के घर में अग्निहोत्र न हो, उनका उद्धार व्रत, उपवास, दान, देवता की स्तुति और देवभक्ति आदि से होता है और जिस देवता की जो तिथि हो, उसमें उपवास करने से वह देवता विशेष करके प्रसन्न होता है। यह सुनकर राजा ने फिर पूछा कि महाराज! तिथियों की विधि

तिथियों के दिन जो अलग-अलग भोजन हों और उपवास-विधि यह सब आप वर्णन करें जिसके करने से संसार के जीव पाप से मुक्त हो जायँ। यह राजा का वचन सुन, सुमन्तु मुनि ने कहा कि हे राजन्! तिथियों की विधि हम वर्णन करते हैं जिसके सुनने से भी पाप कट जायँ। प्रतिपदा के दिन क्षीर का भोजन करे, पुष्पों का भोजन द्वितीया को, लवणरहित भोजन तृतीया को, तिल चतुर्थी को, क्षीर पंचमी को, फल षष्ठी को, शाक सप्तमी को, बिल्व अष्टमी को, पिष्ट नवमी को, अग्नि विना सिद्ध किया भोजन दशमी को, घृत एकादशी को, ख़ीर द्वादशी को, गोमूत्र त्रयोदशी को, यव चतुर्दशी को, कुशा का जल पौर्णमासी को, और मूँग चावल आदि हविष्य भोजन अमावास्या को करे। यह सब तिथियों के भोजन की विधि है इस विधि से जो एक पक्ष भोजन करे वह दश अश्वमेध यज्ञों के फल को प्राप्त हो। एक मन्वन्तर स्वर्ग में रहता है, और गंधर्वों सहित अप्सराएँ उसके आगे नाचती गाती हैं। जो इस विधि से चार महीने भोजन करे वह सौ अश्वमेध, और सौ राजसूय यज्ञ का फल पावे। स्वर्ग में जाकर गंधर्व और अप्सराओं करके सेवित हो दो मन्वन्तर तक आनंद से निवास करता है। आठ महीने पर्यंत जो इस विधि से भोजन करे वह हज़ार यज्ञों का फल पावे और चौदह मन्वन्तर स्वर्ग में निवास करे। जो एक वर्ष इस भोजन के नियम से व्यतीत करे वह सूर्यलोक में कई मन्वन्तर सुख से निवास करे। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, स्त्री, पुरुष, शूद्र आदि सब इन तिथि-व्रतों के अधिकारी हैं। इन व्रतों का आरम्भ आश्विन की नवमी, माघ की सप्तमी, वैशाख की तृतीया, कार्त्तिक की पूर्णिमा से करे। इनका करनेवाला सूर्यलोक को जाता है। जिन पुरुषों ने पूर्वजन्म में व्रत, उपवास आदि किये, दान दिये, अनेक प्रकार से ब्राह्मणों को संतुष्ट किया, माता

पिता और गुरु की शुश्रूषा की, विधि से तीर्थयात्रा की वे पुरुष स्वर्ग में बहुत काल तक रहकर जब भूमिपर जन्म लेते हैं तब उनके चिह्न प्रत्यक्ष ही देख पड़ते हैं। हाथी, घोड़े, पालकी, रथ, सुवर्ण, रत्न; कंकण, केयूर, हार, कुंडल, मुकुट, उत्तम वस्त्र, सुन्दर-सुन्दर स्त्री, अच्छे सेवक आदि उनको मिलते हैं। आधि, व्याधि से रहित होकर बहुत आयुष् भोगते हैं। और पुत्र पौत्रादि का सुख देखते हैं, और वन्दीजनों के स्तुति शब्द से सोते हुए उठते हैं, और जिन्होंने व्रत, दान आदि सत्कर्म नहीं किये वे काणे, अंधे, लँगड़े, कुबड़े, गूँगे, रोग और दरिद्र से पीड़ित होते हैं। यही पुण्य और पाप की प्रत्यक्ष परीक्षा है, इतनी विधि सुमंतु मुनि से सुन, राजा ने कहा कि महाराज! आपने संक्षेप से तिथियों का वर्णन किया, अब यह वर्णन कीजिए कि कौन देवता की किस तिथि में पूजा करनी चाहिए, और व्रत आदि किस विधि से करने चाहिए, जिनके करने से यज्ञों का फल प्राप्त हो। यह राजा का प्रश्न सुन, मुनि कहने लगे कि हे राजन्! तिथियों का रहस्य, पूजा का विधान फल, नियम, देवता, अधिकारी हम कहते हैं, आप श्रवण करें, यह सब आज तक हमने किसी से नहीं कहा है। पहिले हम संक्षेप से सृष्टि का वर्णन करते हैं। प्रथम परमात्मा ने जल उत्पन्न कर, उसमें अपना वीर्य डाला जिससे एक अण्ड बन गया। उस अण्ड से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, और सृष्टि करने की इच्छा कर, अण्ड के एक कपाल से भूमि और दूसरे से आकाश रचा, और दिशा उपदिशा देवता दानव आदि रचे, और जिस दिन यह सब काम किया उसका नाम प्रतिपदा रक्खा। सब तिथियों में ब्रह्माजी ने इसको प्रवर अर्थात् उत्तम बनाया। सब तिथियों के प्रारम्भ में प्रतिपादन किया और सब तिथियों का पद इससे आगे हुआ इसलिये इसका नाम प्रतिपदा रक्खा, हे राजन्! अब इस तिथि के उप-

वास और नियमों का हम वर्णन करते हैं। प्रतिपदा के दिन ब्राह्मण को यथाशक्ति दुग्ध देवे और यह कहे कि ब्रह्माजी मेरे ऊपर प्रसन्न हों, और आप भी क्षीर ही भोजन करे इस विधि से एक वर्ष व्रत कर अन्त में गायत्री सहित ब्रह्मांजी का पूजन कर व्रत समाप्त करे। इस प्रकार व्रत करने से सब पाप दूर होते हैं और सुन्दर अप्सराओं करके युक्त, दिव्यरत्नों से जड़ा हुआ सुवर्ण का विमान ब्रह्माजी उसको देते हैं जिसमें बैठकर सब लोकों में जा सकता है। इस भाँति बहुतकाल तक स्वर्ग आदि लोकों में निवास कर पृथिवी में जन्म लेता है, तब भी दश जन्म तक वेद-विद्या का पारगामी, धनवान्, दीर्घायुष्, आरोग्य, भोगी और यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण होता है। विश्वामित्र मुनि ने ब्राह्मण होने के लिये बहुत काल तक घोर तप किया; परन्तु ब्राह्मण न बने, तब नियम से प्रतिपदा का व्रत करने लगे इससे थोड़े काल में ही प्रसन्न हो ब्रह्माजी ने उनको ब्राह्मण बना दिया। क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि कोई इस तिथि का व्रत करे वह सब पापों से मुक्त होकर, दूसरे जन्म में ब्राह्मण होता है। यह प्रतिपदा का रहस्य हमने वर्णन किया है। हैहय, तालजंघ, तुरुष्क, यवन, शक आदि म्लेच्छ जाति के मनुष्य भी इस व्रत से ब्राह्मण हो सकते हैं। यह तिथि परम पुण्य और कल्याण की देनेवाली है, जो इसके माहात्म्य को भी पढ़े अथवा सुने वह ऋद्धि, वृद्धि और कीर्ति पाकर अन्त में सद्गति पाता है।

सोलहवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी के पूजन व मंदिर बनाने व दुग्धादि द्रव्यों से स्नान कराने का फल।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमंतु मुनि! प्रतिपदा का कल्प ब्रह्माजी के पूजन का विधान और पूजन का फल आप विस्तार से वर्णन करें। यह सुन सुमंतु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! पूर्वकाल में जब सब स्थावर जंगम जगत् नष्ट हुआ, और सर्वत्र

जल ही जल हो गया; उस समय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने अनेक प्रकार के देवता, भूत, मनुष्य, नदी, पर्वत, समुद्र आदि की सृष्टि की इससे ये सब देवताओं के पिता और, और जीवों के पितामह ठहरे इसकारण इनकी सदा पूजा करनी चाहिए। ये ही जगत् को उत्पन्न करते हैं, और संहार करनेवाले भी ये ही हैं। रुद्र इनके मन से उत्पन्न हुए, विष्णु वक्षस्थल से, और अपने-अपने अङ्गों सहित चारों वेद इनके चारों मुखों से निकले हैं। सब देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग आदि इनकी पूजा करते हैं। सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय और ब्रह्मा में स्थित है इसलिये ब्रह्माजी सबके पूज्य हैं। जो ब्रह्माजी को भक्ति से नहीं पूजता वह राज्य, स्वर्ग और मोक्ष कभी नहीं पाता। ये तीनों पदार्थ इनके सेवन से मिलते हैं इसकारण सदा प्रसन्नचित्त हो ब्रह्माजी की पूजा करनी चाहिए। ब्रह्माजी का पूजन विना किये भोजन करने से प्राण त्याग देना अथवा नरक में गिरना अच्छा है। जो भक्ति से सदा ब्रह्माजी का पूजन करे वह मनुष्यरूप में साक्षात् ब्रह्मा ही है। ब्रह्माजी के पूजन से अधिक कोई पुण्य नहीं, यह समझ सदा ब्रह्माजी का अर्चन करता रहे ऐसे पुरुष के दर्शन और स्पर्श से इक्कीस कुलों का उद्धार हो जाता है। ब्रह्माजी को पूजने-वाला मनुष्य बहुत काल तक ब्रह्मलोक में निवास करके मर्त्य-लोक में जन्म लेव तो चक्रवर्ती राजा अथवा वेद-वेदांग का पार-गामी कुलीन ब्राह्मण हो। न तो बड़े कठिन तपों से, और न यज्ञों से कुछ प्रयोजन है केवल ब्रह्माजी की पूजा से ही सब पदार्थ मिल सकते हैं। मट्टी, ईंट, काष्ठ अथवा पत्थरों से जो ब्रह्माजी का मन्दिर बनावे वह अपने इक्कीस कुलों सहित ब्रह्मलोक में निवास करे। मृत्तिका करके मन्दिर बनाने से कोटिगुण पुण्य, काष्ठ और ईंट से मन्दिर बनाने करके होता है, और इससे दूना पुण्य पाषाणों से मन्दिर बनाने करके प्राप्त होता है। जो क्रीड़ा करके भी ब्रह्माजी

के नामसे एकशाला बनवा देवे वह ब्रह्मलोक में निवास करे और उत्तम अप्सराओं करके युक्त पुष्पमाला मोतियों के हार, घंटा, चामर, दोला आदि से भूषित मधुर शब्द करनेवाली किंकिणियों की मालाओं से अलंकृत, और सब ऋतुओं में सुख देनेवाला विमान पाता है, और उसमें बैठ सब उत्तम लोकों में देवताओं के साथ विहार करता है। ब्रह्माजी के मन्दिर में जो छोटे जीवों को बचाकर धीरे-धीरे झाड़ू देवे वह चान्द्रायण व्रत का फल पाता है। वस्त्र से जल छान जो मन्दिर में लेपन करे, और जीवों को बचावे वह भी चान्द्रायण के फल का भागी होता है। जो एक पक्ष तक ब्रह्माजी के मन्दिर में जीव रक्षापूर्वक झाड़ू लगाकर उपलेपन करे वह सौ कोटि युग से भी अधिक ब्रह्मलोक में निवास करता है, और उसके अन्त में भूमि पर आकर सब गुणों करके युक्त धर्मात्मा राजा होता है। जो कपट से भी ब्रह्माजी के मन्दिर में मार्जन आदि करे वह भी ब्रह्मलोक पावे। जब तक भक्ति से ब्रह्माजी का पूजन न करे तब तक ही संसार में भटकता है। जैसा मनुष्य का चित्त विषयों में मग्न होता है ऐसा जो ब्रह्माजी में लगे तो कौन पुरुष मुक्ति न पावे। जो ब्रह्माजी के मन्दिर का जीर्णोद्धार करे अर्थात् फूटे-टूटे मन्दिर को सुधरावे वह भी ब्रह्मलोक में निवास करे। ब्रह्माजी के समान देवता, गुरु, ज्ञान और तप कोई भी नहीं। प्रतिपदा आदि सब तिथियों में भक्ति से ब्रह्माजी का पूजन करे और पूर्णमासी को विशेष करके पूजा कर शंख भेरी आदि के शब्दों सहित आरती करे, और गीत-नृत्य भी करावे। इस भाँति जितने पर्वों में आरती करे उतने हज़ार युग ब्रह्मलोक में निवास करे और आनन्द भोगे। कपिला गौ के पञ्चगव्य और कुशा के जल से वेदमन्त्रों करके ब्रह्माजी को स्नान करावे इसका नाम ब्रह्मस्नान है, और अन्य स्नानों से सौगुणा

पुण्य इसमें अधिक है। देवकार्य और अग्निकार्य के लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कपिला गौ को रक्खें। शूद्र कभी कपिला को अपने घर में न लावे। जो शूद्र कपिला का दुग्ध पान करे वह महाघोर रौरव नरक में गिरे। ब्रह्माजी की मूर्ति को सुगन्धित तैल से अभ्यंग करे तो करोड़ों वर्षों के किये पापों से मुक्त हो। ब्रह्माजी को घृत से स्नान करावे तो अनेक जन्मों के पाप दग्ध होजायँ। प्रतिपदा के दिन जो घृत से स्नान करावे वह इक्कीस कुल का उद्धार करे। सुवर्ण, वस्त्र आदि से भूषित दश हज़ार सवत्सा गौ वेदवेत्ता ब्राह्मणों को देने से जो पुण्य होता है वही पुण्य ब्रह्माजी को दुग्ध करके स्नान कराने से प्राप्त होता है। एक बार भी जो पुरुष चार सेर दूध से ब्रह्माजी को स्नान करा देवे वह सुवर्ण के विमान में विराजमान हो ब्रह्मलोक को सिधारे। दही से स्नान कराकर विष्णुलोक पावे, शहद से नहवाकर वीरलोक को जावे, ईख के रस से स्नान कराकर सूर्यलोक की प्राप्ति हो, फलों के रस से जो स्नान करावे वह सब पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में निवास करे। जो पुरुष वस्त्र से छने हुए जल करके ब्रह्माजी को स्नान करावे वह सदा तृप्त रहे और अन्त में ब्रह्मलोक पावे। सर्वौषधियों के जल से स्नान कराकर ब्रह्मलोक, चन्दन के जल से स्नान कराकर रुद्रलोक, और गङ्गाजल से स्नान कराकर विष्णुलोक पावे। कमल के पुष्प, नीलकमल, पाटला, करवीर, मालती, बाण आदि पुष्पों द्वारा स्नान कराने से चन्द्रलोक की प्राप्ति होती है, कपूर और अगर के जल से स्नान करावे अथवा गायत्रीमन्त्र से सौ बार जल को अभिमंत्रित कर उससे स्नान करावे तो ब्रह्मलोक पावे। शीतल जल से अथवा धारोष्ण दुग्ध अर्थात् थन से तुरन्त निकले हुए गरम-गरम कपिला के दूध से स्नान कराकर पीछे घृत से स्नान करावे तो सब पापों से मुक्त होजाय ये तीनों स्नान कराकर भक्ति से पूजा करे तो हज़ार

अश्वमेध का फल पावे। मृत्तिका के घट से स्नान करावे तो एक गुण फल, ताम्रके घट से सौगुणा, चाँदी के घट से लाख-गुणा और सुवर्ण के कलश से ब्रह्माजी को स्नान करावे तो कोटि-गुण फल पावे। ब्रह्माजी के दर्शन से उनका स्पर्श करना उत्तम है, स्पर्शन से अर्चन, और अर्चन से भी घृतस्नान अधिक फल दायक है। कायिक, वाचिक, मानसिक पाप घृतस्नान करने से कट जाते हैं। इस विधि से स्नान कराकर भक्ति से पूजन करे, पवित्र वस्त्र पहिन आसन पर बैठ सम्पूर्ण न्यास करे। पहिले चार हस्त के विस्तार में एक अष्टदल लिखकर, उसके मध्य में द्वादश दल यन्त्र लिखे, और पाँच रंगों से उसको भरे। इस विधि से यन्त्र लिखकर गायत्री के वर्णों का न्यास करे। मस्तक से चरणों तक प्रणव का न्यासकर तत् को मस्तक में, स-को मुख में, वि-को कण्ठ में, तुः-अंगसंधियों में, व-हृदय में, रे-दोनों पार्श्वों में, ण्-दक्षिणकुक्षि में, यं-वामकुक्षि में, भः-कटि और नाभि में, गो-जानुओं में, दे-जंघाओं में, व-चरणों में, स्य-अंगुष्ठों में, धी-ऊरुओं में, म-जानुओं में, हि-गुह्य में, धि-हृदय में, यो यो-दोनों ओष्ठों में, नः-नासिका में, प्र-नेत्रों में, चो-भ्रूमध्य में, द्-प्राण में, या-मस्तक में, और अन्त के तू-को केशों में न्यास करे। अपने देह में ये न्यासकर देवता के शरीर में भी करे। केसर, अगर, चन्दन, कपूर आदिक करके युक्त जल से गायत्रीमन्त्र पढ़, सब पूजा-द्रव्यों को मार्जन करे, प्रणव करके पीठस्थापन करे, और प्रणव करके ही तेजोरूप ब्रह्माजी का आवाहन करे। पद्म में विराजमान, चार मुखों करके युक्त, सब जगत् के सिरजनेहारे श्रीब्रह्माजी का ध्यान कर पूजा करे। गायत्री मन्त्र करके पाद्य, अर्घ, आचमन, स्नान, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, भाँति-भाँति के नैवेद्य, पके हुए फल, ताम्बूल, आचमन आदि उपचारों से भक्ति करके ब्रह्माजी का पूजन करे। पहिले मूल-मन्त्र करके ब्रह्माजी की

मूर्ति कल्पना करे। प्रथम देहशुद्धि के लिये तीन प्राणायाम कर, पीठ में अनन्त कालाग्नि रुद्र और कूर्मरूप विष्णु का ध्यानकर, उसके ऊपर कमल में विराजमान ब्रह्माजी को ध्यावे, और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म इनकी पूजा दिशा विदिशाओं में कर; शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष, उपवेद, इतिहास, पुराण आदि का पूजन करे। शिक्षा और व्याकरण का ब्रह्माजी के सम्मुख पूजन करे, और बाकी चारों ओर पूजे। प्रणव-सहित महाव्याहृतियों का पूर्वादि दिशाओं में पूजन करे, ये व्याहृति ब्रह्माजी की शक्ति हैं इसलिये अवश्य पूजनीय हैं। सात समुद्र, नक्षत्र, ग्रह, ऋषि, नाग, गरुड़, देवता, नदी, कुल पर्वत आदि सबकी यथायोग्य पूजा करे, पीछे शुद्ध जल से आचमन देवे। फिर शिखा, नेत्र, कवच और अस्त्र इन चारों का न्यास कर पूर्व आदि चारों दिशाओं में पूजन करे। इस प्रकार भक्ति से पूजन कर, विसर्जन मुद्रा से ब्रह्माजी का विसर्जन करे, और 'आपोहिष्ठा' इस ऋक् से हृदय, 'ऋतं च सत्यम्' इससे शिखा, 'उदुत्यम्' इस करके नेत्र, 'चित्रन्देवानाम्', इससे अस्त्र; 'मर्माणि ते वर्मणा' इस करके कवच, और गायत्री मन्त्र करके शिर का न्यास करे, यह षडंगन्यास है। गायत्रीमन्त्र मुख्य है और सब कर्मों का साधनेवाला है इससे ब्रह्माजी का पूजन प्रणवयुक्त गायत्रीमन्त्र करके करे। केवल प्रणव करके ऋग्वेद आदि का पूजन करे, आवाहन विसर्जन आदि गायत्री मन्त्र से ही करे। इस प्रकार जो पुरुष प्रतिपदा के दिन भक्तिपूर्वक गायत्री मन्त्र करके ब्रह्माजी का पूजन करे वह चिरकाल पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करे।

सत्रहवाँ अध्याय।

ब्रह्माजी की रथयात्रा का विधान, कार्त्तिकशुक्ल प्रतिपदा की प्रशंसा।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन् शतानीक ! कार्त्तिक मास

में जो ब्रह्माजी की रथयात्रा करे वह ब्रह्मलोक को जाता है। कार्त्तिक की पूर्णमासी को मृगचर्म के ऊपर सावित्री-सहित ब्रह्माजी को सुशोभित कर सब उपचारों से उन का पूजन करे और उनके अग्रभाग में शांडिलीपुत्र की पूजा करे जो ब्रह्माजी का परमभक्त ब्राह्मण था। ब्राह्मण भोजन कराकर बड़े उत्सव से ब्रह्माजी को रथ पर बैठावे और रथ के आगे शांडिलीपुत्र को स्थापित करे। उस रात को जागरण करे, नृत्य गीत आदि उत्सव, भाँति-भाँति के तमाशे ब्रह्माजी के सम्मुख रात भर होते रहें। इस विधि जागरण कर प्रतिपदा के दिन ब्रह्माजी का पूजन करे, और ब्राह्मण को भोजन कराकर रथयात्रा करे। चारों वेदों के जाननेवाले उत्तम ब्राह्मण उस रथ को खींचें, और रथ के आगे ब्राह्मण वेद पढ़ते चलें, शूद्र इस रथ को स्पर्श न करे। आगे शङ्ख, भेरी, मृदंग आदि भाँति-भाँति के बाजे बाजते चलें। इसप्रकार सारे नगर में रथ को घुमाकर और नगर की प्रदक्षिणा कराके अपने स्थान पर ले आवें और आरती कर ब्रह्माजी को उनके मन्दिर में स्थापन करें। इस प्रकार जो रथयात्रा करें, जो रथ को खींचें, जो दर्शन करें वे सब ब्रह्मलोक को जायँ। दीप-माला को जो ब्रह्माजी के मन्दिर में दीप प्रज्वलित करे वह ब्रह्मलोक पावे। दूसरे दिन प्रतिपदा को ब्रह्माजी का सब उपचारों से पूजन करे, और अपने को भी वस्त्र, भूषण आदि से अलंकृत करे। यह तिथि ब्रह्माजी को बहुत प्रिय है और इसी तिथि से बलि के राज्य की प्रवृत्ति हुई है, जो इस दिन ब्रह्माजी का पूजन कर ब्राह्मण भोजन करावे वह विष्णुलोक पावे। चैत्र में कृष्ण प्रतिपदा के दिन चांडाल को स्पर्श कर स्नान करे तो आधि-व्याधियों से छूट जाय। उस दिन गो, भैंस आदि को भूषित कर तोरण के नीचे से निकाले और ब्राह्मणों को भोजन करावे। चैत्र, आश्विन और कार्त्तिक इन तीनों महीनों की प्रतिपदाएँ

उत्तम हैं परन्तु कार्त्तिक की विशेष करके प्रधान है। उसमें किया हुआ स्नान, दान आदि सौगुणा फल को देता है, और राजा बलि को राज्य उसी दिन मिला है इसलिये कार्त्तिक की प्रतिपदा बहुत उत्तम मानी जाती है।

अठारहवाँ अध्याय।

द्वितीयाकल्पारम्भ, च्यवन मुनि की कथा, पुष्पद्वितीया व्रतविधि।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन् शतानीक! द्वितीया के दिन च्यवन ऋषि ने इन्द्र के देखते-देखते अश्विनीकुमारों को यज्ञ में सोमपान करा दिया। यह सुन राजा ने पूछा कि महाराज! इन्द्र के देखते-देखते च्यवन मुनि ने किस प्रकार अश्विनीकुमारों को सोम पिलाया, क्या च्यवनजी के तप का प्रभाव ऐसा प्रबल है कि इन्द्र भी कुछ न कर सका? तब सुमन्तु मुनि कहने लगे हे राजन्! सत्ययुग की पिछली सन्ध्या में च्यवन मुनि गङ्गा के तीर समाधि लगाकर बहुत काल से तप करते थे। एक समय अपनी सेना और अन्तःपुर को साथ लेकर राजा शर्याति गङ्गा स्नान करने आया और च्यवन के आश्रम में उतर, गङ्गा स्नान कर, देवता और पितरों का तर्पण किया। इतने में सब सेना व्याकुल हुई और मूत्र, विष्ठा सबके बन्द हो गये। सेना की यह दशा देख राजा भी घबड़ाया और प्रत्येक मनुष्य से पूछने लगा कि किसी ने कुछ अपराध तो नहीं किया है, यह बड़े तपस्वी च्यवन मुनि का आश्रम है, इस प्रकार सब मनुष्यों से पूछा परन्तु किसी ने कुछ न बताया, तब राजा की सुकन्या नामक पुत्री अपने पिता से बोली कि महाराज! एक आश्चर्य मैंने देखा, वह आप से वर्णन करती हूँ, मैं अपनी सहेलियों को संग लिये वनविहार कर रही थी कि एक ओर से यह शब्द हुआ कि हे सुकन्ये! इधर आ, इधर आ, यह सुनते ही मैं अपनी सखियों सहित उस शब्द की ओर गई, वहां जाकर बहुत ऊँचा एक मट्टी का बल्मीक देखा और उसके

भीतर छिद्रों में दीपक की भाँति जलते हुए दो पदार्थ देखे उनको देख मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह पद्मरागमणि से क्या चमक रहे हैं और मैंने मूर्खता और चंचलता से कुशा के अग्रभाग से वे दोनों फोड़ दिये, तब वह तेज शान्त हो गया। यह सुन राजा अति व्याकुल भया और अपनी कन्या को साथ ले वहाँ गया जहाँ च्यवन ऋषि तप करते थे और उनको इतना काल वहाँ बैठे-बैठे बीत गया था कि उनके ऊपर बल्मीक बन गया और उनके सुकन्या ने जो कुशा से फोड़ डाले वे उनके अति प्रकाशमान नेत्र थे। राजा वहाँ जाकर अति दीनता से बिनती करने लगा कि महाराज मेरी कन्या से बड़ा अपराध बन पड़ा आप क्षमा करें। राजा की यह प्रार्थना सुन मुनि बोले कि हे राजन् ! हमने अपराध तो क्षमा किया, परन्तु अपनी कन्या हमसे विवाह दे, इसी में तेरा कल्याण है। मुनि का यह वचन सुन राजा ने झट पट सुकन्या को च्यवन ऋषि से ब्याह दिया और सब सेना भी सुखी हो गई। इस विधि मुनि को प्रसन्न कर सुखपूर्वक अपने नगर में आकर राज्य करने लगा। सुकन्या भी विवाह के अनन्तर भक्ति से मुनि की सेवा करने लगी। वृक्ष की छाल और मृगचर्म पहिन लिया, राजसी वस्त्र भूषण उतार डाले। इस भाँति मुनि की सेवा करते-करते कुछ काल व्यतीत हुआ और वसन्त ऋतु आयी, सब वन फूल गया, कोकिल बोलने लगे, भ्रमरों ने कोलाहल मचाया, मन्द-मन्द सुगन्ध पवन बहने लगा। ऐसे समय में एक दिन मुनि ने अति रूपवती अपनी पत्नी सुकन्या से कहा कि हे प्रिये ! हमारे समीप आओ, इस उत्तम ऋतु में हम तुम भी विहार करें जिससे दोनों कुलों को आनन्द देनेवाला पुत्र तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न हो। यह सुनकर सुकन्या हाथ जोड़कर बिनती करने लगी कि महाराज, आपकी आज्ञा मैं किसी प्रकार नहीं भंग कर सकती, परन्तु जैसी उत्तम शय्यापर

मैं अपने पिता के घर में सोती थी वैसी शय्या हो और आप सुन्दर रूप और यौवन से युक्त हों; उत्तम वस्त्र, भूषण और सुगन्ध से अपने को अलंकृत करें और मैं भी सब शृङ्गार करूँ, तब इस उत्तम ऋतु में विहार करने का आनन्द है। यह सुन च्यवन मुनि उदास हो बोले कि हे प्रिये! न तो मेरा उत्तम रूप है, न तेरे पिता कासा धन मेरे पास है, जिससे सब भोग की सामग्री इकट्ठी करूँ। यह सुन सुकन्या बोली कि महाराज, आप तप के प्रभाव से सब कुछ करने को समर्थ हैं, यह कितनी बड़ी बात है। तब मुनि ने कहा कि हे राजपुत्रि! इस काम के लिये मैं अपना तप व्यर्थ नहीं करूँगा। इतना कह पहिली भाँति तप करने लगे और सुकन्या भी उनकी सेवा में तत्पर भई। इस प्रकार बहुत काल व्यतीत होने के अनन्तर अश्विनीकुमार वहाँ आये और सुकन्या का अति सुंदर रूप देख बोले कि हे भद्रे! तू कौन है और इस घोर वन में इकल्ली क्यों-कर रहती है। यह सुन सुकन्या ने कहा कि मैं शर्याति राजा की सुकन्या नाम पुत्री हूँ, मेरे पति च्यवन मुनि यहाँ तप करते हैं, उनकी सेवा के लिये मैं उनके समीप रहती हूँ। यह मेरा वृत्तान्त है। अब आप भी कहिए कि आप कौन हैं। तब अश्विनीकुमारों ने कहा कि हम देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार हैं। तुझे इस वृद्ध पति से क्या सुख मिलेगा, हम दोनों में से एक को बर ले। तब सुकन्या बोली कि हे देवताओ! आप ऐसा मत कहो। मैं पति-व्रता हूँ और सब प्रकार से अनुरक्त होकर दिन रात अपने पति की सेवा करती हूँ। यह सुन अश्विनीकुमारों ने कहा कि जो ऐसी बात है तो तू अपने पति को बुला ला, हम उसका उत्तम रूप बनादेंगे और तीनों गङ्गा में स्नानकर बाहर निकलें, तब जिस पर तेरी इच्छा हो उसको बर लेना। यह सुन सुकन्या ने कहा कि मैं अपने पति से पूछ आती हूँ। अश्विनीकुमारों ने कहा

कि अच्छा, पूछ आ । जब तक तू आवेगी, तब तक हम यहाँ हीं ठहरते हैं। यह सुन सुकन्या अपने पति के समीप गई और सब वृत्तान्त कहा। उनने भी स्वीकार किया और सुकन्या अपने पति च्यवन मुनि को सङ्ग ले अश्विनीकुमारों के समीप आई। च्यवन मुनि ने कहा कि हे अश्विनीकुमारो ! आप का वचन हमको स्वीकार है । आप हमारा रूप उत्तम बना देवें पीछे सुकन्या चाहे जिसको बर लेवे। यह कहने के अनन्तर अश्विनीकुमार च्यवन मुनि को लेकर जल में प्रविष्ट भये और थोड़े काल के अनन्तर निकले तब सुकन्या ने देखा कि ये तीनों समान रूप,समान अवस्थावाले,समान वस्त्र भूषणों से अलंकृत हैं। इनमें मेरे पति का निश्चय क्योंकर हो । इस चिन्ता में विचारकर अश्विनीकुमारों की प्रार्थना करने लगी कि हे देवो ! अति कुरूप पति का भी मैंने त्याग नहीं किया, अब तो उसका रूप आपके समान हो गया,फिर मैं क्योंकर त्याग करूँ। इससे आपकी शरण हूँ। सुकन्या की यह प्रार्थना सुन प्रसन्न हो अश्विनीकुमारों ने अपने देव-चिह्न धारण किये, तब सुकन्या ने देखा कि दो पुरुषों के नेत्र निमेष नहीं करते और उनके चरण भी भूमि को नहीं स्पर्श करते केवल तीसरा पुरुष भूमि पर खड़ा है और नेत्रों से निमेष कर रहा है। यह चिह्न देख सुकन्या ने च्यवन मुनि को बर लिया। तब उसके ऊपर आकाश से पुष्पवृष्टि भई और देवताओं ने दुन्दुभि बजाई । इस प्रकार उत्तम रूप पाय च्यवन मुनि ने अश्विनीकुमारों से कहा कि तुमने मेरे ऊपर बड़ा उपकार किया कि यह उत्तम रूप दिया और पत्नी दी। अब मैं तुम्हारे साथ इसके बदले क्या प्रत्युपकार करूँ।जो उपकार करनेहारे के संग प्रत्युपकार न करे, वह इक्कीस नरकों में क्रम से जाता है। इस कारण मैं तुम्हारे ऊपर बड़ा भारी प्रत्युपकार किया चाहता हूँ । जो तुम्हारी इच्छा हो,

सो कहो। उन्होंने च्यवन मुनि को प्रसन्न देख कहा कि हमको यज्ञ में भाग दिलाइए। यह बात च्यवन मुनि ने अंगीकार करली और उनको बिदा कर अपने आश्रम में आये। यह सब वृत्तांत सुन राजा शर्याति भी अपनी रानीसहित च्यवन ऋषि के आश्रम में आये और प्रणाम किया। च्यवन मुनि ने भी उनका आदर सत्कार किया, सुकन्या अपनी माता के गले लगकर मिली। राजा भी अपने जामाता को उत्तम रूप से युक्त देख बहुत प्रसन्न हुआ। च्यवन मुनि ने राजा से कहा कि यज्ञ की सामग्री इकट्ठी करो, हम तुमको यज्ञ करावेंगे। राजा च्यवन मुनि की यह आज्ञा पाकर अपनी राजधानी में आये, सब यज्ञ की, सामग्री इकट्ठी की और मंत्री, पुरोहित, आचार्य आदि को बुलाकर यज्ञ की आज्ञा दी। च्यवन भी अपनी पत्नीसहित यज्ञ में आये और भी सब ऋषि यज्ञ में निमंत्रण देकर बुलाये गये। यज्ञ होने लगा, ऋत्विक् हवन में प्रवृत्त भये, सब देवता अपना-अपना भाग लेने आये और च्यवन मुनि के कहने से अश्विनीकुमार भी आये। उनके आने का प्रयोजन जान इन्द्र ने च्यवन मुनि से कहा कि ये दोनों देवताओं के वैद्य हैं। इसलिये यह यज्ञ-भाग के अधिकारी नहीं हैं, आप इनका पक्ष न कीजिये। तब च्यवन मुनि ने कहा कि ये देवता हैं और मेरे ऊपर इनका बड़ा उपकार है, मेरे ही बुलाने से यहाँ आये हैं। इसलिये मैं इनको अवश्य यज्ञ में भाग दूँगा। यह सुन क्रोध से इन्द्र ने कहा कि हे मुनि! जो तू मेरा वचन न मानेगा तो वज्र से तेरा मस्तक उड़ा दूँगा। इन्द्र का यह कठोर वचन सुनकर भी मुनि ने क्रोध न किया और अश्विनीकुमारों को भाग दे दिया तब तो इन्द्र ने अति कोप कर च्यवन मुनि के ऊपर वज्र उठाया। च्यवन ने अपने तप के प्रभाव से इन्द्र को स्तम्भन कर दिया कि हाथ में वज्र उठाये खड़े के खड़े रह गये। च्यवन मुनि ने अश्विनी-

कुमारों को भाग दे अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर यज्ञ समाप्त किया। इस अवसर में ब्रह्माजी ने आकर च्यवन से कहा कि इन्द्र का स्तम्भन खोल दो। यही वचन इन्द्र ने भी कहा कि आपके तप की ख्याति होने ही के लिये मैंने इनको भाग देने में निषेध किया था, आज से सब यज्ञों में इनको भाग मिला करेगा और आपके इस प्रभाव को जो सुनेगा अथवा पढ़ेगा, वह भी उत्तम रूप और यौवन पावेगा। यह सुन च्यवन मुनि ने इन्द्र को विसर्जन किया। आप अपनी स्त्री सहित आश्रम को आये। वहां देखा कि बहुत उत्तम महल बन गये हैं, जिसमें सुन्दर उपवन और वापी विहार के लिये बने हैं, भाँति-भाँति की शय्या बिछी हैं, रत्नों के जड़ाऊ भूषणों और नाना प्रकार के उत्तम-उत्तम वस्त्रों के ढेर लगे हैं। सब भक्ष्य, भोज्य रक्खे हैं। यह सब देख च्यवन मुनि ने बहुत प्रसन्न हो कर इन्द्र की प्रशंसा की। इतनी कथा सुनाकर सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! इस प्रकार द्वितीया के दिन अश्विनीकुमारों को यज्ञ-भाग मिला था, अब हम इसके व्रत की विधि कहते हैं। जो पुरुष उत्तम रूप की इच्छा करे, वह कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया से व्रत का आरम्भ करे और पुष्पभोजन करे। इस विधि प्रति द्वितीया को व्रत करे और जो उत्तम हविष्य पुष्प उस ऋतु में हों, उनका फलाहार करे। इस भाँति जो एक वर्ष व्रत कर चाँदी, सोने के पुष्प बनाय ब्राह्मणों को देवे और व्रत समाप्त करे उसको अश्विनीकुमार उत्तम रूप देते हैं और वह उत्तम विमान में बैठ स्वर्ग में जाकर अप्सराओं से विहार करता है। फिर मर्त्यलोक में जन्म लेकर वेद-वेदांग का जाननेहारा, दानी, नीरोग, पुत्र-पौत्रों करके युक्त और उत्तम पत्नी करके सेवित ब्राह्मण होता है अथवा मध्यदेश के उत्तम नगर में राजा होता है। हे राजन्! यह पुष्पद्वितीया का विधान हमने कहा ऐसी ही फलद्वितीया

भी होती है, जिसको अशून्य शयना भी कहते हैं फलद्वितीया को जो श्रद्धा से व्रत करे, वह ऋद्धि-वृद्धि पाकर अपनी भार्या सहित आनन्द भोगता है।

उन्नीसवाँ अध्याय।

फलद्वितीया का व्रतविधान और कल्प की समाप्ति।

राजा शतानीक कहते हैं कि हे सुमन्तु मुनि! अब आप कृपा कर फलद्वितीया का विधान कहें, जिसके करने से उत्तम फल हो। यह सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! हम फलद्वितीया के व्रत का विधान कहते हैं। जिस व्रत के करने से स्त्री विधवा नहीं होती और स्त्री पुरुष का कभी वियोग भी नहीं होता। जब भगवान् लक्ष्मीजी के संग क्षीरसागर में शयन करें, तब यह व्रत होता है श्रावण कृष्ण द्वितीया के दिन लक्ष्मीसहित भगवान् का पूजन कर हाथ जोड़ ये श्लोक पढ़े (श्रीवत्सधारिन् श्रीकान्त श्रीवत्स श्रीपते प्रभो। गार्हस्थ्यं मा प्रणश्येत मम धर्मार्थकामद १ गावश्च मा प्रणश्यन्तु मा प्रणश्यन्तु मे जनाः। जामयो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यभेदतः २ लक्ष्म्या वियुज्यते देव न कदाचिद्यथा भवान्। तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यतु ३ लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा। शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा तु मधुसूदन ४) इस प्रकार प्रार्थना कर व्रत करे और जो फल भगवान् को प्रिय हैं, वे भगवान् के शयन में चढ़ावे और रात्रि के समय वही फल आप भी भोजन करे दूसरे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराय दक्षिणा देवे। इतना सुन राजा शतानीक ने पूछा कि महाराज, कौन फल भगवान् को प्रिय हैं, सो आप कहें और दूसरे दिन ब्राह्मण को क्या दान देवे यह भी आप वर्णन करें। राजा का यह वचन सुन सुमन्तु मुनि ने कहा कि हे राजन्! जो फल उस ऋतु में मीठे और पके हों वही भगवान् के अर्पण करे। कड़ुये, कच्चे और खट्टे फल

न चढ़ावे ऐसे फलों से भगवान् प्रसन्न नहीं होते हैं और दूसरे दिन ऐसेही फल, वस्त्र और अन्न सुवर्ण ब्राह्मण को भी देवे। इस प्रकार जो पुरुष चार महीने व्रत करे तो तीन जन्मपर्यन्त उस का घर न बिगड़े और ऐश्वर्य भंग न हो और जो स्त्री इस व्रत को करे, वह तीन जन्म विधवा, दुर्भगा और पति से वियुक्त न हो, परन्तु भगवान् को खजूर, नारिकेल, मातुलुंग अर्थात् बिजौरा आदि फल चढ़ाये विना यह व्रत सफल नहीं होता है इस कारण फल अवश्य चढ़ाने चाहिए और ब्राह्मण को भी अपनी शक्ति के अनुसार दान देना चाहिए और इस व्रत के दिन अश्विनीकुमारों का भी पूजन करे। हे राजन्! यह द्वितीया का कल्प हमने वर्णन किया, इसके सुनने से लक्ष्मी मिलती है।

बीसवाँ अध्याय।

तृतीयाकल्पारम्भ, गौरी तृतीया व्रत-विधान और फल।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! जो स्त्री सब प्रकार का सुख चाहे, वह तृतीया का व्रत करे और लवण न खाय तो उसको गौरी भगवती रूप, सौभाग्य और लावण्य देती हैं। इस व्रत का विधान गौरी ने अपने मुख से धर्मराज प्रति कहा है, वही हम वर्णन करते हैं। गौरी देवी ने कहा है कि जो स्त्री इस व्रत को करे, वह सदा अपने पति के साथ आनन्द भोगे जैसा शिवजी के साथ मैं भोगती हूँ। विवाह के प्रथम कन्या यह व्रत करे सुवर्ण की गौरी की मूर्ति स्थापन करे और भक्ति से चित्त लगाय पूजा कर भाँति-भाँति की नैवेद्य लगावे और रात्रि को लवण रहित भोजन कर स्थापन की हुई मूर्ति के आगे शयन करे और दूसरे दिन ब्राह्मणों को भोजन कराय दक्षिणा देवे। इस प्रकार जो व्रत करे, वह उत्तम पति पावे और चिरकाल तक भूमि पर उत्तम भोग भोगकर संतान को स्थापन कर पति सहित सूर्यलोक को जाय। वहाँ बहुत काल सुख भोगकर ब्रह्मलोक को,

वहाँ से सप्तऋषियों के लोक को और वहाँ से शिवलोक में प्राप्त हो। इस व्रत को विधवा स्त्री करे तो वह भी अपने पति से जा मिले और बहुत काल स्वर्ग के सुख अपने पति के सहित भोग करे। इन्द्राणी ने यह व्रत पुत्र के अर्थ किया, तब जयन्त नाम पुत्र पाया। अरुन्धती ने उत्तम स्थान के लिये किया, जिसके प्रभाव से पतिसहित सब के ऊपर स्थान पाया और आज तक आकाश में देख पड़ती है। रोहिणी ने सब पत्नियों के जीतने के लिये यह व्रत किया और लवण न खाया; जो सब सपत्नियों में प्रधान और अपने पति चन्द्रमा की अति प्रिया भई। इस प्रकार यह व्रत उत्तम फल देनेवाला है। वैशाख भाद्रपद और माघ की तृतीया सब तृतीयाओं में उत्तम है, जिसमें भाद्र और माघ की तृतीया स्त्रियों के लिये विशेष फल देनेहारी है और वैशाख की तृतीया सब के लिये साधारण है, माघकी तृतीया को गुड़ और लवण का दान करे। गुड़ के दान से इन्द्र और लवण के दान से शची प्रसन्न होती हैं। गुड़ के अपूप भाद्र की तृतीया को दान करे और पायस दान करे तो शिव पार्वती प्रसन्न हों और वैशाख की तृतीया को मोदक और शीतल जल का दान करे तो सब देवता प्रसन्न हों। वैशाख की तृतीया अक्षयतृतीया कहाती है, इस दिन अन्न, वस्त्र, भोजन, सुवर्ण, जल आदि जो दान करे, वह अक्षय हो जाता है। इसी से इस तृतीया का नाम अक्षयतृतीया है। इस तृतीया को शीतल जल से भरे हुए पात्र का जो दान करे, वह सूर्यलोक को जाय। हे राजा शतानीक! जो इस तिथि को उपवास करे तो उसे ऋद्धि-वृद्धि और लक्ष्मी प्राप्त हो। यह तृतीया का कल्प जो सुने, वह भी उत्तम फल का भागी होता है।

इक्कीसवाँ अध्याय।

चतुर्थी व्रत-विधि, गणेशजी का वृत्तान्त और शिव-ब्रह्मा-विवाद वर्णन।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! चतुर्थी के दिन व्रत करे, और गणेश का पूजन कर ब्राह्मण को तिल देकर आप भी तिल ही भोजन करे। इस प्रकार दो वर्ष व्रत करे, तब विघ्ननायक श्रीगणेशजी प्रसन्न हों। मनोवाञ्छित फल देते हैं, असाध्य कार्य भी इस व्रत के करने से सिद्ध हो जाते हैं। और गणेशजी प्रसन्न होकर हाथी, घोड़े, धन, पुत्र, पौत्र, उत्तम स्त्री, विद्या, यश और बुद्धि देते हैं। सात जन्म तक वह पुरुष राजा होता है, पीछे विघ्नराज के लोक को जाता है। यह सुन राजा ने मुनि से पूछा कि महाराज, गणेशजी ने किसको विघ्न किया, जिससे उनका नाम विघ्नराज हुआ; यह आप वर्णन करें। राजा का यह वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! स्वामिकार्त्तिकेय स्त्री और पुरुषों का लक्षण बनाते थे। उसमें गणेशजी ने विघ्न किया, तब कार्त्तिकेय ने इनका किया विघ्न समझ क्रोध कर गणेशजी का एक दांत उखाड़ लिया, और उन्हें मारने भी चले। तब महादेवजी ने कार्त्तिकेय को निवारण किया और पूछा कि तुमने इतना क्रोध क्यों किया? तब कार्त्तिकेय बोले कि महाराज, मैं स्त्री-पुरुष-लक्षण बनाता था, उसमें इसने विघ्न किया, इससे मुझे बहुत क्रोध आया। यह सुन महादेवजी ने कार्त्तिकेय का कोप शान्त किया, और हँसकर पूछा कि हे पुत्र! तुम पुरुष-लक्षण जानते हो, तो कहो कि हममें क्या लक्षण हैं? तब कार्त्तिकेय ने कहा कि महाराज, आप में ऐसा लक्षण है कि थोड़े ही दिनों में आप के हाथ में कपाल रहेंगे और जगत् में आपका नाम कपाली हो जायगा। पुत्र का यह वचन सुन महादेवजी ने क्रोधकर उनकी पुरुष-लक्षण की पुस्तक उठाकर समुद्र में फेंक दिया, और आप अन्तर्धान हुए। कुछ काल के

अनन्तर ब्रह्माजी और महादेवजी का विवाद भया। ब्रह्माजी ने कहा कि हम बड़े और महादेवजी ने कहा कि हम बड़े हैं। हमारी उत्पत्ति कोई नहीं जानता और तुम्हारा जन्म हम जानते हैं। तब ब्रह्माजी का पाँचवाँ मुख हँसकर बोला कि हे शिव! तुम्हारी उत्पत्ति हम जानते हैं। यह सुन शिवजी ने कोप किया, और अपने नख से उस ब्रह्मा के शिर को काट अपने हाथ में लेकर सुमेरु पर्वत में जहाँ विष्णुभगवान् तप करते थे, वहाँ चले आये। इस अवसर में ब्रह्माजी ने क्रोध किया, और उनके कटे हुए शिर-स्थान से श्वेत कुण्डल धारे, कवच पहिने, धनुष-बाण हाथ में लिये अति क्रूर एक पुरुष निकला, और हाथ जोड़ ब्रह्माजी से कहने लगा, क्या आज्ञा है? तब ब्रह्माजी ने कहा कि जिस दुर्बुद्धि ने मेरा मस्तक काट लिया, उसको जाकर मार दे। यह सुनते ही वह पुरुष दौड़ा और जहाँ विष्णुभगवान् तप करते थे, वहाँ पहुँचा। उसको देख भगवान् ने शिवजी से कहा कि आप त्रिशूल से हमारी भुजा को भेदन करो। तब शिवजी ने विष्णुजी की भुजा भेदन की, उसमें से एक रुधिर की धार निकल कर आकाश को उछली। पीछे शिवजी के हाथ में जो ब्रह्मा के शिर का कपाल था, उसमें गिरी और कपाल रुधिर से भर गया। उस रुधिर को शिवजी ने अपनी तर्जनी अँगुली से मथा, तब उससे कवच पहिने रक्त स्वर्ण के कुण्डल धारे धनुष-बाण लिये एक पुरुष अति भयंकर निकला, और हाथ जोड़ शिवजी से बोला कि हे प्रभु! क्या आज्ञा है? तब महादेवजी ने आज्ञा दी कि इस ब्रह्मा के भेजे हुए श्वेतकुण्डली को मार दे। यह सुनते ही वह रक्तकुण्डली पुरुष श्वेतकुण्डली से लिपट गया और दोनों का युद्ध होने लगा। जैसा प्रलय के समय मंगल और केतु का हो बहुत काल उन दोनों का घोरयुद्ध हुआ,

परन्तु जय किसी की न हुई। जब सम्पूर्ण लोक व्याकुल हुए, तब आकाशवाणी हुई कि युद्ध मत करो। विष्णुभगवान् ने दोनों को समझाकर युद्ध से निवृत्त किया और कहा कि भूमि का भार उतारने के लिये तुम दोनों सहित मेरा अवतार होगा। इतना कह भगवान् ने श्वेतकुण्डली सूर्यनारायण को दिया, और रक्तकुण्डली इन्द्र के हवाले किया। वे दोनों भी इन क्रोध से उत्पन्न हुए पुरुषों को लेकर अपने-अपने धाम को गये। भगवान् ने शिवजी से कहा कि आप इस कपाल को धारण करें। जो इस कपालव्रत को धारण करेंगे, उनको कोई पदार्थ दुर्लभ न होगा। समुद्र को बुलाकर शिवजी ने कहा कि तू स्त्री-पुरुष-लक्षण बना और कुपित हो कार्त्तिकेय से कहा कि जो तूने विनायक का दाँत उखाड़ लिया है, वह दे दे। तेरे पुरुष-लक्षण में विघ्न होना था, वह हो गया। जो तुझे लक्षण की अपेक्षा हो, तो समुद्र से ले ले; परन्तु नाम समुद्र का ही रहेगा अर्थात् यह लक्षण सामुद्रिक कहावेगा। शिवजी का यह वचन सुन कार्त्तिकेय ने कहा कि आपकी आज्ञा से मैं गणपति को दाँत देता हूँ; परन्तु गणपति भी इसको सदा धारण करें। यदि वह इस दाँत को कहीं फेंक देंगे, तो उसी क्षण भस्म हो जायँगे। कार्त्तिकेय ने वह दाँत गणेशजी को दे दिया। गणेशजी ने भी उसे धारण कर लिया और आज तक धारण किये हुए हैं। इतनी कथा सुनाकर सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! मैंने यह देवताओं की गुप्त बात आप से कही है। इसको जो वेदवेत्ता ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम गुणों से युक्त शूद्रको सुनावे तथा जो भक्ति से सुने, उसको कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं। उसके किसी कार्य में विघ्न भी न हो, और उसे ऋद्धि-सिद्धि और लक्ष्मी मिले।

बाईसवाँ अध्याय।

गणपति के विघ्नराज होने का कारण और उपद्रुत पुरुष-लक्षण।

राजा शतानीक ने पूछा कि हे सुमन्तु मुनि ! गणेशजी को विघ्नराज किसने बनाया और गणों के स्वामी कैसे हुए, यह आप वर्णन करें। राजा के इस प्रश्न को सुनकर सुमन्तु मुनि ने कहा कि हे राजन् ! तुमने अत्युत्तम बात पूछी उसे हम वर्णन करते हैं। पूर्वकाल में प्रजाओं के सब काम निर्विघ्न सिद्ध हो जाते थे। इसलिये जब प्रजा को बहुत अहंकार बढ़ा, तब ब्रह्माजी के कहने से प्रजा-कार्यों में विघ्न करने के लिये शिवजी ने गणेशजी को उत्पन्न किया। तब से गणेशजी के अनुग्रह विना किसी का कार्य निर्विघ्न सिद्ध नहीं होता, इसी से विघ्नराज कहलाये। जिस पुरुष पर गणपति का कोप हो, उसके लक्षण सुनो। वह स्वप्न में तैल में स्नान करता है; नंगे-मुंडे मूड़ के पुरुषों को देखता है, क्रव्याद अर्थात् मांस खानेवाले सिंह, व्याघ्र आदि जीवों पर चढ़ता है; चाण्डाल, गधे, ऊँट आदि के बीच बैठता है; ऊँट पर चढ़, कषाय वस्त्र पहिने पुरुषों करके वेष्टित ग्रम के समीप जाता है और करवीर के फूलों की माला गले में पहिनता है। वह इन लक्षणों को स्वप्न में देखता है, और जागता हुआ विना कारण उदास रहता है। चलता फिरता यह देखता है कि कोई मेरे पीछे चला आता है, और जिस कार्य का आरम्भ करे, उसी में विघ्न हो जाता है। गणपति करके उस सृष्ट राजा राज्य को नहीं प्राप्त होता। कन्या को पति नहीं मिलता। गर्भिणी स्त्री के सन्तान नहीं होती। आचार्य पढ़ा नहीं सकता। विद्यार्थी पढ़ नहीं सकता। वैश्य को व्यापार में लाभ नहीं होता। खेती करनेवाला खेती में कुछ फल नहीं पाता। इन विघ्नों के निवृत्त करने के लिये शुक्ल चतुर्थी बृहस्पतिवार अथवा पुष्य नक्षत्र के दिन गणेशजी को स्नान करावे उसकी हम

विधि कहते हैं सिंहासन पर गणेशजी की मूर्ति को स्थापन कर सरसों का उबटना लगाकर सर्वोषधि और सुगन्ध वस्तुओं का तैल मर्दनकर स्नान करावे तथा ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करा पूजाकरे। पहिले शिव-पार्वती की पूजा कर, गणेशजी का पूजन करे इसके पश्चात् कार्त्तिकेय, बृहस्पति, बुध और राहुकी भी पूजा करे। चार कलश जल के मँगाकर उनमें घोड़ों के स्थान की, हाथियों के स्थान की, बल्मीक की, नदियों के सङ्गम की और सरोवर की मृत्तिका डाले तथा गूगल और गोरोचन आदि द्रव्य और सुगन्ध पदार्थ उस जल में मिलाकर गणेशजी के सिंहासन को लाल वृषभ के चर्म के ऊपर विराज इन मन्त्रों से पूर्वोक्त जल से गणेशजी को स्नान करावे। स्नान के मन्त्र ये हैं। सहस्राक्षं शतंवारम् ऋषिभिः पावनैः कृतम्। तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्त्विह १ भगं ते वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः। भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः २ यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि। ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापद्यद्घ्नन्तु तेजसा ३ इन मन्त्रों से स्नान कराकर सरसों के तेल का हवन करे। हवन के लिये गूलर के काष्ठ का स्रुवा बनावे, मित, संमित, शाल, कटंकट, कूष्माण्ड और राजपुत्र इन नामों के अन्त में स्वाहा लगाके हवन करे। शूर्प अर्थात् छाज में कुशा बिछाकर उस में कच्चे-पक्के चावल, मांस, भात, कच्चा मांस, कच्चे-पक्के मत्स्य, तीन प्रकार की सुरा, भाँति-भाँति के पुष्प, इत्र आदि सुगन्ध द्रव्य, लड्डू, पूरी, अपूप, दही बरे, खीर, गुड़ के पक्वान्न, और अनेक प्रकार के फल-मूल रखकर नमस्कारान्त नाम और बलिमंत्र करके चतुष्पथ अर्थात् चौराहे में बलि देवे। इस प्रकार बलि देकर अंजलि में पुष्प, दूर्वा और सर्षप लेकर गणेशजी की माता पार्वतीजी की प्रार्थना करे—रूपं देहि यशो देहि भगं भवति देहि मे। पुत्रान्देहि धनंदेहि सर्वान्कामांश्च

देहि मे। इस मन्त्र से भगवती की प्रार्थना कर ब्राह्मणों को भोजन कराकर दो वस्त्र और कुछ दक्षिणा गुरु के समर्पण करे। इस विधि से गणेशजी और ग्रहों की पूजा करे, तो सब काम निर्विघ्न हों और लक्ष्मी मिले। सूर्य, गणेश और कार्त्तिकेय की पूजा करने से सदा विघ्न निवृत्त होते हैं।

तेईसवाँ अध्याय।

पुरुषों के लक्षण।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि! जो स्त्री-पुरुषों के लक्षण स्वामिकार्त्तिक ने बनाये, और शिवजी ने क्रोध कर समुद्र में फेंक दिये, वे लक्षण फिर कार्त्तिकेय को प्राप्त हुए कि नहीं, यह आप वर्णन करें। यह सुन सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजा! वे लक्षण जिस विधि कार्त्तिकेय को प्राप्त हुए, वह हम वर्णन करते हैं। कार्त्तिकेय ने जब अपनी शक्ति से क्रौंच पर्वत को विदारण किया, तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न हो कार्त्तिकेय से कहा कि हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, वर माँगो। उस समय कार्त्तिकेय ने कहा कि महाराज, जो स्त्री-पुरुष-लक्षण मैंने बनाये थे, वे मेरे पिता ने क्रोधकर समुद्र में फेंक दिये और मुझे भी स्मरण न रहे, अब उनके श्रवण करने की इच्छा है आप अनुग्रह करके कथन कीजिए कार्त्तिकेय का यह वचन सुनकर ब्रह्माजी बोले कि हे कार्त्तिकेय! वे सब लक्षण समुद्र ने जिस प्रकार कहे हैं, वैसे ही हम तुमको सुनाते हैं। उत्तम, मध्यम और अधम ये तीन प्रकार के लक्षण समुद्र ने कहे हैं। अच्छे मुहूर्त्त में मध्याह्न के पूर्व पुरुष के लक्षण देखे प्रमाण संहति छाया, गति, सम्पूर्ण अङ्ग, दाँत, केश, नख और श्मश्रु अर्थात् दाढ़ी मूछके लक्षण देखे, पहिले आयुष् की परीक्षा करके लक्षण देखे, आयुष् थोड़ा हो तो सब लक्षण वृथा हैं। अपने अंगुलों से जो पुरुष एक सौ आठ अंगुल हो, वह उत्तम होता है। सौ

अंगुल हो, वह मध्यम और नब्बे अंगुल ऊँचा पुरुष अधम गिना जाता है। यह प्रमाण का लक्षण समुद्र ने कहा है। अब पुरुष के अंगों का लक्षण कहते हैं। जिसके चरण कोमल, रक्तवर्ण, स्निग्ध, ऊँचे, पसीने से रहित हों और नाड़ियों करके व्याप्त नहीं अर्थात् नाड़ी न देख पड़ती हों, वह पुरुष राजा होता है। जिसके पादतल में अंकुश का चिह्न हो, वह सदा सुखी रहे। कूर्म के समान ऊंचे, कमल से कोमल और रक्त; जिनकी अँगुली परस्पर मिली हुई, सुन्दर पार्ष्णि अर्थात् एड़ी करके युक्त और निगूढ़ गुल्फ अर्थात् जिनके टंकने गुप्त हों, उष्ण अर्थात् सदा गर्म रहें; परन्तु प्रस्वेद न आवे और लाल वर्ण के नखों से भूषित ऐसे चरण राजा ही के होते हैं। शूर्प के समान रूक्ष, श्वेत नखों से युक्त, टेढ़े, रूखे, नाड़ियों करके व्याप्त, बिरली अँगुलियोंवाले और जिनमें पसीना आवे, ऐसे चरण दरिद्री और दुःखी पुरुषों के होते हैं। जिसके चरणतल अर्थात् तलुवे पकी मृत्तिका के समान वर्ण हों, वह पुरुष ब्रह्म-हत्या करे। पीत तलवाला अगम्या स्त्री से संग करे; कृष्ण वर्ण चरणतल होने से सदा पान में आसक्त रहे और जिसके चरण तल श्वेतवर्ण हों, वह अभक्ष्य पदार्थ भोजन करे। जिनके पैरों के अंगुष्ठ बहुत मोटे हों, वे भाग्यहीन होते हैं। विकृत अंगुष्ठ-वाला मार्ग में चलता रहे; चिपटे, टूटे हुए अंगुष्ठ हों तो वह अतिनिन्दित हो; टेढ़े, छोटे और फटे हुए अंगुष्ठ जिसके हों, वह क्लेश भोगे; गोल, न बड़े, न छोटे, रक्तवर्ण नखों से भूषित और कोमल अंगुष्ठ हों तो राज्य मिले। जिस पुरुष के पाँव की तर्जनी अँगुली अंगुष्ठ से बड़ी हो, उसको सदा स्त्री-भोग मिले; कनिष्ठा अँगुली दीर्घ होने से सुवर्ण की प्राप्ति हो; चपटी, विरल, सूखी और टेढ़ी जिसकी अँगुली हों, वह धन-हीन हो और सदा दुःख भोगे। रूखे, फटे हुए और श्वेत

नख हों तो दुःख मिले। बुरे नख हों तो पुरुष शील रहित और काम-भोग-हीन हो। हरे नख हों तो वह पुरुष ब्रह्महत्या करे, बन्धुओं से वियोग हो और अपने कुल का संहार करे। इन्द्र-गोप अर्थात् बीरबहूटी नाम कीट के समान वर्ण जिसके अति अरुण नख हों, वह अवश्य राजा हो। रोम-युक्त जिनकी जंघा हों, वे भाग्यहीन होते हैं। अश्व के समान जिनकी जंघाएँ हों, वे ऐश्वर्य पावें और बन्धन भोगें। मृग के समान जंघा हों तो राजा हो। शृगाल और काक की जंघा के समान जिन-की जंघाएँ हों, वे भाग्यहीन और दुःख भोगनेवाले होते हैं। दीर्घ अर्थात् लम्बी और मोटी जंघावाले भी भाग्यहीन होते हैं। सिंह तथा व्याघ्र के समान जिनकी जंघाएँ हों, वे धनवान् होते हैं। एक-एक रोमकूप में एक-एक रोम हो तो राजा हो। दो-दो रोम हों तो पण्डित तथा श्रोत्रिय हो और तीन-तीन रोम होने से धनहीन और दुःखी हो। इस प्रकार रोम और केश भले और बुरे होते हैं। जिसके जानु अर्थात् घुटने मांस रहित हों, वह विदेश में मरे। विकट जानु हों तो दरिद्री हो। निम्न हों तो स्त्रीजित हो और मांस करके सहित जानु हों तो राजा हो। हंस, भास, शुक, वृष, सिंह, हाथी और और जो उत्तम पक्षी हैं, उनके समान गति हो तो राजा अथवा भाग्य-वान् हो। जल के तरंगों के समान और काक, उलूक आदि दुष्ट जीवों के समान अथवा श्वान, उष्ट्र, महिष, गधा, शूकर आदि के तुल्य जिनकी गति हो, वे दुःख और शोक युक्त होते हैं तथा भाग्य से भी हीन होते हैं। यह समुद्र का वचन है, इस में संदेह नहीं।

चौबीसवाँ अध्याय।

पुरुषों के लक्षण।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे कार्त्तिकेय! जिसका लिंग दहिनी

दीप। ॐ गं महोल्काय नमः, इससे नैवेद्य और बलि निवेदन करे। फिर पूर्व में 'दुर्जयाय स्वाहा' दक्षिण में 'महागणपतये वीराय स्वाहा' पश्चिम में 'सदामहोल्काय स्वाहा' उत्तर में 'कूष्माण्डाय स्वाहा' अग्निकोण में 'एकदन्तत्रिपुरान्तकाय स्वाहा' नैर्ऋत्य में 'श्यामदन्तविकटघ्राणाय स्वाहा' वायव्य में 'चलदन्तलम्बनासाय स्वाहा' ईशान में 'पद्मदन्तगजाननाय स्वाहा' इन मन्त्रों से पूजन करे और हवन करे। गणेशजी के आगे हुं फट्-फट् इस मन्त्र करके हाथों की ताली बजावे और नाचे-गावे। 'ॐ गच्छोल्काय स्वाहा' यह विजर्सन का मन्त्र है। यह तो पूजन का विधान है अब प्रयोग कहते हैं। तीन दिन काले तिलों करके मूलमन्त्र से आठ हज़ार आहुति देवे तो राजा वश हो। तिल और यव के हवन से सब मनुष्य वश हों, और रूपवती कन्या के वश करने को यह हवन करे तो वह अनुगामिनी हो, लवण और चावल के हवन से अजित होजाय अर्थात् कोई उसको न जीत सके। निम्बपत्र मिलाकर हवन करने से विद्वेषण हो। चन्द्रग्रहण के समय जल में खड़ा होकर आठ हज़ार जप करे तो युद्ध में जय पावे। सूर्य की ओर मुख करके आठ हज़ार जपे तो सूर्यनारायण प्रसन्न हों। शुक्ल चतुर्थी को उपवास करके सब उपचारों से गणेशजी का पूजन करे और तिल चावल का हवन कर मूलमंत्र को अष्टगंध से भूर्जपत्र पर लिख शिर में धारण करे तो सर्वत्र जय पावे। अपामार्ग के काष्ठ से अग्नि प्रज्वलित कर तीन दिन इक्कीस आहुति देवे तो शत्रु को मारे। वृक्ष के नीचे बैठ, कज्जल बनाकर सात बार अभिमंत्रण कर नेत्र में लगाके जिसको देखे वह वश हो जाय। पुष्प, फल अथवा मूल आठ हज़ार बार अभिमंत्रण कर जिसको देवे वह वश हो। मूल मंत्र से जो काम करे वह सिद्ध होता है। इसके जप से सब ग्रह प्रसन्न रहते हैं। नगर के द्वार पर जाकर आठ हज़ार

जपे और द्वार को देखता जाय तो वह नगर ज्वर करके पीड़ित होजाय। दक्षिणमुख होकर जपे तो शत्रु का उच्चाटन करे, जल में खड़ा हो सांत रात्रि जपे तो अकाल में भी वृष्टि हो। इस मंत्र के जप से आकर्षण, स्तम्भन, उच्चाटन आदि कर सकता है। हज़ार बार अभिमंत्रण कर गोरोचन को हाथ में बाँधे तो सौ योजन जाकर लौट आवे। खदिर वृक्ष का कील मंत्रित कर जिस स्त्री-पुरुष के नाम से गाड़ देवे वह उसी क्षण मृत्युवश हो। इस मंत्र का जप करनेवाला अति तेजस्वी और अपराजित होता है। अंगुष्ठप्रमाण निम्बकाष्ठ की मूर्ति बनाकर धूप गंध आदि दे उसका पूजन कर शिर के ऊपर रखे तो सब मनुष्यों का प्रिय हो। इसी भाँति श्वेत आक की जड़ की मूर्ति बनाकर धारण करे तो सब वर्ण वश होजायँ। श्वेत चन्दन की अंगुष्ठप्रमाण मूर्ति बनाकर शुक्ल चतुर्थी अथवा अष्टमी के दिन पूजन कर बलि देवे और आठ हज़ार हवन कर उस मूर्ति को शिर पर धारण करे तो राजा वश हो। इसी भाँति रक्तचंदन की मूर्ति बनाके घृत का हवन कर धारण करे तो प्रजा वश हो। रक्तकरबीर के मूल की मूर्ति बनाकर रक्तचंदन, रक्तपुष्प आदि से पूजन कर बलि देवे और तिल, घृत और लवण का हवन कर मूर्ति को धारण करे तो दश ग्रामों को वश करे। इसी प्रकार मूर्ति बनाकर पूजन कर तिल दही दूध घृत और हल्दी मिला कर हवन करे तो वेश्या वश हों। तेंदू के काष्ठ करके हवन करे तो शत्रु वश हो। बिल्वमूल की मूर्ति बनाकर पहिली भाँति पूजनादि कर घी शहद और शर्करा का हवन करे तो राजा के मंत्री वश हों। शिर में मूर्ति को धार, राजद्वार में जावे तो प्रतिष्ठा पावे। हाथी के दाँत से उखाड़ी हुई मृत्तिका की अंगुष्ठप्रमाण मूर्ति बना कर कृष्ण चतुर्थी के दिन एकान्त में नग्न हो पूजा करे तो स्त्रियों का अति प्रिय होवे। बैल के सींग से खुदी हुई मृत्तिका से मूर्ति

बनाकर पूजन करे और गूगुल का धूप देवे तो घोष अर्थात् जहाँ बहुत से गोप और गौ रहते हों उनके स्वामी को वश करे। बल्मीक की मृत्तिका से मूर्ति बनाकर कटुतैल से उसको लिप्त करे और धतूरे के काष्ठ से अग्नि जलाकर उसमें सात हज़ार हवन करे तो जिस कन्या से चाहे उसी से विवाह हो (ॐ नमो गणपतये वक्रतुण्डाय गुलगुलेतिनिनादकराय चतुर्भुजाय त्रिनेत्राय मुसलवज्रहस्ताय सर्वलोकवशङ्कराय सर्वदुष्टोपघातजननाय सर्वशत्रुविमर्दनाय सर्वराजसंमोहनाय हन हन पच पच वज्रांकुशेन फट् स्वाहा ॐ हस्तिपाणिनेगः स्वाहा) यह भी गणपति का मन्त्र है इसके अंगन्यास ध्यान और पूजा विधान पहिले मन्त्र के ही तुल्य हैं (ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नोदनी प्रचोदयात्) यह गणेश गायत्री है इससे पूजन करे पद्मदन्तमाला प्रहर्षिणी परशु पाश अंकुश और पटह ये आठ मुद्रा पहिले दिखाकर सर्व कर्म करे जो शिवजी के पूजन का मण्डल पीठ और विधान है वही गणपति पूजन का भी है, केवल मन्त्रों में भेद है। इस विधि से जो पुरुष पार्वती के पुत्र श्रीगणेशजी का पूजन करे उसके सब विघ्न और अरिष्ट निवृत्त हो जाते हैं। चतुर्थी को उपवास कर जो गणेशजी का पूजन करे उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं। गणेशजी अनुकूल हों तो सब जगत् अनुकूल हो जाय। जिस पुरुष पर गणपति सन्तुष्ट हों उससे देवता, पितर, मनुष्य आदि सब तुष्ट होते हैं इसकारण श्रद्धा से गणेशजीका आराधन करे। केसर, चन्दन, चमेली, धतूरे, कमल आदि के पुष्प अनेक भाँति के मोदक आदि नैवेद्य, तांबूल आदि अनेक उपचारों से सम्पूर्ण विघ्न निवृत्त होने के लिये श्रीगणेशजी का भक्ति से पूजन करे और मनोवाञ्छित फल पावे।

उन्तीसवाँ अध्याय।

तीन प्रकार की चतुर्थी का फल और व्रत का विधान चतुर्थीकल्प समाप्ति।

सुमंतु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! तीन प्रकार की चतुर्थी हैं शिवा, शान्ता और सुखा इनके हम लक्षण कहते हैं। भाद्रपद महीने की शुक्ल चतुर्थी का नाम शिवा है। उस दिन जो स्नान, दान, उपवास, जप आदि सत्कर्म करे वह गणपति के प्रसाद से सौगुणा हो जाता है। उस चतर्थी को गुड़, लवण और घृत का दान करे और गुड़ के अपूपों से ब्राह्मणों को भोजन करावे। उस दिन जो स्त्री अपने सास और श्वशुर को गुड़ के पुये खिलावे वह गणपति के अनुग्रह से सौभाग्य पावे। पति की कामनावाली कन्या विशेष करके इस चतुर्थी का व्रत करे और गणेशजी की पूजा करे, हे राजन्! यह शिवचतुर्थी का विधान है। माघ की शुक्ल चतुर्थी को शान्ता कहते हैं। इस दिन किये हुए स्नान, दान आदि कर्म हज़ारगुणे हो जाते हैं। इस चतुर्थी को उपवास कर गणेशजी का पूजनकरे और लवण, गुड़, शाक और गुड़ के अपूप ब्राह्मण को देवे और स्त्री भी अपने श्वशुर आदि पूज्यों को भोजन करावे। इस व्रत के करने से सब विघ्न दूर होते हैं और गणेशजी का अनुग्रह होता है। सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! अब हम सौभाग्य देनेवाली सुखा चतुर्थी का विधान कहते हैं। यह व्रत स्त्रियों को रूप, उत्तम हाव-भाव, और सौभाग्य देनेवाला है जो भौमवार करके युक्त शुक्ल चतुर्थी हो वही सुखा चतुर्थी कहाती है। पूर्वकाल में शिव पार्वती के मैथुन के समय रुधिर का बिन्दु गिरा, उसको भूमि ने अपने मुख में धारण किया, उसीसे भौम ग्रह उत्पन्न हुआ। भूमिपुत्र हाने से भौम कहाया और अंगों का देनेवाला है, अंगों का करनेवाला है और सौभाग्य देता है इससे इसको अंगारक कहते हैं। भौमवार युक्त शुक्लचतुर्थी को उपवासकरे और भक्ति से गणेशजी का पूजन

कर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प आदि से भौम की पूजा करे, उस पुरुष अथवा स्त्री को सब सम्पत्ति, रूप और सौभाग्य मिलता है। पहिले संकल्प कर स्नान करे, फिर हाथ में शुद्ध मृत्तिका लेकर यह मंत्र पढ़े (इह त्वं वन्दिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरिता किल। तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसंचितम्)। फिर मृत्तिका को सूर्य के सम्मुख कर, अपने शिर आदि सब अंगों में लगा स्नान करे और जलके बीच खड़ा होकर मन्त्र पढ़ (त्वमापो योनिः सर्वेषां देवदानवरक्षसाम्। स्वेदाण्डजोद्भिदानां च रसानां पतये नमः) और यह ध्यान करे कि सब तीर्थों में, नदियों में, सरोवरों में, झरनों में और तड़ागों में मैंने स्नान किया। यह ध्यान करता हुआ गोते लगाकर स्नान करे। फिर घर में आकर मंत्र पढ़ दूर्वा, पीपल वृत्त, शमीवृक्ष और गौ का स्पर्श करे। इनके स्पर्श के मंत्र ये हैं (त्वन्दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वन्दिता। वन्दिता हर तत्सर्वं यन्मया दुरितं कृतम्) यह दूर्वा का मंत्र है। (पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपि प्राथिता श्रुतौ। शमी शमय मे पापं यन्मया चिरसंचितम्) यह शमी का मंत्र है। (नेत्रस्पन्दं भुजस्पन्दं दुःस्वप्नन्दुर्विचिन्तनम्। शत्रूणां च समुद्योगमश्वत्थ शमयस्व मे) यह पीपल के वृक्ष को स्पर्श करने का मंत्र है। (सर्वदेवमयी देवी मुनिभिस्तु सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दे त्वां वन्दिता पापहा भव) पहिले गौ की प्रदक्षिणा करे, फिर मंत्र को पढ़ स्पर्श करे। जो गौ की प्रदक्षिणा करे, उसको सम्पूर्ण पृथ्वी की प्रदक्षिणा का फल होता है। इस प्रकार इनको स्पर्श कर हाथ, पैर धो आसन पर बैठ आचमन कर खदिर के समिधाओं से अग्नि प्रज्वलित कर घृत, दुग्ध, यव, तिल और भाँति-भाँति के भक्ष्य पदार्थों से इन मंत्रों से हवन करे (ॐ शर्वाय स्वाहा ॐ शर्वपुत्राय स्वाहा ॐ क्षोण्युत्सङ्गभवाय स्वाहा ॐ कुजाय स्वाहा ॐ ललिताङ्गाय स्वाहा ॐ ग्रहेशाय

स्वाहा ॐ अङ्गारकाय स्वाहा)। इन प्रत्येक मंत्रों से एक सौ आठ-आठ आहुति देवे अथवा अपनी शक्ति के अनुसार देवे फिर सुवर्ण, चाँदी, चन्दन अथवा देवदारु के काष्ठ की मूर्ति बना कर सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में स्थापन कर रक्त चन्दन, पुष्प, नैवेद्य आदि से पूजा करे, अथवा ताम्र, मृत्तिका अथवा काँस के पात्र में मूर्ति लिखकर पूजन करे। अग्निर्मूर्द्धा इत्यादि वैदिक मन्त्र से सब उपचार समर्पण करे। पीछे वह मूर्ति ब्राह्मण को देवे, और घी, दूध, चावल, गेहूँ, गुड़ आदि वस्तु भी ब्राह्मण को देवे। इसमें वित्तशाठ्य अर्थात् खर्च का संकोच न करे, वित्तशाठ्य करने से फल नहीं होता। इस प्रकार चार भौमयुक्त चतुर्थी व्रत करे। फिर दश तोले सुवर्ण की अथवा पाँच तोले की मंगल और गणपति की मूर्ति बनाकर बीस पल अथवा दश पल के सोने, चाँदी, ताम्र आदि के पात्र में स्थापन करे, और इसी प्रकार शिव-पार्वती की मूर्ति बनाके पात्र में स्थापन करे तथा उत्तम वस्त्र उढ़ावे और सब उपचारों से पूजन करके दक्षिणा सहित सत्पात्र ब्राह्मण को देवे, तब व्रत का सम्पूर्ण फल हो। हे राजन्! यह उत्तम तिथि हमने कही, इस दिन जो व्रत करे वह चन्द्र के तुल्य कांति, रवि का-सा तेज और वायु के समान बल पावे और अन्त में गणपति के अनुग्रह से शिवलोक में निवास करे। इस तिथि के माहात्म्य को भी जो पुरुष भक्ति से पढ़ें अथवा सुनें, वे भी ब्रह्महत्या आदि पापों से छूट उत्तम लोक पावें और व्रत करनेवाले स्त्री-पुरुषों को जो फल होता है उसका तो कहां तक वर्णन करें।

तीसवां अध्याय।

पंचमी कल्प का प्रारम्भ, नागों को माता से शाप होने की कथा, नागपंचमी का विधान और व्रत का फल।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक! अब हम पंचमी

का कल्प कहते हैं। पंचमी तिथि नागों को आनंद देनेवाली है। इस दिन नागों के लोक में बड़ा उत्सव होता है। पंचमी को जो पुरुष दुग्ध से नागों को स्नान करावे, उसके कुल में वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनंजय बड़े-बड़े नाग अभय देते हैं अर्थात् उनके कुल में सर्प का भय नहीं होता। माता के शाप से नाग दग्ध होने लगते थे इसलिये अब भी वह दाह की व्यथा दूर होने के अर्थ गौ के दूध से नागों को स्नान कराते हैं। यह सुन राजा ने पूछा कि महाराज, माता ने नागों को क्यों शाप दिया और फिर क्योंकर बचे यह आप वर्णन करें। राजा का यह प्रश्न सुन सुमन्तु कहने लगे कि हे राजन्! देवताओं ने समुद्र मथन किया, उससे अति श्वेत वर्ण उच्चैःश्रवा नाम घोड़ा निकला, उसको देख नागों की माता कद्रू ने अपनी सपत्नी विनता से कहा कि यह घोड़ा श्वेत वर्ण है, परन्तु इसके बाल काले देख पड़ते हैं। तब विनता बोली कि यह अश्व सर्व श्वेत है, न तो काला है, न लाल। यह सुन कद्रू ने कहा कि मेरे साथ प्रण कर कि जो मैं कृष्ण वर्ण के बाल इस अश्व के दिखा दूँ तो तू मेरी दासी हो जा, यदि न दिखा सकूँ तो मैं तेरी दासी हूँ। विनता ने भी यह प्रण अंगीकार किया और दोनों अपने-अपने स्थान को गईं। कद्रू ने अपने पुत्र नागों को बुलाकर सब वृत्तान्त सुनाया और कहा कि हे पुत्रो! तुम बाल के तुल्य सूक्ष्म बनकर उच्चैःश्रवा के शरीर में चिपट जाओ, जिससे वह कृष्ण वर्ण देख पड़े, तब मैं अपनी सपत्नी विनता को जीत दासी बनाऊँ। माता का यह वचन सुन नागों ने कहा कि हे माता! ऐसा छल हम नहीं कर सकते, चाहे तू जीत, चाहे हार क्योंकि छल से जीतने में अति अधर्म है। पुत्रों का वचन सुन कद्रू कोपकर बोली कि तुम मेरी आज्ञा नहीं मानते, इसलिये मैं तुमको शाप देती हूँ

कि पाण्डवों के वंश में उत्पन्न राजा जनमेजय सर्पसत्र करेगा, उस यज्ञ में तुम अग्नि में दग्ध हो जाओगे। इतना कह कद्रू चुप हो रही। नाग भी माता का शाप पाकर बहुत घबराये और वासुकि को साथ ले सब ब्रह्माजी के समीप आये और अपना वृत्तान्त ब्रह्माजी से कहा। तब ब्रह्माजी बोले कि हे वासुकि! चिन्ता मत करो, यायावरवंश में बड़ा तपस्वी जरत्कारु नामक ब्राह्मण उत्पन्न होगा, उसको तुम जरत्कारु नाम अपनी बहिन विवाह देना और उसका वचन मानना। उसके आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न होगा, वह जनमेजय के सर्पयज्ञ को रोकेगा और तुम्हारी रक्षा करेगा। ब्रह्माजी का वचन सुन सब वासुकि आदि नाग अति प्रसन्न हो ब्रह्माजी को प्रणाम कर अपने धाम को आये। इतनी कथा सुनाकर सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! वह यज्ञ तेरे पिता राजा जनमेजय ने किया। यह बात श्रीकृष्णभगवान् ने भी युधिष्ठिर से कह दी थी कि हे राजन्! आज से सौ वर्ष के अनन्तर सर्पयज्ञ होगा, जिसमें बड़े विषधर और दुष्ट नाग क्षय को प्राप्त होंगे। जब करोड़ों नाग अग्नि में दग्ध होने लगेंगे, तब आस्तीक नाम ब्राह्मण नागों की रक्षा करेगा। ब्रह्माजी ने पंचमी के दिन नागों को वर दिया और आस्तीक ने पंचमी को ही नागों की रक्षा की इसलिये पंचमी नागों को अति प्रिय हुई। पंचमी के दिन नागों की पूजाकर यह प्रार्थना करे कि जो नाग पृथ्वी में, आकाश में, स्वर्ग में, सूर्य की किरणों में, नदियों में, सरोवरों में और वापी, कूप, तालाब आदि में रहते हैं, वे सब हमारे ऊपर प्रसन्न हों। उनको हम वारंवार नमस्कार करते हैं। इस प्रकार नागों को विसर्जन कर ब्राह्मणों को भोजन करा स्वयं अपने कुटुम्ब के साथ भोजन करे। पहिले मीठा भोजन करे, पीछे जिस पर रुचि हो उसे खावे। इस प्रकार जो नियम

से नागों का पूजन करे, वह उत्तम विमान में बैठ नागलोक में जाकर अप्सराओं के साथ विहार करे और बहुत काल के अनन्तर भूमि पर आकर पाँच जन्म तक बड़ा पराक्रमी, आरोग्य और प्रतापी राजा हो। इतनी कथा सुन राजाने पूछा कि महाराज, जो पुरुष सर्प के काटने से मृत्युवश हो वह किस गति को प्राप्त होताहै, और जिसके माता, पिता, भाई, पुत्र आदि सर्प के काटने से मरे हों, वह उनके उद्धार के लिये कौन व्रत, दान अथवा उपवास करे। यह आप कृपाकर वर्णन करें। राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! सर्प के काटे से जो मरे, वह निर्विष सर्प होता है। और जिस के माता, पिता आदि सर्प के काटे से मृतक हुए हों, वह उनकी सद्गति होने के अर्थ भाद्र-शुक्ल पंचमी का उपवास कर नागों का पूजन करे। इस प्रकार बारह महीने शुक्ल पंचमी को व्रत करे। और सुवर्ण अथवा चाँदी का पाँच फण-युक्त नाग बनाकर वीर, कमल, चमेली आदि पुष्प, धूप, दीप और अनेक प्रकार के नैवेद्यों से उनका पूजन कर घृत, खीर और लड्डू ब्राह्मणों को भोजन करावे। अनन्त, वासुकि, शंख, पद्म, कम्बल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक और पिंगल इन बारह नागों का बारह महीनों में क्रम से पूजन करे। चतुर्थी के दिन एक बार भोजन कर और पंचमी को व्रत कर नागपूजा करे, और रात्रिको भोजन करे। अन्त में सुवर्ण का नाग और एक उत्तम गौ ब्राह्मण को देकर ब्राह्मण भोजन करावे। यह उद्यापन की विधि है। हे राजन्! तेरे पिता ने भी अपने पिता परीक्षित के उद्धार के लिये यह व्रत किया और सुवर्ण का बड़ा भारी नाग और बहुत सी गौ ब्राह्मणों को दी, तब पिता से अनृण हुआ और परीक्षित भी उत्तम लोकों में प्राप्त हुआ। हे राजन्! जो पुरुष इस कथा को भक्ति से श्रवण करे उस के कुल में कभी सर्प

का भय नहीं होता है, और इस पंचमी व्रत के करने से उत्तम लोक की प्राप्ति होती है।

इकतीसवाँ अध्याय।

सर्पों की उत्पत्ति व शरीर, दाढ़ और अवस्था तथा काटने के कारण व काटे हुए दंश के लक्षण।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि! सर्पों के कितने रूप हैं, क्या लक्षण हैं, कै रंग हैं और क्या जाति है? यह आप वर्णन करें। यह सुन सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! हिमालय पर्वत में कश्यप और गौतम का संवाद जो हुआ था, वह हम वर्णन करते हैं। एक समय कश्यप मुनि अग्निहोत्र कर स्वस्थ-चित्त हो हिमालय पर्वत में अपने आश्रम के बीच बैठे थे, उस समय गौतम ने प्रणाम कर विनय से पूछा कि महाराज, सर्पों के लक्षण, जाति, वर्ण और स्वभाव आप वर्णन करें, और सर्प किस प्रकार उत्पन्न होता है, विष कैसे छोड़ता है, विष के वेग कितने हैं, विषनाड़ी कितनी हैं, सर्प की दंष्ट्रा कै प्रकार की हैं, सर्पिणी को गर्भ कब होता है और प्रसव कितने दिन के अनन्तर होता है; स्त्री, पुरुष, नपुंसक सर्प का क्या लक्षण है और ये क्योंकर काटते हैं? यह सब भेद आप कृपा कर मुझे बतावें। गौतम का यह वचन सुन कश्यप ने कहा कि हम सर्पों का सब भेद कहते हैं चित्त लगा कर श्रवण करो। ज्येष्ठ और आषाढ़ में नागों को मद होता है, तभी वे मैथुन करते हैं। वर्षा ऋतु के चार महीने सर्पिणी गर्भ धारती है और कार्त्तिक में दो सौ चालीस अण्डे देती है, और उनको नित्य आपही खाने लगती है, अन्त में दया से, थोड़े से छोड़ती है। उनमें जो अण्डे सुवर्ण की भाँति चमकते हों, उनमें पुरुष ककोड़ा के फल के तुल्य हरे और लम्बी रेखाओं से युक्त अण्डों में स्त्री और शिरीष पुष्प के समान रंगवाले अण्डों के बीच नंपुसक सर्प होते हैं। उन अण्डों

को सर्पिणी छः महीने तक सेती है। पीछे अण्डे फूटकर उनसे सर्प निकलते हैं और वे बच्चे अपनी माता से स्नेह करते हैं। अण्डे के बाहर निकलने से सात दिन में उन बच्चों का कृष्ण वर्ण हो जाता है। सर्प का आयुष् एक सौ बीस वर्ष का है और मृत्यु आठ प्रकार का है। मयूर से, मनुष्य से, चकोर पक्षी से, बिल्ली से, नकुल से, शूकर से, वृश्चिक से, और गौ आदि पशु के खुर से बचे तो एक सौ बीस वर्ष जीवे। सात दिन के अनन्तर दंष्ट्रा ऊगती हैं और इक्कीस दिन में विष हो जाता है। परन्तु सर्प दंश करने के समय विष त्याग देता है, फिर और विष इकट्ठा हो जाता है। सर्पिणी के साथ जो फिरे, वह बाल सर्प कहाता है। पच्चीस दिन में वह बच्चा प्राण हरने में समर्थ हो जाता है छः महीने में कञ्चुक त्यागता है। दोसौ बीस पैर सर्प के होते हैं; परन्तु गौ के रोम के तुल्य अति सूक्ष्म होते हैं, इसी से देख नहीं पड़ते। चलने के समय निकल आते हैं, नहीं तो भीतर प्रविष्ट रहते हैं। इनके शरीर में दो सौ बीस पसली और दो सौ बीस ही सन्धि होती हैं। अकाल में अर्थात् अपने समय विना जो सर्प उत्पन्न होते हैं, उनमें विष न्यून होता है और सत्तर वर्ष से अधिक जीते भी नहीं। जिनके दाँत लाल, पीले, नीले हों और विष का वेग भी मन्द हो, वे अल्पायुष् होते हैं, और बहुत भीरु अर्थात् डरपोक होते हैं। सर्पों के एक मुख, दो जीभ, बत्तीस दाँत और विष से भरी हुई चार दाढ़ होती हैं। उनके नाम मकरी, कराली, कालरात्रि और यमदूती हैं, और क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और यम इन चारों के देवता हैं। यमदूती नाम दाढ़ सबसे छोटी होती है, इससे जिसको सर्प काटे, वह तत्क्षण मर जाय। मंत्र, यंत्र, ओषधि आदि इस पर कुछ भी नहीं चलता। मकरी दाढ़ का चिह्न शस्त्र का सा होता है। कराली काकपद के तुल्य, कालरात्रि टकार अक्षर के सदृश और यमदूती कूप के समान होती है। ये चारों क्रम

से एक, दो, तीन और चार महीने में उत्पन्न होती हैं, और क्रम से वात, पित्त, कफ और सन्निपात इनमें होता है। गुड़युक्त भात कषाय, रसयुक्त अन्न, कटु पदार्थ और सन्निपात में हित वस्तु क्रम से इनके भोजन हैं। श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण इन चार दाढ़ों के रङ्ग हैं, और क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार इनके वर्ण हैं। सर्पों की दाढ़ों में सदा विष नहीं रहता। विष के रहने का स्थान सर्प के दाहिने नेत्र के समीप है। सर्प जब क्रोध करता है, तब विष नाड़ियों के द्वारा दाढ़ में पहुँच जाता है। आठ कारणों से सर्प काटता है। दबने से, पूर्व वैर से, भय से, मद से, क्षुधा से, विष का वेग होने से, सन्तान की रक्षा के लिये और काल की प्रेरणा से। जो सर्प काटते ही पेट की ओर उलटा हो जाय और दाढ़ टेढ़ी हो जाय, उसको दबा हुआ जानो। जिसके काटने से बहुत गहरा घाव हो जाय, उसको वैर से काटा जानो। एक दाढ़ का चिह्न हो, वह भी भलीभाँति न देख पड़े तो भय से। रेखा की भाँति दाढ़ लगे तो मद से। दो दाढ़ लगें और बड़ा घाव हो तो क्षुधा से। दो दाढ़ लगें और घाव में रुधिर भर जाय तो विष के वेग से। दो दाढ़ लगें और गहरा घाव न हो तो सन्तान की रक्षा के लिये और काकपद की भाँति तीन दाढ़ गहरी लगें अथवा चार दाढ़ लगें, वह काल की प्रेरणा से, काटता है। उसका कुछ उपाय नहीं, असाध्य होता है। दष्ट, दंष्टानुपीत और दंष्ट्रोद्धृत ये तीन काटने के भेद हैं। सर्प काटे और ग्रीवा झुके, उसको दष्ट कहते हैं। काटकर पान करे, उसको दष्टानुपीत कहते हैं। इसमें तिहाई विष चढ़ता है, और काटकर सब विष उगिल देवे और आप निर्विष हो उलट जाय अर्थात् पीठ के बल उलटा हो और उसका पेट देख पड़े, उस दंश को दंष्ट्रोद्धृत कहते हैं।

बत्तीसवाँ अध्याय ।

कालसर्प से डसे हुए पुरुष व दूत के लक्षण, नागों का उदय सर्प काटने की तिथि व नक्षत्र का विचार ।

कश्यप मुनि कहते हैं कि हे गौतम ! अब हम कालसर्प से काटे हुए पुरुष का लक्षण कहते हैं । जिसको कालसर्प काटे, उसकी जिह्वा भंग हो जाय, हृदय में शूल हो, नेत्रों से देख न पड़े, दाँत और शरीर कृष्ण वर्ण हो जाय, विष्ठा और मूत्र निकल जाय, कन्धे, कमर और ग्रीवा टूट पड़ें, मुख नीचे को हो जाय, आँखें ऊपर को चढ़ जायँ, शरीर में दाह और कम्प हो, शस्त्र के काटने से भी शरीर में रुधिर न निकले, बेत मारने से भी देह में रेखा न पड़े और काटने का स्थान पके जम्बूफल की भाँति, नीलवर्ण, सूजा हुआ, रुधिर से भरा और काकपद के तुल्य हो, हिचकी चले, कण्ठ रुक जाय, श्वास बढ़े, शरीर की त्वचा पाण्डु वर्ण हो जाय उसको कालसर्प का काटा जानो । घाव सूज जाय, नील वर्ण हो, पसीना बहुत आवे, अनुनासिक अर्थात् नाक से बोले, ओष्ठ लटक पड़े, हड़फूटन हो, हृदय काँपे तो कालसर्प का डसा जानो । दाँत पीसे, नेत्र फिर जायँ, लम्बे श्वास लेवे, ग्रीवा लटक पड़े, नाभि फरके तो कालसर्प का काटा जानो । दर्पण अथवा जल में अपनी छाया न देखे, सूर्य तेज से हीन देख पड़ें, नेत्र लाल हों, पीड़ा से सब शरीर काँपे, उसको कालदष्ट जानो, वह शीघ्र ही मृत्युवश हो । अष्टमी, नवमी, कृष्ण चतुर्दशी और नागपञ्चमी के दिन जिसको सर्प काटे उसके जीने में सन्देह है । आर्द्रा, श्लेषा, मघा, भरणी, कृत्तिका, विशाखा, तीनों पूर्वा, मूल, स्वाती और शतभिष नक्षत्र में सर्प का काटा नहीं जीता और इन नक्षत्रों में जो विष खाय, वह भी तत्काल मरे । पूर्वोक्त तिथि और नक्षत्र दोनों मिल जायँ और अग्निहोत्रशाला में, श्मशान में और सूखे वृक्ष के नीचे जिसको सर्प काटे, वह न जीवे । मनुष्यों के

शरीर में एक सौ आठ मर्म हैं, उनमें भी शंख अर्थात् ललाट की अस्थि, नेत्र, भ्रू, मध्य वस्ति, अण्डकोशों का मध्य, कुक्ष, कन्धे, हृदय, तालु, ठोड़ी और गुदा ये मर्मस्थान मुख्य हैं। इनमें सर्प काटे अथवा चोट लगे तो मनुष्य कभी न जीवे। सर्प काटने के अनन्तर वैद्य को जो बुलाने जाय, उस दूत के लक्षण कहते हैं। उत्तम वर्ण का हीन वर्ण दूत और हीन वर्ण का उत्तम वर्ण दूत अच्छा नहीं होता। वह दूत हाथ में दण्ड लिये हो, दो दूत हों, कृष्ण अथवा रक्त वस्त्र पहिने हो, शिर पर एक वस्त्र लपटे हो, शरीर में तेल लगाये हो, केश खोले हो, घोर शब्द करता हुआ आवे और हाथ पैर पीटे। ऐसा दूत बहुत बुरा होता है। जिस रोगी का दूत इन लक्षणों से युक्त वैद्य के समीप आवे, वह रोगी अवश्य मरे। अब नागों का उदय कहते हैं, जो शिवजी ने कहा है। अनन्त नाग सूर्य हैं, वासुकि चन्द्रमा, तक्षक भौम, कर्कोटक बुध, पद्म बृहस्पति, महापद्म शुक्र, कुलिक और शंखपाल ये दोनों शनैश्चर का रूप हैं। रविवार के दिन दशवाँ और चौदहवाँ यामार्द्ध, सोमवार को आठवाँ, बारहवाँ; भौमवार को छठवाँ, दशवाँ; बुध को चौथा, आठवाँ, बृहस्पति को दूसरा, छठवाँ; शुक्र को चौथा, आठवाँ, दशवाँ और शनिवार को पहिला, सोलहवाँ, दूसरा और बारहवाँ प्रहरार्द्ध निंद्य है। उपर्युक्त प्रहरार्द्धों में जिस मनुष्य के सर्प काटता है उसका शरीरान्त हो जाता है।

तेंतीसवाँ अध्याय।

विष के फैलने व सात वेग व सात धातुओं में प्राप्त भये विष के अलग-अलग लक्षण व चिकित्सा।

कश्यपजी कहते हैं कि हे गौतम! जो जाने कि यमदूती नाम दाढ़ लगी है तो उसकी चिकित्सा न करे। दिन में और रात्रि में दूसरा और सोलहवाँ प्रहरार्द्ध सर्प का है, उसमें काटे तो चिकित्सा न करे। बाल के अग्र से जितना जल उठ सकता है, उतना

विष सर्प डालता है। वह सब देह में फैल जाता है। जितनी देर में भुजा को पसारे अथवा समेटे, इतने काल में काटने के अनन्तर विष मस्तक में पहुँच जाता है। रुधिर में पहुँचने से विष की बहुत वृद्धि होती है, जैसे जल में तैल की बूँद फैल जाय। त्वचा में पहुँच विष दूना होता है, रक्त में चौगुना, पित्त में आठगुणा, कफ में सोलहगुणा, वात में तीसगुणा, मज्जा में साठगुणा और प्राणों में पहुँच वही विष अनन्तगुणा हो। सब शरीर के स्रोत रोक लेता है, तब वह जीव श्वास नहीं लेता और मृत्युवश हो जाता है। शरीर, पृथ्वी आदि पाँच भूतों से बना है। मृत्यु के अनन्तर ये भूत अलग-अलग हो जाते हैं, और अपने-अपने में लीन हो जाते हैं। विष की चिकित्सा बहुत शीघ्र करनी चाहिए, विलम्ब होनेसे रोगी असाध्य हो जाता है। जैसा जंगम विष अर्थात् सर्पादि जीवों का विष प्राण हरनेवाला है, ऐसा ही स्थावर विष संखिया आदि भी है। विष के पहिले वेग में रोमाञ्च होता है, दूसरे वेग में पसीना आता है, तीसरे में शरीर काँपता है, चौथे में भीतर से शरीर के स्रोत रुकने लगते हैं, पाँचवें में हिचकी चलती है, छठे में ग्रीवा लटक जाती है और सातवें वेग में प्राण चले जाते हैं। इन सात वेगों में शरीर की सातों धातुओं में विष व्याप्त हो जाता है। अब इन धातुओं में पहुँचे हुए विष के अलग-अलग लक्षण कहते हैं। आँखों के आगे अँधेरा हो और खड़ा न रह सके तो जाने कि विष त्वचा में है, तब आक की जड़, अपामार्ग, तगर और प्रियंगु इनको जल में घोटकर पिला देवे तो विष की बाधा शान्त हो जाय। त्वचा से रुधिर में विष पहुँचता है, तब शरीर में दाह और मूर्च्छा होती है। शीतल पदार्थ अच्छे लगते हैं। उशीर अर्थात् खस, चन्दन, कूट, तगर, नीलोफर, सिंदुवार की जड़, धतूरे की जड़, हींग और मिर्च इनको पीस कर देवे। इससे शान्त न हो तो कटेली, इन्द्रायण की जड़, सर्पगन्धा और वृश्चिकाली इनको

घृत में पीस देवे। इससे भी शान्ति न हो तो सिन्दुवार और हींग की नास देवे, और यही पिलावे। इसी का अंजन और लेपन करे तो रक्त में प्राप्त विष की बाधा निवृत्त हो। रक्त से पित्त में विष पहुँचता है, तब पुरुष उठ-उठकर गिरता है। शरीर पीला हो जाता है। सब दिशाएँ पीतवर्ण देख पड़ती हैं। मूर्च्छा और दाह होता है। तब पीपल, शहद, महुआ, घी, तूँबे की जड़ और इन्द्रायण की जड़, इन सबको पीस नस्य, लेपन और अंजन करे तो विष का वेग निवृत्त हो। पित्त से विष कफ में प्रवेश करता है, तब शरीर जकड़ जाता है। श्वास भली भाँति नहीं आता। कण्ठ में घर्घर शब्द होता है। मुख से लार गिरती है। यह लक्षण देख पीपल, मिर्च, शुंठी, लोध को, शहद की अर्थात् तुरई और मधुसार इनको गोमूत्र में पीस नस्य, लेपन, अंजन करे, और यही पिलावे तो विष का वेग शान्त हो। कफ से वात में विष प्रवेश करता है; तब पेट अफर जाता है। कोई पदार्थ देख नहीं पड़ता है और दृष्टि भङ्ग हो जाती है। यह लक्षण हो तो अरलू की जड़, खिरनी, गजपीपल, भारंगी, पीपल, देवदारु, मधुसार, सिन्दुवार और हींग इन सबको पीस गोली बनावे। वह गोली खिलावे और नस्य, लेपन, अञ्जन आदि भी इसी से करे। यह गोली सब विषों को हरती है। ब्रह्माजी ने कही है, वात से मज्जा में विष पहुँचता है, तब दृष्टि नष्ट हो जाती है, और सब अङ्ग बेसुध हो गिर जाते हैं। यह लक्षण हो तो घी, शहद, खाँड़, नख, चन्दन और खस इन सबको घोटकर पिलावे, और नस्य आदि भी देवे तो विष का वेग निवृत्त हो। मज्जा से विष मर्मस्थानों में पहुँचता है, तब सब इन्द्रिय नष्ट हो जायँ। काटने से रुधिर न निकले, केश उखाड़ने से भी पीड़ा न हो, उसको मृत्यु के वश हुआ जाने। ऐसे लक्षणों से युक्त मनुष्य की साधारण वैद्य चिकित्सा नहीं कर सकते हैं। जिनके पास सिद्ध

मन्त्र और औषधियाँ हों, वे वैद्य ऐसे रोगी का उपाय करने में समर्थ होते हैं। इसके लिये साक्षात् रुद्र ने एक औषधि कही है, मयूर, नकुल और मार्जार इन तीनों का पित्ता, धनाली की जड़, केसर, भार्गवी, कूट, काशमर्द की छाल, उत्पल, कुमुद और कमल इन तीनों के केसर, इन सबके समान भाग लेकर गोमूत्र में पीस नस्य आदि देवे और खाने को भी देवे तो कालसर्प से डसा हुआ भी अतिशीघ्र निर्विष हो। यह औषधि मृतसंजीवनी है अर्थात् मरे को भी जिला देती है, इसलिये इसे अवश्य देनी चाहिए।

चौंतीसवाँ अध्याय।

सर्पों की भिन्न-भिन्न जातियाँ उनके काटे हुए लक्षण और नागपंचमी पूजनफल व विधान।

गौतम पूछते हैं कि हे कश्यपजी! सर्प, सर्पिणी, बालसर्प, सूतिका, नपुंसक और व्यन्तर नाम सर्प के काटे में क्या भेद होता है, इनके अलग अलग-लक्षण कहिए। यह सुन कश्यप मुनि कहने लगे कि हे गौमत! यह सब हम संक्षेप से कहते हैं, और नागों के रूप का लक्षण भी वर्णन करते हैं। सर्प काटे तो ऊपर को दृष्टि हो जाय, सर्पिणी के काटने से नीचे को, बालसर्प के काटे से दाहिनी ओर को और बालसर्पिणी के डसने से बाईं ओर दृष्टि झुक जाती है। गर्भिणी के काटे से पसीना आता है। प्रसूती काटे तो रोमाञ्च और कम्प होता है। नपुंसक के काटने से शरीर टूटता है। सर्प दिन में, सर्पिणी रात्रि में और नपुंसक संध्या समय अधिक विषयुक्त होता है। अंधकार में, जल में, वन में तथा सोते हुए, मत्त हुए को यदि सर्प काटता है तो वह नहीं दिखाई पड़ता और दिखाई भी पड़ता है, तो उसकी जाति नहीं पहिचानी जा सकती, और वैद्य विना पूर्वोक्त लक्षण जाने हुए चिकित्सा नहीं कर सकता है। चार प्रकार के सर्प होते हैं, दर्वीकर, मंडली, राजिल और व्यंतर। इनमें दर्वीकर वातस्वभाव,

मंडली पित्तस्वभाव, राजिल कफस्वभाव और व्यंतर सन्निपात-स्वभाव है अर्थात् उसमें वात, पित्त और कफ तीनों अधिक हैं। दर्वीकर में रुधिर कृष्ण वर्ण और स्वल्प होता है, मंडली में बहुत गाढ़ा और रक्त वर्ण रुधिर निकलता है और राजिल तथा व्यंतर में बहुत गाढ़ा थोड़ा सा रुधिर होता है। सर्पों की इन चार जातियों के अतिरिक्त पाँचवीं कोई जाति नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों के सर्प होते हैं। ब्राह्मण सर्प काटे तो शरीर में दाह हो, मूर्च्छा हो, मुख काला पड़ जाय, ग्रीवा स्तंभ हो जाय और संज्ञा जाती रहे। ये लक्षण हों तो अश्वगंधा, अपामार्ग, सिंदुवार और हींग को घृत में पीस नस्य देवे और पिलावे तो विष निवृत्त हो। क्षत्रिय सर्प काटे तो शरीर काँपे, मूर्च्छा हो, ऊपर को दृष्टि हो जाय और पीड़ा हो। ये लक्षण हों तो आक की जड़, अपामार्ग, इन्द्रायण और प्रियंगु को घी में पीस पिलावे, और इसी का नस्य देव तो विष की बाधा मिटे। वैश्य सर्प डसे तो कफ बहुत आवे, मुख से लार बहे, मूर्च्छा हो और संज्ञा जाती रहे। ये लक्षण हों तो अश्वगन्धा, गृहधूम, गूगुल, शिरीष, अर्क, पलाश और श्वेत फूलवली गिरिकर्णिका इन सबको गोमूत्र में पीस नस्य देवे, और यही पिलावे तो वैश्य सर्प के विष की बाधा तत्क्षण दूर हो। शूद्र सर्प जिसको काटे उसको शीत लगे, काँपे, ज्वर हो और सब अङ्ग चुलचुलावे। ये लक्षण हों तो कमल, कमल के केसर, लोध, शहद मधुसार और श्वेत गिरिकर्णी इनको समान भाग लेकर शीतल जल से पीस नस्य आदि देवे, और पान करावे तो विष का वेग शान्त हो। ब्राह्मण सर्प मध्याह्न के पहिले, क्षत्रिय मध्याह्न में, वैश्य मध्याह्न के पीछे और शूद्र जाति का सर्प संध्या में विचरता है। ब्राह्मण सर्प पुष्प भोजन करता है, क्षत्रिय मूषक, वैश्य मेंढक और शूद्र सर्प सब पदार्थ भक्षण करता है। ब्राह्मण सर्प आगे डसता है, क्षत्रिय दाहिने, वैश्य बायें और

शूद्र पीछे काटता है। मद के समय मैथुन की इच्छा से पीड़ित सर्प विष के बढ़ने से व्याकुल हो विना समय भी काटता है। ब्राह्मण सर्प में पुष्प के समान गन्ध होता है। क्षत्रिय में चन्दन का, वैश्य में घृत का और शूद्र में मत्स्य का सा गन्ध आता है। नदी, कूप, तालाब, झरने, बाग और पवित्र स्थानों में ब्राह्मण सर्प रहते हैं। ग्राम, नगर आदि के द्वार, चतुष्पथ, तोरण आदि स्थानों में क्षत्रिय; गोशाला, ऊषर, भस्म, घास आदि के ढेर और वृक्षों में वैश्य और अपवित्र स्थान, वन, शून्य घर, श्मशान आदि बुरे स्थानों में शूद्र सर्प निवास करते हैं। श्वेत, कपिल, अग्नि के समान तेजस्वी और सात्त्विक ब्राह्मण सर्प होते हैं। मूँगे के समान रक्त वर्ण अथवा सुवर्ण के तुल्य वर्ण, सूर्य के समान तेजवाले क्षत्रिय सर्प; अलसी अथवा बाण पुष्प के समान वर्ण, अनेक रेखाओं से युक्त वैश्य होते हैं और अंजन अथवा काक के समान कृष्ण वर्ण और धूम्र वर्ण शूद्र सर्प होते हैं। एक अंगुल अन्तर में दंश हो तो बालक सर्प का काटा जानो, दो अंगुल अन्तर हो तो तरुण का और ढाई अंगुल अन्तर हो तो वृद्ध सर्प का दंश पहिचानो। अनन्त सम्मुख देखता है, वासुकि बाईं ओर, तक्षक दाहिनी ओर और कर्कोटक की दृष्टि पिछली तरफ़ होती है। अनन्त, वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शङ्खपाल और कुलिक ये आठों नाग पूर्व आदि आठ दिशाओं के स्वामी हैं। पद्म, उत्पल, स्वस्तिक, त्रिशूल, पद्म, शूल, छत्र और अर्द्धचन्द्र ये आठों इनके आयुध हैं। अनन्त और कुलिक ये दो ब्राह्मण हैं। शङ्ख और वासुकि क्षत्रिय हैं। महापद्म और तक्षक वैश्य हैं। पद्म और कर्कोटक शूद्र हैं। अनन्त और कुलिक शुक्ल वर्ण और ब्रह्मा से उत्पन्न हैं। वासुकि और शङ्खपाल रक्त वर्ण और अग्नि से उत्पन्न हैं। तक्षक और महापद्म पीत वर्ण और इन्द्र से उत्पन्न हैं।

पद्म और कर्कोटक कृष्ण वर्ण और यम से उत्पन्न हुए हैं। दर्वीकरों के सोलह भेद हैं, सात भेद मण्डली सर्पों के हैं; दश भेद राजिल सर्पों के हैं और व्यन्तर चौंसठ भेद के हैं। वराहकर्णी, गजपीपल, गांधारिका, पीपल, देवदारु, मधूकसार, सिन्दुवार और हींग इनको सम भाग ले गोमूत्र में पीस इनकी गोली बनाके सदा अपने समीप रक्खे। इतनी कथा सुनाकर सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! समस्त सर्पों के लक्षण और चिकित्सा कश्यप मुनि ने गौतम को उपदेशरूप में बतलाये। सदा भक्ति से नागों की पूजा करे, और पंचमी को विशेषकर दुग्ध, खीर आदि से पूजे। श्रावण शुक्ल पंचमी को द्वार के दोनों ओर गोबर से नाग बना दही, दूध, दूर्वा, पुष्प, कुशा, गन्ध, अक्षत और अनेक प्रकार के नैवेद्यों से पूजन कर ब्राह्मण भोजन करावे। उस पुरुष के कुल में कभी सर्पभय नहीं होता। इसी प्रकार भाद्रपद की पंचमी को अनेक रंग के नाग लिखकर घी, पायस, दूध, पुष्प आदि से पूजन कर गूगुल का धूप देवे तो तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं, और उसके सात पीढ़ी तक सर्पभय नहीं होता। आश्विन की पंचमी को कुशा के नाग बना इन्द्राणी सहित उनका पूजन करे। दुग्ध, घृत और जल से स्नान कराकर दूध में रँधे हुए गेहूँ और भाँति-भाँति के भक्ष्य-भोज्य चढ़ावे। इस पंचमी को जो नागपूजा करे, उस पर वासुकि आदि नाग सन्तुष्ट होते हैं, और वह पुरुष नागलोक में बहुत काल सुख भोगता है। हे राजन्! यह पंचमी तिथि का कल्प हमने वर्णन किया है, जहाँ यह पढ़ा जाय वहाँ सर्पभय नहीं होता है। (ॐ कुरुकुल्लेहुंफट् स्वाहा) यह मंत्र भी सर्पभय निवृत्त करता है।

पैंतीसवाँ अध्याय।

षष्ठीकल्प का प्रारम्भ, पुष्पषष्ठी का विधान और फल, स्कंद प्रशंसा।

सुमंतु मुनि कहते हैं कि हे राजा! अब हम षष्ठीतिथि का

कल्प वर्णन करते हैं। जिसका राज्य छुट गया हो, वह षष्ठी का व्रत करे, और रात्रि को फल खावे तो वह अवश्य अपना राज्य पावे। यह तिथि स्वामिकार्त्तिकेय को बहुत प्रिय है। इसी तिथि को स्वामिकार्त्तिक देवसेना के स्वामी हुए हैं। इस तिथि को व्रत कर घृत, दही, जल और पुष्पों से स्वामिकार्त्तिक को दक्षिण की ओर मुख करके अर्घ्य देवे, और ब्राह्मण को अन्न देकर रात्रि को फल भोजन करे। व्रत के दिन शुक्ल वस्त्र पहिने, पवित्र और ब्रह्मचर्य से रहे। शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष की दोनों षष्ठियों को यह व्रत करे। वह स्कंद की अनुग्रह से सिद्धि, धृति, तुष्टि, राज्य, आयुष् और मुक्ति पाता है। जो पुरुष उपवास न कर सके, वह नक्तव्रत ही करे तब भी दोनों लोकों में उत्तम फल पाता है। इस व्रत के करनेवाले पुरुष को देवता भी नमस्कार करते हैं और वह इस लोक में आकर चक्रवर्ती राजा होता है। हे राजन्! जो पुरुष षष्ठीव्रत के फल को भक्ति से श्रवण ही करे, वह भी स्वामिकार्त्तिकेय की कृपा से भाँति-भाँति के उत्तम भोग, सिद्धि, तुष्टि, धृति और लक्ष्मी पाता है, और परलोक में उत्तम गति का अधिकारी होता है।

छत्तीसवाँ अध्याय।

जातिभेद का खण्डन।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि! स्वामिकार्त्तिक के जन्म को सुन हमको अति सन्देह होता है कि अनेकों से स्वामिकार्त्तिक की उत्पत्ति हुई और उनका माहात्म्य तथा प्रभाव अत्यन्त वर्णन किया है। इसमें जाति उत्तम है कि कर्म, आप मेरा यह सन्देह निवृत्त करें, और इन दोनों में जो श्रेष्ठ हो वह कहें। राजा का यह वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! यही बात मुनियों ने ब्रह्माजी से पूछी थी, जो ब्रह्माजी ने मुनियों से कही, वही हम आपको श्रवण कराते हैं। एक

समय ब्रह्माजी अपने लोक में सुख से बैठे थे। उस अवसर में सब ऋषि ब्रह्माजी के समीप गये, और प्रणाम कर कुशल-प्रश्न के अनन्तर पूछने लगे कि महाराज, विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए देख हमारे हृदय में परम सन्देह उत्पन्न हो रहा है। ब्राह्मणत्व क्या पदार्थ है ? जाति, वेदाध्ययन, देह और आत्मा के संस्कार, आचार, वैदिक कर्मों का करना इन सब में ब्राह्मणत्व का हेतु कौन सा है ? कदाचित् कहो कि जीव ही ब्राह्मण है तो वह संसार की क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, चांडाल, श्वान, शूकर आदि योनियों में घूमता है, फिर क्योंकर ब्राह्मण रह सकता है। जैसे गौओं के समूह में अश्व पृथक् पहिचाना जाता है, ऐसे मनुष्यों में ब्राह्मण को नहीं जान सकते। इस कारण ब्राह्मणत्व क्या वस्तु है ? यह आप कृपा कर वर्णन करें। ब्रह्माजी मुनियों का यह प्रश्न सुन कहने लगे कि हे मुनीश्वरो ! मनुजी की कही सप्तव्याध कथा सुनने से जीव में तो ब्राह्मणत्व सन्देह निवृत्त हो जाता है। दशार्ण देश में सात व्याध थे। वे सातों कालञ्जर पर्वत में मृग हुए। शरद्वीप में वे ही चक्रवाक, मानसरोवर में हंस और वे ही सातों कुरुक्षेत्र में वेद के पारगामी ब्राह्मण हुए। इस हेतु जीव को तो किसी प्रकार ब्राह्मण नहीं कह सकते, और जैसे गवय अर्थात् नीलगाय से गौ का भेद गल कम्बल करके होता है, ऐसा भी कोई चिह्न नहीं कि जो ब्राह्मण को और मनुष्यों से भेद करे, इससे जाति भी ब्राह्मण नहीं। गौ, महिषी, बकरी, भेड़, ऊँट, गधे, खच्चर, घोड़े, हाथी आदि की नौकरी करे; दूसरे का सेवक हो; बनिया, लुहार आदि कारीगर, नट आदि का काम करें; मांस, लशुन, पलाण्डु अर्थात् प्याज भक्षण करें; मद्य और ऊँटनी का दूध पीवें; मांस, लवण आदि रस और दूध बेचें; पुनर्भू अर्थात् जिस स्त्री का दो बार विवाह हुआ हो ; शूद्री, चाण्डाली, दासी आदि स्त्रियों

से संग करें; शूद्र का अन्न, प्रेत का अन्न, जन्म और मरण के अशौच का अन्न जो भोजन करें, देवता माता पिता गुरु आदि से जो मात्सर्य द्वेष और अहङ्कार करें इत्यादि और भी अनेक कारणों करके वेदवेदांग का पठन पाठन करनेवाले उत्तम कुल में उत्पन्न ब्राह्मण भी अपने ब्राह्मणत्व से हीन होते हैं, इसलिये ब्राह्मणत्व एक शरीर में स्थिर भी नहीं हो सकता। मनुजी ने भी यह कहा है कि मांस लवण लाक्षा दूध आदि पदार्थ बेचने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है। गौओं से अपना निर्वाह करे, खेती करे, नौकरी करे, नट वैश्य आदि का कर्म करे वह ब्राह्मण शूद्र के तुल्य होता है, इस प्रकार ब्राह्मण से शूद्र, और शूद्र से ब्राह्मण भी बन जाता है।

सैंतीसवाँ अध्याय।

जातिभेद का खण्डन।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! वेद पढ़ने से भी ब्राह्मण नहीं होता क्योंकि रावण आदि राक्षसों ने भी वेद पढ़ रक्खा था और भी शूद्र चण्डाल धीवर आदि कोई कोई छल से वेद पढ़ लेते हैं परन्तु ब्राह्मण नहीं हो सकते। कई शूद्र दूसरे देश में जाकर ब्राह्मण बन वेद पढ़ लेते हैं और उत्तम ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेते हैं अथवा वेद बिना पढ़े भी पञ्चगौड़ पञ्च द्राविड़ आदिकों में किसी प्रकार के ब्राह्मण बन सत्कुल में विवाह कर लेतेहैं, इसकारण वेद पढ़ने से भी ब्राह्मण की पहिचान नहीं हो सकती। शास्त्रकार यह कहते हैं कि आचारहीन को वेद पवित्र नहीं कर सकते, चाहे सब अङ्गों सहित भलीभाँति पढ़े हों। वेद पढ़ना तो ब्राह्मणों का शिल्प है, आचरण ही मुख्य है। कई शूद्र भी संध्योपासन आदि करते हैं, दण्ड मृगचर्म मेखला यज्ञोपवीत आदि धारण कर लेते हैं। उनको कोई निषेध नहीं कर सकता। अभिचार आदि कर्म शूद्र भी कर सकते हैं, तप सत्य आदि के

प्रभाव से देवता का अनुग्रह और मन्त्र-सिद्धि शूद्रों को भी होती है, शाप अनुग्रह का सामर्थ्य भी तप करने से शूद्रों में हो जाता है। ये सब बातें ब्राह्मण और शूद्रों में तुल्य हो सकती हैं। संस्कार भी ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं क्योंकि व्यास आदिकों के गर्भाधान सीमन्त आदि संस्कार किसने किये थे, शरीर भी सब मनुष्यों के तुल्य ही हैं प्रत्युत म्लेच्छ चौर नास्तिक आदि शरीर से पुष्ट और बलवान् होते हैं। देह, आत्मा, वचन, सुख, ऐश्वर्य, रोग, आज्ञा, वीर्य, आकृति, इन्द्रिय, व्यापार, आयुष्, दुर्बलता, पुष्टता, चंचलता, स्थिरता, बुद्धि, वैराग्य, धर्म, पराक्रम रूप औषध, गर्भ, देह की मलिनता, उज्ज्वलता, अस्थि, रोम, मांस, त्वचा, त्रिवर्ग में रुचि इत्यादि पदार्थ ब्राह्मण और शूद्र में तुल्य ही होते हैं इन बातों से शूद्र और ब्राह्मण का भेद देवता भी नहीं कर सकते, और ब्राह्मण चन्द्रकिरणों के समान श्वेत वर्ण नहीं हैं, क्षत्रिय टेसू के फूल की भाँति रक्तवर्ण नहीं, वैश्य हरिताल से पीले नहीं, और शूद्र कोयला से काले नहीं होते कि सबको अलग-अलग पहिचान लेवें। चलना-फिरना, बैठना, बोलना, सोना, सुख-दुःख सबको समान है, फिर मनुष्य चार प्रकार के क्योंकर हुए। एक पिता के चार पुत्र होवें, एक जाति के ही होते हैं। इसी प्रकार इस जगत् का पिता एक परमेश्वर है, फिर उसकी सन्तान में क्योंकर जातिभेद हो सकता है। जैसे एक वृक्ष के फल, रूप, स्वाद आदि करके तुल्य होते हैं इसी विधि परमेश्वररूप वृक्ष से उत्पन्न हुए मनुष्यरूप फल सब समान हैं। कौशिक, काश्यप, गौतम, कौडिन्य, मांडव्य, वशिष्ठ, आत्रेय, कौत्स, अंगिरा, गर्ग, मौद्गल्य, कात्यायन, भार्गव, भारद्वाज आदि गोत्र भी ब्राह्मणत्व का हेतु नहीं क्योंकि ये गोत्र और भी वर्णों में होते हैं। जो शरीर को ब्राह्मण कहो, तो पहिले यह कहो कि कोई एक अंग ब्राह्मण है

अथवा सम्पूर्ण शरीर। यदि एक अंग को ब्राह्मण मानो, तो वह अंग कट जाने से ब्राह्मणत्व जाता रहेगा, और यदि सम्पूर्ण शरीर को ब्राह्मण ठहराओ, तो मरने के अनन्तर उस शरीर का जो दाह करेगा वह ब्रह्महत्या का भागी होगा। जो कहो कि ब्राह्मण की कन्या के साथ जो विवाह करे वह ब्राह्मण होता है, तो वही ब्राह्मण जब क्षत्रिय की कन्या से विवाह करेगा, तब क्षत्रिय हो जायगा, क्योंकि ब्राह्मण को चारों वर्णों की कन्या से विवाह करना लिखा है। इसलिये जाति, देह, कर्म, वेदाध्ययन आदि कोई भी ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं हो सकते।

अड़तीसवाँ अध्याय।

जातिभेद का खण्डन।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! रूप,ऐश्वर्य, विद्या और जाति का अभिमान वृथा है क्योंकि यह जीव वनस्पति, शंख, चींटी, भ्रमर, हाथी आदि अनेक योनियों में जाकर नट की भाँति नाना प्रकार के देह धारण करता है, फिर जाति का अभिमान कहाँ रहा? इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य कभी जाति का गर्व न करे क्योंकि जाति स्थिर नहीं रहती। जो कहो कि संस्कारों से ब्राह्मण होता है, तो गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्त, जातकर्म, अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत, वेदाध्ययन, समावर्तन, विवाह आदि संस्कार जिनके होते हैं उनका कुछ तेज अथवा आयुष् नहीं बढ़ जाता और संस्कारहीन अल्पायुष् नहीं होते, सुखदुःख भी दोनों तुल्य ही भोगते हैं। उत्तम संस्कार जिनके हुए हों वे दुराचरण करके पतित हो जाते हैं और नरक में पड़ते हैं, और संस्कार-हीन उत्तम चाल-चलन से भले कहाते हैं और स्वर्ग पाते हैं। संस्कारयुक्त पुरुष भी द्यूत, वेश्यासंग आदि कुकर्मों में आसक्त हो जाते हैं और संस्कार-हीन जप, तप, दान आदि सत्कर्म करते भी देखे हैं। व्यास

आदि मुनीश्वर संस्कारहीन भी होकर उत्तम आचरण से सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ और जगत्पूज्य माने जाते हैं, इससे संस्कार भी ब्राह्मणत्व का निमित्त नहीं बन सकते। जो कहो कि जन्म से ब्राह्मण होता है, तो देखो कि व्यासजी कैवर्त्ती के गर्भ से, पराशरमुनि चण्डाली के पेट से, शुकदेव शुकी के उदर से, कणाद् उलूकी से, ऋष्यशृंग मृगी से, वशिष्ठ वेश्या से, मन्द-पाल मुनि लाविका अर्थात् लवा नाम पक्षी की स्त्री से, मांडव्य मंडूकीके गर्भसे उत्पन्न हुए। इस प्रकार और भी हजारों अधम योनि से जन्मे और उत्तम ब्राह्मण गिने गये। ये सब संस्कारहीन हैं और जन्म भी उत्तम नहीं, परन्तु प्रबल तप करके सब ब्राह्मण हुए। संस्कार हो और विद्या, तप आदि भी हो, तो वह उत्तमोत्तम ब्राह्मण हो जाता है और सब संस्कारों से संस्कृत होकर भी महापातक करने से ब्राह्मणत्व खो बैठता है, इसलिये ब्राह्मणत्व नियत नहीं, सांकेतिक है अर्थात् ब्राह्मणत्व एक संकेत है।

उन्तालीसवाँ अध्याय।

जातिभेद का खण्डन।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! वेदवेत्ता पुरुषों से यह भी पूछना चाहिए कि शुक्र-शोणित से उत्पन्न, विष्ठा से उत्पन्न हुए कीट के तुल्य यह अति मलिन देह क्योंकर शुद्ध होती है। मन में तो दुष्टता भरी रहे और बाहर से सब संस्कार हों, कई पुरुष वैदिक संस्कारों से संस्कृत आचरण में शूद्रों से भी अधिक मलिन हो जाते हैं। क्रूर कर्म करनेवाला, ब्रह्मघ्न, गुरु-दारगामी, चोर, गोघ्न, मद्यप, परस्त्रीगामी, मिथ्यावादी, मदोन्मत्त, नास्तिक, वेदनिन्दक, मायाजाल, कलि आदि में आसक्त, अति दोषों करके युक्त, निषिद्ध आचरण का सेवन करनेवाला, धूर्त, शठ, पापी, सर्वभक्षी, सर्वविक्रयी ऐसे जो ब्राह्मण हों,

उनके चाहे सब संस्कार हुए हों, और वे सब वेद-वेदांग पढ़े हों परन्तु कभी उनकी निष्कृति नहीं होती। जो इष्ट, अनिष्ट ब्राह्मण को होते हैं वे ही शूद्र को भी होते हैं, इसलिये वेद-पठन, अग्निहोत्र, यज्ञ में पशुवध करना इत्यादि कोई कर्म भी ब्राह्मणत्व के हेतु नहीं। वैधव्य, वियोग, मरण आदि सबको तुल्य होते हैं। वात, पित्त, कफ, लोभ, धन की तृष्णा सबको होती है। दयाहीन, हिंसक, परम दांभिक, कपटी, लोभी, पिशुन, अति दुष्ट ऐसे पुरुष वेद पढ़कर संसार को ठगते हैं और वेद-विक्रय कर अपना पोषण करते हैं, अनेक प्रकार के छल-छिद्र कर प्रजा की हिंसा करते हैं, केवल अपना सांसारिक सुख साधते हैं। ऐसे ब्राह्मण शूद्र से भी अधम होते हैं, इसलिये जाति वृथा है। सकामा शूद्रं से ब्राह्मण संग करके गर्भ स्थापन कर देता है और ब्राह्मणी को शूद्र के संग से गर्भ हो जाता है, फिर जातिभेद कहाँ ठहरा? जातिभेद तो गौ, उष्ट्र, घोड़ा, हाथी आदि पशुओं में है जो अपनी जाति की स्त्री विना दूसरी जाति की स्त्री से संग नहीं करते, और न दूसरी जाति में गर्भ रख सकते हैं। पशु जाति की स्त्री से मनुष्य संग करें तो सुख नहीं होता और न गर्भ रहता है इसी प्रकार मनुष्य स्त्री पशु से मैथुन करे तो न गर्भ रहे और न उसको आनन्द हो परन्तु मनुष्य जाति में किसी वर्ण के साथ संग करे तब भी आनन्द मिले और गर्भ धारे, इससे जातिभेद नहीं बन सकता। यह जो मनुष्यों में जातिकल्पना है सो केवल व्यवहार के लिये संकेत है वास्तव में सत्य नहीं है।

चालीसवाँ अध्याय।

चार वर्णों के लक्षण और उनमें भेद होने का कारण।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! जो ग्राह्य अग्राह्य के तत्त्व को जानें, अन्याय और कुमार्ग का त्याग करें। जितेन्द्रिय,

मार्जन आदि करे वह रुद्रलोक पावे। चन्दन अगरु कपूर आदि से जो कार्त्तिकेय का पूजन करे वह हाथी घोड़े पालकी आदि वाहनों का स्वामी हो। राजाओं को तो अवश्य कार्त्तिकेय का आराधन करना चाहिए। जो राजा कार्त्तिकेय का पूजन कर युद्ध में जावे वह अवश्य शत्रुओं को जीते, इसलिये हे राजन्! सदा भक्ति से कार्त्तिकेय का आराधन करना चाहिए। जो कार्त्तिकेय का पूजन कर भक्ति से अनेक प्रकार की स्तुति पढ़े वह सब पापों से मुक्त हो, शिवलोक को जाकर षष्ठी के दिन तेल न खावे। जो षष्ठी के दिन व्रत कर कार्त्तिकेय का पूजन कर रात्रि को भोजन करे वह कार्त्तिकेय के लोक में निवास करे। जो पुरुष दक्षिण देश में तीन बार जाकर कार्त्तिकेय का दर्शन करे और भक्ति से उनका पूजन्न करे वह शिवलोक में निवास करे।

बयालीसवाँ अध्याय।

सप्तमीकल्पारम्भ, सूर्य भगवान् की उत्पत्ति, उनकी स्त्री संज्ञा और छाया की कथा, सप्तमीव्रत का विधान।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! हम अब सप्तमीकल्प का वर्णन करते हैं। सप्तमी के दिन सूर्यभगवान् ने जन्म लिया है, अण्डे सहित उत्पन्न हुए, और अण्डे में ही रहे। दक्ष ने अपनी अतिरूपवती कन्या इनको विवाही, जिसमें यमुना और यम उत्पन्न हुए। बहुत काल अण्डे में रहने से मार्त्तण्ड कहाये, दक्ष की आज्ञा से विश्वकर्मा ने इनके शरीर का संस्कार किया। सूर्य भगवान् की भार्या दक्ष की पुत्री अति व्याकुल हो चिन्तना करने लगी कि इनके अति प्रचण्ड तेज से मेरी दृष्टि नहीं ठहरती कि इनके अंग देख पड़ें, और सुवर्ण वर्ण अति सुन्दर मेरा शरीर इनके तेज से दग्ध होकर श्यामवर्ण हो गया, इससे मेरा निर्वाह होना यहाँ कठिन है। यह विचारकर अपनी छाया से एक स्त्री उत्पन्न की, और उससे कहा कि तू

सूर्यभगवान् के समीप मेरे बदले रहना परन्तु यह भेद न खोलना। इतना समझाकर उस छाया को वहाँ रख अपने सन्तान यम और यमुना को वहीं छोड़ उत्तर कुरु में जाकर घोड़ी का रूप धारण करके मृगों के साथ विचरने लगी, और बहुत वर्ष तक वहीं रही और सूर्यभगवान् ने भी छाया को हीं अपनी भार्या समझ रक्खा था। कुछ काल के अनन्तर शनैश्चर और तपती नाम कन्या छाया से उत्पन्न हुई तब छाया अपनी सन्तान पर अधिक स्नेह रखने लगी और यमुना तथा यम से स्नेह न करती थी। यमुना और तपती का एक दिन विवाद हुआ और परस्पर शाप से दोनों नदी हो गईं, तब छाया ने यमुना के भाई यम को ताड़न किया। यम ने क्रोध कर छाया को मारने के लिये लात उठाई, तब क्रोध कर छाया ने शाप दिया कि रे दुष्ट! यह जो चरण तैंने मेरे ऊपर उठाया यह गल जावे, जब तक सूर्यचन्द्र रहें तब तक मलिन रहे, और जो इस चरण को भूमि पर रक्खे तो कृमि खा जावें। यह दोनों का विवाद हो रहा था इसी अवसर में सूर्यभगवान् भी वहाँ आये, तब यम ने कहा कि हे पितः! यह नित्य हमको क्लेश देती है और समान दृष्टि नहीं रखती। यह सुन सूर्यभगवान् ने क्रोध कर कहा कि तुमको यह उचित नहीं कि अपनी सन्तान में एक से प्रेम करो, और दूसरे से द्वेष रक्खो। जितनी सन्तान हो सबको तुल्य समझना चाहिए। यह सुन छाया तो न बोली और यम ने कहा कि हे पितः! यह दुष्टा मेरी माता नहीं है उसकी छाया है, इसी से उसने मुझे शाप दिया है। यह कहकर सब वृत्तान्त सुना दिया, तब सूर्यभगवान् ने कहा कि मांस और रुधिर लेकर कृमि भूलोक को जाय और हे पुत्र! तेरा चरण अच्छा हो जाय और ब्रह्माजी की आज्ञा से तू लोकपाल हो जावे और यमुना का जल गंगाजल के समान हो और तपती का जल नर्मदाजल के तुल्य माना जावेगा।

विंध्यपर्वत के दक्षिण भाग में पुष्पजा नदी के साथ तपती का सङ्गम होगा और गंगा के साथ यमुना का संगम होगा, तब यमुना भी गङ्गारूप हो जायगी। दोनों नदियाँ सब पापों की हरनेवाली होंगी और यह छाया सबके देहों में स्थित होगी। यह व्यवस्था कर दक्षप्रजापति के समीप आये और अपना सब समाचार कहा, तब दक्ष ने कहा कि आपके अति प्रचण्ड तेज से व्याकुल हो तुम्हारी भार्या छोड़कर चली गई, अब विश्वकर्मा से तुम अपना रूप सुधरवा लो। यह कह विश्वकर्मा को बुलाकर कहा कि इनका रूप प्रकाशित करो। विश्वकर्मा बोले कि महाराज ! यदि ये शस्त्र की पीड़ा सह सकें, तो हम इनको खराद पर चढ़ाकर ठीक कर देवें। यह सुन सूर्यभगवान् ने कहा कि हम पीड़ा सहेंगे, परन्तु हमारा रूप उत्तम हो जाय। उनकी सम्मति पाकर विश्वकर्मा अपने शस्त्रों से सूर्यभगवान् के अंग छीलने लगे, तब अति पीड़ा से सूर्यभगवान् को बार-बार मूर्च्छा होती थी, इससे सब अंग तो छाँटकर ठीक कर दिये परन्तु पैरों की अंगुलियाँ रह गईं। सूर्यभगवान् ने कहा कि हे विश्वकर्मन् ! तुम अपना काम कर चुके परन्तु हम पीड़ा से बहुत व्याकुल हैं। तब विश्वकर्मा ने कहा कि रक्तचन्दन और करवीर के पुष्पों का आप सम्पूर्ण शरीर में लेप करें जिससे अभी यह व्यथा शांत हो जाय। सूर्यभगवान् ने विश्वकर्मा के कहने के अनुसार किया और वेदना मिट गई। उस दिन से रक्तचन्दन और कनेर के पुष्प सूर्यभगवान् को अति प्रिय हुए और कहा कि हमारे पूजन में और कोई पदार्थ देवे चाहे न देवे परन्तु जो पुरुष रक्तचन्दन और करवीर के पुष्प हमारे अर्पण करे वह मानो प्राण देता है, इसलिये ये दोनों पदार्थ अवश्य हमारे अर्पण करे। सूर्यभगवान् के देह में जो तेज उतरा उस करके दैत्यों के नाश करनेवाला वज्र रचा। सूर्यभगवान् ने

भी उत्तम रूप पाकर उत्तर कुरु में जा बड़ी उत्कंठा से अपनी भार्या को ढूँढ़ा और देखा कि मृगों के साथ अश्वा का रूप धारे चर रही है। तब सूर्यभगवान् ने भी अश्व का रूप धार उससे संग किया तब उस घोड़ी की नासिका से दो बालक उत्पन्न हुए वे अश्विनीकुमार कहाये और देवताओं के वैद्य हुए। तपती, शनि और सावर्णि ये तीन सन्तान छाया के, और यमुना तथा यम संज्ञा के हुए। सप्तमी के ही दिन दिव्यरूप और भार्या सूर्यभगवान् ने पाये, इससे सप्तमी तिथि उनकी अति प्रिया हुई। सप्तमी के दिन जो पुरुष उपवास करे अथवा रात्रि के समय भोजन करे और अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य और उत्तम-उत्तम सिद्ध कियें हुए शाक ब्राह्मणों को देवे और जन्म भर इस व्रत को करे वह अनेक प्रकार के सुख भोग करे और सर्वत्र जय पावे और अन्त में उत्तम विमान पर चढ़ सूर्यलोक में जा, कई मन्वन्तर पर्यंत वहाँ निवास कर पृथ्वी पर चक्रवर्त्ती राजा हो और बहुत काल तक निष्कंटक राज्य करे। राजा कुरु ने यह सप्तमी का व्रत बहुत काल पर्यन्त किया और केवल शाक ही भोजन किया तब कुरुक्षेत्र नाम पुण्यक्षेत्र पाया। सप्तमी नवमी षष्ठी तृतीया और पंचमी ये तिथियाँ बहुत उत्तम हैं और स्त्रीपुरुषों को मनवाञ्छित फल देनेवाली हैं। माघ में सप्तमी, आश्विन में नवमी, भाद्रपद में षष्ठी, वैशाख में तृतीया और भाद्रपद में ही पंचमी ये तिथियाँ इन महीनों में विशेष हैं। कार्त्तिक शुक्ल सप्तमी से इस व्रत को ग्रहण करे, उत्तम शाक को सिद्धकर ब्राह्मण को देवे और आप भी रात्रि के समय शाक ही भोजन करे, इस प्रकार चार मास व्रत करके प्रथम पारण करे। पंचगव्य से सूर्यभगवान् को स्नान करावे और आप भी पंचगव्य का प्राशन करे, पीछे केसर का चन्दन, अगस्त्य के पुष्प, अपराजित नाम धूप और पायस का नैवेद्य सूर्यनारायण के

समर्पण करे और ब्राह्मणों को भी पायस भोजन करावे। दूसरे पारण में कुशा के जल से स्नान करावे, आप गोबर प्राशन करे, और श्वेत चन्दन सुगन्ध पुष्प अगुरु का धूप और गुड़ के अपूप नैवेद्य अर्पण करे, और वर्ष समाप्त होने पर तीसरा पारण वर्ष के अन्त में करे। सर्षप का उबटन लगाकर स्नान करावे और आप भी उसको प्राशन करे, फिर रक्तचन्दन करवीर के पुष्प गूगुल का धूप और अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य सहित दही भात नैवेद्य चढ़ावे और यही ब्राह्मणों को भोजन करावे और सूर्यनारायण के आगे ब्राह्मण से पुराण श्रवण करे अथवा आपही पुराण बाँचे और अन्त में ब्राह्मणों को भोजन कराकर पौराणिक को वस्त्र भूषण दक्षिणा आदि देकर प्रसन्न करें। पौराणिक के प्रसन्न होने से सूर्यनारायण प्रसन्न होते हैं। रक्तचन्दन करवीर के पुष्प गूगुल का धूप मोदक पायस का नैवेद्य घृत ताम्रपात्र पुराण कथा और पौराणिक ये सब सूर्यभगवान् को अतिप्रिय हैं हे राजन् शतानीक ! यह सप्तमी व्रत सूर्यभगवान् को अतिप्रिय है, इस व्रत का करनेवाला पुरुष कभी लक्ष्मी से वियुक्त नहीं होता।

तेंतालीसवाँ अध्याय।

श्रीकृष्ण व सांब का संवाद व सूर्यनारायण का आराधन।

राजा शतानीक कहते हैं कि महाराज ! सूर्यभगवान् का माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती, इसलिये आप विस्तार से सप्तमीकल्प का वर्णन करें जिससे सूर्यनारायण के गुणानुवाद सुनने में आवें। यह सुन सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन् ! इस विषय में श्रीकृष्ण और उनके पुत्र साम्ब से जो परस्पर संवाद हुआ था वह हम वर्णन करते हैं। एक समय साम्ब ने अपने पिता श्रीकृष्णभगवान् से पूछा कि महाराज ! संसार में जन्म लेकर मनुष्य सुखी क्योंकर रह सकता है ?

अपने मनोवाञ्छित फल किस कर्म से पाता है, और अन्त में बहुत काल स्वर्ग के सुख भोग मुक्ति का भागी किस विधि से होता है, यह आप वर्णन करें । इस संसार में अनेक प्रकार की व्याधि देख मेरा चित्त अति उदास हो रहा है, क्षणमात्र जीने की भी इच्छा नहीं होती, इसलिये आप ऐसा उपाय उपदेश करें कि जितने दिन संसार में रहें उतने दिन आधिव्याधि से पीड़ित न हों और फिर इस संसार में जन्म न हो । यह पुत्र की प्रार्थना सुन श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे पुत्र ! देवता के आराधन से यह बात प्राप्त हो सकती है, देवता अनुमान और आगम से सिद्ध हैं। विशिष्टदेवता का विशिष्ट पुरुष आराधन करे तो विशिष्ट ही फल पावे । यह सुन साम्ब ने कहा कि महाराज ! पहिले देवताओं के होने में ही सन्देह है, कई पुरुष कहते हैं कि देवता हैं और कई कहते हैं कि नहीं, फिर विशिष्ट देवता क्योंकर जाने। यह पुत्र का सन्देह सुन श्रीकृष्णभगवान् ने कहा कि हे पुत्र ! शास्त्र से, अनुमान से, और प्रत्यक्ष से देवताओं का होना सिद्ध होता है । यह सुन साम्ब ने कहा कि जो प्रत्यक्ष भी देवता सिद्ध हो सकते हों तो उनके साधन के लिये अनुमान और शास्त्र की कुछ अपेक्षा नहीं, तब श्रीकृष्ण ने कहा कि हे पुत्र ! सब देवता प्रत्यक्ष नहीं होते, शास्त्र और अनुमान से ही हज़ारों देवताओं का होना सिद्ध होता है । साम्ब ने कहा कि महाराज ! जो देवता प्रत्यक्ष हो प्रथम आप उसी का वर्णन करें, शास्त्र और अनुमान से सिद्ध देवताओं का वर्णन पीछे करना, तब श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे पुत्र ! प्रत्यक्ष देवता तो सूर्यनारायण हैं जिनसे बढ़कर कोई दूसरा देवता नहीं । सब जगत् इनसे उत्पन्न हुआ और इन्हीं में लीन होगा, त्रुटि आदि काल की संख्या इनसे है, ग्रह नक्षत्र योग करण राशि आदित्य वसु रुद्र वायु अग्नि अश्विनी-

कुमार इन्द्र ब्रह्मा दिशा भूः भुवः स्वः आदि सब लोक पर्वत नदी समुद्र नाग और सम्पूर्ण भूत ग्राम की उत्पत्ति के हेतु सूर्यनारायण हैं, सब जगत् इनकी इच्छा से उत्पन्न हुआ है, इनकी ही इच्छा से स्थित है और अपने-अपने व्यवहार में सब प्रवृत्त हैं, सूर्यभगवान् के उदय के साथ जगत् का उदय और अस्त के साथ अस्त होता है, इनसे अधिक न कोई देवता हुआ न कोई होगा, सब वेदों में और इतिहास पुराण आदि में इनको परमात्मा अन्तरात्मा आदि शब्दों से प्रतिपादन किया है। इनके सम्पूर्ण गुण और प्रभाव सौ वर्ष में भी वर्णन नहीं कर सकते, सबके स्वामी सबके सिरजनेहारे और संहारकर्त्ता ये ही हैं। मण्डल रच सायंकाल और प्रातःकाल जो पुरुष इनका पूजनकर उपस्थान करे वह सब सिद्धियाँ पाता है, फिर जो प्रत्यक्ष सूर्यनारायण का पूजन करे उसको कौन पदार्थ दुर्लभ है। जो इनका मन्त्र जपे, हवन करे, पूजन करे वह सब कामनाएँ पाता है और अन्त में इनके लोक में निवास करता है। हे पुत्र! जो तुम संसार में सुख चाहते हो और भुक्ति-मुक्ति की इच्छा रखते हो, तो विधिपूर्वक सूर्यनारायण का आराधन करो, आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःख तुमको कभी न होंगे। जो सूर्यभगवान् के शरण में प्राप्त हैं उनको किसी प्रकार का भय नहीं होता। हमने सूर्यभगवान् का बहुत काल आराधन किया तब यह दिव्य ज्ञान पाया है। इससे बढ़कर मनुष्यों के लिये कोई हित-उपाय नहीं है हे साम्ब! हमने यह बहुत संक्षेप से कहा है।

चवालीसवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण के नित्यार्चन का विधान।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे साम्ब! अब हम सूर्यनारायण के पूजन का विधान कहते हैं जिसके करने से सम्पूर्ण पाप और

विघ्न निवृत्त होते हैं। प्रातःकाल उठ शौच आदि से निवृत्त हो नदी आदि के तट पर जा आचमन कर शुद्ध मृत्तिका से शरीर को लीप करके सूर्योदय समय स्नान करें, फिर आचमन कर शुद्ध वस्त्र पहिने सूर्यभगवान् को अर्घ्य देकर सप्ताक्षर मंत्र करके पूरक कुम्भक और रेचक नामक प्राणायाम कर वायवी आग्नेयी माहेयी और वारुणी धारणा करके भूत शुद्धि की रीति से शरीर का शोषण दहन स्तम्भन और प्लावन करके नवीन शरीर उत्पन्न करे और स्थूल सूक्ष्म शरीर तथा इन्द्रियों को अपने-अपने स्थान में स्थापन करे, खःस्वाहा हृदयाय नमः खः स्वाहा शिरसे स्वाहा उल्काय स्वाहा शिखायै वषट् स्वाहा कवचायहुं स्वाहा स्वाहा नेत्रत्रयाय वौषट् खखोल्काय स्वाहा अस्त्रांय फट् इन मंत्रों से न्यास कर पूजा की सामग्री को मूलमंत्र से प्रोक्षण करे, फिर सब उपचारों से सूर्यभगवान् का पूजन करे। दिन के समय मूर्ति में और रात्रि को अग्नि में सूर्यनारायण का पूजन करे। प्रभात के समय पूर्वाभिमुख, सायङ्काल को पश्चिमाभिमुख, और रात्रि के समय उत्तराभिमुख होकर पूजन करे ॐ खखोल्काय स्वाहा इस सप्ताक्षर मूल मन्त्र करके सूर्यमण्डल के बीच षट्दल कमल का ध्यानकर उसके मध्य में सूर्यनारायण की मूर्ति ध्यावे, फिर रक्तचन्दन करवीर आदि रक्तपुष्प धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य बलि वस्त्र भूषण आदि उपचारों करके पूजन करे अथवा रक्तचन्दन से ताम्रपात्र में षट्दल कमल लिखकर मध्य में सब उपचारों करके सूर्यनारायण का पूजन कर छहो दलों में षडङ्ग पूजन उत्तर आदि आठ दिशाओं में चन्द्र आदि आठ ग्रहों का अर्चन और दिक्पाल तथा उनके अस्त्रों का अपनी-अपनी दिशा में पूजन करे, आदि में प्रणव लगाकर चतुर्थी नमोऽन्त नाम मन्त्रों से सबका पूजन करे, फिर

व्योममुद्रा नमस्कारमुद्रा पद्ममुद्रा महाश्वेतामुद्रा और अस्त्र-मुद्रा दिखावे, ये सब मुद्राएँ पूजा जप ध्यान अर्घ्य आदि के अनन्तर दिखानी चाहिए इस प्रकार एक वर्ष पर्यन्त भक्ति से सूर्यनारायण का आराधन करे तो भोग और मोक्ष पावे। इस विधि पूजन करके रोगी रोग से छूटे, धनहीन धन, पुत्रहीन पुत्र और राज्यहीन राज्य पावे और चिरकाल जीवे बुद्धि निर्मल हो जाय उत्तम कुल में उत्पन्न अति रूपवती कन्या से विवाह हो और इस विधि के करने से कन्या को वर मिले और कुरूपा नारी भी सौभाग्य पावे और विद्या की इच्छा हो तो विद्या मिले। यह सूर्यनारायण ने अपने मुख से कहा है। इस पूजन के करने से धन धान्य सन्तान पशु आदि की नित्य बढ़ती होती है और अन्त में सद्गति मिलती है।

पैंतालीसवाँ अध्याय।

नैमित्तिकार्चन और व्रत के उद्यापन का विधान, व्रत का फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे साम्ब! नित्यार्चन का विधान और फल तो हमने वर्णन किया अब नैमित्तिक यज्ञों की विधि कहते हैं। सप्तमी शुक्ल पंचमी ग्रहण अथवा संक्रांति के पहिले दिन एक बार हविष्य अन्न भोजन कर सायङ्काल के समय आचमन कर अरुण को प्रणाम करे और सब इन्द्रियों को वश में कर कुश की शय्या पर सोवे। दूसरे दिन प्रातःकाल उठ विधि से स्नान कर सूर्यभगवान् का पूजन करे और सूर्याग्नि में हवन कर तर्पण करे। वेदी बनाकर अस्त्र मन्त्र से उल्लेखन और गायत्री मन्त्र करके प्रोक्षण कर पूर्वाग्र और उत्तराग्र कुशा बिछाकर सब पात्रों का शोधन करे। दो कुशा का प्रादेशमात्र एक पवित्र बनाकर उस करके सब वस्तु प्रोक्षण करे घृत को अग्नि पर रख गलाकर उत्तर की ओर पात्र में रक्खे फिर जलता हुआ उल्मुक लेकर पर्यग्निकरण और घृत का उत्पवन

करे, फिर अग्नि में सूर्यनारायण का अर्चन कर मूलमन्त्र से हवन करे। दहिने हाथ में स्रुवा लेवे और वामहस्त करके भूमि में लिखे हुए यन्त्र को स्पर्श करे। मन्त्रों से सब क्रियाएँ करे, फिर पूर्णाहुति देकर तर्पण करे और ब्राह्मणों को उत्तम भोजन करावे और यथाशक्ति दक्षिणा देवे तो मनोवाञ्छित फल पावे। माघ में वरुणनामक सूर्य का पूजन करे, फाल्गुन में सूर्य, चैत्र में श्वेतांशु, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ में रवि, श्रावण में भग, भाद्रपद में यम, आश्विन में पर्जन्य, कार्त्तिक में त्वष्टा, मार्गशीर्ष में मित्र, और पौष में विष्णुनाम सूर्य का अर्चन करे। इस प्रकार एक दिन पूजन करने से वर्ष भर की हुई पूजा का फल प्राप्त होता है। प्रथम रीति से एक वर्ष व्रत करके रत्नों से जटित सुवर्ण का रथ बनाकर उसमें सात घोड़े लगावे। रथ के मध्य में सुवर्ण कमल के ऊपर रत्नों के भूषणों से भूषित सुवर्ण की सूर्यनारायण की मूर्ति स्थापन करे। रथ के आगे सारथि बैठावे, फिर बारह ब्राह्मण बारह महीनों के सूर्यों की भावना से और तेरहवें मुख्य आचार्य को साक्षात् सूर्यनारायण समझ पूजन करे। फिर वह रथ छत्र गो भूमि आदि आचार्य को देवे और रत्नों के भूषण वस्त्र दक्षिणा और एक-एक घोड़ा उन बारह ब्राह्मणों को देवे और हाथ जोड़ यह प्रार्थना करे कि इसके अनन्तर व्रत न करने से मुझे दोष न हो। ब्राह्मणों सहित आचार्य भी यह आशीर्वाद देवे कि सूर्यभगवान् तुम पर प्रसन्न हों और जिस मनोरथ के पूर्ण होने के लिये तुमने यह व्रत किया वह तुम्हारा सिद्ध हो और अब व्रत न करने से भी दोष न होगा। इस प्रकार आशीर्वाद पाकर दीन अन्धे अनाथों और यथाशक्ति ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर व्रत समाप्त करे। जो पुरुष इस व्रत को एक वर्ष करे वह सौ योजन लम्बे चौड़े देश का राजा हो और सौ वर्ष

से भी अधिक निष्कण्टक राज्य करे और स्त्री इस व्रत के करने से रानी हो। जो धनहीन व्रत के अन्त में पूर्वोक्त विधि से ताँबे का रथ ब्राह्मण को देवे वह अस्सी योजन लम्बा चौड़ा राज्य पावे। पिष्ट अर्थात् आटे का रथ बनाकर देवे तो साठ योजन विस्तार का राज्य मिले। इस व्रत का करनेवाला एक कल्प सूर्यलोक में निवास कर राजा होता है। जो मन करके भी सूर्यभगवान् का पूजन करे उसको आधि व्याधि दरिद्र नहीं स्पर्श करते, फिर जो भक्ति से यह व्रत करे और मन्त्रों से सूर्यनारायण का पूजन करे तो वह क्यों न आधि व्याधियों से मुक्त हो, हे पुत्र! यह विधान सूर्यनारायण ने हमको अपने मुख से उपदेश किया था हमने आज तक इसको गुप्त रक्खा आज तुमसे कहा है। हमने इसी व्रत के प्रभाव से हज़ारों पुत्र पौत्र पाये, दैत्य जीते, देवता वश किये, इस हमारे चक्र में सदा सूर्यभगवान् निवास करते हैं, नहीं तो इसमें इतना तेज कैसे होता और इस करके दैत्य किस प्रकार से जीते जाते। सूर्यनारायण का नित्य जप ध्यान पूजन आदि करने से हम जगत्पूज्य हुए, हे पुत्र! तुम भी इस विधि से सूर्यनारायण का आराधन करो जिससे भाँति-भाँति के सुख प्राप्त हों और इस विधान को गुप्त रक्खो। जो पुरुष भक्ति से इस विधान को श्रवण करे वह भी पुत्र पौत्र आरोग्य और लक्ष्मी पावे।

छियालीसवाँ अध्याय।

माघ आदि ज्येष्ठ आदि और आश्विन आदि चार-चार महीनों में सूर्यपूजन-विधान, रथसप्तमी का फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे पुत्र! माघ शुक्ल पंचमी को एक बार भोजन कर षष्ठी को नक्तव्रत करे कोई पंचमी को और कोई षष्ठी को उपवास करना कहते हैं। षष्ठी के दिन उपवास कर सूर्यनारायण का अर्चन करे, रक्त चन्दन करवीर के पुष्प

गुग्गुलु धूप और पायस नैवेद्य आदि से माघ आदि चार महीने सूर्यनारायण का पूजन करे और आत्मशुद्धि के लिये गोबर के जल से स्नान करे और गोबर का प्राशन करे और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे ज्येष्ठ आदि चार महीने श्वेत चन्दन श्वेत पुष्प अगर का धूप और उत्तम नैवेद्य सूर्यनारायण के अर्पण करे, पंचगव्य प्राशन करे और ब्राह्मण भोजन करावे। आश्विन आदि चार मास अगस्त्य पुष्प अपराजित धूप और गुड़ के अपूप नैवेद्य और इक्षुरस सूर्यभगवान् को समर्पण करे और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे। कुशा के जल से स्नान करे और कुशोदक ही प्राशन करे व्रत की समाप्ति में रथ का दान करे और सूर्यभगवान् की प्रसन्नता के लिये रथयात्रा करे इस रथसप्तमी को जो उपवास करे वह धन पुत्र कीर्ति विद्या आरोग्य आयुर्दाय और उत्तम कान्ति पाता है, हे पुत्र! तुम भी इस व्रत को करो जिससे तुम्हारा सब अभीष्ट सिद्ध हो। इतना कह शंख, चक्र, गदा और पद्म के धारनेवाले श्रीकृष्णभगवान् अन्तर्धान हुए और उनकी आज्ञा पाकर साम्ब भी भक्ति से रथसप्तमी का व्रत और सूर्यनारायण का आराधन करने में प्रवृत्त हुए और थोड़े ही काल में अपना मनोवाञ्छित फल पाया।

सैंतालीसवाँ अध्याय।

सूर्यभगवान् के रथ का वर्णन।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि! सूर्यनारायण की रथयात्रा किस विधि से करनी चाहिए रथ कैसा बनावे और यह रथयात्रा किसने प्रवृत्त की है यह आप कृपा कर वर्णन करें। यह सुन सुमन्तु मुनि कहते भये कि हे राजन्! एक समय सुमेरु पर्वत में रुद्र ने ब्रह्माजी से पूछा कि हे ब्रह्माजी! यह लोक को प्रकाश करनेवाले सूर्यभगवान् रथ में बैठ किस प्रकार भ्रमण करते हैं यह आप वर्णन करें, तब ब्रह्माजी ने कहा

कि महाराज जिस प्रकार सूर्यनारायण रथ में बैठ भ्रमण करते हैं उसका हम वर्णन करते हैं आप प्रीति से श्रवण करें। एक चक्र, तीन नाभि, पाँच अर, एक नेमि और आठ बन्धों करके युक्त दश हज़ार योजन लम्बे-चौड़े अति प्रकाशवान् सुवर्ण के रथमें विराजमान हो सूर्य भ्रमण करते हैं। रथ के उपस्थ से ईषादण्ड तीनगुणा है अरुण वहाँ बैठते हैं, पवन के समान वेगवान् छंदोरूप सात घोड़े रथ में लगे हैं, संवत्सर के जितने अवयव हैं वही रथ के अंग हैं, तीन काल चक्र की तीन नाभि हैं, पाँच ऋतु अर, और छठा ऋतु नेमि है, दक्षिण और उत्तर ये दोनों अयन रथ के दो भाग हैं, मुहूर्त रथ का अभिषव क्षण अक्षदंड निमेष अनुकर्ष लव ईषादण्ड रात्रिवरूथ और धर्म उस रथ का ध्वज है अर्थ और काम धुरी का अग्रभाग गायत्री त्रिष्टुप् जगती अनुष्टुप् पंक्ति बृहती और उष्णिक् ये सात छन्द सात अश्व हैं। धुरी पर चक्र घूमता है और वह धुरी ध्रुव में लगी है ऐसे रथ में बैठ सूर्यनारायण आकाश में भ्रमण करते हैं एक चक्र का रथ है और बाईं ओर अश्व लगे हैं दहिने युग और धुरी के ऋग्वेद तथा यजुर्वेद धारण किये हैं, दो रश्मि अर्थात् घोड़ों की बाग युग में बँधी हैं, उत्तरायण में वे रश्मि कम होजाते हैं और दक्षिणायन में बढ़ जाते हैं, ध्रुव के चारों ओर यह रथ भ्रमता है, एकसौ अस्सी मण्डल उत्तरायण में और इतने ही दक्षिणायन में रथ के होते हैं। देवऋषि गन्धर्व अप्सरा सर्प ग्रामणी और राक्षस ये सूर्य के रथ के साथ चलते हैं और दो-दो मास के अनन्तर इनकी बदली होती है। धाता अर्यमा पुलस्त्य पुलह तुम्बुरु नारद शङ्ख वासुकि ऋतुस्थला पुंजिकस्थला रथकृत्स्न रथौजा रक्षोहेतु और प्रहेतु ये सब चैत्र और वैशाख में रथ के साथ रहते हैं, मित्र वरुण अत्रि वशिष्ठ तक्षक अनन्त मेनका सहजन्या हाहा हूहू रथस्वन

रथचित्र पौरुषेय और वध ये ज्येष्ठ और आषाढ़ में साथ रहते हैं। इन्द्र विवस्वान् अङ्गिरा भृगु एलापर्ण शङ्खपाल प्रम्लोचा दुन्दुका भानु दर्दुर और सर्प तथा व्याघ्र ये श्रावण भाद्रपद में साथ रहते हैं। पर्जन्य पूषा भरद्वाज गौतम चित्रसेन व सुरुचि विश्वाची घृताची ऐरावत धनंजय सेनजित् सुसेन आप और वात ये आश्विन कार्त्तिक में साथ रहते हैं। अंशुभग कश्यप क्रतु महापद्म कर्कोटक चित्रांगद ऊर्णायु उर्वशी सहजन्या प्रसेन सुषेण नकुल और गज ये मार्ग पौष में रहते हैं। पूषा विष्णु यमदग्नि विश्वामित्र कम्बल अश्वतर धृतराष्ट्र सूर्यवर्चा तिलोत्तमा रंभा ऋतजित् सत्यजित् ब्रह्म और उपेत ये माघ फाल्गुन में रथ के साथ भ्रमण करते हैं। ब्रह्माजी कहते हैं कि और भी मन्देह नाम राक्षसों के वध के लिये और सूर्यनारायण की रक्षा के लिये जो-जो रथ के साथ भ्रमते हैं उनका हम वर्णन करते हैं।

अड़तालीसवाँ अध्याय।

रथ के साथवाले देवताओं का कथन, गमन का वर्णन, उदयास्त का भेद।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे रुद्र! हमने अपना अवतार अरुण रथ का सारथी बनाया इन्द्र ने माठर वायुने नाग वाहन गरुड़ ने तार्क्ष्य नाम अपना अवतार रथ के साथ दिया है जिसके नख और चोंच ही शस्त्र हैं और रथ के आगे उड़ता चलता है। काल ने दण्डायुध वसुओं ने आयुध और आगारिक ये दो अग्नि ने पिङ्गल यमने दण्ड वरुण ने पाशहस्त कुबेर ने विष्णु अश्विनीकुमारों ने काल उपकाल नरनारायण ने वार्क्ष और प्रधान विश्वेदेवों ने आठों दिशाओं की रक्षा के लिये क्षारद्वार धिषण कृष्ण वैराज शङ्खपाल पर्जन्य और जय आठ दिये हैं सात मातृकाओं ने सात मरुत् वेदों ने ॐकार और वषट्-कार शिवजी ने विनायक सब नागों ने मिलकर शेष और वासुकि और हे रुद्र! आपने मोषक नाम अपना गण रथ के

साथ रक्षा के लिये दिया है। ऐसा कोई देवता नहीं जो रथ के पीछे न चले सब इनका सेवन करते हैं इन सूर्यनारायण के मण्डल को ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मस्वरूप यज्ञ करनेवाले यज्ञविष्णु भक्तविष्णु शैव शिवस्वरूप और गणेश के भक्त गणपति रूप मानते हैं ये सब स्थान के अभिमानी देवता अपने तेज करके सूर्यनारायण के तेज की वृद्धि करते हैं, देवता और ऋषि स्तुति पढ़ते हैं गन्धर्व गाते हैं अप्सरा रथ के आगे नाचती हैं ग्रामणी रक्षा करते हैं सर्प रथ को धारते हैं और राक्षस रथ के पीछे-पीछे चलते हैं। बालखिल्य नाम साठ हज़ार ऋषि रथ को चारों ओर घेर लेते हैं दिवस्पति और स्वभू रथ के आगे भर्ग दहिनी ओर पद्मज बाईं ओर कुबेर दक्षिण दिशा में वरुण उत्तर दिशा में यमराज आगे वीतिहोत्र और हरि रथ के पीछे रहते हैं। रथ के पीठ में पृथिवी मध्य में आकाश रथ की क्रान्ति में स्वर्ग ध्वजा में दण्ड ध्वजाग्र में धर्म पताका में ऋद्धि वृद्धि श्री और पार्वती निवास करती हैं। मैनाक पर्वत छत्र का दण्ड हिमाचल छत्ररूप होकर सूर्यभगवान् के साथ रहते हैं। इन देवताओं का बल तप तेज योग और तत्त्व जैसा है वैसे ही सूर्यभगवान् तपते हैं ये ही सब देवता तपते हैं वर्षते हैं जीवों के अशुभ कर्म निवृत्त करते हैं और प्रजा को आनन्द देते हुए सब भूतों की रक्षा के लिये सूर्यनारायण के साथ भ्रमण करते हैं। अपने किरणों से चन्द्रमा की वृद्धि कर सूर्यभगवान् देवताओं का पोषण करते हैं। शुक्लपक्ष में सूर्य किरणों करके चन्द्रमा की वृद्धि होती है और कृष्णपक्ष में देवता उसको पान करते हैं, अपने किरणों से पृथिवी का रस पीकर सूर्यनारायण वृष्टि करते हैं उससे सब ओषधियाँ और अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं जिनसे पितर और मनुष्यों की तृप्ति होती है एक चक्र रथ में बैठ एक दिन में

सात द्वीप और समुद्रों करके युक्त पृथिवी के चारों ओर सूर्य-नारायण भ्रमण करते हैं। उस रथ में अति वेगवान् हरे रंग के वेदस्वरूप और क्षुधा तथा श्रम से रहित सात अश्व कल्प के प्रारम्भ में लगाये हुए ही प्रलय तक रथ को लिये भ्रमण करेंगे। एक वर्ष में तीन सौ साठ भ्रमण होते हैं। बाल-खिल्य ऋषि स्तुति करते हैं। अमरावती नाम इन्द्र की पुरी में जब मध्याह्न हो उस समय यम की संयमिनी पुरी में सूर्योदय, वरुण की सुखानाम नगरी में अर्द्धरात्रि और सोम की विभा-नाम पुरी में सूर्यास्त होता है। संयमिनी में जब मध्याह्न हो तब सुखा में उदय, विभा में अर्द्धरात्रि और अमरावती में सूर्यास्त होता है। सुखा में जब मध्याह्न हो उस समय विभा में उदय, अमरावती में आधी रात्रि और संयमिनी में सूर्यास्त होता है। जिस समय विभा नगरी में मध्याह्न हो उस समय अमरावती में सूर्योदय, संयमिनी में अर्द्धरात्रि और सुखा नाम वरुण की नगरी में सूर्यास्त होता है। इस प्रकार मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हुए सूर्यनारायण उदय और अस्त करते हैं। प्रभात से मध्याह्न पर्यन्त सूर्यकिरणों की वृद्धि, और मध्याह्न से अस्त पर्यंत ह्रास होता जाता है। जहाँ सूर्य उदय हों वह पूर्व दिशा, और जहाँ अस्त हों वह पश्चिम दिक् होती है। एक मुहूर्त में भूमि के प्रमाण का तीसवाँ भाग सूर्य चलते हैं। दो हज़ार दो सौ दो योजन सूर्य भगवान् का रथ एक निमेष में चलता है। सूर्य भगवान् के उदय होते ही इन्द्र पूजा करते हैं, मध्याह्न में यमराज, अस्त के समय वरुण और अर्द्धरात्रि को सोम पूजन करते हैं। विष्णु शिव रुद्र ब्रह्मा अग्नि वायु निर्ऋति ईशान आदि सब देवता कल्याण के अर्थ सूर्य भगवान् का आराधन सदा करते हैं।

उनचासवाँ अध्याय।

सूर्य भगवान् के गुण, ऋतुओं में इनके अलग २ वर्ण, वर्णों का फल।

रुद्र भगवान् कहते हैं कि हे ब्रह्माजी! आपने सूर्यनारायण का बहुत माहात्म्य वर्णन किया जिसके सुनने से हमको बहुत आनन्द मिला, अब फिर भी आप उनका ही प्रभाव कथन करें। यह रुद्र का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे रुद्र! त्रैलोक्य का मूल सूर्य हैं, देवता असुर मनुष्य इन्द्र चन्द्र ब्रह्मा विष्णु शिव आदि जितने देवता हैं सबमें इनका ही तेज है। अग्नि में आहुति दी हुई सूर्य भगवान् को पहुँचती है, वे वृष्टि करते हैं, वृष्टि से अन्न होता है और अन्न से प्रजा का जीवन है। सूर्य से जगत् की उत्पत्ति और सूर्य में ही लय होता है। ध्यान करनेवाले इनका ही ध्यान करते हैं, मोक्षार्थी पुरुषों के लिये ये मोक्षस्वरूप हैं जो सूर्य भगवान् न हों तो क्षण मुहूर्त दिन रात्रि पक्ष मास ऋतु अयुग वर्ष युग आदि कालविभाग न हो, कालविभाग न होने से जगत् का कोई व्यवहार न चले, ऋतुओं का विभाग न हो, फिर फल मूल खेती ओषधि आदि क्योंकर उत्पन्न हों और इनकी उत्पत्ति विना जीवों का जीवन किस प्रकार हो इससे इस संसार का मूल सूर्य भगवान् ही हैं। सूर्य भगवान् बहुत तपें, परिवेष हों और भी किसी प्रकार की विकृत हो तो वृष्टि होती है। वसन्त ऋतु में सूर्य भगवान् कपिलवर्ण, ग्रीष्म में तप्त सुवर्ण के समान, वर्षा में श्वेत, शरद् में पाण्डु, हेमन्त में ताम्रवर्ण और शिशिर ऋतु में रक्तवर्ण होते हैं। सूर्य भगवान् कृष्णवर्ण हों तो जगत् में रोग हो, ताम्रवर्ण हों तो सेनापति का नाश, पीतवर्ण होने से राजकुमार की मृत्यु, श्वेतवर्ण से राजपुरोहित का ध्वंस, चित्र और धूम्रवर्ण होने से जगत् में चोर और शस्त्र का भय हो परन्तु ऐसा वर्ण होने के

अनन्तर जो वृष्टि हो जाय तो ये अनिष्ट फल नहीं होते।

पचासवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण के अभिषेक का वर्णन, रथयात्रा के प्रथम दिन का कृत्य।

रुद्र पूछते हैं कि सूर्यनारायण की रथयात्रा किस काल में और किस विधि से करनी चाहिए और रथयात्रा करनेवाले पुरुष को और जो रथ को खैंचें, रथ के साथ जायँ, रथ के आगे नृत्य करें, गावें उनको क्या फल होता है यह आप लोकहित के लिये वर्णन करें। यह सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे रुद्र! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया। अब हम इसका वर्णन करते हैं, आप प्रीति से श्रवण करें। सूर्य रथयात्रा और इन्द्रोत्सव ये दोनों जगत् के कल्याण के अर्थ हमने प्रवृत्त किये हैं। ये दोनों उत्सव जिस देश में हों वहाँ कभी राजचोर दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते, इसलिये उपद्रव-शान्ति के लिये ये दोनों उत्सव करने चाहिए। मार्गशिर की शुक्ल सप्तमी को घृत करके सूर्यनारायण को श्रद्धा से स्नान करावे वह पुरुष सुवर्ण के विमान में बैठ अग्निलोक को जाकर वहाँ दिव्य भोग भोगे। जो पुरुष शर्करा सहित भात मिठाई और चित्र वर्ण का भात सूर्यनारायण के अर्पण करे वह ब्रह्मलोक पावे। जो सूर्यनारायण के उबटना लगावे वह सूर्यलोक में निवास करे। पौषशुक्ल सप्तमी को तीर्थों के जल अथवा और पवित्र जल से वेद मन्त्रों करके सूर्यनारायण को स्नान करावे और प्रयाग पुष्कर कुरुक्षेत्र नैमिष प्रथूदक रुद्रजट शोण गोकर्ण ब्रह्मावर्त कुशावर्त बिल्वक नील पर्वत गङ्गाद्वार गङ्गासागर कालप्रिया मित्रवन भाण्डीरवन नक्रतीर्थ रामतीर्थ गङ्गा यमुना सरस्वती सिन्धु चन्द्रभागा नर्मदा विपाशा तापी वेत्रवती गोदावरी पयोष्णी कृष्णा वेणा शतद्रू पुष्करिणी कौशिकी सरयू आदि सब तीर्थ नदी और समुद्रों का उस समय स्मरण

करे और दिव्य आश्रम और देवस्थानों को भी ध्यावे। इस प्रकार स्नान कराके तीन दिन सात दिन एक पक्ष अथवा महीने भर उस स्नान के स्थान में ही सूर्यनारायण को रक्खे और नित्य भक्ति से पूजन करे। माघकृष्ण सप्तमी को पक्की ईंटों से बनी हुई वेदी पर सूर्यनारायण को स्थापन कर हवन ब्राह्मण भोजन वेदपाठ और भाँति-भाँति के नृत्य गीत वाद्य आदि उत्सव करावे, फिर माघशुक्ल पञ्चमी को एक बार भोजन करे। षष्ठी को रात्रि के समय भोजन और सप्तमी को उपवास करे। हवन, ब्राह्मण-भोजन आदि कराके सबको दक्षिणा देकर पौराणिक का भलीभाँति पूजन कर सुवर्ण के रत्नजटित रथ में सूर्यनारायण को विराजमान करे और वह रथ उस दिन मन्दिर के आगे ही खड़ा रहे, रात्रि को सब जागरण करें और नृत्य होता रहे। दूसरे दिन अर्थात् माघशुक्ल अष्टमी को रथ-यात्रा करे, रथ के आगे भाँति-भाँति के बाजे बाजें, नृत्य गीत और वेदध्वनि होती चले। पाहिले रथ नगर के उत्तर द्वार पर जावे फिर क्रम से पूर्व, दक्षिण और पश्चिम द्वारों पर भी जाय। इस प्रकार रथयात्रा करने से राज्य के सब उपद्रव निवृत्त होते हैं, युद्ध में जय मिलता है, सब प्रजा और पशु नीरोग रहते हैं। रथयात्रा करनेवाले की सन्तान बढ़ती है, और रथ को खींचने-वाले तथा रथ के साथ जानेवाले सूर्यलोक को जाते हैं।

इक्यावनवाँ अध्याय।

रथ के अङ्गों का वर्णन व नगर के चार द्वारों पर ले जाने का विधान।

रुद्र कहते हैं कि हे ब्रह्माजी! मन्दिर में स्थापन की हुई प्रतिमा को किस प्रकार उठावे और रथ में स्थापन करे यह हमको बहुत संशय है क्योंकि उस प्रतिमा की तो स्थिर प्रतिष्ठा हो रही है, फिर क्योंकर चला सकते हैं, यह सन्देह आप निवृत्त कीजिए। यह रुद्र का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि

संवत्सर के अवयवों करके जो रथ प्रथम हमने वर्णन किया मुख्य तो वही रथ है, उसको देख विश्वकर्मा ने सब देवताओं के लिये रथ बनाये, विश्वकर्मा का बनाया रथ पूजन के लिये सूर्य भगवान् ने अपने पुत्र मनु को दिया। मनु ने राजा इक्ष्वाकु को दिया, तब से यह रथयात्रा चली आती है। सूर्यभगवान् तो नित्य आकाश में भ्रमण करते हैं, इसलिये उनकी प्रतिमा के चलाने में कुछ दोष नहीं, ब्रह्मा विष्णु शिव आदि देवताओं की प्रतिमा स्थापन होने के अनन्तर न उठानी चाहिए, सूर्य-नारायण की रथयात्रा प्रति वर्ष करे, सोने चाँदी अथवा उत्तम काष्ठ का अति सुन्दर और बहुत दृढ़ रथ बनावे, उसके बीच प्रतिमा को स्थापन कर उत्तम लक्षणों करके युक्त अति सुशील घोड़े रथ में जोड़े, और उन घोड़ो को केसर से रँगकर अनेक भूषण पुष्पमाला चामर आदि से अलंकृत करे। इस प्रकार रथ को तैयार कर सब देवताओं का पूजन कर ब्राह्मण-भोजन कराके दक्षिणा दे, दीन अंध कृपण अनाथों को भोजन आदि से सन्तुष्ट करे, किसी को विमुख न जाने देवे। जो क्षुधा करके पीड़ित कोई विमुख जाय तो पितरों का अधःपात होता है, इसलिये इस सूर्य भगवान् के यज्ञ में भोजन और दक्षिणा से सबको सन्तुष्ट करे और सब देवताओं को इस मन्त्र से बलि देवें। बलिं गृह्णन्तु मे देवा आदित्यो वसवस्तथा। मरुतोऽथाश्विनौ रुद्रः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः १ असुरा यातुधानाश्च रथस्था ये तु देवताः। दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः २ स्वस्ति कर्वन्तु जगतो ये च दिव्या महर्षयः। मा विघ्नं मा च मे पाप्मा मा च मे परिपन्थिनः॥ सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च देवा भूतगणास्तथा ३ इन मन्त्रों से बलि देकर-वामदेव्य मान-स्तोकरथन्तर और आकृष्णेन इत्यादि ऋचा पढ़े। फिर पुण्याहवाचन और अनेक प्रकार के वाद्यों का शब्द कर सुन्दर

मार्ग में रथ चलावे जिसमें धक्का न लगे, घोड़े न हों तो अच्छे बैल रथ में लगावे अथवा पुरुष ही उस रथ को खैंचें, तीस अथवा सोलह ब्राह्मण प्रतिमा को मन्दिर से उठाकर रथ में बड़ी सावधानी से विराजें और दोनों ओर सूर्यनारायण की दोनों पत्नियों को स्थापन करे। सदाचार और वेदपाठी दो ब्राह्मण प्रतिमाओं के पिछली ओर बैठें और प्रतिमाओं को सम्हाले रहें, सारथी भी चतुर हो। सुवर्ण दण्ड से भूषित छत्र रथ के ऊपर लगावे और अति सुन्दर रत्नों से जड़े सुवर्णदण्ड करके युक्त ध्वजा रथ पर चढ़ावे जिसमें अनेक रंगों की सात पताकाएँ लगी हों। रथ के अग्रभाग में सारथि होकर ब्राह्मण बैठे, शूद्र कभी रथ को स्पर्श न करे। जो शूद्र रथ का स्पर्श करे उसकी संतति नष्ट हो जाय। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों को ही रथ के स्पर्श करने का अधिकार है। अपने स्थान से चलकर पहिले नगर के उत्तर द्वार पर रथ जावे, वहाँ एक दिन रहे, अनेक प्रकार के नाच तमाशे वेदपाठ पुराण की कथा और ब्राह्मणभोजन वहाँ करावे और ब्राह्मण ही सब उत्सव करें। नवमी के दिन रथ चलकर पूर्वद्वार पर जाकर एक दिन रहे, वहाँ क्षत्रिय उत्सव करें, तीसरे दिन दक्षिण द्वार पर रथ रहे वहाँ वैश्य पूजन और उत्सव करें। चौथे दिन पश्चिम द्वार पर रथ जावे वहाँ सब शूद्र उत्सव करें, वहाँ से नगर के मध्य में रथ आवे और सम्पूर्ण ब्राह्मण पूजन और उत्सव करें। उस दिन राजा भी बड़ा उत्सव करे, दीपमाला करावे, ब्राह्मणों को दान देवे और भोजन करावे। फिर वहाँ से अपने मन्दिर में रथ आवे तब सब नगर के लोग मिलकर पूजन और उत्सव करें और एक दिन-रात रथ में ही प्रतिमा रहे। दूसरे दिन रथ से उतार बड़ी धूम-धाम से मन्दिर में स्थापन करें। इस प्रकार सप्तमी से त्रयोदशी पर्यंत रथयात्रा हो और चतुर्दशी को अपने स्थान में

स्थापन करें। इस रथयात्रा के करने से सब विघ्न निवृत्त होते हैं।

बावनवाँ अध्याय।

रथ के अंगभंग होने का दुष्ट फल, उसकी शांति, ग्रहशांति।

रुद्र पूछते हैं कि हे ब्रह्माजी! आप फिर रथयात्रा का वर्णन करें इसके सुनने से हमको परम आनन्द प्राप्त होता है। रथ अपने स्थान से किस प्रकार चले और रथ के साथ कौन चलें यह आप कथन करें। यह सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे रुद्र! रथ को धीरे-धीरे सम मार्ग में चलावे जिसमें रथ को धक्का आदि न लगे। पहिले मार्ग-शुद्धि के लिये प्रतीहार और दण्ड-नायक उस मार्ग में जायँ उसके पीछे सूर्यनारायण का रथ और उनके भी पीछे पिंगल माठर दण्ड लेखक आदि सूर्य-भगवान् के गणों के रथ चलें, ऐसी युक्ति से रथ को ले जाय कि उसका कोई अंगभंग न हो। ईषादण्ड टूटे तो ब्राह्मणों को भय हो, अक्ष टूटे तो क्षत्रियों को भय, तुला भंग हो तो वैश्यों को और शमी के टूट जाने से क्षत्रियों को भय होता है। युग के भंग से अनावृष्टि, पीठ के भङ्ग से प्रजाभय, रथ का चक्र टूटने से परचक्र अर्थात् शत्रु की सेना का आगमन, ध्वजा के गिरने से राजा का भङ्ग और प्रतिमा खण्डित हो जाने से राजा की मृत्यु होती है। छत्र टूटे तो युवराज को भय हो, जो इनमें कोई भी उत्पात हो तो शान्ति करे और ब्राह्मणों को दान देवे, भोजन करावे और रथ के ईशानकोण में वेदी अथवा कुण्ड बनाकर घृत और समिधाओं से देवता और ग्रहों की प्रसन्नता के लिये हवन करे और इन मन्त्रों से आहुति देवे। स्वस्त्य-स्त्विह च विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञस्तथैव च। गोभ्यः स्वस्ति प्रजा-भ्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै १ शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शान्ति-रस्तु चतुष्पदे। शं प्रजाभ्यस्तथैवास्तु शं सदात्मनि चास्तु वै २ भूः शान्तिरस्तु देवेश भुवःशान्तिस्तथैव च। स्वश्चैवास्तु तथा

शान्तिः सर्वत्रास्तु गता रवेः ३ त्वं देव जगतः स्रष्टा त्वष्टा चैव त्वमेव हि। प्रजापाल महेशान शान्तिं कुरु दिवस्पते ४ इन मन्त्रों से हवन कर अपनी जन्मराशि से दुष्टस्थान में स्थित ग्रहों की प्रीति के लिये समिधा होम करे, ये समिधा एक-एक प्रादेश लम्बी बनावे, सूर्य के लिये अर्क की समिधा, चन्द्र के पलाश की, भौम के खदिर की, बुध के अपामार्ग की, बृहस्पति के पीपल की, शुक्र के गूलर की, शनैश्चर के शमी की, राहु के दूर्वा की और केतु के हवन के लिये कुशा की समिधा कल्पना करे। उत्तम गौ शङ्ख लालरंग का बैल सुवर्ण वस्त्र श्वेत घोड़ा काली गौ लोह का पात्र और बकरा ये क्रम से नवग्रहों की दक्षिणाएँ हैं। गुड़ और भात घी और खीर हविष्य अन्न खीर दही भात घृत तिल और उड़द के बने पक्कान्न मांस और चित्रवर्ण का भात और कांजी ये नवग्रहों के भोजन हैं। जिस प्रकार शरीर में कवच पहिन लेने से बाण नहीं लगते इसी प्रकार शान्ति करने से किसी प्रकार का उपघात नहीं होता। अहिंसक जितेन्द्रिय नियम में स्थित और न्याय से धन सम्पादन करनेवाले पुरुष के ऊपर ग्रह सदा अनुग्रह करते हैं। यश धन सन्तान और सर्वोपद्रव शान्ति के लिये सदा ग्रहों का पूजन करना चाहिए। सन्तानहीन कन्या सन्तानवाली मृतवत्सा और खोटी सन्तानवाली स्त्री सन्तानदोष निवृत्त होने के लिये जिसका राज्य नष्ट हो गया हो वह राज्य के लिये रोगी पुरुष रोगशान्ति के लिये अवश्य ग्रहशान्ति करे। सुवर्ण स्फटिक ताम्र चन्दन सुवर्ण चाँदी लोहे और सीसे की नवग्रहों की प्रतिमा बनावे अथवा इनके चित्र ही लिख लेवे और जिस ग्रह का जो रंग हो उसी रंग के वस्त्र पुष्प चन्दन बलि आदि देवे और गूगल का धूप सबके अर्पण करे। 'आकृष्णेन रजसा' इत्यादि मन्त्रों करके एक-एक ग्रह के नाम से समिधा घृत शहद और दही करके अठाईस २ आहुति

देवे और ब्राह्मणों को भोजन कराके यथाशक्ति दक्षिणा देवे। मनुष्यों का उदय और सम्पत्ति का नाश ग्रहों के अधीन है, इसलिये ग्रहशान्ति अवश्य करनी चाहिए। ग्रहों का जो पूजन करे उसको ग्रह सब प्रकार का सुख देते हैं और जो इनका अपमान करे उसको अनेक भाँति का दुःख मिलता है। यज्ञ करनेवाले, सत्यवादी, जप, होम, उपवास आदि में तत्पर और धर्मात्मा मनुष्यों को ग्रह-पीड़ा नहीं होती। इस प्रकार शान्ति कर फिर रथ को चलावे और बाक़ी के मार्ग में घुमाकर अपने स्थान में पहुँचावे और वहाँ पहुँच रथ में स्थित देवताओं का पूजन करे। उत्पात होने पर ग्रहों की भाँति रथ में स्थित सब देवताओं का भी पूजन करे तब सब प्रकार की शांति हो।

तिरपनवाँ अध्याय।

सब देवताओं के बलिद्रव्य का कथन।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे रुद्र! जिन जिन देवताओं को जो जो नैवेद्य देना चाहिए वह हम कहते हैं। खीर और यवागू ब्रह्माजी को, कार्त्तिकेय को फल, यमराज को मद्य और मांस, इन्द्र को अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य, अग्नि को हविष्य अन्न, विष्णु को उत्तम अन्न, राक्षसों को मद्य मांस और भात, रेवंत को मांस भात, प्रेतराज को तिल और भात, अश्विनीकुमारों को अपूप, वसुओं को मांस और भात, पितरों को घी, खीर और शहद, कात्यायनी को यवागू, लक्ष्मी को दही, सरस्वती को त्रिमधुर, वरुण को इक्षुरस और भात खंड और भात, कुबेर को घृत और तक्र, मरुतों और मातृकाओं को मांस भात दाल, सर्व भूतों को उल्लोपिकानाम पक्वान्न, गणपति को बहुत उत्तम मोदक, नैर्ऋति को शष्कुली, विश्वेदेवों को सर्व भक्ष्य, ऋषियों को दूध भात; नागों को दूध, सूर्यभगवान् को नाना प्रकार की बलि, सूर्य के बाहनों को घृत और सुरा, ब्रह्मा को घृत, रुद्र को तिल, भास्कर

को देवदारु, इन्द्र को राजवृक्ष, विष्णु को सप्तधान्य, वायु को मत्स्य और भात, यक्षों को अनेक प्रकार के अन्न और विकंकत वृक्ष के पुष्पों की माला, यम को कर्णिकार पुष्प, अश्विनीकुमारों और लक्ष्मी को कमल, चण्डिका को चन्दन, सरस्वती को मक्खन, विनता को विष, अप्सराओं को चमेली के पुष्प, वरुण को अग्निमंथ वृक्ष के फूल, नैर्ऋति को फल और मूल, कुबेर को बेल के फल, मरुतों को कैथ के फल, गंधर्वों को सुगन्ध द्रव्य, वसुओं को कर्पूर, गणाधिप को देवदारु, भूतों को बहेड़े, पितरों को पिंडमूल, गौओं को यव, मातृकाओं को अक्षत, विघ्नपति को गूगल, ऋषियों को पलाश के पुष्प, विश्वेदेवों को मोदक, नागों को विष और सूर्यनारायण को सब प्रकार के पुष्प, धूप और नैवेद्य देवे। इस प्रकार प्रातःकाल और सायंकाल के समय सबको बलि देकर शांति के लिये ब्राह्मणों को तिल देवे अथवा तिलों का हवन करे और सब देवताओं को देवदारु का धूप देवे। कश्यप के अंग से तिल उत्पन्न हुए हैं। इसलिये परम पवित्र और देवता तथा पितरों के प्रिय हैं। तिलों करके स्नान करे और तिलों का दान हवन और भोजन करे तो बहुत फल है। इस प्रकार ग्रह और देवताओं का पूजन कर सूर्य भगवान् की आरती करे, फिर दोनों पत्नियों सहित सूर्यनारायण को वेदी के ऊपर स्थापन कर दश दिन पूजा करे। इस दशाहिका पूजा से बहुत फल होता है। इस प्रकार पूजन कर अपने स्थान पर स्थापन करे।

चौवनवाँ अध्याय।

रथयात्रा का फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे रुद्रजी! इस प्रकार जो रथयात्रा करे अथवा दूसरे से करावे, वह परार्द्ध वर्षपर्यंत सूर्यलोक में निवास करता है और उसके कुल में दरिद्री तथा रोगी नहीं होता।

जो सूर्यभगवान् को अभ्यंग के लिये घृत समर्पण करे वह उत्तम लोक पावे। गंगा आदि तीर्थों से जल लाकर जो स्नान करावे वह वरुणलोक में निवास करे। जो लाल रंग का भात और गुड़ नैवेद्य लगावे वह प्रजापतिलोक को जाय। जो भक्ति से सूर्यनारायण को स्नान कराके पूजन करे, वह सूर्यलोक में निवास करे। जो पुरुष रथ पर सूर्यनारायण को चढ़ावे, रथ के मार्ग को शुद्ध करे अथवा पुष्प, तोरण, पताका आदि से अलंकृत करे वे वायुलोक में निवास करे। जो नृत्य, गीत आदि करके बड़ा उत्सव करें वे सूर्यलोक पावें। सूर्यनारायण जब रथ में विराजमान हों उस दिन जो जागरण करें वे धन, पुत्र आदि से सुखी हों। जब रथ की यात्रा उत्तर अथवा दक्षिण दिशा की ओर हो, उस समय जो दर्शन करें वे धन्य हैं। जिस दिन रथयात्रा करे, उससे वर्षवें दिन फिर करनी चाहिए। यदि वर्ष के अनन्तर यात्रा न बन पड़े तो बारहवें वर्ष बड़े उत्सव से यात्रा करे बीच में न करे। इसी प्रकार इन्द्रध्वज के उत्सव में भी यदि विघ्न हो जाय तो बारहवें वर्ष में ही करे। जो पुरुष रथयात्रा करें वे इन्द्र आदि देवता होते हैं और यात्रा में विघ्न करनेवाले संदेह नाम राक्षस हैं। इतना कह ब्रह्माजी बोले कि हे रुद्र ! इसी प्रकार वैशाख में भी रथयात्रा करे। रथ में स्थापन करके प्रथम सूर्यनारायण का अर्चन करे पीछे परिवार देवता पूजे, सबको बलि देवे, जो सूर्यनारायण का पूजन विना किये और देवता का पूजन करे, वह निष्फल होता है। रथयात्रा के समय जो सूर्यनारायण का दर्शन करें वे निष्पाप हो जाते हैं। षष्ठी सप्तमी पूर्णिमा अमावास्या और रविवार के दिन दर्शन करने का बहुत पुण्य है। आषाढ़, कार्त्तिक और माघ की पूर्णिमा को भी दर्शन का बहुत फल है, ये तीन मास भी रथयात्रा करने के हैं। उस समय जो उपवास कर भक्ति से पूजन करे, वह

उत्तम गति पावे। लोकों पर अनुग्रह करने के अर्थ प्रतिमा में स्थित होकर सूर्यनारायण पूजन ग्रहण करते हैं। जो पुरुष केश मुँडवाकर स्नान, जप, होम, दान आदि करे, वह दीक्षित होता है। सूर्यभक्त पुरुष अवश्य केश मुँडवाये रहें। जो इस प्रकार दीक्षित होकर सूर्यनारायण का आराधन करें, वे परम गति को प्राप्त हों। हे रुद्र! यह रथयात्रा का विधान हमने कहा है। इसको जो पढ़ें अथवा श्रवण करें, वे सब रोगों से मुक्त हों और इसके करनेवाले सूर्यलोक में जायँ।

पचपनवाँ अध्याय।

रथसप्तमी के व्रत का विधान, फल और उद्यापनविधि।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे रुद्र! माघ महीने के शुक्लपक्ष की षष्ठी को उपवास करे और सब उपचारों से सूर्यनारायण का पूजन करे, रात्रि को उनके आगे शयन करे। सप्तमी को प्रभात ही उठ स्नान कर भक्ति से पूजन कर ब्राह्मणभोजन करावे, वित्तशाठ्य न करे। इस प्रकार एक वर्ष व्रत करके रथयात्रा करे। तृतीया को एक भक्त, चतुर्थी को नक्त, पंचमी को अयाचित और षष्ठी को उपवास कर सप्तमी को पारण करे। सुवर्ण का रथ बनाकर उसके बीच ताम्रपात्र में पद्मराग, मोती, नीलम, पन्ना, मूँगा, हीरा आदि रत्नों से जड़ा हुआ पद्म स्थापन कर उसके मध्य में सूर्यनारायण की प्रतिमा को विराजे। ध्वजा, पताका, पुष्प, माला, घण्टा आदि से रथ को अलंकृत कर आचार्य को देवे। जो उपाख्यानसहित सप्तमीकल्प को जाने, वह आचार्य होता है। सुवर्ण का रथ बनाने की सामर्थ्य न हो तो चाँदी का बनावे। ताम्र का अथवा काष्ठ का ही रथ बनाकर पंचरत्न, सुवर्ण, रेशमी वस्त्र और ताम्रपात्रसहित आचार्य के अर्पण कर ब्राह्मण भोजन करावे। हे रुद्र! यह माघ सप्तमी बहुत उत्तम तिथि है। इस दिन किया हुआ स्नान, दान आदि कर्म

सहस्र गुण हो जाता है । ब्राह्मण इस व्रत को करे तो देवता हो, क्षत्रिय करे तो ब्राह्मण हो जाय, वैश्य करे तो क्षत्रिय हो और शूद्र इस व्रत के करने से वैश्य हो जाता है । कन्या इस व्रत को करे तो विद्या, विनय आदि गुणों करके युक्त पति पावे । विधवा इस व्रत को करे तो फिर किसी जन्म में वैधव्य न हो । अपुत्रा स्त्री को पुत्र मिले । यह रथसप्तमी का फल और विधान हमने कहा । इसके श्रवण करने से भी ब्रह्महत्या आदि पातक निवृत्त होते हैं ।

छप्पनवाँ अध्याय ।

राजा शतानीक की की हुई सूर्यप्रशंसा ।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन् ! इतनी कथा कह ब्रह्माजी अपने लोक को गये और रुद्र भी अपने धाम को जाते भये । यह रथसप्तमी का विधान हमने वर्णन किया, अब आप और क्या श्रवण किया चाहते हैं । यह सुमन्तु मुनि का वचन सुन राजा ने कहा कि महाराज, सूर्यनारायण का प्रभाव मैं कहाँ तक कहूँ ? उनकी अनुग्रह से युधिष्ठिर आदि मेरे पितामहों को सब प्रकार के भोजन देनेवाला पात्र मिला, जिससे वन में भी ब्राह्मणभोजन कराते रहे । उनका माहात्म्य सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती, जिनसे सब जगत् उत्पन्न हुआ । दोनों हाथों से ब्रह्मा, विष्णु और उनके ललाट से रुद्र की उत्पत्ति हुई । उनके प्रभाव को कौन वर्णन कर सकता है । अब मैं यह श्रवण किया चाहता हूँ कि ऐसा मन्त्र, स्तोत्र, दान, स्नान, जप, पूजन, होम, व्रत, उपवास आदि कौन कर्म है, जिसके करने से सूर्यभगवान् प्रसन्न हो सब क्लेश निवृत्त करें और संसार-सागर से मुक्ति हो । वही स्तोत्र, मन्त्र, रहस्य, विद्या, पाठ, व्रत उत्तम है, जिसमें सूर्यनारायण का कीर्तन हो । वह जिह्वा धन्य है, जो सूर्यभगवान् की स्तुति करे । पूजा करनेवाले हाथ,

ध्यान में तत्पर मन और सूर्यनारायण के गुणश्रवण में आसक्त कर्ण सफल हैं। जो जिह्वा सूर्यनारायण के गुण न गावे, वह केवल रोग के तुल्य है अथवा प्रतिजिह्वा है। सूर्याराधन किये विना यह शरीर वृथा है। एक बार भी सूर्यनारायण को प्रणाम करे तो संसारसागर का पार पावे। रत्नों का आश्रय मेरु पर्वत, आश्चर्यों का आश्रय आकाश, तीर्थों का आश्रय गङ्गा और सब देवताओं के आश्रय सूर्यनारायण हैं। ये सब कथाएँ बहुत बार मैंने श्रवण की हैं और देवता भी सूर्यनारायण का ही आराधन करते हैं, यह भी मैंने सुना है। अब मेरा भी यह दृढ़ संकल्प है कि सूर्यभगवान् की उपासना भक्ति से कर संसार से मुक्त हो जाऊँ।

सत्तावनवाँ अध्याय।

ऋषियों के प्रति ब्रह्माजी का उपदेश करना।

यह राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! जिस प्रकार ऋषियों को ब्रह्माजी ने सूर्यनारायण के आराधन का विधान उपदेश किया है, वह हम आपको श्रवण कराते हैं। एक समय सब ऋषियों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की कि महाराज! सब प्रकार से चित्तवृत्ति निरोधरूप योग आपने कैवल्यपद देनेवाला कहा, परन्तु वह अनेक जन्मों में सिद्ध होता है, इन्द्रियों को आकर्षण करनेवाले विषय दुर्जय हैं, मन किसी प्रकार से स्थिर ही नहीं होता, राग, द्वेष आदि दोष छूटते नहीं और पुरुष सदा अल्पायुष् होते हैं, उसमें कलियुग के मनुष्य तो अति ही अल्पायुष् होंगे। इसलिये योगसिद्धि का प्राप्त होना अति कठिन है, ऐसा कोई उपाय आप उपदेश करें कि विना परिश्रम संसार से निस्तार हो। यह मुनियों की प्रार्थना सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे मुनीश्वरो! ऐसा उपाय तो एक सूर्यनारायण का आरा-

धन है। यज्ञ, पूजन, नमस्कार, जप, ब्राह्मण-भोजन आदि से उनकी उपासना करो और मन, बुद्धि, कर्म, दृष्टि आदि सब सूर्य-नारायण में तत्पर करो। वे ही परब्रह्म, अक्षर, सर्वव्यापी, सर्वकर्ता अव्यक्त, अचिन्त्य और मोक्ष के देनेवाले हैं, इसलिये आप उनका आराधन कर अपने मनोवांछित फल पाकर संसार से मुक्त हो जाओ। यह ब्रह्माजी से सुन सब मुनि सूर्यनारायण की उपासना में तत्पर हुए। हे राजन्! संसार के दुःखी जीवों को सुख देने-वाला सूर्यनारायण के विना कोई नहीं है, इसलिये उठते-बैठते, चलते, सोते, भोजन करते सूर्यनारायण का ही स्मरण करो और भक्ति से उनके आराधन में प्रवृत्त हो जाओ, जिससे जन्म-मरण आधि-व्याधि से छूटो। जो पुरुष जगत्कर्ता, नित्य वरद, दयालु और ग्रहों के स्वामी श्रीसूर्यनारायण के शरण में प्राप्त होते हैं, वे अवश्य भुक्ति और मुक्ति पाते हैं।

अट्ठावनवाँ अध्याय।

तंडी नामक गण के प्रति सूर्यनारायण का उपदेश करना।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! अब हम तण्डी नामक शिवजी के गण और सूर्यनारायण का संवाद कहते हैं। पूर्व-काल में तण्डी को ब्रह्महत्या लग गई थी, उसको निवृत्त करने के लिये तण्डी ने सूर्यनारायण का बहुत काल तक आराधन और स्तुति की, तब प्रसन्न हो सूर्यभगवान् उनके समीप आये और कहा कि हे तण्डिन्! तुम्हारी भक्ति से हम बहुत प्रसन्न हैं, अपना अभीष्ट वर माँगो। तब तण्डी ने कहा कि महाराज! आपका दर्शन ही दुर्लभ है, यह होने से हमको अति हर्ष हुआ और आप सबके हृदय में स्थित हैं, इससे सबका अभिप्राय जानते हैं। हमको ब्रह्महत्या लगी है, यह निवृत्त हो और संसार से उद्धार करनेवाला उपाय आप उपदेश करें कि जिसके आचरण से जगत् के मनुष्य सुखी हों। यह तण्डी

का वचन सुन सूर्यभगवान् ने उनको निर्बीज योग का उपदेश किया तब तण्डी ने कहा कि महाराज! यह निष्कल योग अति कठिन है, क्योंकि इन्द्रियों को जीतना, मन को स्थिर करना, अहन्ता और ममता को त्यागना और राग-द्वेष से बचना बहुत कष्टसाध्य है। ये बातें कई जन्म अभ्यास करने से प्राप्त होती हैं, इसलिये ऐसा उपाय बतलाइए कि अनायास ही फल प्राप्त हो। यह तण्डी की प्रार्थना सुन सूर्यनारायण कहते भये कि हे गणनाथ! जो अनायास मुक्ति की इच्छा हो, तो हमारे में मन को आसक्त करो, हमारा भक्ति से यजन करो, हमको नमस्कार करो, हमारी भक्ति करो और सब जगत् में हमको व्याप्त समझो, तो चित्त चंचल होने पर भी मनोवांछित फल पाओगे। सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, पाषाण, काष्ठ आदि से हमारी प्रतिमा बनवाकर अथवा चित्र ही लिखवाकर अनेक प्रकार के उपचारों से उसका भक्ति करके पूजन करो और चलते-फिरते, भोजन करते, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे उसी का ध्यान करो और सुन्दर तीर्थों के जल से स्नान कराके गन्ध, पुष्प, वस्त्र, भूषण, नाना प्रकार के नैवेद्य और जो-जो पदार्थ तुमको प्रिय हों सो सब अर्पण करो, और जो कभी गान करने की इच्छा हो तो हमारी मूर्ति के आगे हमारे गुणानुवाद गाओ, कथा श्रवण करने की इच्छा हो तो हमारी कथा सुनो। इस प्रकार हमारे में मन को अर्पण करने से राग, द्वेष आदि नष्ट हुए विना भी परमपद को प्राप्त होगे। सब कर्म हमारे अर्पण करो। यह संक्षेप से हमने क्रियायोग तुमसे कथन किया। इसके आचरण से सब दोष, लाज से छूट मुक्तिभागी होगे। यह सूर्यनारायण का वचन सुन तण्डी ने कहा कि महाराज! यह अमृतरूप क्रियायोग आप विस्तार से कथन करें, क्योंकि आपके विना हमको और कौन पुरुष हित

उपदेश करेगा और अति पवित्र यह परम रहस्य हम कहाँ से पावेंगे । यह सुन सूर्यभगवान् ने कहा कि तुम चिन्ता मत करो, यह सम्पूर्ण क्रियायोग विस्तार से ब्रह्माजी तुमको उपदेश करेंगे और हमारे प्रसाद से तुम ग्रहण करोगे । इतना कह त्रैलोक्यदीप श्रीसूर्यनारायण अन्तर्द्धान हुए और तंडी भी ब्रह्माजी के स्थान को जाते भये ।

उनसठवाँ अध्याय ।

तण्डी के प्रति ब्रह्माजी का किया उपदेश ।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक ! तण्डी ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर कहते भये कि महाराज ! हमको सूर्यनारायण ने भेजा है । आप कृपा कर क्रियायोग हमको उपदेश करें, जिसको करके हम शीघ्र ही सूर्यभगवान् को प्रसन्न करें । यह तण्डी की प्रार्थना सुन ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! ब्रह्महत्या तो सूर्यनारायण का दर्शन करते ही तुम्हारी नष्ट हो गई । अब यदि सूर्यनारायण का आराधन करने की तुम्हारी इच्छा है, तो प्रथम दीक्षा ग्रहण करो, क्योंकि दीक्षा विना उपासना नहीं होती, अनेक जन्म के पुण्य से सूर्य में भक्ति होती है । जो पुरुष सूर्यनारायण से द्वेष रक्खें और ब्राह्मण तथा वेद की निन्दा करें, उनको अवश्य वर्णसंकर जानो । माया के प्रभाव से पाखण्ड में अधम पुरुषों की प्रवृत्ति होती है । जब थोड़ा-सा पाप शेष रहे, तब दीक्षाग्रहण की इच्छा होती है । इस संसारसागर में डूबते हुए मनुष्यों को हाथ पकड़कर उद्धार करनेवाले एक सूर्यनारायण हैं, इसलिये हे तण्डिन् ! तुम दीक्षा ग्रहण करके सूर्यभगवान् की उपासना करो, जिससे शीघ्र ही तुम पर अनुग्रह करें । यह सुनकर तण्डी ने पूछा कि महाराज ! कैसे मनुष्य दीक्षाग्रहण के अधिकारी होते हैं और दीक्षा ग्रहण करने के अनन्तर क्या करना चाहिए, यह आप अनुग्रह

कर वर्णन करें। तब ब्रह्माजी कहने लगे कि हे तण्डिन्! मन वचन कर्म करके हिंसा न करे, सूर्यभगवान् में भक्ति रक्खे, दीक्षायुक्त ब्राह्मणों को नित्य नमस्कार करे, किसी से द्रोह न करे, सब देवता और सब लोकों को सूर्यरूप समझे, मनुष्य पक्षी पशु देव वृक्ष पाषाण पिपीलिका आदि जगत् के सब जीव पदार्थ और आत्मा को सूर्य से भिन्न न समझे और मन वचन कर्म करके जीवों में पापबुद्धि न रक्खे, वह दीक्षा का अधिकारी होता है। जो गति सूर्यनारायण के आराधन से प्राप्त होती है, वह न तो तप से और न यज्ञ करने से मिले। जो सर्व प्रकार से सूर्यनारायण का भक्त हो, वह धन्य है, उसके अनेक कुलों का उद्धार हो जाता है। जो सूर्यनारायण की मूर्ति स्थापन करे, वह सूर्यलोक में निवास करे। मन्दिर बनावे तो जितने वर्ष मन्दिर खड़ा रहे, उतने हज़ार वर्ष सूर्यलोक में आनन्द भोगे। जो निष्काम उपासना करे, वह मुक्ति पावे। जो उत्तम लेपन सुन्दर पुष्प और अति सुगन्ध धूप नित्य सूर्यनारायण के अर्पण करे, वह यज्ञ के फल को प्राप्त होता है। यज्ञ में बहुत सामग्री चाहिए, इसलिये दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते। परन्तु भक्ति करके दूर्वा से भी सूर्यनारायण का पूजन करें तो यज्ञ से भी अधिक फल पावें। हे तण्डिन्! गन्ध पुष्प धूप वस्त्र भूषण भाँति-भाँति के भोजन फल जो तुमको मिलें और प्रिय हों वही भक्ति से सूर्यनारायण को निवेदन करो। तीर्थ के जल दही दूध घृत सहत से स्नान कराओ, गीत वाद्य नृत्य स्तुति ब्राह्मणभोजन हवन आदि से भगवान् को प्रसन्न करो, परन्तु सब काम भक्ति से करो। हमने सूर्यनारायण का ही आराधन करके सृष्टि रची है, विष्णु उनके अनुग्रह से जगत् का पालन करते हैं, और रुद्र उनकी इच्छा से संहार करते हैं, उनके तेज से ही राशि नक्षत्र और ग्रह प्रकाशित हैं। तुम भी पूजन व्रत उपवास आदि से

सूर्यनारायण का आराधन करो, जिससे दुःख दूर हों।

साठवाँ अध्याय।

उपवास की विधि, पूजन का फल, फलसप्तमीव्रत का विधान।

तंडी पूछते हैं कि महाराज! उपवास करके सूर्यनारायण क्योंकर प्रसन्न होते हैं और उपवास करनेवाले पुरुषों को कौन-कौन पदार्थ त्याज्य हैं और आराधन में क्या-क्या करना चाहिए, यह आप वर्णन करें। यह तण्डी का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे गणाधीश! पुष्प आदि करके पूजन करने से ही सूर्यनारायण उत्तम फल देते हैं, उपवास करने से क्यों न मनोवांछित फल देवें। पापों से उपावृत्त अर्थात् निवृत्त होकर गुणों के साथ जो निवास करना है उसको उपवास कहते हैं जिसमें सब भोगों का त्याग है। एक रात्रि दो रात्रि, तीन रात्रि अथवा नक्त उपवास कर निष्काम हो मन वचन कर्म करके सूर्यनारायण के आराधन में तत्पर हो वह ब्रह्मलोक पावे। सूर्यनारायण का आराधन विना किये और किसी प्रकार से सद्गति नहीं मिलती, इसलिये पुष्प धूप चन्दन नैवद्य आदि से सूर्यनारायण का यजन करो और उनकी प्रसन्नता के लिये उपवास करो। जो उत्तम पुष्प न मिलें तो वृक्षों के कोमल पत्र और दूर्वा से पूजन करो। पुष्प पत्र फल जल जो मिले वही सूर्यनारायण के अर्पण करो परन्तु भक्ति रक्खो। जो सूर्यनारायण के मन्दिर में झाड़ू दे वह धूलि में जितनी कणिकाएँ हों उतने वर्ष स्वर्ग में रहे। गोचर्म मात्र भूमि भी जो मन्दिर में मार्जन करे वह उस दिन के किये पापों से छूट जाता है। जो गोबर से, मृत्तिका करके, रंगों करके मन्दिर में लेपन करे वह सूर्यलोक में जाय। जो जल से छिड़काव करे वह वरुणलोक में निवास करे। जो लेपन किये हुए मन्दिर में पुष्प छिड़कावे वह कभी दुर्गति न पावे। जो मन्दिर में दीपक प्रज्वलित करे वह

सब ऋतुओं में सुख देनेहारा विमान पावे। मन्दिर पर ध्वजा चढ़ावे और उसकी पताका वायु से हिले तो सब ज्ञात और अज्ञात पाप ध्वज चढ़ानेवाले के नष्ट हो जायँ। जो गीत वाद्य और नृत्य करके मन्दिर में उत्सव करे वह उत्तम विमान में बैठे और गन्धर्व तथा अप्सरा उसके आगे गावें और नाचें। जो मन्दिर में पुराण बाँचे वह उत्तम बुद्धि पावे और जातिस्मर होय। सूर्यनारायण के आराधन से जो चाहो सो मिल सकता है। इनके आराधन से कई मनुष्य गन्धर्व, कई विद्याधर और कई देवता बन गये हैं। इनके आराधन से ही इन्द्रपद मिलता है। ब्रह्मचारी गृहस्थ और वानप्रस्थों के ये ही उपास्य हैं और संन्यासी भी इनके ही अनुग्रह से मुक्ति पाते हैं; क्योंकि ये मोक्ष के द्वार हैं। इस प्रकार सब वर्ण और आश्रमों के आश्रय सूर्यनारायण हैं। हे तरिडन्! अब हम काम्य उपवास और फलसप्तमी का वर्णन करते हैं, जिस फलसप्तमी के व्रत करने से सब पाप निवृत्त हों और सूर्यलोक मिले। भाद्रपद शुक्लचतुर्थी को एक बार भोजन कर पञ्चमी को आयाचित व्रत करे। फिर षष्ठी को जितक्रोध और जितेन्द्रिय होकर उपवास करे और भक्ति से सब उपचार करके सूर्यनारायण का पूजन कर रात्रि को स्थण्डिल के ऊपर शयन करे। सप्तमी को प्रभात ही उठ स्नान कर पूजन करे और खजूर नारिकेल आँब मातुलुंग आदि फल नैवेद्य लगावे, ब्राह्मणों को देवे और आप भी फल ही खाय। जो फल न मिलें तो चावल अथवा गेहूँ का आटा लेकर उसमें गुड़ मिलाकर उसी से फल बनाकर घी में उतार लेवे और वे ही सूर्यनारायण को नैवेद्य लगावे, फिर हवन कर ब्राह्मणभोजन करावे। इस प्रकार एक वर्ष सप्तमी व्रत करके अन्त में उद्यापन करे। गोमूत्र गोबर गोदुग्ध दही घृत कुशा का जल श्वेत मृत्तिका तिल और सरसों का उबटन दूर्वा

गौ के शृंग धोने का जल और चमेली के पुष्प इनसे स्नान करे और इनको ही प्राशन करे और सब प्रकार के फल उत्तम घर जो सब वस्तुओं से पूर्ण हो सवत्सा गौ ताम्रपात्र लाल रंग के वस्त्र और सुवर्ण के बने हुए फल ब्राह्मणों को देवे। दरिद्र हो तो चाँदी के अथवा आटा के फल बनाकर देवे। सुवर्ण रत्न और वस्त्र आचार्य को देवे और ब्राह्मणभोजन कराके व्रत समाप्त करे यह फल सप्तमी का विधान है। जो इस व्रत को करे वह पाप, दरिद्र और सब प्रकार के दुःखों से छूटे और अन्त में उत्तम विमान में बैठ सूर्यलोक को जावे। इस व्रत के करने से ब्राह्मण मुक्ति पावे। क्षत्रिय इन्द्रलोक में और वैश्य कुबेर के लोक में निवास करे और शूद्र इस व्रत के करने से जन्मान्तर में ब्राह्मण हो। अपुत्रा स्त्री पुत्र, दुर्भगा सौभाग्य और कन्या इस व्रत से उत्तम वर पावे। विधवा इस व्रत को करे तो फिर किसी जन्म में विधवा न हो। इस व्रत से सब फल प्राप्त होते हैं और इस माहात्म्य के पढ़ने तथा सुनने से भी सब कार्य सिद्ध होते हैं।

इकसठवाँ अध्याय।

व्रत के दिन त्याज्य पदार्थ रहस्यसप्तमी का फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे तण्डिन्! अब हम रहस्यसप्तमी व्रत का विधान कहते हैं जिस व्रत के करने से सात अगले और सात पिछले कुलों का उद्धार हो। नियम से जो यह व्रत करे वह धन पुत्र आरोग्य विद्या विजय और धर्म पावे। नियम ये हैं कि व्रत के दिन तैल को स्पर्श न करे, नील वस्त्र न धारे, आमले से स्नान न करे और किसी से कलह न करे। नीलवस्त्र पहिनकर जो सत्कर्म करे वह निष्फल होता है। जो ब्राह्मण एक बार नीलवस्त्र पहिने तो एक उपवास करे और पंचगव्य पान करे तब वह शुद्ध होता है। नील का रंग जो रोमकूप

में चला जाय तो तीन कृच्छ्रचान्द्रायण करने से शुद्धि होती है। जो भूल करके नील के काष्ठ से दन्तधावन करे वह दो कृच्छ्र-चान्द्रायण करके शुद्ध हो। जहाँ नील एक बार बोया जाय वह भूमि बारह वर्ष तक अपवित्र रहती है। यह तो नील का दोष है और सप्तमी को जो तैल का स्पर्श करे उसकी प्रिय भार्या नष्ट हो जाय, इसलिये तेल को भी स्पर्श न करे। व्रत के दिन मांस न खाय, मद्य न पीवे, चण्डाल और रजस्वला स्त्री से सम्भाषण न करे, किसी से द्रोह और क्रूरता न करे, गीत न गावे, नृत्य न करे, बाजा न बजावे, शव को न देखे, वृथा हँसे नहीं, स्त्री के साथ शयन न करे, द्यूत न खेले, रोदन न करे, दिन में सोवे नहीं, शिर से जूँ न निकाले, असत्य न बोले, दूसरे का अनिष्ट चिन्तन न करे, किसी जीव को ताड़न न करे, अति भोजन, गलियों में घूमना, दम्भ शोक शठता और क्रोध इन सबका यत्न से त्याग करे। चैत्र से इस व्रत का आरम्भ करे। सूर्य अर्यमा मित्र वरुण इन्द्र विवस्वान् पर्जन्य पूषा भग त्वष्टा और विष्णु ये बारह सूर्य हैं। इनका क्रम से चैत्र आदि महीनों में पूजन करे। सप्तमी के दिन भोजक को भोजन कराके घृत सहित पात्र और एक माशा सुवर्ण देवे और रक्तवस्त्र भी देवे। यदि भोजक न मिले तो पौराणिक ब्राह्मण को ही भोजन कराके घृतपात्र और सुवर्ण देवे। यह सप्तमी का माहात्म्य हमने वर्णन किया जिसके श्रवण करने से भी सूर्य-लोक की प्राप्ति होती है। हे राजा शतानीक! इतना कह ब्रह्माजी अन्तर्धान भये और तण्डी भी सूर्यनारायण का आराधन कर अपने मनोवांछित फल को प्राप्त भये।



बासठवाँ अध्याय ।

शंख और द्विज का संवाद, वशिष्ठ और साम्ब का संवाद, याज्ञवल्क्य और ब्रह्मा जी का संवाद ।

राजा शतानीक कहते हैं कि हे सुमन्तुमुनि ! आप और भी सूर्यनारायण का प्रभाव वर्णन करें । आपका अमृत-समान वचन सुनते-सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती । यह राजा का वचन सुन सुमन्तुमुनि ने कहा कि हे राजन् ! इस विषय में शंख और द्विज का संवाद है, हम आपको श्रवण कराते हैं । एक अति रमणीय आश्रम था जिसमें वृक्ष फलों के भार से झुक रहे थे । कहीं मृग अपने शृंगों से परस्पर खुजाते थे, किसी ओर मयूरों का नृत्य और भृङ्गों के मधुर ध्वनि का कोलाहल हो रहा था । ऐसे मनोहर आश्रम के मध्य में अनेक तपस्वियों से सेवित शंख-मुनि विराजमान थे । उस अवसर में भोजकों के कुमार उनके समीप गये और विनय से सबों ने प्रार्थना की कि महाराज ! वेदों में हमको सन्देह है, वह आप निवृत्त करें । यह उनकी प्रार्थना सुन प्रसन्न हो शंखमुनि उनको वेद पढ़ाने लगे । एक दिन वे सब कुमार वेद पढ़ते थे, उस समय परम तपस्वी द्विज-नाम मुनि वहाँ आये । शंखमुनि ने भी उनका बहुत आदर सत्कार किया और आसन पर बैठाकर कुमारों से कहा कि भाई, शिष्ट पुरुष के आगमन से अनध्याय होता है, इसलिये तुम अपना पढ़ना बन्द करो । यह सुनते ही कुमारों ने अपनी-अपनी पुस्तकें बाँध लीं । द्विजमुनि ने शंख से पूछा कि ये बालक किसके हैं, और क्या पढ़ते हैं ? यह सुन शंखमुनि बोले कि महाराज ! ये भोजकों के कुमार हैं और कल्पसूत्रसहित चारों वेद सूर्यनारायण के पूजन और हवन का विधान प्रतिष्ठा विधि रथयात्रा की रीति और सप्तमी तिथि का कल्प ये पढ़ते हैं । तब द्विजमुनि ने पूछा कि सप्तमीव्रत का क्या विधान है, सूर्यमन्दिर में गन्ध

पुष्प दीप आदि देने से क्या फल होता है, किस व्रत और दान से सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं, और कौन पुष्प धूप और बलि देने चाहिए यह सब हमसे आप कथन करें और सूर्यनारायण का माहात्म्य भी विशेष करके वर्णन करें। यह द्विजमुनि का वचन सुन शंखमुनि बोले कि महाराज ! साम्ब और वशिष्ठ का संवाद हम वर्णन करते हैं । एक समय वशिष्ठजी के आश्रम में साम्ब गये और उनके चरणों में प्रणाम किया । वशिष्ठजी ने भी उनका बहुत सत्कार किया और अपने समीप बैठाकर पूछा कि हे साम्ब ! तुम्हारा सब देह कुष्ठ से फट गया था वह क्योंकर अच्छा भया, और यह अति उत्तम रूप और अधिक तेज किस कर्म के करने से पाया यह कहो । यह वशिष्ठजी की आज्ञा पाकर विनय से साम्ब ने कहा कि महाराज ! सूर्यभगवान् का मैंने आराधन किया उससे मुझे उन्होंने साक्षात दर्शन दिये और उनसे वर भी पाया। यह सुन फिर वशिष्ठजी ने पूछा, किस विधि से तुमने आराधन किया और सूर्यनारायण का साक्षात् दर्शन क्योंकर भया, तब साम्ब ने कहा कि महाराज ! आप प्रीति से श्रवण करें, मैं सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ। पूर्वकाल में मैंने दुर्वासामुनि से उपहास्य किया इसलिये उन्होंने क्रोध कर मुझे शाप दिया कि कुष्ठी हो जा। तब मेरे शरीर में कुष्ठरोग हुआ। और मैंने अति व्याकुल हो अपने पिता श्रीकृष्ण-भगवान् से कहा कि महाराज ! दुर्वासामुनि के शाप से मैं कुष्ठरोग करके बहुत पीड़ित हूँ, शरीर मेरा गलता है, स्वर दबा जाता है, पीड़ा से प्राण निकलते हैं, अब आपकी आज्ञा पाकर प्राण त्याग किया चाहता हूँ, आप भी कृपा कर यह आज्ञा मुझे देवें कि मैं इस दुःख से छूटूँ। यह मेरा दीन वचन सुन पिता ने क्षणमात्र विचारकर कहा कि हे पुत्र ! धैर्य कर, घबरा मत, धैर्य त्यागने से रोग अधिक सताता है। भक्ति से

देवता का आराधन करो जिससे सब व्याधि निवृत्त हो। यह पिता का वचन सुन मैंने कहा कि महाराज! ऐसा कौन देवता है कि जिसके आराधन से यह दुष्ट रोग निवृत्त हो, आप ही बतावें। तब उन्होंने कहा कि हे पुत्र! एक समय याज्ञवल्क्यमुनि ने ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्माजी को प्रणाम कर विनय से पूछा कि महाराज! मोक्ष की इच्छावाला पुरुष किस देवता का आराधन करे और अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति किसकी उपासना करने से हो। यह विश्व किसने उत्पन्न किया और किसमें लीन होता है यह आप वर्णन करें। यह याज्ञवल्क्यमुनि का प्रश्न सुन ब्रह्माजी ने कहा कि आपने बहुत अच्छी बात पूछी, यह प्रश्न सुन हम बहुत प्रसन्न हुए, अब हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर कथन करते हैं। जो देवता अपने उदय के साथ ही सब जगत् का अन्धकार हर लेता है, तीनों लोकों को प्रकाशित करता है, अनादि निधन अव्यय शाश्वत अक्षय कर्मसाक्षी सर्व देवता और जगत् का स्वामी पितरों का भी पिता देवताओं का भी देव जगत् का आधार सृष्टि स्थिति और संहार करनेहारा योगी पुरुष वायुरूप होकर जिसमें लीन हो जाते हैं, जिसके हज़ार किरणों में देवता मुनि और सिद्ध निवास करते हैं जैसे वृक्ष की शाखाओं में पक्षी, जनक व्यास शुकदेव आदि योगी जिसके मण्डल में प्रविष्ट हुए हैं वे प्रत्यक्ष देवता सूर्यनारायण हैं, ब्रह्मा विष्णु शिव आदि देवताओं का नाममात्र श्रवण में आता है, सबके दृष्टिगोचर नहीं होते और सूर्यनारायण सबको प्रत्यक्ष हैं, इसलिये सब देवताओं से उत्कृष्ट हैं। इसलिये हे याज्ञवल्क्य! तुम भी सूर्यनारायण को छोड़ और किसी की उपासना मत करो। इस प्रत्यक्ष देव के आराधन से सब फल प्राप्त हो सकते हैं। यह ब्रह्माजी का वचन सुन याज्ञवल्क्यमुनि बोले कि महाराज! आपने बहुत उत्तम उपदेश

मुझे किया । सूर्यनारायण का प्रभाव मैंने पहिले भी बहुत बार श्रवण किया है जिनके दक्षिण अंग से विष्णु, वाम से आप और ललाट से रुद्र उत्पन्न हुए हैं, फिर कौन देवता उनकी तुल्यता कर सकता है और उनके गुण किससे वर्णन किये जायँ जिनको एक बार प्रणाम करने से ही मुक्ति मिलती है । अब मैं उनके आराधन का प्रकार सुनना चाहता हूँ कि जिससे संसार-सागर का पार पाऊँ, कौन से व्रत उपवास दान होम जप आदि करने से सूर्यनारायण प्रसन्न होकर समस्त क्लेश हरते हैं यह आप कृपा कर मुझे उपदेश करें । यह भक्ति से भरा हुआ याज्ञवल्क्यमुनि का वचन सुन प्रसन्न हो ब्रह्माजी कहने लगे कि हे याज्ञवल्क्य ! जो सूर्यनारायण के आराधन का उपाय तुम पूछते हो वह हम वर्णन करते हैं, एकाग्रचित्त होकर सुनो । आदि अन्त से वर्जित सर्वव्यापी परब्रह्म लीला से प्रकृतिपुरुषरूप धार संसार उत्पन्न करनेहारा अक्षर सृष्टि के रचने के समय ब्रह्मा, पालन के अवसर में विष्णु और संहार काल में रुद्ररूप धारनेहारा और सब देवों करके पूजित सूर्य हैं । अब हम सूर्यनारायण को प्रणाम कर उनके आराधन का अति गुप्त क्रम कहते हैं जो हमको सूर्यनारायण ने प्रसन्न हो अपने मुख से कहा है ।

तिरसठवाँ अध्याय ।

सूर्यभगवान् का परब्रह्मरूप से वर्णन ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे याज्ञवल्क्य ! एक समय हमने स्तुति करके सूर्यनारायण से पूछा कि महाराज ! वेद और वेद के अंगों में आपका ही प्रतिपादन है शाश्वत अज परब्रह्म स्वरूप आप हैं, यह जगत् आपमें स्थित है, चारों आश्रम आपकी अनेक मूर्तियों का पूजन करते हैं, सबके मातापिता और पूज्य आप हैं, फिर आप किस देवता का ध्यान और पूजन

करते हैं यह आप हमारा सन्देह निवृत्त करें। यह सुन सूर्य-नारायण हमको कहने लगे कि हे ब्रह्माजी! यह अति गुप्त बात है परन्तु आप हमारे परमभक्त हैं इसलिये वर्णन करते हैं। जो परमात्मा सब भूतों में व्याप्त अचल नित्य सूक्ष्म और इन्द्रियों करके अगम्य है जिसको क्षेत्रज्ञ पुरुष हिरण्यगर्भ महान् प्रधान बुद्धि आदि अनेक नामों से पुकारते हैं, जो निर्गुण होकर भी अपनी इच्छा से सगुण हो जाता है, सबका साक्षी है, आप कोई कर्म नहीं करता और न कर्मफल से लिप्त होता है, जिस परमात्मा के हज़ारों शिर नेत्र नासिका कान मुख और हज़ारों ही हाथपैर हैं, जो सब जगत् को आवरण करके स्थित है, सब शरीरों में एकाकी विचरता है, शरीर और शुभ अशुभ कर्म को क्षेत्र कहते हैं उनके जानने से परमात्मा क्षेत्रज्ञ कहाता है, अव्यक्त पुर में शयन करने से पुरुष बहुत रूप धारने से विश्वरूप और सर्वोत्तम होने करके महापुरुष कहाता है, वह एक ही गुणों के अनुसार अनेक रूप धारता है जिस प्रकार एक ही वायु प्राण, अपान आदि रूप धारता है और जिस विधि एक ही अग्नि के स्थानभेद से अनेक नाम हो जाते हैं इसी भाँति परमात्मा भी अनेक भेदों से बहुत रूप धारता है, जिस प्रकार एक दीप से हज़ारों दीप प्रज्वलित हो जाते हैं इसी विधि एक परमात्मा से सब जगत् उत्पन्न होता है। जब वह अपनी इच्छा से जगत् का संहार करता है तब एकाकी रह जाता है, जगत् में कोई स्थावर जंगम पदार्थ नहीं है जो परमेश्वर से हीन हो अर्थात् परमात्मा सबमें व्याप्त है उस अक्षय अप्रमेय और सर्वगत परमात्मा से त्रिगुणस्वरूप और सर्वकारण अव्यक्त उत्पन्न भया है, जिससे बढ़कर कोई दूसरा नहीं है, सम्पूर्ण देवता और अनेक मतों में स्थित सब वर्णाश्रम के मनुष्य उस परमात्मा का पूजन कर उत्तम फल को

प्राप्त होते हैं उसी आत्मस्वरूप पर परमेश्वर का हम ध्यान करते हैं और सूर्यरूप अपने आत्मा का ही पूजन करते हैं, हे याज्ञवल्क्यमुनि! यह बात सूर्यभगवान् ने अपने मुख से हमको कथन करी है।

चौंसठवाँ अध्याय।

अनेक पुष्प चढ़ाने का पृथक्-पृथक् फल, मंदिर मार्जन और लेपन करने का फल, दीप आदि का फल, सिद्धार्थ सप्तमी का विधानफल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे याज्ञवल्क्य! पद्मरूप सूर्यभगवान् को कमल पुष्प और गुग्गुल के धूप से हम पूजते हैं। व्योमरूप सूर्य को चमेली के पुष्प और विजयनामक धूप से शिवजी पूजन करते हैं, और चक्ररूप सूर्यभगवान् का नीलकमल और अगुरु धूप से विष्णु भगवान् यजन करते हैं। कस्तूरी सिल्हकनाम सुगन्धि द्रव्य चन्दन अगुरु कपूर नागरमोथा और शर्करा इन सबको मिलाने से विजय धूप होता है। हमने सूर्यनारायण से पूछा कि कौन-कौन पुष्प आपको प्रिय हैं, तब उन्होंने जो-जो बताये उनका हम वर्णन करते हैं। मल्लिका पुष्प सूर्यनारायण को अर्पण करने से उत्तम भोग मिलते हैं, श्वेत कमलों से सौभाग्य, कुटज पुष्पों से अक्षय ऐश्वर्य, मन्दार अर्थात् आक के पुष्पों से कुष्ठरोग का नाश और बिल्वपत्रों करके पूजन करने से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। आक के पुष्पों की माला से धन मिलता है, बकुल पुष्पों की माला से कन्या का लाभ, पलाश के पुष्पों से अरिष्टनिवृत्ति और अगस्त्य पुष्पों से पूजा करे तो सूर्यनारायण का अनुग्रह हो। करवीर के पुष्प जो सूर्यभगवान् के समर्पण करे वह उनका गण हो। कमल के हज़ार पुष्प चढ़ावे तो सूर्यलोक में निवास करे। उत्तम गंध से लेपन करे तो सद्गति पावे। सूर्यभगवान् के मंदिर को जो मार्जन कर गोबर से

लीपे वह सब रोगों से मुक्त हो और बहुतसा धन पावे और भक्ति करके गेरू से लेपन करे तो बहुत लक्ष्मी पावे। केवल मृत्तिका से ही मन्दिर में लेपन करे तो अठारह कुष्ठों से मुक्त हो। सब पुष्पों में करवीर के पुष्प और सब विलेपनों में रक्त-चन्दन उत्तम हैं, इनसे अधिक कोई वस्तु सूर्यनारायण को प्रिय नहीं। करवीर पुष्पों से जो सूर्यभगवान् का पूजन करे वह संसार के सब सुख भोगकर स्वर्ग में वास करे। मन्दिर में लेपन कर मण्डल बनावे तो सूर्यलोक पावे। एक मण्डल बनावे तो धर्म हो, दो मण्डल रचने से आरोग्य, तीन से अविच्छिन्न सन्तान, चार से लक्ष्मी, पाँच से धन और धान्य, छः से आयुर्बल और यश और सात मण्डल रचने से आयुष् धन पुत्र और राज्य पावे और अन्त में सूर्यलोक को प्राप्त हो। मन्दिर में घृत का दीपक प्रज्वलित करे तो नेत्ररोग न हो। महुवे के तेल के दीप से सौभाग्य मिले। तिलतैल के दीप से सूर्यलोक की प्राप्ति हो। पहिले गन्ध पुष्प धूप दीप आदि उपचारों से पूजन कर भाँति-भाँति के नैवेद्य लगावे। पुष्पों में चमेली और कनेर के पुष्प, धूपों में विजयधूप गन्धों में केसर, लेपों में रक्तचन्दन, दीपों में घृत दीप और नैवेद्यों में मोदक सूर्यनारायण को परम प्रिय हैं, इनसे ही पूजन करना चाहिए। पूजन के अनन्तर प्रदक्षिणा और नमस्कार करके हाथ में सिद्धार्थ अर्थात् श्वेत सर्षप का एक दाना और जल लेकर सूर्य भगवान् के सम्मुख खड़ा हो अभीष्ट कामना को हृदय में चिन्तन करता हुआ सिद्धार्थ सहित जल पीवे परन्तु जो दाँतों से स्पर्श न हो। दूसरी सप्तमी को दो दाने श्वेत सर्षप के और जलपान करे। इसी प्रकार सातवीं सप्तमी पर्यंत एक-एक दाना बढ़ाता जाय और इस मंत्र से अभिमन्त्रण करके पान करे। सिद्धार्थकस्त्वं हि लोके सर्वत्र श्रूयसे यथा। तथा मामपि

सिद्धार्थमर्थंतः कुरुतां रविः ॥ पीछे जप और हवन करे और यह भी विधि है कि प्रथम सप्तमी को जल के साथ सिद्धार्थ पान करे, दूसरी को घृत के साथ, आगे सहत दही दूध गोबर और पञ्चगव्य के साथ क्रम से सातवीं सप्तमी तक पान करे। इस प्रकार जो सर्षप सप्तमी का व्रत करे वह बहुत धन पुत्र और ऐश्वर्य पावे। उसके सब अर्थ सिद्ध हों और सूर्यलोक में निवास करे।

पैंसठवाँ अध्याय।

शुभ स्वप्नों का फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे याज्ञवल्क्य ! अब हम स्वप्न का फल कहते हैं। सप्तमी को उपवास कर विधिपूर्वक पूजन जप होम आदि करे और रात्रि के समय सूर्यनारायण का स्मरण करता हुआ कुश की शय्या पर शयन करे तब रात्रि को स्वप्न होता है। जो स्वप्न में सूर्य का उदय इन्द्रध्वज और चन्द्रमा को देखे उसको सब सम्द्धियाँ प्राप्त हों। शङ्ख माला वीणा श्वेत कमल चामर दर्पण पुत्र की प्राप्ति देखने से और रुधिर के पान करने और श्रवण से ऐश्वर्य हो। घृत करके प्लुत प्रजापति के दर्शन से पुत्र की प्राप्ति हो। वृक्ष पर चढ़े अथवा अपने मुख में महिषी गो अथवा सिंही का दोहन करे तो ऐश्वर्य पावे। जिसकी नाभि से धनुष और बाण निकलें उन करके सिंह अथवा सर्प को मारे वह लक्ष्मी पावे। सुवर्ण चाँदी के पात्र में अथवा कमल के पत्र में जो खीर खाय उसको बल की प्राप्ति हो। द्यूतवाद और युद्ध में जय हो तो उत्तम होता है। अग्नि को ग्रास कर जाय तो जठराग्नि की वृद्धि हो। अपने अङ्ग प्रज्वलित हों और नाड़ियों का बेध हो तो सम्पत्ति मिले। श्वेतवर्ण के वस्त्र पुष्प माला अन्न और पक्षियों का दर्शन श्रेष्ठ है। शरीर में विष्ठा का लेप करे शिर और भुजा अनेक देख पड़ें अगम्या स्त्री से गमन करे श्लोक पढ़े तो शुभ है। देवता ब्राह्मण आचार्य गुरु

वृद्ध तपस्वी स्वप्न में जो कुछ कह देवे वह सत्य होता है। शिर कट जाय अथवा फूट जाय, पैरों में बेड़ी पर जायँ तो राज्य मिले। रोदन करे तो हर्ष की प्राप्ति हो। घोड़ा बैल और श्वेत हाथी के ऊपर निर्भय होकर जो चढ़े वह राज्य पावे। राजा को अथवा कमल को देखे तो लाभ हो। ग्रह और ताराओं को ग्रास करे, पृथिवी को उलट देवे और पर्वतों को उखाड़े तो राज्य पावे। पेट से आँत निकल पड़े और उस करके वृक्ष को लेपटे, नदी अथवा समुद्र को पान करे, पर्वत समुद्र और नदी का लंघन करे तो बहुत ऐश्वर्य पावे। सुन्दर स्त्री शरीर में प्रवेश करे,बहुत सी स्त्री आशीर्वाद देवें, शरीर को कृमि भक्षण करे, स्वप्न में स्वप्न का ज्ञान हो, अभीष्ट बात सुनने और कहने में आवे और मंगलदायक पदार्थों का दर्शन तथा प्राप्ति हो तो धन और आरोग्य की प्राप्ति हो। जिन स्वप्नों का फल राज्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति है वे स्वप्न रोगी देखे तो रोग से छूटे। इस प्रकार स्वप्न देखे प्रभात ही स्नान करे राजा ब्राह्मण अथवा भोजक को स्वप्न सुनावे।

छाछठवाँ अध्याय।

सप्तमी व्रत के उद्यापन का विधान और फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे याज्ञवल्क्य ! सप्तमी का व्रत कर दूसरे दिन स्नान पूजन जप हवन आदि करके भोजक पुराणवेत्ता और वेद के जाननेहारे ब्राह्मणों को भोजन करावे। रक्तवस्त्र, दूध देनेवाली गौ, उत्तम भोजन और जो-जो पदार्थ अपने को प्रिय होवें सब भोजक को देवे। भोजक न मिले तो पौराणिक को और पौराणिक न प्राप्त हो तो सामवेद के जाननेहारे ब्राह्मण को सब वस्तुएँ देवे। भोजन भी पहिले भोजक को करावे, पीछे पौराणिक और वेदपाठियों को करावे। इस प्रकार भक्ति से सात सप्तमी करे तो अनन्त सुख पावे और दश अश्वमेध के

फल को प्राप्त हो। कोई ऐसा कार्य नहीं जो इस व्रत के करने से सिद्ध न हो। कुष्ठ आदि रोग इस व्रत से ऐसे डरते हैं जैसे गरुड़ से सर्प। व्रत नियम और तप करके इस प्रकार सात सप्तमी व्रत करे वह विद्या धन पुत्र भाग्य आरोग्य और धर्म पावे और अन्त में सूर्यलोक को जाय। इस विधि को जो श्रवण करे अथवा पढ़े वह भी सूर्यनारायण में लीन हो जाय। यह पुराण जिन-जिन देवता और मुनियों ने सुना वे सब सूर्यनारायण के भक्त हो गये। यह आर्ष आख्यान हमने कहा है, इसको सूर्यभक्त के विना दूसरे पुरुष के आगे न कहना। जो पुरुष इस आख्यान को सुने और जो सुनावे वे दोनों सूर्यलोक को जायँ। रोगी इसको श्रवण करे तो रोग से मुक्त हो। यह पढ़कर यात्रा करे तो मार्ग में कोई क्लेश न हो और यात्रा सफल हो। गर्भिणी स्त्री सुने तो सुख से पुत्र जने, वन्ध्या सुने तो सन्तान पावे। हे याज्ञवल्क्य! यह सब कथा सूर्यनारायण ने हमको कही और हमने तुमको श्रवण कराई है। अब तुम भी भक्ति से सूर्यभगवान् का आराधन करो जिससे सर्व पातक निवृत्त होयँ। वह द्वादशात्मा सूर्यनारायण ही जगत् का माता पिता बन्धु और गुरु है, वह सदा तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करे।

सरसठवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण का स्तोत्र और उसका फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे याज्ञवल्क्य! जिन नामों से सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं वे नाम हम आपको उपदेश करते हैं। नमः सूर्याय नित्याय रवयेऽर्काय भानवे। भास्कराय पतङ्गाय मार्तण्डाय विवस्वते। १। आदित्यायादिदेवाय नमस्ते रश्मिमालिने। दिवाकराय दीप्ताय अग्नये मिहिराय च। २। प्रभाकराय मित्राय नमस्ते दितिसम्भवे। नमो गोपतये नित्यं दिशां च पतये नमः। ३। नमो धात्रे विधात्रे च अर्यम्णे वरुणाय

च। पूष्णे भगाय मित्राय पर्जन्यायांशवे नमः ४ नमो हेमद्युते नित्यं धर्माय तपनाय च। हराय हरिताश्वाय विश्वस्य पतये नमः ५ विष्णवे ब्रह्मणे नित्यं त्र्यम्बकाय तथा नमः। नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते सप्तसप्तये ६ एकस्मै हि नमस्तुभ्यमेकचक्ररथाय च। ज्योतिषां पतये नित्यं सर्वप्राणभृते नमः ७ हिताय सर्वभूतानां शिवायार्त्तिहराय च। नमः पद्मप्रबोधाय नमो द्वादशमूर्तये ८ गाधिजाय नमस्तुभ्यं नमस्तारासुताय च। धिषणाय नमो नित्यं नमः कृष्णाय नित्यदा ९ भीमजाय नमस्तुभ्यं पावकाय च वै नमः। नमोऽस्त्वदितिपुत्राय नमो लक्ष्म्याय नित्यशः १० हे याज्ञवल्क्य! सृष्टि रचने के समय सूर्यनारायण के ये नाम हमने कहे हैं। जो इनको सायङ्काल और प्रातःकाल पढ़े, वह हमारी भाँति सब मनोवांछित फ़ल पावे। इनके पाठ से धर्म, अर्थ, काम, आरोग्य, राज्य और विजय, पावे; बन्धन में हो, तो छूट जाय और सब पापों से मुक्त हो जाय। यह परम रहस्य हमने कहा है।

अरसठवाँ अध्याय।

जम्बूद्वीप में सूर्य के स्थानों का कथन, साम्ब के प्रति दुर्वासा मुनि का शाप।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक! इस प्रकार ब्रह्माजी से उपदेश पाकर याज्ञवल्क्य मुनि ने सूर्यभगवान् का आराधन किया और सालोक्य मुक्ति पाई। इसलिये आप भी सूर्यनारायण का आराधन कर परमपद पाओ, जो देवताओं को भी दुर्लभ है। यह सुन राजा ने पूछा कि महाराज! जम्बूद्वीप में सूर्यनारायण का स्थान कहाँ है, जहाँ आराधन करने से शीघ्र ही मनोवांछित फल पावे। राजा का वचन सुन मुनि कहने लगे कि हे राजन्! इस द्वीप में तीन स्थान सूर्यनारायण के मुख्य हैं—एक इन्द्रवन, दूसरा मुंडार और तीसरा तीनों लोकों में प्रसिद्ध कालप्रिय नामक स्थान है। एक स्थान इस

द्वीप में चन्द्रभागा नदी के तट पर और भी है, जिसको साम्ब-पुर कहते हैं। वहाँ साम्ब की भक्ति से लोकानुग्रह के लिये सूर्य-नारायण मित्ररूप से निवास करते हैं और जो भक्ति से पूजन करे, उसको ग्रहण करते हैं। यह सुमन्तु मुनि से सुन राजा शतानीक ने पूछा कि महाराज! वह साम्ब कौन था और किसका पुत्र था? सूर्यभगवान् ने उसके ऊपर क्योंकर अनुग्रह किया, यह आप कृपा कर वर्णन करें। राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि द्वादश आदित्य जगत् में प्रसिद्ध हैं। उनमें से विष्णुनाम आदित्य श्रीकृष्णरूप से जगत् में उत्पन्न हुए। उनके जाम्बवती नाम की भार्या से साम्ब नामक पुत्र हुआ। वह पिता के शाप से कुष्ठी हो गया। तब वह सूर्यनारायण का आरा-धन कर रोग से मुक्त हुआ। उसी ने अपने नाम से नगर बसाकर उसमें सूर्यनारायण का स्थापन किया है। राजा ने पूछा कि महा-राज! ऐसा कौन अपराध साम्ब से बन पड़ा कि पिता ने ऐसा दारुण शाप दे दिया। थोड़े-से अपराध पर तो पिता पुत्र को शाप नहीं देता। तब सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन्! यह वृत्तान्त हम विस्तार से वर्णन करते हैं, सावधान होकर सुनो—एक समय वसन्तऋतु में रुद्र के अवतार दुर्वासा मुनि तीनों लोक में विचरते हुए द्वारका में गये। उस समय साम्ब ने उनको देखा कि जटा धारे हैं, शरीर कृश है, नेत्र पिंगल हैं, मुख अति कुरूप है। यह देख अपने रूप के अभिमान से साम्ब ने दुर्वासा मुनि का अनुकरण अर्थात् नक़ल की; उनके मुख के तुल्य अपना मुख भी विकृत बनाकर उन्हीं की भाँति चलने लगा। यह देख और साम्ब को रूप तथा यौवन का अति गर्व जान क्रोध से काँपते हुए दुर्वासा मुनि ने कहा कि हे साम्ब! हमको कुरूप देख और अपने को अति रूपवान् जान तूने हमारा अनुकरण किया, इसलिये तू बहुत शीघ्र कुष्ठी हो जायगा।

उनहत्तरवाँ अध्याय ।

अपनी रानियों को और अपने पुत्र साम्ब को श्रीकृष्णचन्द्र का शाप ।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन् ! इसी प्रकार नारद मुनि भी सब ऋषियों को साथ ले श्रीकृष्णभगवान् के दर्शन के लिये कभी-कभी द्वारका में जाया करते । जब नारदजी वहाँ जाते, तब प्रद्युम्न आदि यादवकुमार पाद्य अर्घ्य से उनका पूजन करते; परन्तु भावी के बल और रूप के गर्व से साम्ब कभी उनका सत्कार नहीं करता था, सदा अवज्ञा ही करता और खेल में लगा रहता था । उसका यह अविनय देख नारद मुनि ने अपने मन में विचार किया कि यह सदा मेरा अनादर करता है, इसलिये इसका गर्व दूर करना चाहिए । अतः वह श्रीकृष्णभगवान् के समीप गये और उनसे एकान्त में कहा—"यह आपका पुत्र साम्ब अतिरूपवान् है । इसके तुल्य दूसरा पुरुष त्रैलोक्य में नहीं, इसलिये आपकी सोलहों हज़ार रानी इस पर मोहित हैं और दिन रात इसकी इच्छा रखती हैं ।" नारद की वाणी सुन श्रीकृष्णभगवान् ने विचार किया कि स्त्रियों को कुछ विवेक तो होता ही नहीं है । रूपवान् पुरुष को देख अवश्य उनका चित्त चञ्चल हो जाता है, इसलिये इस बात का निश्चय कर व्यभिचारदोष से स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए । मन में ऐसा विचार उन्होंने नारद मुनि से कहा कि आपके वचन का हमको निश्चय क्योंकर हो ? नारदजी ने कहा कि अच्छा, हम कभी निश्चय करा देंगे । वह वहाँ से चल दिये । कुछ काल के अनन्तर वह फिर द्वारका में आये । तब श्रीकृष्णचन्द्र सब ऋतुओं के पुष्पों से अलंकृत, कमलों से परिपूर्ण, वापियों से शोभायमान, अनेक उत्तम पक्षियों के मधुर शब्दों से मनोहर रैवतकपर्वत के वन में अपनी सब रानियों समेत वनविहार करते थे । वनविहार के अनन्तर जलक्रीड़ा की, पीछे मनोहर वृक्षों के नीचे बैठ अतिरूपवती और

अनेक उत्तम-उत्तम वस्त्रभूषणों से अलंकृत अपनी रानियों समेत मदिरापान करने लगे। उत्तम मदिरा के पान से सब स्त्रियाँ मत्त हो गईं। इसी अवसर पर नारदजी ने साम्ब से कहा कि तुमको श्रीकृष्णचन्द्र बुलाते हैं। यहाँ वृथा क्यों बैठे हो। नारदजी की बात सुन साम्ब श्रीकृष्णभगवान् के समीप गया और प्रणाम कर सम्मुख खड़ा हो गया। वह नारद का छल न समझ सका। उन मदमाती स्त्रियों ने जब साम्ब को देखा, तब उसका रूप और यौवन देखकर उनका चित्त चञ्चल हो गया। मद्यपान से लज्जा तो रहती नहीं और रूपवान् पुरुष को देख स्त्रियों की योनि में क्लेदन होता ही है। उत्तम वारुणी का पान, स्वादिष्ठ मांस का भोजन, मनोहर एवं सुगन्धित द्रव्य का शरीर में लगाना और अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण पहनना, इन सबसे काम का उद्दीपन होता है। इसलिये यदि पुरुष स्त्री का पातिव्रत्य चाहे, तो उसको मदिरापान से बचावे। इस अवसर पर साम्ब को पहिले भेज पीछे नारद मुनि भी वहाँ आये। नारद को देख मद से विह्वल हुई स्त्रियाँ उठीं और मुनि को प्रणाम किया। श्रीकृष्णभगवान् ने भी देखा कि साम्ब को देख सबका वीर्य स्खलित हुआ है और वस्त्रों को भेदन कर उनके आसनों पर गिरा है। बस, श्रीकृष्णभगवान् ने शाप दिया कि तुम्हारा चित्त हमको छोड़ दूसरे पुरुष में आसक्त हुआ, इसलिये तुमको पतिलोक तथा स्वर्ग की प्राप्ति न होगी और अन्त में चोरों के वश पड़ोगी। सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजन्! उसी शाप से श्रीकृष्णभगवान् के वैकुण्ठ जाने के अनन्तर उन स्त्रियों को अर्जुन के देखते-देखते चोर हर ले गये। उनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती आदि जो दृढ़चित्त थीं, वे ही इस शाप से बचीं। इस प्रकार उन स्त्रियों को शाप देकर उन्होंने साम्ब को भी शाप दिया कि तेरा अतिरूप देख इनको क्षोभ

हुआ, इसलिये तू कुष्ठी हो जा। पिता का वचन सुन साम्ब ने हँसकर कहा कि महाराज! मेरा तो कुछ दोष नहीं, मेरा चित्त तो स्थिर है। इसी अवसर पर दुर्वासा मुनि का भी साम्ब को शाप हुआ। साम्ब ने फिर भी दुर्वासा से छेड़ की। तब उनके शाप से लोह का मूसल उत्पन्न हुआ जिससे सब यादववंश का क्षय हुआ। इसलिये बुद्धिमान् पुरुष देवता, गुरु, ब्राह्मण आदि की अवज्ञा न करें; सदा इनके आगे नम्र ही रहें। हे राजन्! दो श्लोक ब्रह्माजी ने महादेवजी के सम्मुख पढ़े थे। क्या आपने उन्हें नहीं सुना—यो धर्मशीलो धृतिमानरोषी विद्याविनीतो न परोपतापी। स्वदारतुष्टः परदारवर्जी न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित्। १। न तथा शशी न सलिलं न चन्दनं नैव शीतला छाया। प्रह्लादयन्ति पुरुषं यथा हिता मधुरभाषिणी वाणी। २। अर्थ—जो पुरुष धर्मात्मा, धैर्यवान्, क्रोधरहित, विद्याविनीत, दूसरे को सन्ताप नहीं देनेहारा, अपनी स्त्री से संतुष्ट और परनारी से विमुख हो, उसको जगत् में कुछ भी भय नहीं होता है। पुरुषों को चन्द्रमा, चन्दन, शीतल जल और ठंढी छाया से भी ऐसा आह्लाद नहीं होता, जैसा हित और मीठे वचन सुनने से होता है। हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र और दुर्वासा मुनि के शाप से साम्ब को कुष्ठ हुआ फिर भी सूर्यनारायण का आराधन कर साम्ब ने रूप और आरोग्य पाया। तभी उसने अपने नाम का नगर बसाया और सूर्यभगवान् का स्थापन किया।

सत्तरवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण की द्वादश मूर्तियों का वर्णन।

राजा शतानीक पूछते हैं कि महाराज! जब चन्द्रभागानदी के तट पर साम्ब ने सूर्यनारायण का स्थापन किया, तब वह स्थान प्राचीन ठहरा, फिर आप उसका इतना माहात्म्य क्योंकर

कहते हैं ? राजा का संदेह सुन सुमन्तु मुनि ने कहा कि हे राजन् ! स्थान तो सूर्यनारायण का वहाँ सनातन है। साम्ब ने पीछे स्थापन किया है। इसका हम विस्तार से वर्णन करते हैं, प्रीति से सुनो—इस स्थान में परब्रह्मस्वरूप जगत् के स्वामी श्रीसूर्यनारायण ने मित्ररूप से तप किया है और सब देवता तथा मनुष्यों को सिरजकर आप भी वाराहरूप धार अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए इसी से आदित्य कहाये। इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, वरुण और मित्र, ये बारह सूर्यभगवान् की मूर्तियाँ हैं। इन्होंने सब जगत् व्याप्त कर रक्खा है। इनमें से पहली इन्द्र नामक मूर्ति देवराज में स्थित है और सब दैत्य-दानवों का संहार करती है। दूसरी धाता नामक मूर्ति प्रजापति में स्थित होकर सृष्टि रचती है। तीसरी पर्जन्य नाम मूर्ति किरणों में स्थित होकर अमृत बरसाती है। चौथी पूषा नाम मूर्ति मन्त्रों में स्थित होकर प्रजाओं का पोषण करती है। पाँचवीं त्वष्टा नाम मूर्ति वनस्पति और ओषधियों में स्थित है। छठी मूर्ति प्रजा का संवरण करने के लिये पुरों में स्थित है। सातवीं भग नाम मूर्ति पृथिवी और पृथिवी के धर्मों में स्थित है। आठवीं विवस्वान् नाम मूर्ति अग्नि में स्थित है और जगत् का नेत्ररूप है। नवीं अंशु नामक मूर्ति सूर्य में स्थित है और जगत् का आप्यायन करती है। दशवीं विष्णु नामक मूर्ति दैत्यों का नाश करने के लिये सदा अवतार लेती है। ग्यारहवीं वरुण नाम मूर्ति जगत् का जीवन देती है। समुद्र में उसका निवास है, इसी से समुद्र को वरुणालय कहते हैं। और बारहवीं मित्र नामक मूर्ति लोकों पर अनुग्रह करने के अर्थ चन्द्रभागानदी के तट पर विराजमान है। यहाँ सूर्यनारायण ने वायु भक्षण करके तप किया है; मित्ररूप से यहाँ स्थित हैं, इससे इस स्थान को मित्रपद भी कहते हैं। यहीं

साम्ब ने सूर्यनारायण का आराधन कर मनोवाञ्छित फल पाया है। जो पुरुष भक्ति से सूर्यनारायण को प्रणाम करें और भक्ति से उनके आराधन में प्रवृत्त हों, वे सूर्यलोक में निवास करते हैं।

इकहत्तरवाँ अध्याय।

नारदजी के प्रति साम्ब का प्रश्न।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि! साम्ब को सूर्यनारायण का आराधन किसने बताया और शाप के अनन्तर साम्ब ने अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्र से क्या कहा, यह आप कथन करें। सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन्! शाप के अनन्तर साम्ब ने अपने पिता से कहा कि महाराज! आपके बुलाने से मैं यहाँ आया और कुछ मैंने अपराध भी नहीं किया, फिर आपने मुझे ऐसा घोर शाप किसलिये दिया? अब आप मेरे ऊपर अनुग्रह करें कि इस विपत्ति से छूटूँ। साम्ब का दीन वचन सुन और साम्ब को निरपराध जान श्रीकृष्णभगवान् ने कहा कि हे पुत्र! भया सो भया, अब तुम सूर्यनारायण का आराधन करो, जिससे यह तुम्हारा क्लेश निवृत्त हो। हमने यह भी जाना कि नारदजी ने क्रोध करके तुमको यहाँ भेजा है। अब तुम नारदजी को प्रसन्न कर उनसे ही सूर्यनारायण के आराधन का विधान सीखो। वही अनुग्रह कर तुमको सिखावेंगे। यह पिता का वचन सुन अति विकल और शोकातुर हुआ साम्ब नारद मुनि को ढूँढ़ने लगा। एक दिन नारदजी द्वारका में श्रीकृष्णभगवान् से मिलने को आये। साम्ब ने नम्रता से उनके चरणों पर प्रणाम किया और हाथ जोड़ प्रार्थना की कि महाराज! आप मुझे ऐसा उपाय उपदेश करें, जिससे मेरा शरीर आरोग्य हो और यह दुःख मिटे। नारदजी ने कहा कि सब देवता जिसका पूजन और स्तुति

करते हैं, तुम भी उसका पूजन करो, तब तुम्हारा रोग निवृत्त होगा। साम्ब ने पूछा कि महाराज! देवता किसका पूजन और स्तुति करते हैं? आप ही कहें कि मैं उसके शरण जाऊँ। पिता की शापाग्नि मुझे दग्ध किए डालती है। ऐसा कौन देवता है, जो करुणा करके मुझे इस विपत्ति से छुड़ावे। साम्ब का अति दीन वचन सुन नारदजी बोले कि सब देवताओं के पूज्य, स्तुत्य और वन्दनीय सूर्यनारायण हैं। हे साम्ब! अब हमें सूर्यनारायण का प्रभाव वर्णन करते हैं।

बहत्तरवाँ अध्याय।

नारद का कहा हुआ सूर्यनारायण का प्रभाव, साम्ब का प्रश्न।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब! किसी समय हम सब लोकों में विचरते हुए सूर्यलोक में पहुँचे। वहाँ देखा कि देवता, गन्धर्व, नाग, यक्ष, राक्षस और अप्सरा सूर्यनारायण की सेवा में तत्पर हैं। गन्धर्व गाते हैं। अप्सरा नृत्य कर रही हैं। राक्षस, यक्ष और नाग शस्त्र धारण किये रक्षा के लिये खड़े हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद शरीर धारे स्तुति कर रहे हैं। तीनों संध्याएँ मूर्ति धारण कर हाथों में वज्र और बाण लिये सूर्यनारायण के पास खड़ी हैं—पहली सन्ध्या रक्तवर्ण, मध्य चन्द्र के तुल्य श्वेतवर्ण और तीसरी का वर्ण भौमग्रह के समान है। आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत्, अश्विनीकुमार आदि सब देवता तीन काल उनका पूजन करते हैं। ऋषि स्तुति पढ़ते हैं। इन्द्र सदा जयशब्द करते रहते हैं। अम्बुजाकार सूर्यभगवान् को प्रभात होते ही ब्रह्माजी पूजते हैं। चक्ररूप को मध्याह्न में विष्णुभगवान् और आकाशरूप को सायंकाल के समय रुद्रभगवान् यजन करते हैं। गरुड़ का बड़ा भाई अरुण उनका सारथी है। काल के अवयवों से उनका रथ बना है। हरे रंग के छन्दोरूप सात घोड़े उस रथ में लगे हैं। राज्ञी और

निक्षुभा-नामक दो भार्या सूर्यनारायण के दोनों ओर बैठी हैं। और भी देवता हाथ जोड़े चारों ओर खड़े हैं। पिंगललेखक, कल्माषपक्षी, माठर, दण्डनायक आदि गण आगे पीछे सेवा में स्थित हैं। ब्रह्मा आदि सब देवता और ग्रह स्तुति कर रहे हैं। ऐसा प्रभाव सूर्यनारायण का हमने देखा। इससे जाना कि वे ही सब देवताओं के पूज्य हैं। इसलिये हे साम्ब! तुम भी उनकी शरण में जाओ। नारदजी का वचन सुन साम्ब ने पूछा कि महाराज! भली भाँति मैं श्रवण किया चाहता हूँ कि सूर्यनारायण सर्वगत क्योंकर हैं, उनके किरण कितने हैं, मूर्तियाँ कितनी हैं, राज्ञी और निक्षुभानाम उनकी भार्या कौन हैं, पिंगललेखक और दण्डनायक क्या काम करते हैं, कल्माषपक्षी कौन है? यह सब शास्त्र के अनुसार ठीक-ठीक वर्णन करें, जिससे मैं भी सूर्यनारायण का प्रभाव जान उनके शरणागत हो जाऊँ।

तिहत्तरवाँ अध्याय।

नारदकृत प्रकृतिपुरुष-वर्णन।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब! अब हम विस्तारपूर्वक सूर्यनारायण का वर्णन करते हैं, तुम प्रीति से श्रवण करो। जगत् का कारण सदसदात्मक है, जिसको अव्यक्त, प्रधान और प्रकृति भी कहते हैं। गन्ध, वर्ण, रस से हीन, शब्द-स्पर्शादि-रहित, अनाद्यंत, अज, सूक्ष्म, अनाकार और अविज्ञेय पुरुष है। उसने यह सब जगत् व्याप्त कर रक्खा है। वह पुरुष जो-जो इच्छा करता है, सब अव्यक्त से उत्पन्न होता है। वही पुरुष सृष्टि के समय चतुर्मुख ब्रह्मा बनता है, प्रलय के समय कालरूप और पालन के समय विष्णुरूप ग्रहण करता है। ये तीन अवस्था तीन गुणों के अनुकूल पुरुष की हैं। वही हिरण्यगर्भ है। सबके आदि में होने से आदित्य, न उत्पन्न होने से अज, महान् होने से महादेव, लोक का अधीश होने से ईश्वर, बृहत्

होने से ब्रह्मा, उत्पन्न होने से भव, प्रजा के पालन से प्रजापति, पुर में शयन करने से पुरुष, किसी से भी न उत्पन्न होने से स्वयंभू और हिरण्य अर्थात् सुवर्ण के अण्ड में रहने से हिरण्य-गर्भ वही परमात्मा कहाता है। जल का नाम नार है, नार में निवास करने से वही नारायण कहाता है। अरु यह शीघ्रतावाचक अव्यय है, समुद्ररूप हो जाने से जलों में शीघ्रता नहीं रहती, इसी से उनको नार कहते हैं। प्रलय के समय सब स्थावर-जंगम नष्ट हो जाते हैं, सम्पूर्ण जगत् एकार्णव हो जाता है। तब वह पुरुष नारायणरूप से उस समुद्र में शयन करता है। सहस्र शिरों से युक्त, सहस्र भुजा, सहस्र ही नेत्र, चरण और मुखों से युक्त वह पुरुष है। वही देवताओं में प्रथम देवता और जगत् की रक्षा करनेहारा है।

चौहत्तरवाँ अध्याय।

सूर्यभगवान् की उत्पत्ति, किरणों का वर्णन और सर्वव्यापकत्व कथन।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब ! हज़ार युग की अपनी रात्रि बिताकर प्रभात होते उस पुरुष को सृष्टि रचने की इच्छा हुई। उसने वराहरूप धार जल में मग्न भूमि का उद्धार किया और ब्रह्मा बन सृष्टि रचने लगा। पहले उसने अपने तुल्य और अत्यन्त सौम्य दश पुत्र मन से उत्पन्न किये। भृगु, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, दक्ष, वशिष्ठ और प्रचेता, ये दश ब्रह्माजी के मानस पुत्र हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए दक्ष की कन्या अदिति कश्यप को विवाही थी, उस-से एक अण्डा उत्पन्न हुआ, जिससे द्वादशात्मा श्रीसूर्यनारायण निकले। नव हज़ार योजन सूर्यमण्डल का व्यास अर्थात् विस्तार है और सत्ताइस हज़ार योजन परिधि अर्थात् परिणाह है। जिस भाँति कदम्ब का पुष्प चारों ओर केसरों से व्याप्त होता है, इसी प्रकार सूर्यमण्डल किरणों से

व्याप्त है। वह सहस्रशीर्षा पुरुष, जिसको परमात्मा कहते हैं, इस मण्डल के मध्य में स्थित है। वह अपने हज़ार किरणों से नदी, समुद्र, ह्रद, कूप आदि के जल को आकर्षित करता है। सूर्य की प्रभा रात्रि के समय अग्नि में प्रवेश करती है, इसी से रात्रि में अग्नि दूर से ही प्रकाशित देख पड़ता है। सूर्योदय के समय वह प्रभा सूर्य में चली जाती है। प्रकाश और उष्णता, ये दोनों सूर्य और अग्नि में भी हैं, इस प्रकार सूर्य और अग्नि रातदिन में परस्पर आप्यायन करते हैं। किरण, गो, रश्मि, गभस्ति, अभीषु, उस्रवसु, मरीचि, नाड़ी, दीधिति, मयूख, भानु, करपाद इत्यादि किरणों के नाम हैं। एक हज़ार किरण सूर्यनारायण के हैं। उनमें चार सौ किरण वृष्टि करते हैं, उनका नाम चन्दन है। वे अमृतस्वरूप और श्वेतवर्ण हैं। तीन सौ किरण हिम बरसाते हैं, उनका नाम चन्द्र है और पीतवर्ण हैं। बाक़ी तीन सौ किरण प्रचण्ड धूप की वृष्टि करते हैं। वर्षा और शरद्‌ऋतु में चन्दननाम किरण वृष्टि करते हैं, हेमन्त और शिशिर में चन्द्रनामक तीन सौ किरण हिम अर्थात् बर्फ़ बरसाते हैं। बाक़ी तीन सौ किरण वसन्त और ग्रीष्म में तपते हैं। औषधियों में बल, स्वधा में स्वधा और अमृत में अमृत सूर्यनारायण देते हैं। यह द्वादशात्मा और कालस्वरूप सूर्यनारायण तीन लोक में तपते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन्हीं के रूप हैं। ऋक्, यजुः और साम भी ये ही हैं। प्रातःकाल ऋग्वेद स्तुति करता है, मध्याह्न में यजुर्वेद और मध्याह्न के अनन्तर सामवेद स्तुति में प्रवृत्त होता है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव इनका नित्य पूजन करते हैं। जिस प्रकार वायु सर्वगत है, इसी विधि सूर्यकिरण भी सर्वव्यापक हैं। तीन सौ किरण भूर्लोक को प्रकाशित करते हैं और तीन-तीन सौ ही बाक़ी दोनों लोकों को द्योतित करते हैं। चन्द्रमा,

ग्रह, नक्षत्र और तारागण में सूर्यनारायण का ही प्रकाश है। सूर्यनारायण के हज़ार किरणों में सात किरण मुख्य हैं। सुषुम्णा, हरिकेश, विश्वकर्मा, सूर्य, विष्णु, सम और सर्वबन्धु ये उन सातों के नाम हैं। सम्पूर्ण जगत् सूर्यनारायण का रूप है। इन्द्र आदि देवता इनसे उत्पन्न हुए हैं। जगत् में सम्पूर्ण तेज इनका है। अग्नि में दी हुई आहुति सूर्यनारायण को प्राप्त होती है। उससे वृष्टि, वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा का पालन होता है। जगत् की सृष्टि और संहार सूर्यनारायण से होता है। ध्यान करनेवालों के लिये ध्यानरूप और मोक्षार्थी पुरुषों के लिये मोक्षस्वरूप ये ही हैं। क्षण, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर और युगों की कल्पना सूर्यनारायण के विना नहीं हो सकती। काल के नियम विना अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं हो सकते। ऋतुविभाग विना पुष्प, फल और मूलों की उत्पत्ति नहीं होती, जगत् में सब व्यवहार नष्ट हो जाते। यज्ञ न होने से स्वर्ग में देवता भी नहीं रह सकते। इससे यही जानो कि भूर्लोक और स्वर्ग की सब व्यवस्था सूर्यनारायण के होने से ही ठीक रहती है। जब सूर्य बहुत तपे अथवा मण्डल के चारों ओर परिवेष हो जाय, तब वृष्टि होती है। सूर्यभगवान् के बारह नाम हैं—आदित्य, सविता, सूर्य, मिहिर, अर्क, प्रतापन, मार्तण्ड, भास्कर, भानु, चित्रभानु, दिवाकर और रवि। विष्णु, धाता, भग, पूषा, मित्र, इन्द्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, अंशुमान्, त्वष्टा और पर्जन्य ये बारह आदित्य हैं। चैत्र आदि बारह महीनों में ये तपते हैं। चैत्र में विष्णु, वैशाख में अर्यमा, ज्येष्ठ में विवस्वान्, आषाढ़ में अंशुमान्, श्रावण में पर्जन्य, भाद्रपद में वरुण, आश्विन में इन्द्र, कार्तिक में धाता, मार्गशीर्ष में मित्र, पौष में पूषा, माघ में भग और फाल्गुनमास में त्वष्टानामक

आदित्य तपता है । विष्णुनामक आदित्य बारह सौ किरणों से तपते हैं; अर्यमा और वरुण तेरह सौ, विवस्वान् और पर्जन्य चौदह सौ, अंशुमान् पाँच सौ, इन्द्र बारह सौ, धाता ग्यारह सौ, मित्र और भग साढ़े दश सौ, पूषा हज़ार किरणों और त्वष्टानामक आदित्य ग्यारह सौ किरणों से तपता है। उत्तरायण में सूर्यकिरण वृद्धि को प्राप्त होते हैं और दक्षिणायन में घटते जाते हैं। इस प्रकार सूर्यकिरण लोकोपकार में प्रवृत्त हैं। कोई पुरुष ब्रह्मा को, कोई विष्णु को और कोई शिव को जगत्कर्ता कहते हैं; परन्तु वे सब इन्हीं के रूप हैं। जिस प्रकार स्फटिक में अनेक रंग प्रविष्ट होने से वह अनेक वर्ण का हो जाता है, जिस भाँति एक ही मेघ आकाश में अनेक रूप का हो जाता है, जैसे आकाश से एक प्रकार का जल गिरकर भूमि के संसर्ग से अनेक स्वादु का हो जाता है, जिस प्रकार एक ही अग्नि के स्थानभेद से अनेक नाम हो जाते हैं, उसी प्रकार एक सूर्यनारायण ही भिन्न-भिन्न गुणों के वश होकर ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि अनेक रूप धारते हैं। इसलिये इनमें ही भक्ति करनी चाहिए। आकाश, जल, अग्नि, पवन और सब प्रकार के स्थावर-जंगमरूप जगत् में सूर्यनारायण व्याप्त हो रहे हैं। इस प्रकार जो सूर्यनारायण को जाने, वह रोग और पापों से बहुत शीघ्र छूटता है। पापी पुरुष की सूर्यनारायण में भक्ति नहीं होती है। हे साम्ब ! तू भी सूर्यनारायण का आराधन कर, जिससे यह व्याधि निवृत्त हो जाय। हे साम्ब ! जैसे ब्रह्मा और शिव सूर्यनारायण के रूप हैं, उसी प्रकार तेरे पिता श्रीकृष्णचन्द्र भी उनका ही रूप हैं।

पचहत्तरवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण की दो भार्या और सन्तानों का वर्णन।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजन्! इतना सुन साम्ब ने नारदजी से कहा कि महाराज, आपने सूर्यनारायण का ऐसा माहात्म्य वर्णन किया, जिससे मेरे हृदय में दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई। अब आप राज्ञी निक्षुभा, दण्डी और पिंगल आदि का वर्णन करें। साम्ब का वचन सुन नारदजी कहने लगे कि हे साम्ब! सूर्य भगवान् की दो भार्याओं—एक राज्ञी, दूसरी निक्षुभा—में राज्ञा द्यौः अर्थात् आकाश को कहते हैं और निक्षुभा पृथिवी का नाम है। श्रावण कृष्ण सप्तमी को द्यौः के साथ और माघकृष्ण सप्तमी को निक्षुभा के संग सूर्यनारायण का संयोग होता है। तब इन दोनों के गर्भ होता है। द्यौः के गर्भ से जल उत्पन्न होता है और भूमि के गर्भ से जगत् के कल्याण के अर्थ अनेक प्रकार के सस्य अर्थात् खेती उपजते हैं। सस्य को देख अति हर्ष से ब्राह्मण हवन करते हैं। स्वाहाकार स्वधाकार से देवता और पितरों की तृप्ति होती है। अब ये दोनों जिसकी कन्या हैं और इनके जो सन्तान हैं, उनका हम वर्णन करते हैं। ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप, कश्यप के हिरण्यकशिपु, हिरण्यकशिपु के प्रह्लाद और प्रह्लाद के विरोचन-नाम पुत्र हुआ। विरोचन की भगिनी विश्वकर्मा को विवाही गई, जिसकी कन्या संज्ञा हुई। मरीचि की सुरूपानाम कन्या अङ्गिराऋषि को विवाही गई, जिससे बृहस्पति उत्पन्न हुए। बृहस्पति की ब्रह्मवादिनी भगिनी आठवें वसुप्रभा से विवाही गई, जिसका पुत्र सब शिल्प जाननेहारा विश्वकर्मा हुआ। उसी का नाम त्वष्टा है। विश्वकर्मा की कन्या संज्ञा को राज्ञी कहते हैं, और उसको द्यौः तथा सुरेणु भी कहते हैं। उसी संज्ञा की छाया का नाम निक्षुभा है। सूर्यभगवान् की

भार्या संज्ञानामक बड़ी रूपवती और पतिव्रता थी; परन्तु सूर्यनारायण मनुष्यरूप से उनके समीप नहीं जाते थे। जिस रूप में जाते थे, अति तेज से व्याप्त सूर्यनारायण का वह रूप सुन्दर न था, इसलिये संज्ञा को नहीं रुचता था। संज्ञा से तीन सन्तान हुए। परन्तु वह सूर्यनारायण के तेज से व्याकुल हो अपने पिता के घर चली गई और हज़ार वर्ष तक वहीं रही। जब पिता ने पति के घर जाने के लिये बहुत कहा, तब उत्तर-कुरु को चली गई और घोड़ी का रूप धार तृण चरके अपना कालक्षेप करने लगी। सूर्यनारायण के समीप संज्ञा के रूप से छाया रहती थी, सूर्यभगवान् उसको संज्ञा ही जानते थे। उससे भी दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा ये दो छाया के पुत्र और तपतीनाम कन्या हुई। श्रुतश्रवा तो सावर्णि मनु हुआ और श्रुतकर्मा शनैश्चरनामक ग्रह भया। संज्ञा जिस प्रकार अपने सन्तानों पर स्नेह करती थी, वैसा छाया ने न किया। इस बात को संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र मनु ने तो सहा; परन्तु छोटा पुत्र यम न सह सका। जब छाया ने बहुत ही क्लेश दिया, तब क्रोध से बालकपन और भावी के बल से यम ने अपनी माता को भर्त्सन दिया और मारने को चरण उठाया। यह देख क्रोध कर छाया ने यम को शाप दिया कि हे दुष्ट! यह तेरा चरण गिर पड़े। माता के शाप से यम व्याकुल हो पिता के समीप गये और सब वृत्तान्त कहा कि महाराज, यह माता हमसे स्नेह नहीं करती। मैंने भूल अथवा बालकपन से केवल चरण उठाया था, परन्तु माता ने मुझे घोर शाप दिया। अब मेरे चरण की रक्षा आप ही करें। यह पुत्र का वचन सुन सूर्यनारायण ने कहा कि हे पुत्र! इसमें कुछ बड़ा कारण होगा कि अति धर्मात्मा तुझको माता के ऊपर क्रोध आया। सब शापों का प्रतिघात है; परन्तु माता का दिया शाप

कभी अन्यथा नहीं हो सकता। पर तेरे स्नेह से कुछ उपाय करते हैं। तेरे चरण के मांस को लेकर कृमि भूमि पर जायँ, इससे माता का शाप भी सत्य हो और तेरे चरण की रक्षा भी। सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजन्! इस प्रकार पुत्र का आश्वासन कर सूर्यनारायण ने छाया से कहा कि इनमें तुम स्नेह क्यों नहीं करतीं, माता को सब सन्तान समान मानने चाहिए। यह सुनकर भी छाया ने कुछ उत्तर न दिया। तब सूर्यनारायण क्रोध कर शाप देने को उद्यत हुए। छाया ने पति को अति क्रुद्ध देख भय से सब वृत्तान्त कह दिया। इसी अवसर पर विश्वकर्मा वहाँ आये। सूर्यनारायण ने अपने श्वशुर को क्रोध-युक्त देख मीठे वचनों से उनका क्रोध शान्त कर आसन पर बैठाया। तब विश्वकर्मा ने कहा कि हमारी पुत्री संज्ञा तुम्हारे प्रचण्ड तेज से व्याकुल हो वन को चली गई है और तुम्हारा रूप उत्तम होने के लिये तप करती है। हमको ब्रह्माजी की आज्ञा है कि तुम्हारा रूप उत्तम बना देवें। यदि तुम्हारी भी रुचि हो, तो हम इस कार्य में प्रवृत्त हों। श्वशुर का वचन सूर्यनारायण ने अंगीकार किया। तब शाकद्वीप में सूर्यनारायण को भ्रमि अर्थात् खराद पर चढ़ाकर विश्वकर्मा ने उनका प्रचण्ड तेज छील डाला और उत्तम रूप बना दिया। सूर्यनारायण ने भी योगबल से जाना कि हमारी भार्या घोड़ी के रूप से उत्तर-कुरु में रहती है। यह जान आप भी अश्व का रूप धार उसके समीप गये और मैथुन के लिये प्रवृत्त हुए। परन्तु संज्ञा ने इनको परपुरुष जान इनका वीर्य नासिका में धारण किया। उससे देवताओं के वैद्य अश्विनी-कुमार उत्पन्न हुए। नासत्य और दस्र, ये उनके नाम हैं। इसके अनन्तर सूर्यनारायण ने अपना वास्तवरूप धारण किया, जिसको देख संज्ञा बहुत प्रसन्न हुई, और सूर्यनारायण से

संग किया। तब रेवन्तनाम पुत्र सूर्यभगवान् के समान रूपवान् उत्पन्न हुआ। उसने सूर्यनारायण के आठवें घोड़े को चढ़ने के लिये ले लिया और उस पर चढ़के खूब कुदाता था, इसी से उसका नाम रेवन्त हुआ; क्योंकि रेव धातु प्लवगति अर्थात् कूदके चलना अर्थ में है। सूर्यनारायण ने दण्डनायक और पिंगल को आज्ञा दी कि हमारा आठवाँ अश्व रेवन्त से ले आओ; परन्तु बल से मत लाना, कोई छिद्र पाके हर लेना। आज्ञा पाकर दोनों रेवन्त के पास गये और बहुत काल तक वहाँ रहे; परन्तु कोई छिद्र न मिला कि अश्व को हरें, सदा रेवन्त को सावधान ही देखा। मनु, यम, यमुना, सावर्णि, शनैश्चर, तपती, दो अश्विनीकुमार और रेवन्त ये सूर्यनारायण के सन्तान हुए। संज्ञा का नाम राज्ञी है और छाया को निक्षुभा कहते हैं। राज् धातु दीप्ति अर्थ में है, जिससे राज्ञी शब्द बनता है। सब भूतों से अधिक दीप्ति होने से सूर्यनारायण राजा कहाते हैं। राजा की भार्या होने से भी संज्ञा को राज्ञी कहते हैं। क्षुभ संचलने धातु है, उससे नि उपसर्ग लगकर निक्षुभा शब्द बनता है। सब मनुष्यों को अति पीड़ित देख यम ने धर्म से सबका अनुरंजन किया। इससे धर्मराज कहाया और अपने शुद्धकर्म के प्रभाव से पितरों का स्वामी और लोकपाल यमराज बना। आज कल जो मनु वर्तमान हैं, इनके वंश में विष्णु भगवान् का अवतार हुआ। यम की बहिन यमुना नदी हुई। सावर्णि आठवें मनु होंगे और यम के बड़े भ्राता मनु आज कल राज्य करते हैं और सावर्णि मेरु पर्वत के पृष्ठ पर तप कर रहे हैं। सावर्णि के भ्राता शनैश्चर ग्रह बने और उनकी बहिन तपती नदी हुई जो विन्ध्याचल से निकल पश्चिम समुद्र में जा मिली है और जिसमें स्नान करने से बहुत पुण्य होता है। सौम्यानदी से तपती का संगम और गंगा से यमुना का संगम

होता है। अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य बने, जिनकी विद्या से भूमि पर भी वैद्य अपना निर्वाह करते हैं। रेवन्तनाम अपने पुत्र को सूर्यनारायण ने सब अश्वों का स्वामी बनाया। रेवन्त का पूजनकर जो मार्ग में जावे, उसको क्लेश नहीं होता। विश्वकर्मा ने सूर्यनारायण की आज्ञा से उनके तेज से भोजक को बनाया जो सूर्यनारायण की पूजा करनेवाला हुआ। जो सूर्यभगवान् के सन्तानों की इस उत्पत्ति को सुने, वह सब पापों से मुक्त हो सूर्यलोक में बहुत काल पर्यन्त निवासकर चक्रवर्ती राजा हो।

छिहत्तरवाँ अध्याय।

सूर्य को प्रणाम, प्रदक्षिणादि करने का फल, अर्वावसु ब्राह्मण का इतिहास।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजन् शतानीक! इस प्रकार सूर्यनारायण का प्रभाव सुन साम्ब ने नारदजी से फिर पूछा कि महाराज सूर्यनारायण के पूजन से क्या फल होता है। उनके निमित्त दान देने से किस उत्तम फल की प्राप्ति होती है। प्रणाम करने से और उनके मन्दिर में गीत वाद्य आदि उत्सवों से क्या पुण्य होता है। यह आप कृपाकर वर्णन करें; जिससे मैं भी इस क्लेश से पीड़ित हुआ सूर्यनारायण का दृढ़ भक्ति से आराधन करूं। यह साम्ब की प्रार्थना सुन नारदजी कहने लगे कि हे साम्ब! यह बात दिण्डी ने ब्रह्माजी से भी पूँछी थी। उन्होंने दिण्डी के प्रति जो कहा वह हम वर्णन करते हैं। दिण्डी के प्रश्न के अनन्तर ब्रह्माजी कहने लगे कि हे दिण्डी! सूर्यभगवान् के पूजन, स्तुति, जप, उत्सव, बलि, उपवास आदि करने से मनोवाञ्छित फल पाता है। सूर्यभगवान् को प्रणाम करने के अर्थ भूमि पर शिर का स्पर्श होते ही सब पातक दूर होजाते हैं। जो भक्ति से सूर्य-

नारायण की प्रदक्षिणा करे, उसको सप्तद्वीपवती भूमि की प्रदक्षिणा का फल होता है और वह पुरुष सब रोगों से मुक्त हो अन्त में सूर्यलोक को प्राप्त होता है; परन्तु जूता निकालकर प्रदक्षिणा करनी चाहिये। जो पुरुष जूता पहिने सूर्यमन्दिर में प्रवेश करें वे असिपत्रवन नामक घोर नरक में पड़ते हैं। जो षष्ठी अथवा सप्तमी के दिन एकाहार अथवा उपवास कर सूर्यनारायण का भक्ति से पूजन करे, वह सूर्यलोक में निवास करे। कृष्णपक्ष की सप्तमी को उपवास कर, जितेन्द्रिय हो, कमल, करवीर, रक्तचन्दन, केसर, उत्तम जल और मोदक आदि भाँति-भाँति के नैवेद्यों से सूर्यनारायण का अर्चन करे, वह सूर्यलोक को प्राप्त हो। शुक्लपक्ष की सप्तमी को सब श्वेत पदार्थों से सूर्यनारायण का यजन करे। चमेली के फूल, श्वेत कमल, खीर आदि उनके अर्पण करे, वह सब पापों से मुक्त हो, कान्ति में चन्द्रमा के तुल्य हो अन्त में हंसयुक्त विमान में बैठ सूर्यलोक को जावे। यह ब्रह्माजी के मुख से श्रवणकर फिर दिण्डी ने कहा कि महाराज, आप विस्तार से सप्तमीकल्प का वर्णन करें कि मैं भी सप्तमी का उपवासकर सूर्यनारायण के शरण में प्राप्त होजाऊँ। यह दिण्डी का वचन सुन ब्रह्माजी बोले कि हे दिण्डी! बहुत उत्तम वार्त्ता तुमने पूछी। सप्तमीकल्प का हम वर्णन करते हैं—एक समय सूर्यनारायण ध्यान करते थे, उस अवसर में अरुण ने कहा कि महाराज, आप बैठे क्या ध्यान करते हैं? आप के ध्यान करने से दिनही पूरा नहीं होता। इसका कारण मुझसे कहो और आपको ध्यान करना हो तो चलते-चलते करें। यह सुन सूर्यभगवान् कहने लगे कि हे अरुण! अर्वावसु नामक ब्राह्मण पुत्र के अर्थ हमारा आराधन करता है; परन्तु वह विधि नहीं जानता कि जिसके करने से हम प्रसन्न होकर पुत्र देते हैं। वह सप्तमीकल्प नामक विधि

हम तुमको उपदेश करते हैं और तुम जाकर उस ब्राह्मण को बताओ, जिसके करने से वह अपना मनोवांछित फल पावे। उस विधि के करने से हम बहुत पुत्र देते हैं। यह कहकर सूर्य-नारायण ने अपने सारथि अरुण को सप्तमीकल्प का उपदेश किया। अरुण ने सूर्य भगवान् की आज्ञानुसार जा ब्राह्मण को बताया, ब्राह्मण ने उस सप्तमीकल्प की विधि को किया; जिससे बहुत से पुत्र, धन, आरोग्य और सम्पत्ति पाई और अन्त समय विमान में बैठ सूर्यलोक को गया।

सतहत्तरवाँ अध्याय।

विजयासप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, महाजया, नन्दा और भद्रा ये सात सप्तमी हैं शुक्लपक्ष की सप्तमी को आदित्यवार हो, तो उस सप्तमी को विजया सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, होम, उपवास, पूजन आदि सत्कर्म अनन्त फल देता है। पञ्चमी के दिन एकभक्त षष्ठी को नक्त सप्तमी को उपवास और अष्टमी के दिन व्रत पारण करे। यह कई आचार्यों का मत है परन्तु हमारे मत से चतुर्थी को एकभक्त पञ्चमी को नक्त षष्ठी को उपवास और सप्तमी को पारण करें। षष्ठी के दिन उपवास कर गन्ध, पुष्प आदि उपचारों से सूर्यनारायण का पूजन करे और गायत्रीसूक्त त्र्यक्षर मन्त्र महाश्वेता अथवा षडक्षर मन्त्र जपता हुआ सूर्यनारायण के सम्मुख शयन करे। सप्तमी के दिन प्रभात ही उठ स्नानकर सूर्यनारायण का पूजन करे और हवन कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करा कर दक्षिणा देवे और अपूप आदि भाँति-भाँति पक्वान्न, घृत, खीर आदि नैवेद्य सूर्यनारायण को निवेदन करे। करवीर के पुष्प कुंकुम

लेपन और विजयधूप के अर्पण से सूर्यनारायण प्रसन्न होते हैं। यह विजयसप्तमी का विधान है, इस व्रत के करने से सब पातक नष्ट होजाते हैं। इस दिन किया हुआ दान, हवन, देवता और पितरों का पूजन अक्षय होता है। हे दिण्डी! यह विजयसप्तमी पुण्य तिथि है, इसके माहात्म्य श्रवण करने से भी धन और यश और आयुष् की वृद्धि होती है।

अठहत्तरवाँ अध्याय।

बारहप्रकार के आदित्यवारों का कथन व कल्प।

दिण्डी पूछते हैं कि हे ब्रह्माजी! जो आदित्यवार के दिन सूर्यनारायण का भक्ति से पूजन करते हैं और स्नान, दान आदि करते हैं उनको क्या फल होता है। जिस वार के संयोग से सप्तमी तिथि विजया कहाई, उसका माहात्म्य आप कृपा कर वर्णन करें। यह सुन ब्रह्माजी बोले कि हे दिण्डी! जो पुरुष आदित्यवार को श्राद्ध करें, वे सात जन्म पर्यन्त आरोग्य होते हैं। जो नक्तव्रत करें और आदित्यहृदय का पाठ करें वे रोग से मुक्त हो सूर्यलोक में निवास करें। जो उपवास कर महाश्वेता मन्त्र को जपें वे मनोवांछित फल पावें। दिन रात्रि नक्त अथवा त्रिरात्रि के नियम से जो महाश्वेता को जपें वे अपना अभीष्ट सिद्ध करें। आदित्यवार के दिन महाश्वेता और षडक्षर मन्त्र के जपने से निःसन्देह सूर्यलोक की प्राप्ति होती है। सूर्यनारायण के बारह वार हैं नन्द, भद्र, सौम्य, कामद, पुत्रद, जय, जयन्त, विजय, आदित्याभिमुख, हृदय रोगहा और महाश्वेताप्रिय ये उनके नाम हैं। माघशुक्ल षष्ठी को जो वार हो, उसकी नन्द संज्ञा है। उस दिन नक्त व्रत कर घृत से सूर्यनारायण को स्नान कराके श्वेत चन्दन, अगस्ति के पुष्प, गूगल धूप और अपूप आदि नैवेद्य चढ़ावे और ब्राह्मण को अपूप देकर आप भी मौन से भोजनकर तारादर्शन

पर्यंत नक्तव्रत होता है। सेर पक्के गेहूँ अथवा जौ के आटे में घृत और गुड़ मिलाकर अपूप बनावे और सूर्यनारायण को नैवेद्य लगाय "आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्मितम्। श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छापूपमुत्तमम् ॥" यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवे, ब्राह्मण भी उस अपूप को ले "कामदं सुखदं धर्म्यं धनदं पुत्रदन्तथा। सदातुभ्यं प्रयच्छामि मण्डकं भास्करप्रियम्॥" यह मन्त्र पढ़ यजमान को देवे। ये दोनों ग्रहण करने और देने के मन्त्र हैं। यह नन्द वार का विधान मनुष्यों के कल्याण के अर्थ कहा है जो इस वार को इस विधि से सूर्यनारायण का पूजन करे वह सूर्यलोक पावे। उसकी सन्तान का क्षय न हो और उसके वंश में दारिद्र्य और रोग भी न हों। सूर्यलोक से आकर राजा हो। इस विधान के पढ़ने अथवा श्रवण करने से भी कल्याण होता है और लक्ष्मी मिलती है।

उनासीवाँ अध्याय।

भद्रवार का विधान और फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! भाद्रकृष्ण षष्ठी के दिन जो वार हो उसका नाम भद्र है। उस दिन जो नक्तव्रत अथवा उपवास करे वह हंसयुक्त विमान में बैठ सूर्यलोक को जावे। श्वेत चन्दन, मालती के पुष्प, विजयधूप और खीर का नैवेद्य इनसे मध्याह्न के समय सूर्यनारायण पूजनकर ब्राह्मण भोजन कराके यथाशक्ति दक्षिणा देकर आप भी मौन से भोजन करे। खीर घृत और गुड़ इनका भोजन करे। इस विधि से भद्र-वार को अन्धकारहारी श्रीसूर्यनारायण का अर्चन करे वह धन पुत्र आदि सब वस्तु पावे और अन्त में सूर्यलोक को जावे। हे दिण्डी! यह भद्रवार का विधान हमने कहा है, जिसके पढ़ने और श्रवण करने से भी सब पाप निवृत्त होते हैं।

अस्सीवाँ अध्याय ।

सौम्यवार का विधान ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! रोहिणी नक्षत्र युक्त आदित्यवार हो उसको सौम्यवार कहते हैं। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम, पूजन आदि अक्षय होता है। जो इस दिन नक्तव्रत कर रक्तचन्दन, रक्तकमल, सुगन्ध, धूप, पायस आदि नैवेद्य से सूर्यनारायण का पूजन करे और ब्राह्मणों को पायस भोजन कराकर आपभी भोजन करे। इस विधि से जो सूर्यनारायण का पूजन सौम्यवार को करे वह उत्तम कान्ति, धन, पुत्र और आरोग्य पावे। बहुत काल संसार सुख भोग सब पापों से छूट सूर्यलोक में निवास करे।

इक्यासीवाँ अध्याय ।

कामदवार का विधान ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! मार्गशीर्ष शुक्ल षष्ठी को जो वार हो वह कामद कहाता है। उस दिन जो भक्ति और श्रद्धा से सूर्यनारायण का पूजन करे वह सब पातकों से मुक्त हो सूर्यलोक में निवास करे। उस दिन उपवास अथवा नक्तव्रत कर रक्तचन्दन, करवीर के पुष्प, घृत का धूप और सुगन्धियुक्त कसार का नैवेद्य इनसे सूर्यनारायण का अर्चन करे। इस विधि से पूजन करे, तो सब मनोवांछित फल पावे। इस व्रत के करने से विद्याकामनावाले को विद्या, पुत्रकामनावाले को पुत्र, धन की इच्छावाले को धन और आरोग्य की चाह हो, तो आरोग्य मिलता है। इस दिन सूर्यनारायण का अर्चन करने से सब कामना प्राप्त होती है, इसी से इसका नाम कामद है। पूर्वोक्त रीति से इस दिन भी जो सूर्यनारायण को अपूप अर्पण करे वह इन्द्र के समान ऐश्वर्य पावे और सूर्यलोक में निवास करे।

बयासीवाँ अध्याय।

पुत्रदवार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! जिस रविवार को हस्त नक्षत्र हो वह पुत्रद कहाता है। उस दिन उपवास करे और श्राद्ध करके बिचले पिण्ड को प्राशन करे और भाँति-भाँति के उपचारों से सूर्यनारायण का पूजनकर महाश्वेता मंत्र को जपता हुआ भूमि में सूर्यनारायण के सम्मुख ही शयन करे। प्रभात उठ स्नानकर सूर्यभगवान् का अर्चनकर रक्त चन्दन और कर-वीर के पुष्प जल में मिलाय अर्घ्य देवे फिर पाँच ब्राह्मणों को बुला उनमें दिव्य दो ब्राह्मणों को भग संज्ञक मान विधि से पार्वण श्राद्ध करे। श्राद्ध को समाप्तकर मध्यम पिण्ड को "स एव पिण्डो देवेश योऽभीष्टस्तव सर्वदा। अश्नामि पश्यतस्तुभ्यं येन मे सन्ततिर्भवेत् ॥ प्रसादात्तव देवस्य इति मे भावितं मनः॥" इस मंत्र से भक्षण कर जावे। इस विधान के करने से सूर्यनारा-यण अवश्य पुत्र देते हैं। इस व्रत के करने से धन, धान्य, सुवर्ण, सुख और आरोग्य भी मिलता है और सूर्यलोक की प्राप्ति भी होती है। परन्तु विशेष करके पुत्र प्राप्ति इस व्रत का फल है इसीसे इसको पुत्रद कहते हैं।

तिरासीवाँ अध्याय।

जयवार और जयन्तवार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! दक्षिणायन के दिन जो वार हो उसका नाम जयवार है। उस दिन किया हुआ उप-वास, स्नान, दान, जप आदि सत्कर्म सौगुण फल देता है इसलिये सूर्यनारायण की प्रीति के लिये उस दिन नक्त आदि व्रतकर भक्ति से सूर्यनारायण का पूजन करे। उत्तरा-यण के दिन जो वार हो उसको जयन्त कहते हैं। इस दिन किया हुआ स्नान दानादि सहस्रगुण होजाता है। उस दिन

उपवासकर घृत, दूध और इक्षुरस से सूर्यनारायण को स्नान कराके केंसर का चन्दन चढ़ावे और गूगल का धूप दे, मोदक नैवेद्य लगावे। पीछे तिलों से हवनकर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराके आप भी व्रत पारण करे। इस व्रत के करने से मनोवांछित फल पाता और सूर्यनारायण का प्रिय होता है।

चौरासीवाँ अध्याय।

विजयवार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! शुक्लपक्ष की रोहिणी नक्षत्रयुक्त सप्तमी तिथि को जो वार हो, वह विजय कहाता है। उस दिन किया हुआ पुण्यकर्म कोटिगुण होजाता है। इस दिन नक्तव्रत अथवा उपवास कर भक्ति से सूर्यनारायण का पूजनकर जप, हवन आदि कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे। इस व्रत के करने से सप्तद्वीपवती पृथिवी का राजा होता है।

पचासीवाँ अध्याय।

आदित्याभिमुखवार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! माघ कृष्ण सप्तमी को जो वार हो, उसको आदित्याभिमुख कहते हैं। उस दिन प्रभात ही स्नान कर गन्ध पुष्पादि उपचारों से सूर्यनारायण का पूजन कर स्तम्भ के सहारे सूर्य के सम्मुख मुख कर महाश्वेता मन्त्र को जपता हुआ सायङ्काल पर्यंत खड़ा रहे। वह स्तम्भ रक्त चन्दन के काष्ठ का चार हाथ लम्बा, सीधा और चिकना हो। इस प्रकार व्रतकर ब्राह्मण भोजन कराके दक्षिणा दे आप भी मौन से भोजन करे। इस व्रत को जो पुरुष करें उनको धन, धान्य, पुत्र, आरोग्य और लक्ष्मी सूर्यनारायण के अनुग्रह से प्राप्त होते हैं।

छियासीवां अध्याय।

हृदय नाम वार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी ! संक्रांति के दिन जो रविवार हो, उसकी संज्ञा हृदय है। उस दिन नक्तव्रत करे और मन्दिर में जा सूर्यनारायण के सम्मुख खड़ा होकर आदित्यहृदय के आठ पाठ करे अथवा सायङ्काल पर्यन्त सूर्यनारायण का ध्यान करे फिर सूर्यास्त के अनन्तर घर में आकर ब्राह्मण भोंजन कराके मौन से आपभी क्षीर भोजन करे और सूर्य-नारायण का स्मरण करता हुआ भूमि पर सोवे। इस व्रत को भक्ति और श्रद्धा से कर सूर्यनारायण का अर्चन करे, तो हृदय के सब अभीष्ट सिद्ध हों और कान्ति तथा यश की वृद्धि हो।

सत्तासीवाँ अध्याय।

रोगहा वार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी ! जिस आदित्यवार को पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्र हो,उसको रोगहा कहते हैं। इस दिन गन्ध पुष्प आदि उपचारों से जो सूर्यनारायण का पूजन करे, वह सब रोगों से मुक्त होता है। आक के पत्रों का दोना बना उस में आक के फल तोड़कर लावे और रात्रि को सूर्यनारायण के सम्मुख उनको रक्खे और प्रभात उठ उनसे पूजनकर एक पुष्प आपभी प्राशन करे और क्षीर भोजन कर व्रत समाप्त करे। व्रत के दिन भूमिशयन करे और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराके दक्षिणा देवे। इस विधि से जो सूर्यनारायण का आराधन करे, वह सब रोगों से मुक्त हो अन्त में सूर्यलोक में निवास करता है।

अट्ठासीवाँ अध्याय।

महाश्वेताप्रिय वार का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी ! सूर्यग्रहण के दिन जो रविवार हो उसको महाश्वेतप्रिय अथवा खखोल्क प्रिय

कहते हैं। उस दिन उपवास कर पवित्र हो गन्ध पुष्पादि उपचारों से सूर्यनारायण का पूजन करे और महाश्वेता मन्त्र अथवा खखोल्क मन्त्र का जप करे। पहिले खखोल्क का पूजनकर महाश्वेता का पूजन करे। पीछे सूर्यनारायण को पूज, महाश्वेता को स्थापनकर गन्ध, पुष्प आदि से पूज, उसके सम्मुख सूर्यनारायण का पूजन स्नान कर घृत सहित तिलों का हवन करे। ग्रहण के समय महाश्वेता मन्त्र का जप करे और ग्रहण मोक्ष होने के अनन्तर स्नान करे महाश्वेता खखोल्क और सूर्यनारायण का पूजन कर ब्राह्मणों से पुराण श्रवणकर उनको भोजन कराके यथा शक्ति दक्षिणा देकर आप भी मौन से भोजन करे। इस दिन किये हुये स्नान, दान, जप, होम आदि कर्म अनन्त फल को देते हैं; इसलिये सूर्यनारायण की प्रीति के अर्थ इस दिन दान आदि सत्कर्म करे इस व्रत के करने से धर्म, यश, सन्तान और धन की वृद्धि होती है और सूर्यनारायण प्रसन्न होते हैं। उस दिन अपूप का दान करने से गोदान तुल्य फल होता है। हे दिण्डी! ये बारह वार सूर्यनारायण के हमने वर्णन किये, इनको जो पुरुष पढ़े अथवा सुने वह सूर्यनारायण का प्रिय हो और जो इन व्रतों को करे, वह धर्म, अर्थ, काम, सन्तान, आरोग्य, तेज, कान्ति और स्थिर लक्ष्मी पा बहुत काल संसार के सुख भोगकर अन्त में शिवलोक को जाता है।

नवासीवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण को अनेक उपचार, पदार्थ अर्पण करने का अलग २ फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! जो पुरुष सब सत्कर्म सूर्यनारायण की प्रीति के लिये करते हैं उनके कुल में रोगी और दरिद्री नहीं उत्पन्न होते हैं। सूर्यभगवान् के मन्दिर में जो

गोबर से लेपन करे, वह बहुत शीघ्र सब पापों से छूट जाता है। श्वेत, रक्त अथवा पीली मृत्तिका से जो लेपन करे, वह मनोवांछित फल पाता है। अनेक प्रकार के पुष्प जो सूर्यनारायण के अर्पण करे, वह बरत से अभीष्ट फल पाता है। जो घृत अथवा तेल से मन्दिर में दीपक प्रज्वलित करे, वह करोड़ों दीपकों से आवृत हो सूर्यलोक को जाता है। जो सूर्यनारायण की प्रीति के अर्थ चतुष्पथ, तीर्थ, देवालय आदि में दीपक रक्खे, वह उत्तम रूप पावे। जो चन्दन, केसर, अगरु, कपूर, कस्तूरी आदि का उबटना बना सूर्यनारायण के अंग में लगावे, वह करोड़ों बर्ष स्वर्ग में विहारकर भूमि पर चक्रवर्ती राजा होता है। चन्दन और केसर सहित तीर्थजल से जो सूर्यनारायण को अर्घ्य देता है, वह अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि सहित स्वर्ग में वास करता है। कमल पुष्पों से पूजन करे, तो उत्तम अप्सराओं के साथ करोड़ों वर्ष स्वर्ग में विहार करता है। गूगल और घृत का धूप देवे, तो सब पातक निवृत्त हों। एक पक्ष इस धूप को देवे, तो घोर ब्रह्महत्या से भी छूट। वर्ष भर इसी धूप के देने से अश्वमेध का फल होता है। सिह्लक नाम सुगन्ध द्रव्य के धूप से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। कपूर और अगरु का धूप देवे, तो राजसूय यज्ञ का फल पावे। पूर्वाह्न में सूर्यनारायण का पूजन करे, तो सौ कपिला गोदान का फल होता है। मध्याह्न में पूजन करे, तो गोदान और भूमिदान का फल प्राप्त होवे। अपराह्न में पूजन करे, तो हज़ार गोदान का फल होवे। अर्धरात्रि के समय पूजन करे, तो जातिस्मर हो और उत्तम कुल में जन्म पावे। प्रभात ही पूजन करे, तो स्वर्ग को जाता है। इस प्रकार सब समयों में जो पुरुष अर्कपुष्पों से सूर्यनारायण का अर्चन करे, वह सूर्यलोक में स्थान पाता है। दोनों अयन, संक्रांति, दोनों

विषुव संक्रांति, ग्रहण और षडशीति मुखनाम संक्रांति के दिन जो सूर्यनारायण का अर्चन करें, वे उत्तम गति को प्राप्त होते हैं। जो पुरुष सोते उठते ही सूर्यनारायण को प्रणाम करें, वे उत्तम फल के भागी होते हैं। कृशर, अपूप, मांस और मोदकों से सूर्यनारायण को बलि देवे, तो सब कार्य सिद्ध हों। मोदक, पायस, मधु मांस और आसव के देने से सूर्य भगवान् बहुत ही प्रसन्न होते हैं। घृत से स्नान करावे, तो सदा स्निग्ध हो। मांस से तर्पण करे, तो उसी क्षण पाप से छूटे। सूर्योदय के समय घृत से स्नान करावे तो लाख गोदान का फल पावे। मांस और दुग्ध से तर्पण करे, तो पुण्डरीक नाम यज्ञ का फल होता है। इक्षुरस से स्नान करावे, तो अश्वमेध यज्ञ का फल पावे। दुग्ध देनेहारी एक उत्तम गौ सूर्यनारायण के अर्पण करे, तो स्थिर लक्ष्मी पावे और अन्त समय देवलोक को जावे। गौ के शरीर में जितने रोम हों उनसे भी अधिक वर्ष स्वर्ग में निवास करे। सौ गौ देवे, तो राजसूय यज्ञ का फल और हज़ार गौ सूर्यनारायण के अर्पण करने से अश्वमेध का फल होता है। गूगल, देवदारु और घृत इनका धूप देवे, तो उत्तम गति पावे। घृत का धूप देवताओं को स्वभाव से ही सदा प्रिय है। भेरी, वंशी आदि वाद्य जो सूर्यनारायण के मन्दिर में बजवाते वे सूर्यलोक पाते हैं। भक्ति से जो पुरुष चक्र सूर्यनारायण के अर्पण करे, तीर्थ का जल और उत्तम अन्न निवेदन करे, वह सैकड़ों उत्तम नारियों से युक्त विमान में बैठ बहुत काल विहार करे और भूमि पर आ धर्मात्मा राजा होता है। छत्र, ध्वजा, पताका, वितान, चामर और सुवर्ण के दण्ड भक्तिसे जो सूर्यनारायण के अर्पण करे, वह किंकिणी-जाल से भूषित विमान में बैठ सूर्यलोक में जा अप्सराओं का पति हो फिर मनुष्यलोक में आ चक्रवर्ती राजा होता है।

वस्त्र और भूषण सूर्यनारायण को चढ़ावे, तो प्रलयकाल पर्यंत सूर्यलोक में रहे गाने बजाने और नृत्य से जो जागरण करे, वह अप्सरा और गन्धर्वों के साथ चिरकाल विहार करे। गन्ध, पुष्प आदि से सूर्यनारायण का पूजनकर अनेक प्रकार के स्तोत्रों तथा भक्ति से स्तुति करें वे परमपद को प्राप्त हो सूर्यनारायण के गायक, पाठक, चारण, वन्दी आदि सब स्वर्ग को जाते हैं। बैल अथवा घोड़ों से युक्त सुवर्ण का जड़ाऊ रथ अथवा चांदी का ही सूर्यनारायण के समर्पण करे, वह अति प्रकाशवान् विमान में बैठ स्वर्ग में जा देवताओं के समूह में क्रीड़ा करे। जो काष्ठ का ही रथ बनावे वह भी देदीप्यमान विमान में बैठ सूर्यलोक को जावे। जो पुरुष वर्ष-भर अथवा छः महीने सूर्यनारायण की यात्रा करें, वे ध्यानी अथवा योगी जिस गति को प्राप्त होते हैं, उसी उत्तम गति को प्राप्त हों और जन्म मरण से छुटें। जो सूर्यनारायण के रथको खैंचें वे जन्म जन्म में आरोग्य और धनवान् हों। जो पुरुष सूर्यनारायण की रथयात्रा करते हैं, वे देवता हैं और सूर्यनारायण के परमप्रिय हैं। जो पुरुष क्रोध से अथवा मोह से रथयात्रा का भंग करें उन पापियों को मन्देह नामक राक्षस जानो। धन, धान्य, सुवर्ण और अनेक प्रकार के वस्त्र जो सूर्यनारायण को चढ़ावें, वे परमगति को प्राप्त होते हैं। जा पुरुष हाथी, घोड़े, भैंस और गौ सूर्यनारायण को अर्पण करें वे हजारगुणा फल पावें। अश्वमेध यज्ञ का फल उनको हो। खेती से युक्त भूमि देवे, तो इक्कीस पीढ़ी का उद्धार करे। ग्राम अथवा फल, पुष्प आदि से परिपूर्ण बाग सूर्यनारायण को चढ़ावे, वह उत्तम विमान में बैठ सूर्यलोक में जा अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करे। सूर्यभगवान् को प्रणाम करने से मन वचन और कर्म से किये हुये सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

आर्त ,रोगी, दरिद्री, दुःखी पुरुष सूर्यनारायण के शरण में जाता है, वह सब क्लेशों से छूट जाता है। सूर्यनारायण का एक दिन पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है, वह उत्तम फल सौ यज्ञ के करने से भी नहीं मिलता। सूर्यभगवान् के मन्दिर में प्रेक्षणक अर्थात् तमाशा करावे, तो राजसूय यज्ञ का फल पावे। उत्तम वेश्याओं का समूह जो सूर्यनारायण के अर्पण करे, वह सूर्यलोक को जावे। भारत की पुस्तक चढ़ावे, तो सब पापों से छूट विष्णुलोक में निवास करे। रामायण चढ़ावे, तो वाजपेय यज्ञ के फलको प्राप्त होकर शिवलोक को जाता है। भविष्यपुराण अथवा साम्बपुराण सूर्यनारायण के अर्पण करे, तो राजसूय और अश्वमेध का फल पावे। ग्रीष्म ऋतु में सूर्यनारायण के मन्दिर में जो प्रपा अर्थात् जलशाला बनावे और शीतकाल में शीत निवारण वस्त्र वहाँ रक्खे, वह अश्वमेध का फल पावे और स्वर्ग में निवास करे। सूर्यनारायण के सम्मुख इतिहास पुराण आदि बँचवावे वह हज़ार अश्वमेध के फल को प्राप्त होता है। इतिहास और पुराण की कथा से अधिक कोई पदार्थ सूर्यनारायण को प्रिय नहीं है; इसलिये इनके मन्दिर में अवश्य पुराण बँचवावे अथवा आप बाँचे।

नब्बेवाँ अध्याय।

वैश्य व ब्राह्मण की कथा, सूर्यमन्दिर में पुराण बाँचने का फल।

ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे दिण्डी! हम तुमको एक इतिहास सुनाते हैं, प्रीति से सुनो। एक समय कुमार हमारे समीप आये, हमने भी उनको आदर से आसन पर बैठा कर कुशल प्रश्न पूछ यह भी पूछा कि आप कहाँ से आये हो। तब कुमार कहने लगे कि महाराज आज हम सूर्यलोक में गये थे वहाँ हम ने भक्ति से सूर्यनारायण का पूजन किया और प्रदक्षिणा

प्रणाम कर उनकी आज्ञा से आसन पर बैठे। इसी अवसर में रत्नों के जड़ाऊ विमान में बैठा हुआ अति तेजस्वी एक पुरुष वहाँ आया। उसको देख सूर्यनारायण अपने सिंहासन से उठे और उसका दहिना हाथ पकड़ बड़े आदर से आसन पर बैठाकर अर्घ्य दे, प्रीति से स्वागत प्रश्न करते हुए प्रीति से यह भी उस पुरुष से कहा कि तुम हमारे परम प्रिय हो, अब प्रलय पर्यन्त हमारे समीप ही रहो फिर ब्रह्मलोक को जाओगे। सूर्यनारायण उस पुरुष का आदर करही रहे थे कि विमान में बैठा हुआ एक पुरुष आया। उसका भी उसी भाँति सूर्य-नारायण ने बहुत आदर सत्कार किया। यह देख हमको बहुत आश्चर्य हुआ, तब हमने सूर्यनारायण से पूछा कि महाराज ये दोनों कौन हैं इन्होंने ऐसा क्या उत्तम कर्म किया है कि आपने अपने हाथ इन दोनों का पूजन किया। यह देख हमको बड़ा आश्चर्य हुआ है; क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और शिव सदा आप का अर्चन करते हैं और आपने इनका पूजन किया। यह वड़े आश्चर्य की बात है। कौन ऐसा उत्तम कर्म इन दोनों ने किया कि जिस का यह फल है। आप कृपा कर हमसे कहें।

यह सुन सूर्य भगवान् कहने लगे कि आपने बहुत अच्छी बात पूछी, हम इसका वर्णन करते हैं, आप श्रवण करो। हमारे वंश के राजाओं की राजधानी अयोध्यानाम नगरी है। उसमें धनपाल नाम एक वैश्य था, उसने एक बहुत उत्तम हमारा मन्दिर बनाया और ब्राह्मणों के समूह का पूजनकर पौराणिक आचार्य को बुला पुस्तक और आचार्य का भक्ति से अर्चन कर यह प्रार्थना की कि महाराज आप सूर्यनारायण के सम्मुख पुराण बाँचें; जिससे ये चारों वर्ण के मनुष्य श्रवण करें और मेरे ऊपर भी सूर्यनारायण का अनुग्रह हो। यह कहकर सो मोहर आचार्य को समर्पणकर प्रार्थना की कि महाराज

आप प्रीति से कथा बाँचें। वर्ष के अनन्तर आपका और भी पूजन करूँगा। यह सुन आचार्य प्रसन्न हो कथा कहने लगे; परन्तु छः महीने के अनन्तर वैश्य का देहांत होगया। वही वैश्य यह पुरुष है, जो पहिले आया है। हमने इसके लाने को विमान भेजा था। हे कुमार! गन्ध, पुष्प आदि उपचारों से पूजन करने से हमारी वैसी प्रसन्नता नहीं होती, जैसी पुराण-कथा बँचवाने से होती है। गौ, सुवर्ण, वस्त्र, भूषण, हाथी, घोड़े, ग्राम, नगर आदि हमारे अर्पण करें, तौभी पुराण-कथा विना हम प्रसन्न नहीं होते। हे कुमार! बहुत कहाँतक कहें। पुराण-कथा से अधिक हमारी प्रीति करनेहारा कोई कर्म नहीं है। जो पुरुष दूसरे विमान में आया, यह भी उसी नगर में ब्राह्मण था। एक दिन यह कथा श्रवण करने हमारे मन्दिर में गया। वहाँ इसने भक्ति से पौराणिक का पूजन कर प्रदक्षिणा की, एक माशा सुवर्ण कथा पर चढ़ाया और कथा श्रवण कर बहुत प्रसन्न हुआ। केवल इसी कर्म के फल से यहाँ प्राप्त भया और हमने अपने हाथ से इसका पूजन किया। हे कुमार! जिसने भक्ति से पौराणिक का पूजन किया, उसने ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सब देवताओं का पूजन किया। जो पौराणिक को पूजन कर भोजन करावे, उसको पंद्रह वर्ष तक किये हुए हमारे पूजन का फल प्राप्त होता है। यम, यमुना, तपती, शनैश्चर, मनु आदि हमारे संतानभी हमको ऐसे प्रिय नहीं हैं, जैसा पुराण वाँचने-वाला पुरुष। एक बार पौराणिक का पूजन करने से दो सौ वर्षपर्यन्त हमको तृप्ति रहती है। केवल हमारी ही तृप्ति नहीं होती, इन्द्र आदि देवता भी तृप्त हो जाते हैं; क्योंकि पौरा-णिक सब देवताओं का प्रीतिपात्र है। उसके प्रसन्न होने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। हे ब्रह्माजी! यह बात सूर्यनारायण के मुख से श्रवण कर बड़े आश्चर्य से आपके पास आये हैं।

अब आप हमारा सन्देह निवृत्त करें कि क्या पुराण श्रवण का ठीक ऐसा ही फल है। हे दिण्डी! यह सुन हमने कुमार से कहा कि तुम धन्य हो कि ऐसा सत्कर्म करनेहारे पुरुषों का दर्शन किया और सूर्यनारायण के मुख से उनकी प्रशंसा सुनी। हे कुमार! सूर्यनारायण ने जो कथन किया, सब यथार्थ है। उसमें कभी भ्रांति मत करो। हे कुमार! हमने अपने पंचम मुख से इतिहास और पुराण रचे हैं। हमको चारों वेदों से भी पुराण और इतिहास अधिक प्रिय हैं; क्योंकि वेदों का अर्थ गूढ़ है और ये सब स्फुटार्थ हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का इनमें विस्तार से वर्णन है। जो इनको श्रवण करे, वह अवश्य परम पद पाता है, और पौराणिक को दक्षिणा दे, तो बहुत ही फल है। जैसे देवताओं में इन्द्र और शस्त्रों में वज्र सर्वोत्तम है, इसी प्रकार मनुष्यों में पुराण बाँचनेवाला श्रेष्ठ है। जो पौराणिक का पूजन भक्ति से करे, उसको सम्पूर्ण जगत् के पूजन का फल प्राप्त होता है। मनुजी ने भी कहा है कि पौराणिक के समान और कोई पात्र नहीं है। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! इस प्रकार हमारे मुख से सुन प्रसन्न हो कुमार अपने धाम को गये। हे दिण्डी! सूर्यनारायण के मन्दिर में जो पुराण श्रवण करे, वह परमगति को प्राप्त होता है।

इक्यानबेवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण को स्नान आदि कराने का फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! जो पुरुष प्रदक्षिणा कर भूमि पर मस्तक रख सूर्यनारायण को प्रणाम करे, वह उत्तम गति पाता है। जूता पहिने जो पुरुष सूर्यमंदिर में जाय, वह अंधतामिस्र नाम घोर नरक में पड़ता है। मूत्र, विष्ठा अथवा थूक जो सूर्यनारायण के मंदिर में डालते हैं, वे भी नरक में पड़ते हैं। घृत, दूध, शहद, इक्षुरस और उत्तम जल जो सूर्यनारायण के स्नान के

लिये देवें वे उत्तम गति पावें। स्नान के समय जो सूर्यनारायण का दर्शन करें वे अश्वमेध के फल को प्राप्त होकर शिवलोक को जाते हैं। जो भक्ति से स्नान करावें वे अश्वमेध और राजसूय के फल को प्राप्त हों। परन्तु ऐसे स्थान में स्नान कराना चाहिए जहाँ स्नान के जल को कोई उल्लंघन न करे। इस जल के उल्लंघन करने से अशुभ होता है अर्थात् लंघन करनेवाला पुरुष नरक में पड़ता है। घृत से स्नान करावे तो ब्रह्मलोक को, शहद से स्नान करावे तो वरुणलोक को, जल से स्नान करावे तो देवलोक को, इक्षुरस से स्नान करावे तो वायुलोक को और सब द्रव्यों से स्नान करावे तो सूर्यलोक को प्राप्त होता है।

बानबेवाँ अध्याय।

जयासप्तमी का विधान और फल।

दिण्डी पूछते हैं कि महाराज! आपने सात सप्तमी कहीं उनमें एक का तो विस्तार से वर्णन किया और बाक़ी छः सप्तमियों का विधान नहीं कहा इसलिये कृपा कर आप उनका भी वर्णन कीजिए जिनके उपवास करने से सूर्यलोक की प्राप्ति हो, यह दिण्डी का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे दिण्डी! शुक्ल-पक्ष की जिस सप्तमी को हस्त नक्षत्र हो उसको जया सप्तमी कहते हैं। उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम, पूजन आदि कर्म सब सौगुणा होजाता है। यह सप्तमी सूर्यनारायण को बहुत प्रिय है। इसके उपवास से धन, यश, पुत्र और सब मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं। जया सप्तमी से व्रत का आरम्भ कर चार-चार महीने में पारण करे। इस प्रकार एक वर्ष में तीन पारण होते हैं। पहिले पारण में करवीर के पुष्प चढ़ाकर कसार का नैवेद्य लगावे और ब्राह्मणों को भी कसार ही भोजन करावे। पंचमी को एकभक्त, षष्ठी को नक्त और सप्तमी को उपवास कर अष्टमी को पारण करे। इस व्रत को अर्क के काष्ठ से

दन्तधावन कर श्वेत सरसों का उबटन लगाकर स्नान करे और गोबर का प्राशन करे यह प्रथम पारण का विधान है। दूसरे पारण में चमेली के पुष्प, श्वेत चन्दन, विजय धूप, पायस, नैवेद्य और भाँति-भाँति के उपचारों से सूर्यनारायण का पूजन करे और ब्राह्मण भोजन कराके आप भी मौन हो खीर का भोजन करे और यह कहे कि देवदेव श्रीसूर्यनारायण मुझ पर प्रसन्न हों। इस पारण में खदिर के काष्ठ से दन्तधावन और पंचगव्य का प्राशन करे। तीसरे पारण में श्वेत चन्दन, अगस्त्य पुष्प और भाँति-भाँति के नैवेद्यों से पूजन करे। इस पारण को कुशा के जल का प्राशन और बदरी काष्ठ का दन्तधावन करे। वर्ष के अन्त में सूर्यनारायण का बड़ा पूजन करे और नाच तमाशा आदि उत्सव करावे। गौ, भूमि और सुवर्ण आदि दान देकर ब्राह्मणों को प्रसन्न करे और वस्त्र, भूषण आदि से पौराणिक का पूजन कर सूर्यनारायण के सम्मुख खड़ा हो यह श्लोक पढ़े कि (देवदेव जगन्नाथ सर्वरोगार्तिनाशन। ग्रहेश लोकतपन विकर्तन भयापह ॥ कृतेयं देवदेवेश जयानामेति सप्तमी। मया तव प्रसादेन धन्या पापहरा शिवा) यह पढ़ वारंवार प्रणाम करे हे दिण्डी ! इस विधि से जो सप्तमी व्रत करे उसका स्नान आदि कर्म सौगुणा होजाता है। इस व्रत का करनेवाला पुरुष धन, धान्य, पुत्र, आयुष् और आरोग्य पाता है और बहुत काल सूर्यलोक में निवास कर वहाँ उत्तम भोग भोग करके भूमि पर आकर चक्रवर्ती राजा हो चिरकाल पर्यन्त निष्कंटक राज्य करता है। हे दिण्डी ! इस माहात्म्य के श्रवण से भी बहुत फल होता है।

तिरानबेवाँ अध्याय।

जयन्तीसप्तमी का विधान और फल।

ब्रह्मा जी कहते हैं कि हे दिण्डी ! माघ शुक्ल सप्तमी का

नाम जयंती है । उसका यह विधान है कि पंचमी को एकभक्त, षष्ठी को नक्त और सप्तमी को उपवास कर अष्टमी को पारण करे । इस व्रत में चार पारण होते हैं—प्रथम पारण में केसर का चन्दन, बकपुष्प, मोदक, नैवेद्य और घृत का धूप इनसे सूर्य-नारायण का पूजन करे । ब्राह्मणों को मोदक और बहुत उत्तम भात भोजन करावे और आप पंचगव्य प्राशन करे । इस प्रथम पारण के करने से अश्वमेध का फल होता है । दूसरे पारण में कमल के पुष्प, रक्तचन्दन, गुग्गुलु, धूप और गुड़ के अपूप ये सूर्यनारायण के समर्पण करे और ब्राह्मणों को भी गुड़ के अपूप भोजन करावे आप गोबर का प्राशन करे इस पारण के करने से राजसूययज्ञ का फल होता है । तीसरे पारण में रक्त चन्दन, मालती पुष्पं, विजय धूप और गुड़ के अपूप नैवेद्य इनसे सूर्यनारायण का अर्चन कर ब्राह्मणों को भी अपूप ही भोजन करावे और कुशोदक प्राशन करे । इसके करने से राज-सूय और अश्वमेध का फल प्राप्त होता है । चौथे पारण में रक्त चन्दन, रक्त करवीर के पुष्प, अमृत धूप और पायस नैवेद्य इन करके पूजन करे और पंचगव्य प्राशन करे । चन्दन, अगुरु, मोथा, कस्तूरी और सिह्लक ये समभाग लेकर धूप बनावे उसको अमृत धूप कहते हैं । चारों पारणों में चित्रभानु, भानु, आदित्य और भास्कर इन नामों से क्रम करके पूजन करे । इस विधि से इस तिथि को जो सूर्यनारायण का पूजन करे वह परम पद को प्राप्त होता है । इस व्रत के करने से पुत्र, धन, आरोग्य और यश की प्राप्ति होती है । वर्ष पूरा होने पर बड़ा उत्सव करे, ब्राह्मण भोजन करावे, वस्त्र भूषण आदि से पौराणिक का पूजन करे और यह श्लोक पढ़ सूर्यनारायण की प्रार्थना करे कि (धर्मकार्येषु देवेश अर्थकार्येषु नित्यशः । कामकार्येषु सर्वेषु जयो भवतु सर्वदा १) इस विधि से जो इस व्रत को करे वह

सब पापों से मुक्त हो उत्तम विमान में बैठ सूर्यलोक को जाय और सूर्य के समान तेजस्वी होय।

चौरानबेवाँ अध्याय।

अपराजिता सप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! भाद्र शुक्ल सप्तमी को अपराजिता कहते हैं। चतुर्थी को एकभक्त, पंचमी को नक्त, षष्ठी को उपवास और सप्तमी को पारण करे। इस व्रत में चार पारण कहे हैं। प्रथम पारण में रक्तचन्दन, करवीर पुष्प, गूगल का धूप और गुड़ के अपूपों का नैवेद्य इनसे सूर्यनारायण का पूजन करे और गुड़ के अपूप ही ब्राह्मणों को भोजन करावे। दूसरे पारण में केसर का चन्दन, श्वेतपुष्प, सिह्लक का धूप और शाली का भात नैवेद्य सूर्यनारायण के अर्पण करे। तीसरे पारण में अगुरु का चन्दन, रक्तकमल, अनन्त धूप, गुड़के अपूप, नैवेद्य इन से पूजन करे। चन्दन, ग्रंथि, पर्ण, अगुरु, सिह्लक, शर्करा, कपूर और मोथा इनको समभाग मिलाकर अनन्त धूप बनता है। यही विधि चतुर्थ पारण की है। चारों पारणों में भग, अंशुमान्, अर्यमा और सविता इनका क्रम से पूजन करे और गोमूत्र, पंचगव्य, घृत और गरम जल चारों पारणों में प्राशन करे। इस विधि से जो इस सप्तमी व्रत को करे वह शत्रुओं में कभी पराजय न पावे और धर्म, अर्थ तथा काम को पाय सूर्यलोक में जावे। वर्ष पूरा होने पर ब्राह्मण भोजन कराके पौराणिक का पूजन करे और रक्तवर्ण की ध्वजा सूर्यनारायण के मंदिर पर चढ़ावे। इस व्रत को जो पुरुष करे वह सदा युद्ध में जय पावे और अन्त समय उत्तम विमान में बैठ सूर्यलोक को जावे।

पंचानबेवाँ अध्याय।

महाजया सप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! जिस सप्तमी को संक्रांति

हो उसको महाजया सप्तमी कहते हैं उस दिन किया हुआ स्नान, दान, जप, होम, पूजन आदि कर्म कोटिगुणित होजाता है। इस तिथि को जो घृत करके सूर्यनारायण को स्नान करावे वह अश्वमेध का फल पाकर स्वर्ग में निवास करता है। जो भक्ति से दुग्ध करके स्नान करावे वह सब पापों से छूट सूर्यलोक को जाय और जो अनेक प्रकार के उपचारों से पूजन कर भाँति-भाँति के नैवेद्य लगावे वह किंकिणी जाल करके युक्त सुवर्ण के विमान में बैठ सूर्यलोक में प्राप्त हो वहाँ से आकर सूर्य के समान तेजस्वी और चन्द्र के सम कांतिमान् होकर बहुत काल धर्म से राज्य करे, हे दिण्डी! इस व्रत को भक्ति से करे तो स्थिर लक्ष्मी पावे और अन्तसमय सूर्यनारायण में लीन हो।

छियानबेवाँ अध्याय।

नन्दासप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! मार्गशीर्ष महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी नन्दा कहाती है। पंचमी के दिन एकभक्त, षष्ठी को नक्त, सप्तमी को उपवास और अष्टमी को पारण करे। इस व्रत के भी तीन पारण हैं। प्रथम पारण में सुगन्ध, चन्दन, मालती पुष्प, कर्पूर और अगुरु का धूप, दही, भात और शर्करा का नैवेद्य इनसे सूर्यनारायण का पूजन कर और ब्राह्मणों को भी दही, भात और खाँड़ भोजन कराके आप भोजन करे। दूसरे पारण में रक्तचदन, पलाश पुष्प, यक्षनामक धूप और खाँड़ से वेष्टित पक्वान्न नैवेद्य इनसे सूर्यनारायण का पूजन करे। कपूर, चन्दन, कूट, अगुरु, सिह्लक, ग्रन्थिपर्णी, कस्तूरी, केसर, गृंजन और हड़ इनके सम भाग मिलाने से यक्ष धूप बनता है। ब्राह्मणों को भोजन कराके आप भी मौन से भोजन करे। तीसरे पारण में चन्दन, नीलकमल, प्रबोधनाम धूप और खीर, खाँड़ के नैवेद्य से सूर्यनारायण का पूजन कर ब्राह्मण भोजन

करावे। काला अगुरु, सिह्लक, बाला, कस्तूरी, चन्दन, तगर, मोथा और खाँड़ इनसे प्रबोध धूप बनता है। तीनों पारणों में विष्णु, भग, धाता इनका क्रम से अर्चन करे। इस विधि से जो पुरुष नंदासप्तमी का व्रत कर पारण करे वह पुत्र, धन, विद्या, यंश आदि अपने मनोवाञ्छित फल पाता है और बहुत काल नंदनवन में अप्सराओं के साथ विहार करके सूर्य भगवान् में लीन होता है। इस माहात्म्य के श्रवण करने से भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

सत्तानबेवाँ अध्याय।

भद्रासप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे दिण्डी! जिस शुक्लपक्ष की सप्तमी को हस्त नक्षत्र हो वह भद्रासप्तमी कहाती है। उस दिन उपवास कर सूर्यनारायण को स्नान करावे और चन्दन से लेपन कर करवीर आदि पुष्प चढ़ावे। गुड़ सहित गेहूँ के आटे का भद्र बनावे, उसके चारों शृंगों में हीरा, मोती, पद्मराग और पन्ना लगाकर सूर्यनारायण के सम्मुख स्थापन करे और उसके ऊपर यथाशक्ति सुवर्ण भी रक्खे। चतुर्थी को एकभक्त, पंचमी को नक्त, षष्ठी को अयाचित और सप्तमी को उपवास करे। उपवास के दिन पाखण्डी, कुकर्मी, दाम्भिक आदि पुरुषों से संभाषण न करे और दिन में न सोवे। भक्ति से सूर्यनारायण का पूजन कर वह भद्र ब्राह्मण को देवे। इस विधि से जो उपवास कर भद्र का दान करे वह सब मनोवाञ्छित फल पावे। यह सुन दिण्डी ने पूछा कि महाराज! यह भद्र कौन पदार्थ है और क्यों-कर बनता है, इसके दान से क्या फल होता है, यह आप वर्णन करें, तब ब्रह्माजी बोले कि हे दिण्डी! यह व्योमभद्रनामक सूर्यनारायण का चिह्न है इसके दान से सब पाप निवृत्त होते हैं और सूर्यनारायण की प्रसन्नता होती है। गेहूँ का आटा, घृत, श्वेत शर्करा,

इलायची, दालचीनी, तजपत्र, नागकेसर और दाख, खोपरा आदि मेवा इन सब को मिलाय बहुत स्वादिष्ठ और सुगन्धित भद्र बनावे, उसके चारों शृंगों में हीरा आदि चार रत्न और मध्य में इन्द्र नील लगाय सूर्यभगवान् के प्रीत्यर्थ पौराणिक अथवा भोजक को देवे, इसप्रकार जो भद्र का दान करे वह सब प्रकार के भद्र अर्थात् कल्याण पावे और बहुत काल सूर्यलोक में निवासकर ब्रह्मलोक को जा फिर भूमिपर आकर चक्रवर्ती राजा हो। हे दिण्डी! इस भद्रसप्तमी का जो उपवास करें अथवा जो इस माहात्म्य कोही पढ़ें और सुनें वे सब कल्याण के भागी होते हैं और अन्त में उत्तम गति पाते हैं।

इतनी कथा सुनाकर सुमन्तुमुनि बोले कि हे राजा शतानीक! इस प्रकार ब्रह्माजीं ने दिण्डी के प्रति जो सप्तमी माहात्म्य कहा था वही हमने आपको श्रवण कराया। सप्तमी व्रत को ग्रहणकर पारण किये विना जो पुरुष त्याग दे वह आरूढ़ पतित अर्थात् ऊँचे स्थान पर चढ़ गिरनेवाला होता है इसलिये उद्यापन किये बिन इस व्रत को न त्यागे जो भक्ति से इस व्रत को कर उद्यापन करे वह अश्वमेध का फल पाता है।

अट्ठानबेवाँ अध्याय।

तिथिस्वामी और नक्षत्रस्वामियों के पूजन का फल।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजन्! सब तिथि सूर्यनारायण कीही हैं परन्तु उन में सप्तमी सब से प्रिया है जैसे पुरुष की बहुत सी भार्याओं में एक ही पर अधिक प्रीति होती है। यह सुन शतानीक ने पूछा कि महाराज, सब तिथियों के सूर्यनारायण स्वामी हैं फिर सप्तमी कोही उनका याग क्यों करते हैं यह राजा का प्रश्न सुन सुमन्तुमुनि ने कहा कि हे राजन्! यह बात विष्णु भगवान् ने ब्रह्माजी से भी पूछी थी तब ब्रह्माजी हँसकर कहने लगे कि महाराज, सूर्यनारायण ने सब तिथियां

देवताओं को बांट दीं केवल सप्तमी अपने लिये रक्खी। जो तिथि जिस देवता को दी वही उसका स्वामी कहलाया और उस तिथि को पूजन करने से वरप्रद हुआ। भगवान् ने पूछा कि कौन कौन तिथि किस किस देवता को दीं कि जिस दिन पूजन करने से वह वरदायक होता है तब ब्रह्माजी ने कहा कि महाराज प्रतिपदा अग्नि को, द्वितीया हम को, तृतीया यक्षराज को, चतुर्थी गणेश को, पंचमी नागराज को, षष्ठी कार्त्तिकेय को दी और सप्तमी अपने लिये रक्खी, अष्टमी रुद्र को, नवमी दुर्गा को, दशमी यमराज को, एकादशी विश्वेदेवों को, द्वादशी आपको, त्रयोदशी कामदेव को, चतुर्दशी शिवजी को, पूर्णिमा चन्द्रमा को और अमावास्या पितरों को दी। ये तिथियां चन्द्रमा की कला हैं। कृष्णपक्ष में देवता इनको पान कर जाते हैं और शुक्लपक्ष में फिर उत्पन्न होती हैं, सोलहवीं कला अक्षय है, चन्द्रमा का क्षय और वृद्धि सूर्यनारायण करते हैं इसलिये चन्द्रमा के भी स्वामी वेही हैं। जिस तिथि में पूजन करने से जो देवता प्रसन्न होकर जो फल देता है उसका हम संक्षेप से वर्णन करते हैं। प्रतिपदा के दिन अग्नि में घृत आदि का हवन करे तो धन, धान्य पावे। द्वितीया को हमारा पूजन कर ब्रह्मचारियों को भोजन करावे तो सब विद्याओं का पारगामी हो। तृतीया को कुबेर का पूजन करे तो व्यापार में बहुत लाभ हो और धनाढ्य होजाय। चतुर्थी को गणेश का अर्चन करे तो सब कार्य निर्विघ्न सिद्ध हो और शत्रुओं का विघ्न हो। पंचमी के दिन नागपूजा करे तो विष का भय न हो और स्त्री पुत्र तथा धन भी पावे। षष्ठी को कार्तिकेय का अर्चन करे तो बुद्धि, रूप, आयु और कीर्ति की वृद्धि हो। सप्तमी को सूर्यनारायण का पूजन करे तो मनोवाञ्छित फल पावे। अष्टमी के दिन शिव का पूजन करे तो स्थिर लक्ष्मी पावे और

संसार-पाश को काटनेवाला ज्ञान प्राप्त हो, जिससे जन्म मरण का भय छूटे। नवमी के दिन भगवती का पूजन करे तो सब प्रकार के कष्टों से छूटे और युद्ध तथा विवाद में जय पावे। दशमी के दिन यमराज का पूजन करे तो मृत्यु रोग और नरक का भय न हो। एकादशी को विश्वेदेवों का पूजन करे तो सन्तान, धन, धान्य, पशु और भूमि पावे। द्वादशी के दिन आपका पूजन करे तो विजय पावे और जगत्पूज्य हो। त्रयोदशी को कामदेव का अर्चन करे तो उत्तम रूप पावे। चतुर्दशी के दिन शिवजी को पूजे तो बहुत से पुत्र, धन और ऐश्वर्य पावे। पूर्णमासी को चन्द्रमा का पूजन करे तो बहुत मनुष्यों का अधिपति बने और उसके सब काम पूर्ण हों। अमावास्या के दिन पितरों को पिण्ड देवे तो सन्तान, धन और आयु की वृद्धि हो, यह तो केवल पूजन का फल है और जो उपवास, जप, हवन आदि करे और मूलमन्त्र तथा अंगमन्त्रों करके भक्ति से पूजन करे तो बहुत ही फल पावे; परन्तु पूजन आदि में वित्तशाठ्य न करे तो बहुत से घृत, दही, दूध, शहद और समिधाओं से हवन करे और शान्तचित्त होकर मन्त्र जपे तब पूरा फल होता है। देवता की उपासना से मनुष्य इस जन्म में सुखी रहता है और परलोक में उपास्य देवता के समीप बहुत काल निवासकर उत्तम जन्म पाकर उसी देवता का भक्त होता है। यह तो तिथियों का पूजन कहा इसी प्रकार नक्षत्रों के भी देवता हैं। जिस नक्षत्र में चन्द्रमा हो वह उस दिन का नक्षत्र होता है, उसमें इसके देवता का पूजन करे जैसे—अश्विनी नक्षत्र में अश्विनी-कुमारों को पूजे तो दीर्घ आयु पावे। भरणी में गन्ध, कृष्ण वर्ण के पुष्प और नैवेद्य आदि उपचारों से यमराज का पूजन करे तो अपमृत्यु से बचे। कृत्तिका में रक्तपुष्प और घृत आदि के होम से अग्नि का पूजन करे तो बहुत सम्पत्ति मिले। रोहिणी

में प्रजापति की अर्थात् हमारी पूजा करे तो सन्तान और पशुओं की वृद्धि हो। मृगशीर्ष में चन्द्र का पूजन करे तो धन और आरोग्य पावे। आर्द्रा नक्षत्र में शिवजी का अर्चन करे और श्वेतकमल आदि पुष्प चढ़ावे तो विजय, यश, सन्तान और धन पावे और देह त्याग के अनन्तर देवता हो। पुनर्वसु में भक्ति से अदिति की पूजन करे तो वह माता की भाँति रक्षा करती है। पुष्य में पीत पुष्पों करके बृहस्पति का पूजन करे तो धन, सन्तान आदि की वृद्धि हो। श्लेषा में नागों का पूजन कर दुग्ध आदि से उनका तर्पण करे और अनेक प्रकार मीठे पक्वान्न नागों को नैवेद्य लगावे तो विष आदि का भय कभी न हो। मघा में हव्य, कव्य आदि करके पितरों का पूजन करे तो धन, धान्य, उत्तम सेवक, पुत्र और पशु पावे पूर्वाफाल्गुनी में भग-नाम आदित्य का पूजन करे तो संग्राम में जय हो। उत्तरा-फाल्गुनी में जो कन्या अर्यमा का अर्चन करे, वह उत्तम पति पावे और पुरुष अर्चन करे तो रूप और धन करके युक्त भार्या पावे। हस्त में सब प्रकार के पुष्पों से सूर्यनारायण का अर्चन करे तो बहुत धन मिले। चित्रा में त्वष्टा का अर्चन करे तो राज्य पावे। स्वाति में पवन को पूजे तो सम्पत्ति मिले। विशाखा में इन्द्र और अग्नि का पूजन करे तो धन, धान्य और तेज की प्राप्ति हो। अनुराधा में रक्तपुष्पों करके मित्र का अर्चन करे तो सब का प्रिय हो। ज्येष्ठा में इन्द्र का अर्चन करे तो धन, पुष्टि और उत्तम गुण पावे। मूल में देवता, पितर और निर्ऋति का पूजन करे तो शरीर और मानस-सन्ताप से छूटे। पूर्वाषाढ़ा में जल का पूजन करे तो आरोग्य पावे। उत्तराषाढ़ा में पुष्प आदि करके विश्वेदेवों का पूजन करे तो मनोवाञ्छित फल पावे। श्रवण में श्वेत, पीत और नील पुष्पों करके भक्ति से आप का अर्चन करे तो लक्ष्मी और युद्ध में विजय पावे। धनिष्ठा

में गन्ध, पुष्प आदि से बसुओं का पूजन करे तो महाभय भी निवृत्त हो। शतभिषा में रोगी पुरुष वरुण का पूजन करे तो आरोग्य हो और आरोग्य पुरुष करे तो बहुत ऐश्वर्य पावे। पूर्वाभाद्रपदा में शुद्ध स्फटिक के समान अजैकपाद नामक रुद्र का पूजन करे तो मुक्ति पावे इसमें कुछ सन्देह नहीं। उत्तराभाद्रपदा में अहिर्बुध्न्य नाम रुद्र को पूजे तो सब प्रकार की शान्ति होय। रेवती में भक्ति से पूषा का पूजन करे तो पुष्टि, शान्ति, धृति, सम्पत्ति और सन्तति पावे। ये हमने संक्षेप से नक्षत्रयज्ञ कहे हैं, इनको अपने वित्तानुसार भक्ति से करे तो सब फल पावे। जिस नक्षत्र में यात्रा अथवा और कोई कर्म करना हो पहिले उस नक्षत्र का याग करे पीछे वह कर्म करे तो कभी निष्फल न हो और याग करने का सामर्थ्य न हो तो उस देवता के मन्त्र का जपही कर लेवे। कालचक्र में सूर्यनारायण का पूजन करे तो मुक्ति पावे; क्योंकि नक्षत्र, चन्द्रमा, तिथि अथवा सम्पूर्ण जगत् सूर्यनारायण के अधीन है। जगत् में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो सूर्याराधन से न मिले। हे भगवन्! आप भी भक्ति से सूर्यनारायण का आराधन करें। यज्ञ, पूजन, नमस्कार, शुश्रूषा, उपवास और ब्राह्मणभोजन आदि करके जो सूर्यनारायण का आराधन करते हैं वे सब पापों से छूट सूर्यलोक को जाते हैं।

निन्नानबेवाँ अध्याय।

सूर्यनारायण की उपासना की आवश्यकता।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णु भगवन्! जो बहुत दृढ़ मन्दिर सूर्यनारायण की प्रीति के लिये बनावे वह अपने सात पुरुषों सहित सूर्यलोक में निवास करता है। जो पुरुष उत्तम पुष्प, सुगन्ध, धूप, दीप और नैवेद्य सूर्यनारायण के अर्पण करे, उसको यज्ञ का फल प्राप्त होता है। यज्ञमें बहुत धन चाहिये इस-

लिये धनहीन मनुष्य दूर्वा के अंकुरों करके भी सूर्यनारायण का पूजन करे तो यज्ञ के फल को प्राप्त हो। उत्तम उत्तम भूषण, रक्तवर्ण के वस्त्र, भाँति भाँति के भक्ष्य भोज्य सूर्यनारायण को निवेदन करे, तीर्थ के जल, घृत, शहद, दूध आदि से स्नान करावे तो ऐसे लोक में निवास करे जहां घृत, दुग्ध आदि के तलाव भरे हों। हे भगवन्! सूर्यनारायण का आराधन कर सतहत्तर पुरुष तो विदेहराज के और पचास पुरुष हैहय के मुक्ति को प्राप्त भये इसलिये सूर्यनारायण की अवश्य उपासना करनी चाहिये, यह सुन विष्णुभगवान् ने पूछा कि हे ब्रह्माजी! उपवास करने से किसप्रकार सूर्यनारायण प्रसन्न होते हैं, उपवास में त्याज्य क्या क्या है और सूर्यनारायण का आराधन किस विधि करना चाहिये, यह आप वर्णन करें। यह भगवान् का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि महाराज! गन्ध, पुष्प आदि उपचारों से पूजन करे तो सूर्यनारायण अनुग्रह करते हैं, फिर उपवास करने वाले पर तो बहुत ही प्रसन्न क्यों न हों। पापों से निवृत्त होकर गुणों के साथ जो निवास है उसका नाम उपवास है। एकरात्र, द्विरात्र अथवा त्रिरात्र उपवास कर सूर्यनारायण का ध्यान करे और निष्काम हो भक्ति से पूजन, जप आदि करे तो मुक्ति पावे। सूर्यनारायण के आराधन विना सद्गति नहीं प्राप्त होती। जिस पुरुष का चित्त विषयों में आसक्त हो और सूर्यनारायण के आराधन में अनेक विकल्प करे वह कभी उत्तम गति नहीं पाता। जो संसार से मुक्त होने की इच्छा हो तो सूर्यनारायण का आराधन करे। पुष्प न मिलें तो वृक्ष के कोमल पत्र और दूर्वा के अंकुरों से ही पूजन करे। पूजन आदि में भक्ति ही प्रधान है, भक्ति से फल होता है। सूर्यनारायण के मन्दिर को जो पुरुष बाहर भीतर से मार्जन करे वह बाहर भीतर से निष्पाप होजाय।

सूर्य भगवान् को एक बार प्रणाम करे तो दश अश्वमेध का फल हो; परन्तु दश अश्वमेध करनेवाला तो फिर भी संसार में जन्म लेता है और सूर्यनारायण को प्रणाम करनेवाला फिर जन्म नहीं लेता। सूर्यनारायण का आराधन कर रुद्र भगवान् ब्रह्महत्या से छूटे, हमको यह पद उनके ही अनुग्रह से प्राप्त हुआ। चारों वर्ण और आश्रमों के पूज्य सूर्यनारायण हैं, उनके ही आराधन से सब प्रकार के मनोरथ सिद्ध होते हैं और उत्तम गति मिलती है।

सौवाँ अध्याय।

फाल्गुन शुक्ल सप्तमी के उपवास का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णु भगवन्! अब हम उपवासों का वर्णन करते हैं, जिनके करने से मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं। फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को उपवास कर सूर्यनारायण का पूजन करे और चलने में, गिरने में, छींकने में हेलि इस सूर्य-नारायण के नाम का उच्चारण करे और दिनभर इसी नाम को जपे, पाखंडी, पतित और पापी पुरुषों के साथ संभाषण न करे और पूजन के अन्त में हाथ जोड़ सूर्यनारायण के सम्मुख यह श्लोक पढ़े "हंस हंस कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव। संसारार्णवमग्नानां त्राता भव दिवाकर" पूर्वाह्ण में ही स्नान कर पूजन करे और हंस हंस इस नाम का स्मरण करे। चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठ में भी इसी विधि से पूजन करे तो सत्यलोक को जाय। आषाढ़ आदि चार महीने भी इसी रीति से अर्चन कर मार्तण्ड नाम का जप करे और गोमूत्र का प्राशन करे तो सूर्य-लोक में प्राप्त हो। कार्त्तिक आदि चार मास पूजन कर दुग्ध का प्राशन करे और भास्कर नाम का जप करे वह भी सूर्य-लोक में चिरकाल निवास करे। प्रतिमास ब्राह्मणों को दान देवे और प्रति चतुर्मास की समाप्ति पर पौराणिक का पूजन कर

पुराण श्रवण करे। प्रथम चार मास के व्रत करने से उत्तम भोग मिलते हैं, दूसरे से इन्द्र के समान ऐश्वर्य और तीसरे चातुर्मास्य के उपवास से सूर्यलोक की प्राप्ति हो। इस सप्तमी व्रत को जो पुरुष अथवा स्त्री करे वह उत्तम गति को प्राप्त हो। यह तिथि धन्य है, पाप हरने में समर्थ है और सूर्य-नारायण के आराधन योग्य है, इसका माहात्म्य भी पढ़ने और सुनने से सब पाप निवृत्त होते हैं और त्रिवर्ग की प्राप्ति होती है।

एकसौएकवाँ अध्याय।

सप्तमी व्रत के उद्यापन का विधान और फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी! फाल्गुनशुक्ल सप्तमी को उपवास कर, अष्टमी को पारण करे, अष्टमी के दिन प्रभात ही उठ स्नान कर भक्ति से सूर्यनारायण का पूजन करे और सूर्यनारायण की प्रीति के लिये अग्नि में घृत से हवन करे और ब्राह्मणों को भोजन करा दक्षिणा दे, इन मन्त्रों से सूर्य-नारायण की प्रार्थना करे "यमाराध्य पुरा देवी सावित्री काममाप वै। स मां ददातु देवेशः सर्वान्कामान् विभावसुः १ यमाराध्यादितिः प्राप्ता सर्वान् कामान् यथेप्सितान्। स ददात्वखिलान् कामान्प्रसन्नो मे दिवस्पतिः २ भ्रष्टराज्यस्तु देवेन्द्रो यमाराध्य दिवस्पतिम्। कामार्थमाप्तवान् राज्यं स मे कामं प्रयच्छतु३" इन श्लोकों से प्रार्थना कर पूजा समाप्त करे और हविष्य अन्न भोजन करे। फाल्गुन आदि चार मास में करवीर के पुष्प, अगुरु, धूप और खण्ड से वेष्टित पक्कान्न का नैवेद्य इन से सूर्यनारायण का पूजन करे और गोशृङ्ग का जल प्राशन करे। आषाढ़ आदि चार महीनों में चमेली के पुष्प, गूगल का धूप और पायस नैवेद्य इन करके पूजन करे और कुशोदक प्राशन करे, आप भी पायस भोजन करे। कार्त्तिक आदि चार

मास में रक्तकमल महांग धूप कसार नैवेद्य इन करके सूर्यनारायण का पूजन करै और गोमूत्र प्राशन करै और प्रतिमास ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै कपूर चन्दन नागरमोथा अगुरु रक्तचन्दन कस्तूरी सिह्लक और शर्करा इनके सम भाग मिलाने से महांग धूप बनता है यह धूप सूर्यनारायण को बहुत प्रिय है प्रत्येक पारण में भक्ति से पूजन करै क्योंकि सूर्यनारायण भक्ति से ही प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर अभीष्ट सिद्ध करते हैं यह सप्तमीव्रत का विधान है जिसके करने से सब पदार्थ मिलते हैं इस व्रतके करने से इन्द्रको त्रैलोक्य का राज्य सावित्री और अदिति के पुत्र शुक्र को ज्ञान धौम्य मुनि को वेद आपको लक्ष्मी और हमको सृष्टि रचने का सामर्थ्य प्राप्त हुआ इस व्रत को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री आदि कोई करै वह अपना मनोवाञ्छित फल पावै इस व्रत के करने से पुत्र धन और आरोग्य मिलता है इस व्रत के करनेहारा मनुष्य जन्मान्तर में भी अपुत्र निर्धन और रोगी नहीं होता और स्त्रीयोनि में भी नहीं होता और सुवर्ण के विमान में बैठ इन्द्रलोक में जाय बहुत काल वहां निवास कर भूमि पर आय प्रतापी राजा होता है ।

एकसौदोका अध्याय ।

पापनाशिनी सप्तमी का विधान ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! फिर भी हम तिथियों का माहात्म्य कहते हैं जो सूर्यनारायण ने ऋषियों के प्रति कहा है जया विजया जयन्ती और अतिजया ये तिथि और उत्तरायणकी संक्रान्ति ये काल सूर्यनारायण के पूजनमें उत्तम हैं इनमें एक बार पूजन करने से वर्ष दिन करी हुई पूजा का फल प्राप्त होताहै यह सुन विष्णुजीने पूछा कि जया विजया आदि तिथियों का आप वर्णन करैं तब ब्रह्मा जी कहने लगे कि जब

शुक्ल सप्तमी को हस्तनक्षत्र होय वह जया सप्तमी होती है उस दिन पूजन करै तो सात जन्मों में किये पापों से छूटै जो उपवास करै वह सब पापों से मुक्त होय सूर्यलोकको जावै उस दिन का किया हुआ दान हवन आदि कर्म अक्षय होता है उस दिन सूर्यनारायण के सम्मुख श्रद्धा से जिस वेदका एक मंत्र पढ़ै उसे सम्पूर्ण वेदके पाठका फल प्राप्त होय जिस प्रकार आकाश में तारा प्रकाशित होरहे हैं इसी भांति इस व्रत के करनेहारा देदीप्यमान होय और बहुतकाल उत्तम लोकों में निवासकर भूमिपर जन्म ले राजा होय।

एकसौतीनका अध्याय।

पदद्वय व्रतका कथन।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी! लोकों के हितके लिये सुमेरु रूप पादपीठ पर दो पद सूर्यनारायण ने स्थापन किये हैं उत्तरायण रूप वामपाद को हम और आप पूजते हैं और दक्षिणायन रूप दक्षिण चरणका इन्द्र और रुद्र पूजन करते हैं सूर्यनारायण का आराधन वही मनुष्य करसकता है जिस पर उनका अनुग्रह होय उत्तरायण के दिन स्नान कर घृत दुग्ध आदि से सूर्यनारायण को स्नान करावै और अनुलेपन धूप नैवेद्य वस्त्र भूषण आदि से सूर्यनारायण का अर्चन कर ब्राह्मणभोजन करावै उस दिन से पदद्वय व्रतका ग्रहण करै और सर्वकालमें चित्रभानु का स्मरण करै जबतक उत्तरायण होय तबतक इसी नाम का स्मरण करता रहै और नित्य इन श्लोकों से प्रार्थना करै (यावज्जीववधं कश्चिज्ज्ञानतोऽज्ञानतोपि वा। करिष्येहं तदा चैव कीर्त्तयिष्यामि तं प्रभुम् १ यदा वक्ष्येऽनृतं किञ्चिद्यदा वक्ष्यामि दुर्वचः। अज्ञानादथवाज्ञानात्कीर्त्तयिष्येहतंप्रभुम् २ षण्मासानेकजापो मे चित्रभानुमयः परम्। तं स्मरन्मरणे याति यां गतिं सास्तु मेगतिः ३ षण्मासाभ्यन्तरे मृत्युः

पदे तस्मिन्भवेन्मम । तन्मया भास्करस्येह स्वयमात्मा निवेदितः ४ परमार्थमयं ब्रह्म चित्रभानुमयं परम् । यमन्ते संस्मरन्याति स मे भानुः परागतिः ५ यदि प्रातस्तथा सायं मध्याह्ने वा म्रियाम्यहम् । षण्मासाभ्यन्तरे न्यासं कृतं व्रतमतो मया ६ तथा कुरु जगन्नाथसर्वलोकपरायण । चित्रभानो यथा नान्या त्वत्तो भवति मे गतिः ७) इस प्रकार दक्षिणायन के आरम्भ पर्यन्त पूजन के अन्त में नित्य प्रार्थना करै इस विधि व्रत समाप्त करै ब्राह्मण भोजन करावै और भक्ति से पुराण श्रवण कर पौराणिक का वस्त्र भूषण सुवर्ण आदि से पूजन करै इस पदद्वय नामक व्रत करने से सब पाप दूर होते हैं और वह पुरुष उत्तरायण में देह त्याग उत्तम गति को प्राप्त होता है जो अनशन व्रतके करने से मिलती है और सूर्यनारायण के चरणद्वय के पूजनका फल मिलता है यह सूर्यनारायण ने अपने मुखसे शूरके प्रति कहा है ।

एकसौचौथा अध्याय ।

सर्वाप्ति सप्तमी का विधान ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि माघमासकी कृष्णसप्तमी को सर्वाप्ति सप्तमी कहते हैं उस दिन व्रत करने से सब कामना सिद्ध होती हैं माघ आदि छः मासकी संक्रांतियों को मार्तण्ड अर्क चित्रभानु विभावसु भग और हंस इनका पूजन करै और क्रम से प्रतिमास इनका ही स्मरण करै छः मास पर्यन्त तिलों से स्नान और तिलही प्राशन करै फिर श्रावण आदि छःमहीनों में पंचगव्य से स्नान और पंचगव्यका प्राशन करै प्रतिमास भक्ति से सूर्यनारायण का पूजन कर यथाशक्ति दक्षिणा ब्राह्मणों को देवै और उपवास के पारण में तैल और क्षार से रहित भोजन रात्रिको करै इस विधि जो उपवास करै और भक्ति से सूर्यनारायण का अर्चन करै वह सब उत्तम फल

पावै इस व्रतके करने से सब पदार्थ मिलते हैं इसीसे इसका नाम सर्वाप्ति सप्तमी है आप भी इस व्रतसे सूर्यनारायण का आराधन करें जिस प्रकार पूर्वकाल में गणों के स्वामी दिण्डी ने किया था।

एकसौपांचवाँ अध्याय।

मार्तण्ड सप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी! पौषशुक्ल सप्तमी को मार्तण्ड सप्तमी कहते हैं उस दिन भक्ति से सूर्यनारायण का पूजनकर मार्तण्ड इस नाम का जप करै पाखण्डी पातकी आदि से सम्भाषण न करै और गौके दुग्ध दधि आदि केवल भोजन करै ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै इसी प्रकार दूसरे दिन व्रत करै और मार्तण्ड नाम का सर्व काल स्मरण करै गौओंको भोजन देवै पांच सुवर्ण शृंगी गौ और एक उत्तम वृष इनके दान करने से जो फल होता है वही इस व्रतसे प्राप्त होय इस व्रतको करनेहारा सूर्यलोक में जाता है इस व्रत को करनेवाले अबतक भी आकाश में प्रकाशित देख पड़ते हैं इस-लिये आप भी इस व्रतके करैं।

एकसौछठा अध्याय।

अनन्तसप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी! भाद्रशुक्ल सप्तमी अनन्त सप्तमी कहाती है उस दिन उपवास कर गन्ध पुष्प धूप आदि करके सूर्यनारायण का पूजन करै ब्राह्मणों को दक्षिणा दे रात्रि के समय हविष्य भोजन करै और पाखण्डादिकों से भाषण न करै सर्व काल में आदित्य नाम का स्मरण करै इस प्रकार बारह महीने पर्यन्त व्रत करै अन्त में सूर्यनारायण का पूजनकर व्रतका उद्यापन करै और पुराण सुने इस प्रकार जो इस व्रतको करै वह भूमिपर सब उत्तम भोग भोगकर सूर्य-

लोक को जाय और स्त्री इस व्रतको करै तो स्वर्ग में वास करै।

एकसौसातवाँ अध्याय।

अभ्यंगसप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! श्रावण शुक्ल सप्तमी को अभ्यङ्ग सप्तमी कहते हैं उस दिन उपवास कर सूर्य-नारायण को अभ्यंग करावै अभ्यंग के समय भाँति भाँति के बाजे बजैं ब्राह्मण वेद पढ़ैं जिस प्रकार और देवताओं को श्रावण में पवित्रार्पण करते हैं इसी भाँति सूर्यनारायण को अभ्यंगार्पण होता है इस प्रकार अभ्यंग कराय बड़ा उत्सव करै और ब्राह्मण भोजन कराय रात्रिके समय आप भी भोजन करै इस विधि से बारह महीने उपवास कर अन्त में पारण करै और ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा देवै इस व्रत को करनेवाला पुरुष दिव्य विमान में बैठ सूर्यलोक को जाता है।

एकसौआठवाँ अध्याय।

त्रिप्राप्ति सप्तमी का विधान।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! भक्ति से जलमात्र करके भी सूर्यनारायण का पूजन करै तो दुर्लभ फल भी प्राप्त होते हैं पुष्प फल जल आदि किसी पदार्थ के देने से सूर्यनारायण प्रसन्न नहीं होते केवल शुद्ध हृदय से उनको आराधन करने से ही प्रसन्न होते हैं राग द्वेष आदि से रहित हृदय असत्य आदि से अदूषित वाणी और हिंसावर्जित कर्म सूर्यनारायण के आराधन योग्य हैं रागादि दोषों को करके दूषित हृदय में सूर्यनारायण का निवास नहीं होता जैसे कर्दम युक्त जल में हंस नहीं रहता असत्य आदि युक्त वाणी सूर्यनारायण की स्तुति के योग्य नहीं होती जैसे मेघ से ढकी हुई चन्द्रमा की कला अन्धकार हरने के योग्य नहीं हिंसा दूषित कर्म से कोई जीव प्रसन्न नहीं होता फिर सूर्यनारायण तो क्योंकर प्रसन्न

होसक्ते हैं कुटिलचित्त पुरुष सर्वस्व भी सूर्यनारायण के अर्पण कर देवै तौ भी वे सन्तुष्ट नहीं होते इसलिये सदा शुद्ध हृदय से आराधन करना चाहिये यह सुन विष्णुभगवान् ने ब्रह्माजी से कहा कि उत्तम कुलमें जन्म आरोग्य और ऐश्वर्य ये तीनों पदार्थ जिस कर्म के करने से प्राप्त होयँ उसका आप वर्णन करैं यह भगवान् का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि महाराज मार्गशीर्ष सप्तमी को जब हस्त नक्षत्र और रविवार होय उस दिन उपवास कर गन्ध पुष्प धूप बलि आदि से सूर्यनारायण का पूजन करै एक वर्ष व्रतकर तिल, धान, जौ, सुवर्ण, जलके पात्र, अन्न, पान, छत्र, दुग्ध, गुड़, बताशे, वस्त्र आदि ब्राह्मणों को दान देवै और सूर्यनारायण का अर्चन कर गोमूत्र, जल, घृत, कच्चाशाक, दूर्वा, दही, धान्य, तिल, यव, सूर्यकिरणों करके तपा हुआ जल और क्षीर इनका क्रमसे प्राशन करै इस व्रत के करने से उत्तम कुल में जन्म आरोग्य सुख और ऐश्वर्य पावै।

एकसौनवाँ अध्याय।

मन्दिर बनवाने का फल, सूर्यभक्तों का प्रभाव।

विष्णुभगवान् पूछते हैं कि हे ब्रह्माजी ! सूर्यनारायण का मन्दिर बनावै मूर्त्ति स्थापन करै भक्ति से सब उपचारों करके पूजन करै तो किस फलको प्राप्त होता है यह आप वर्णन करैं यह सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि आपने बहुत उत्तम बात पूछी अब आप एकाग्रचित्त होकर श्रवण करैं सूर्यनारायण का मन्दिर जो पुरुष बनावै उसके सौ कुल पिछले और सौ अगले सूर्यलोक को जाते हैं मन्दिर बनाने का आरम्भ करते ही सात जन्म के पाप कट जाते हैं उत्तम स्थान में जो मन्दिर बनावै वह अक्षय स्वर्ग वास पाता है जितने दिन मन्दिर की ईंट बनी रहैं उतने हज़ार वर्ष स्वर्ग में

रहता है लक्षण युक्त मूर्ति बनावै तो सूर्यलोक में निवास करै जो भक्ति से प्रतिमा स्थापन करै वह अपने अगले पिछले सब कुलों का उद्धार करै जितने कल्पके आदि से कुल व्यतीत भये और कल्पांततक जितने होंगे वे सब प्रतिष्ठा करते ही उत्तम गति के भागी होजाते हैं यमराज सदा अपने दूतों से यह कहा करते हैं कि भूमिपर कोई पुरुष तुम्हारी आज्ञा भङ्ग न करेगा केवल सूर्यभक्तों से तुम बचते रहना जिसको सूर्य नारायण का पूजन जप स्तुति नाम स्मरण आदि करते देखो उससे दूर रहो वे यहाँ नहीं आवैंगे जो नित्य नैमित्तिक उत्सवँ करते हों उनकी ओर देखना भी नहीं क्योंकि वे हमारे पिता के भक्त हैं जो मन्दिर में मार्जन अथवा उपलेपन करैं उनकी तीन पीढ़ी छोड़ना जो मन्दिर बनवावैं उनके सौ कुलोंकी ओर दृष्टि भी मत करना जो प्रतिमा स्थापन करैं उनके सब कुल त्यागना कोई तुम्हारी आज्ञा भंग न करैगा केवल पिता के भक्तों से बचना इतना यमराज ने अपने किंकरों को शासन भी कर दिया तो भी प्रमाद से सूर्यनारायण के परमभक्त सत्राजितको जाय घेरा परन्तु उसके तेज से मूर्च्छित हो भूमि पर सब दूत गिरे जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत यह मन्दिर आदि बनाने का फल हमने संक्षेप से वर्णन किया हैं सूर्यनारायण के यज्ञ करै तो सब पापों से मुक्त हो मनोवांछित फल पावै।

एकसौदशवाँ अध्याय।

घृत और दुग्ध से सूर्यनारायण को अभिषेक करने का फल।

ब्रह्माजी कहते हैं कि स्थापित प्रतिमा का पूजन करने से सब कार्य सिद्ध होते हैं जो घृत से प्रतिमा को स्नान करावै वह अनन्त फल पाता है सेर भर घृत से स्नान कराने करके सौ गोदान का फल होता है चार सेर घृत से स्नान करावै तो सप्तद्वीपवती भूमि के दान का फल पावै प्रतिमास में शुक्लाष्टमी

के दिन सूर्यनारायण को घृत से स्नान करावै तो सब पापों से छूटै सप्तमी अथवा षष्ठी को गोघृत से स्नान करावै तो सब पातक दूर होयँ सन्ध्या समय स्नान करावै तो ज्ञात अज्ञात सब पाप दूर होयँ सर्व यज्ञरूप सूर्यनारायण हैं और सब हव्यों में उत्तम घृत है इसलिये उन दोनों का संगम होते ही सब पाप बिलाय जाते हैं दुग्ध से स्नान करावै तो ऐसे लोक में निवास करै जहाँ दूधकी नदी बहती है और सरोवर खीर से भरे हैं दुग्ध से स्नान करावै तो सात जन्म पर्यन्त सुखी आरोग्य और रूपवान् होय जिस प्रकार दुग्ध निर्मल होता है इसी प्रकार दुग्ध से स्नान कराने करके निर्मल ज्ञान की प्रीति होती है घृत और दुग्ध के स्नान से सूर्यनारायण बहुत प्रसन्न होते हैं और तुष्टि पुष्टि सम्पूर्ण मनुष्यों की प्रीति उस मनुष्य को मिलती है जो घृत और दुग्ध से स्नान करावै ।

यकसौग्यारहवाँ अध्याय ।

कौशल्या और गौतमी की कथा पूजा के योग्य पुष्पों का कथन ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! कौशल्या और गौतमी का संवाद जो पूर्व काल में हुआ था वह हम वर्णन करते हैं स्वर्ग में गौतमी ब्राह्मणी ने कौशल्या से पूछा कि हे कौशल्ये ! स्वर्ग में देव देवांगना सिद्ध सिद्धपत्नी आदि बहुत हैं परन्तु न तो उनके शरीर में ऐसा उत्तम गन्ध जैसा तुम्हारे देह में है न ऐसी कान्ति न ऐसा रूप और न उनके धारण किये हुये वस्त्र भूषण ऐसे शोभित होते हैं जैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष को सजते हैं और तुम्हारा चित्त भी अति निर्मल है देवताओं की भांति ईर्षा आदि दोषों से दूषित नहीं यह कौन से तप व्रत दान अथवा होमका फल है तुम वर्णन करो यह गौतमी का वचन सुन कौशल्या बोली कि हे गौतमि ! हम दोनों ने भक्ति से सूर्यनारायण का

आराधन किया है सुगन्ध युक्त तीर्थ जलों से हमने सूर्य-नारायण को स्नान कराया उससे देवताओं से भी अधिक कान्ति पाई और मनमें प्रसन्नता सौम्यता और शरीर सुख उसी का फल है हम सबको प्रिय हैं यह घृत से सूर्य-नारायण को स्नान कराने का फल है जो वस्त्र भूषण रत्न अनु-लेपन आदि हम दोनों को प्रिय होते वे सब हम सूर्यनारायण के अर्पण करते इसी से शरीर में यह उत्तम सुगन्ध पाया हमने स्वर्ग की कामना से सूर्यनारायण का आराधन किया इससे हम दोनों स्वर्ग सुख भोगते हैं जो पुरुष निष्काम सूर्यनारायण की उपासना करते हैं वे मुक्ति पाते हैं इतनी कथा सुनाय ब्रह्माजी बोले कि हे विष्णुजी ! सूर्यनारायण के आरा-धन से सब पदार्थ मिलते हैं जो वस्तु अपने को प्रिय हो वही सूर्यनारायण के अर्पण करे विजयधूप आदि भाँति भाँति के धूप अनेक प्रकार के गन्ध उत्तम नैवेद्य सूर्यनारायण को अर्पण करे मालती मल्लिका जूही अतिमुक्तक पाटला कर-वीर जपा कुब्जक कर्णिकार कुरंटक चम्पक बाण कुन्द अशोक तिलक लोध्र बकपुष्प अगस्त्य किंशुक और कमल आदि पुष्प सूर्यनारायण के अर्पण करै बिल्वपत्र शमीपत्र भृङ्ग-राज के पत्र तमालपत्र तुलसी काली तुलसी केतकी के पुष्प और पत्र नीलकमल श्वेतकमल गुंजाके पुष्प धतूरे के पुष्प और अनेक प्रकार के सुगन्ध पुष्प सूर्यनारायण को चढ़ावै परन्तु कुटजपुष्प शाल्मलिपुष्प और भी जो गन्धरहित पुष्प होयँ वे सूर्यनारायण पर न चढ़ावै उनके चढ़ाने से भय रोग और दारिद्र्य होता है जो पुष्प उत्तम गन्ध और रङ्ग करके युक्त हों और जिनका निषेध न हो वे सूर्यनारायण के अर्पण करै कपूर अगुरु मुरा जटामासी आदि उत्तम धूप भाँति भाँति के वस्त्र अनेक प्रकार के नैवेद्य पके हुये फल सुवर्ण चांदी मोती

हीरे और भी जो जो पदार्थ अपने को प्रिय हों सब भक्ति से सूर्यनारायण को अर्पण करे ॥

एकसौबारहवां अध्याय ।

राजा सत्राजित की कथा क्रमव्रत का विधान ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! ययाति के वंश में सत्राजित नाम एक बड़ा प्रतापी राजा भया और सप्तद्वीपवती पृथिवी का राज्य करता भया उसके राज्य में पुराण जानने वाले यों कहते थे कि जहां तक सूर्य का उदय और अस्त होता है वहाँ तक सत्राजित काही राज्य है उसके राज्य में अन्यायी असक्त अदाता और पापी पुरुष कोई नहीं था उस राजा की स्वभाव से ही सूर्यनारायण में परम भक्ति थी राजा का ऐश्वर्य देख सब मनुष्यों को विस्मय होताथा और राजाभी निरन्तर इसी चिन्ता में था कि ऐसा कौन उपाय होय जिससे यह ऐश्वर्य दूसरे जन्म में भी पाऊँ जब विचार करते करते कुछ निश्चय न हुआ तब अर्वावसु आदि धर्मज्ञ और शास्त्रवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाय भली भाँति उनका पूजन कर आसन पर बैठाय प्रार्थना करता भया कि महाराज जो आपका मेरे ऊपर अनुग्रह होय तो जो मैं पूछताहूँ वह आप कथन करें यह राजा का वचन सुन ब्राह्मणों ने कहा कि महाराज जो आपके हृदय में सन्देह होय वह पूछिये हम निवृत्त करेंगे हमारा आपने सदा पालन पोषण किया है ब्राह्मण सन्तुष्ट होयँ तो विद्या पढ़ें धर्म के सन्देह हरें अधर्म से निवारण करें और हित उपदेश देवें यहही ब्राह्मणों का काम है आपकी जो इच्छा होय सो पूछिये इसी अवसर में राजा से उसकी रानी विमलमति ने कहा कि महाराज मेरा भी एक सन्देह इन महात्माओं से पूछिये आपके सन्देह तो कई प्रकार से निवृत्त होसक्ते हैं परन्तु मैं केवल अन्तःपुरमें रहतीहूँ मेरा

सन्देह आप प्रथम निवृत्त करा दीजिये यह सुन राजा ने कहा कि हे प्रिये ! कहो क्या पूछना चाहती हो प्रथम तुम्हारा भी सन्देह पूछैंगे तब रानी बोली कि महाराज मुझे यह सन्देह है कि पहिले भी बहुत राजा भये हैं परन्तु आपके समान किसी का ऐश्वर्य नहीं भया यह कौनसे कर्म का फल है और मैंने कौन उत्तम कर्म किया था जिससे आप की रानी भई यह आप मुझे पूछ दीजिये यह भार्या का वचन सुन राजा बहुत प्रसन्न भया और कहनेलगा कि हे प्रिये ! मेरे मनकी बात तुमने जानी मैंभी यही इन महात्माओं से पूछना चाहताहूँ यह रानी से कह विनय से मुनियों को पूछता भया कि यह आप कथन करैं कि मैं पूर्व जन्म में कौन था और क्या कर्म किया तथा इस हमारी रानी ने क्या उत्तम कर्म किये हम में परस्पर अति प्रीति है सब राजा मेरे वश हैं द्रव्य का अन्त ही नहीं अप्रतिहत बल है और शरीर सदा आरोग्य रहता है इस मेरी भार्या के समान कोई नारी रूपवती नहीं और मेरे तेजको कोई नहीं सह सकता ये सब किस कर्म के फल हैं आप त्रिकालज्ञ हैं इसलिये कथन करैं यह सुन सब ब्राह्मणों ने सूर्यनारायण के परम भक्त परावसु से कहा कि आप इनका सन्देह निवृत्त करैं परावसु भी सब ब्राह्मणों की सम्मति से राजा के प्रति कथन करनेलगा कि महाराज आप पूर्व जन्म में बड़े हिंसक और निर्दय शूद्र थे तब भी यह रानी तुम्हारी ही भार्या थी और ऐसी पतिव्रता थी कि तुम्हारे क्रूर वचनों करके पीड़ित होकर भी सदा तुम्हारी शुश्रूषा में रहती परन्तु तुम्हारी अति क्रूरता देख सम्पूर्ण बन्धु तुमसे अलग हो गये और पिता पितामह का संचय किया हुआ धन भी निबड़ गया तब तुम ने खेती करी परन्तु ईश्वर की इच्छा से वह भी निष्फल भई तब तुम अति दीन हो औरों की सेवा

करने में प्रवृत्त भये तुम तो अपनी स्त्री का त्याग करना बहुत चाहते थे परन्तु उसने तुम्हारा संग न छोड़ा तब तुम दोनों कान्यकुब्ज देश में जाय सूर्यनारायण के मन्दिर में सेवा करनेलगे वहां नित्य मार्जन उपलेपन जल छिड़कना आदि कर्म तुम दोनों करते और मन्दिर में पुराण की कथा होती वह भी श्रवण करते तुम्हारी स्त्री ने अपने पिताकी दी हुई अँगूठी कथापर चढ़ाई सब काल तुम्हारे मन में यही चिन्ता रहती कि यह मन्दिर स्वच्छ रहे और बहुत काल स्थिर रहैं इस भाँति तुम दोनों निष्काम हो सूर्यनारायण की सेवा करते और जो मिलता उसी से निर्वाह करलेते एक समय बड़ी सेना सहित कुबलाश्व राजा वहां आया उसकी सम्पत्ति और हज़ारों उत्तम उत्तम रानी देख तुम दोनों की भी राजा बनने की इच्छा भई और थोड़े काल के अनन्तर तुम्हारा देहान्त भया उस सूर्यनारायण की सेवा के और पुराण श्रवण के प्रभाव से तुम राजा और तुम्हारी स्त्री रानी भई अब जो आपको जन्मान्तर में भी ऐश्वर्य की इच्छा होय तो सूर्यनारायण का भक्ति से आराधन करो गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य वस्त्र भूषण और भी जो पदार्थ अपने को प्रिय हों सब सूर्यनारायण के समर्पण करो और उनके मन्दिरों में मार्जन उपलेपन आदि कराया करो उत्तम दिनों में उपवास कर रात्रिको जागरण करो और नृत्य गीत वाद्य से बड़ा उत्सव कराओ पुराण इतिहास आदि की कथा श्रवण करो सूर्यभगवान् के सम्मुख वेद पाठ कराओ इन कर्मों के करने से प्रसन्न हो सूर्यनारायण अभीष्ट फल देते हैं पुष्प नैवेद्य रत्न सुवर्ण आदि से सूर्यनारायण प्रसन्न नहीं होते केवल भक्ति से सन्तुष्ट होते हैं देखो तुमने भक्ति से मन्दिर में केवल मार्जन आदि किया और तुम्हारी स्त्री ने एक

अंगुलीयक पौराणिक को दिया उस से इतना ऐश्वर्य पाया अब जो तुम भक्ति से सूर्यनारायण का आराधन करो और सब उपचारों से पूजन करो तो इन्द्र से भी अधिक ऐश्वर्य पावो अब आप अपनी रानी सहित सूर्यनारायण के आराधनमें यत्नसे प्रवृत्त हो इससे सब मनवांछित फल पाओगे। ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी! यह वृत्तान्त सुन राजा बहुत हर्षित हुआ और अति विनय से परावसु के प्रति कहने लगा कि महाराज जैसा इन्द्रपद पायके अथवा अमर होके पुरुष को आनन्द होता है वैसा आनन्द आपके वचन श्रवण कर हम को भया अज्ञान रूप अन्धकार में आपका वचन हमारे लिये दीपक भया हम दोनों सम्पत्ति के नाश की सम्भावना कर बहुत व्याकुल रहते थे परन्तु आपने सब सम्पत्तियों का बीज बता दिया यह भी हमने जाना कि भक्तिमान् दरिद्री भी सूर्यनारायण को प्रसन्न करसक्ता है और भक्तिहीन धनवान् पर भी उनका अनुग्रह नहीं होता चाहे जितने रत्न सुवर्ण आदि निवेदन करै अब आप सूर्य भगवान् के आराधन का प्रकार हम को उपदेश करैं जिसके करने से शीघ्रही उनका अनुग्रह हो यह राजा का वचन सुन परावसु बोले कि हे राजन्! अब हम सूर्यनारायण के आराधन का विधान कहते हैं जिसके करने से स्त्री पुरुष संसारसागर का पार पावैं कार्त्तिक मास में नित्य सूर्यनारायण का पूजन कर ब्राह्मण को भोजन कराय आप एकबार भोजन करै तो पूर्व अवस्था में किये हुये ज्ञात अज्ञात पापों से छूटै इसी प्रकार जो स्त्री अथवा पुरुष मार्गशीर्ष में एकभक्त व्रत करैं वे मध्य अवस्था में किये पातकों से मुक्त होयँ और पौषमास में भी इसी विधि से एकभक्त करै तो वृद्धावस्था में किये पाप दूर होयँ इस त्रिमासिक व्रत को जो पुरुष अथवा स्त्री करैं वे सूर्यनारा-

यण के कृपापात्र हों और सब पापोंसे छूटें दूसरे वर्ष इसी भांति त्रिमासिक व्रत करै तो सब उपपातक निवृत्त होयँ और तीसरे वर्ष इस व्रत को करै तो सब महापातक कटैं और मनोवांछित फल पावै यह व्रत तीन मास में होता है तीन वर्ष तक करते हैं और तीनों अवस्थाओं के तीन प्रकार के पातक हरता है इससे इस सर्व पापहर व्रत को त्रिक्रम कहते हैं यह परावसु का वचन सुन राजा ने कहा कि महाराज व्रत का विधान तो हमने सुना परन्तु भोजन कौन से ब्राह्मण को देना यह आप कृपाकर कहैं यह सुन परावसु बोले कि हे राजा! पौराणिक ब्राह्मण को देना चाहिये इस विषय में अरुण के प्रति जो सूर्य-नारायण ने कहा वह हम आपको कहते हैं एक समय उद-याचल पर अरुण ने सूर्यनारायण से पूछा कि महाराज कौन कौन पुष्प नैवेद्य वस्त्र आदि आपको प्रिय हैं और कौन से ब्राह्मण के पूजन से आप प्रसन्न होते हैं यह आप कृपाकर वर्णन करैं इस प्रकार अरुण की प्रार्थना सुन सूर्यनारायण कहने लगे कि हे अरुण! करवीर के पुष्प रक्त चन्दन गुग्गुल अथवा घृत का धूप मोदक नैवेद्य ये हम को प्रिय हैं और भोजक हमारा पूजन करै तो हम बहुत प्रसन्न होते हैं और हमारी प्रीतिके अर्थ पौराणिक को दान देवै उसीका पूजन करै तो हमारी प्रसन्नता होती है गीत वाद्य पूजन आदि से वैसी तृप्ति हमारी नहीं होती जैसी पुराण श्रवणसे होती है इसलिये सदा पौराणिक का पूजन कर इतिहास पुराण आदि सुनै और भोजकसे पूजन करावै॥

एकसौतेरहवां अध्याय।

भोजक की उत्पत्ति और उसके लक्षण।

अरुण पूछते हैं कि महाराज यह भोजन कौन है किस का पुत्र है और इसने ऐसा कौन उत्तम कर्म किया कि

ब्राह्मण आदि वर्णोंको छोड़ इसपर आपका इतना अनुग्रह भया यह आप कृपाकर वर्णन करैं यह सुन सूर्यनारायण बोले कि हे अरुण ! तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया अब हम जो कथन करते हैं वह सावधान होकर श्रवण करो ब्राह्मण आदि वर्ण अपने अपने घरोंमें हमारा अर्चन करते हैं मन्दिरों में नहीं पूजते और मन्दिरों में वृत्तिके लिये जो ब्राह्मण पूजन करैं वे देवल कहाते हैं इसलिये अपने तेजसे भोजक को हमने उत्पन्न किया कि जो सर्वत्र हमारा पूजन करै भोजक हमको अतिप्रिय है इससे सदा इसका सत्कार करना चाहिये पूर्वकाल में शाकद्वीप के स्वामी प्रियव्रत राजा के पुत्र ने शाकद्वीप में विमान के समान हमारा मन्दिर बनाया और उसमें स्थापन के लिये सब लक्षणों करके युक्त सुवर्ण की प्रतिमा बनवाय चिंतन करने लगा कि मन्दिर और सूर्य-नारायण की प्रतिमा ये दोनों ही बहुत उत्तम बने परन्तु अब प्रतिष्ठा कौन करावै ऐसा कोई योग्य पुरुष नहीं देख पड़ता इस प्रकार चिन्ता करते करते हमारे शरण में आया हमने भी अपने भक्त को चिन्ताग्रस्त देख प्रत्यक्ष दर्शन दिये और उससे पूछा कि हे राजा ! जिस चिन्ता से व्याकुल होरहे हो शीघ्र हमको कहो कि दुष्कर कार्य भी तुम्हारा सिद्ध करैं तुम हमारे परमभक्त हो तब राजा बोला कि महा-राज मैंने भक्तिसे आपका मन्दिर बनाया और सुवर्ण की सुन्दर प्रतिमा निर्माण कराई परन्तु इस द्वीप में ब्राह्मण तो हैं नहीं क्षत्रिय आदि तीन वर्ण हैं वे आपकी प्रतिष्ठा करा नहीं सक्के इससे मुझे बहुत चिन्ता होरही है अब आप जो आज्ञा करैं वह करी जाय राजाकी यह बात सुन सूर्यनारायण ने कहा कि ठीक है इस द्वीप में तीन ही वर्ण हैं वे प्रतिष्ठा नहीं करासक्के और हमारे पूजनके भी अधिकारी नहीं यह वचन

राजा को कह हमने विचार किया विचार करते ही श्वेत वर्ण के आठ पुरुष वेद पढ़ते हुये हमारे शरीर से निकले ललाट से दो, वक्षस्स्थल से दो, किरणों से दो और हमारे चरणों से दो इस भाँति आठ पुरुष उत्पन्न भये वे सब कषाय वस्त्र पहिने थे और हाथों में कमलके पुष्प और करंड धारेथे वे सब हाथ जोड़ हमसे प्रार्थना करने लगे कि हे पिता! हम आपके पुत्र हैं आप आज्ञा कीजिये किस कार्य के लिये हमको उत्पन्न किया है यह सुन हमने उन आठों से कहा कि तुम सब इस राजा का वचन करो यह कह राजा से हमने कहा कि हे राजन्! ये हमारे पुत्र प्रतिष्ठा करावैंगे मन्दिर की प्रतिष्ठा कर वह मन्दिर इनको अर्पण करदो ये सदा हमारा पूजन किया करैंगे परन्तु देकर फिर इनसे हरण मत करना हमारे निमित्त जो धन, धान्य, गृह, भूमि, ग्राम, बाग, नगर आदि मन्दिर में अर्पण करो उस सबके स्वामी इन हमारे पुत्र भोजकों को बनाओ जिस भाँति पिताके द्रव्यका अधिकारी पुत्र होता है ऐसे ही हमारे धन के अधिकारी भोजक हैं ब्राह्मण आदि वर्ण नहीं यह हमारी आज्ञा पाय राजाने वैसा ही किया और भोजकों से प्रतिष्ठा कराय वह मन्दिर उनके अर्पण किया हे अरुण! इस प्रकार हमने भोजक उत्पन्न किये हमारी प्रीति के अर्थ जो देना होय वह भोजक को देवै परन्तु भोजक का धन कभी न हरै जो द्वेषसे लोभ से अथवा प्रमाद से हरै तो अन्धतामिस्रनाम नरक में जाय हमारे सब धन का स्वामी भोजक है परन्तु भोजक में भी ये लक्षण होने चाहिये कि पहिले वेद पढ़ै विवाह करै नित्य त्रिकाल स्नान करै दिन रात्रि में पांचबार हमारा पूजन करै वेद ब्राह्मण और देवता इनकी कभी निन्दा न करै हमारे नैवेद्य विना कोई पदार्थ भोजन न करै शूद्रका उच्छिष्ट और शूद्रके घर जाय कभी भोजन

न करै परन्तु जो शूद्र अपने घर आय देजावे तो उसका अन्न लेनेमें कुछ दोष भी नहीं होता नित्य हमारे सम्मुख शंख बजावै छः महीने पुराण सुनने से जो प्रीति हमको होती है वह एक बार शंखध्वनि श्रवण करने से होजाती है इसलिये भोजक नित्य शंख बजावै अभोज्य पदार्थ नहीं भक्षण करते इससे भोजक कहाते हैं और नित्य हमको भोजन कराते हैं इससे भी उनको भोजक कहते हैं भोजक सदा अव्यंग को धारण करै अव्यंग विना भोजक अशुचि होता है जो भोजक अव्यंग धारे विना हमको भोजन करावै उसकी संतति नष्ट होजाती है और हमारी प्रसन्नता भी नहीं होती भोजक शिर मुंड़वाये रहै परन्तु दाढ़ी न मुंड़वावै षष्ठी के दिन नक्तव्रतकर सप्तमीको उपवास करै और संक्रांति को भी व्रत करै तीनकाल हमारे सम्मुख गायत्री जपै परन्तु पूजन के समय वस्त्रसे अपना मुख लपेट लेवै और मौनसे पूजन करै क्रोध का त्याग करै हमारा निर्माल्य शूद्र और वेश्या को न देवै जो लोभ अथवा कामसे देवै तो नरक को जाय हमारे निर्माल्य धारण करने के ब्राह्मण आदि तीन वर्ण अधिकारी हैं लोभादि से हमको विना चढ़ाये पुष्प जो पहिलेही किसी को देदेवै वह हमारा शत्रु है सदा हमारा नैवेद्य भोजन करै वह नैवेद्य भोजक को शुद्ध करने के लिये पंचगव्य के समान है हमारे चढ़ा हुआ गन्ध पुष्प वस्त्र भूषण आदि बेचै नहीं और वेश्या आदि को भी न देवै हमारे स्नानके जल और निर्माल्य को उल्लंघन न करै करै तो नरकमें पड़ै हमारे को घृत दुग्ध जल आदि से ऐसी युक्ति करके स्नान करावै कि उसको कोई उल्लंघन करै नहीं और श्वान भी न खाय सदा पवित्र रहै एकबार भोजन करै और क्रोध अमङ्गल वाक्य और अशुभ कर्म को त्यागै ऐसे लक्षणों

करके युक्त भोजक हमको प्रिय है उसका सदा सत्कार करना चाहिये जो भोजक की वृत्तिको हरै हम क्रोध कर उसके कुलका संहार करते हैं हे अरुण ! पौराणिक भी हम को तुम्हारे तुल्य प्रिय है और हमारे मन्दिर में मार्जन उप-लेपन आदि करनेहारा पुरुष भी हमारा प्रीतिपात्र है इतना कह परावसु बोले कि हे राजा ! इस प्रकार अरुणको उपदेश कर सूर्यनारायण आकशमें भ्रमण करनेलगे और अरुण भी सुनके बहुत प्रसन्न भया हे राजा ! पौराणिक ब्राह्मण सूर्यनारायण को बहुत प्रिय है इसलिये पौराणिक कोही दान देना चाहिये ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! परावसु के मुख से यह कथा श्रवण कर राजा सत्राजित और उसकी स्त्री विमलमति बहुत हर्षित भये पृथिवी पर जहां जहां सूर्यनारायण के मन्दिर थे सबमें मार्जन और उपलेपन कराने लगे सब मन्दिरों में कथा करने को पौराणिक बैठा दिये और बहुत दक्षिणा दे पौराणिकों को प्रसन्न किया भांति २ के उपचारों से भक्ति करके सूर्यनारायण का नित्यपूजन करने लगे इस प्रकार राजा और रानी सूर्यनारायण का आराधन कर मनोवांछित फल पाते भये ।

एकसौ चौदहवां अध्याय ।

भद्रनाम ब्राह्मण की कथा, सूर्य के मन्दिर में दीपदानका फल ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! सूर्यनारायण के मंदिर में दीप प्रज्वलित करै तो यज्ञ के फल को प्राप्त होता है कार्त्तिक-मास में तो दीपक का बहुत ही फल है हे भगवन् ! भद्र नाम ब्राह्मणकी कथा हम कहते हैं आप श्रवण करैं माहिष्मती नाम नगरी में एक नागशर्मा नाम ब्राह्मण था उसके सौ पुत्र भये जिनमें सबसे छोटे का नाम भद्र था वह भद्र सदा सूर्यनारायण के मन्दिर में जाय दीपक जलाया करता एक

समय उसके सब बड़े भाइयों ने कहा कि हे भद्र! एक बात हम पूछते हैं तुम कथन करो तब भद्र बोला कि आप सब मेरे पिता के समान हैं आपके प्रश्न का उत्तर मैं क्योंकर दे सकता हूं परन्तु आप पूछें जो मुझे विदित होगा तो कहूंगा तब उसके भाइयों ने पूछा कि हम नित्य देखते हैं कि तुम पुष्प धूप नैवेद्य आदि कभी सूर्यनारायण के अर्पण नहीं करते और ब्राह्मण भोजन भी कभी नहीं कराते केवल दिन और रात मन्दिर में जाय सूर्यनारायण के सम्मुख दीपक जलाते रहते हो इसमें क्या कारण है यह तुम वर्णन करो यह अपने भ्राताओं का वचन सुन भद्र कहने लगा कि हे भ्राताओ! जो आपने यही पूछा तो श्रवण कीजिये इक्ष्वाकु नाम राजा के पुरोहित वशिष्ठजी ने सरयू नदी के तटपर सूर्यनारायण का मन्दिर बनाया और नित्य वहां गन्ध पुष्पादि उपचारों से सूर्यनारायण का अर्चन करते और दीपक प्रज्वलित करते विशेष कर कार्त्तिक मास में दीपोत्सव किया करते एक समय रात्रि को सूर्यनारायण के मन्दिर का दीपक शान्त होगया मैं भी पूर्वजन्म में अनेक कुष्ठ आदि दुष्ट रोगों से पीड़ित हो उसी मन्दिर के समीप पड़ा रहता और जो कुछ मिल जाता उससे अपना पेट भर लेता वहां के निवासी भी मुझे रोगी और दीन जान भोजन दे देते एक दिन मेरी यह दुष्ट बुद्धि भई कि रात्रि के समय सूर्यनारायण के भूषण हरलूं इसी विचार में देखता रहा जब वे सब भोजक निद्रावश भये तब मन्दिर में धीरे धीरे घुसा वहां देखा कि दीपक शान्त होगया है तब मैंने अग्नि जलाय दीप प्रज्वलित किया और उसमें घृत डाल सूर्यनारायण के भूषण उतारने लगा इस अवसर में वे भोजक जाग उठे और मुझे हाथ में दीवा लिये देखा देखते ही आकर पकड़ लिया मैं भी भयभीत हो विलाप करने लगा

और उनके चरणों पर गिरा मेरी दीनता पर उनको दया आई और मुझे छोड़ दिया परन्तु वहां राजपुरुष सब यह चरित्र देखते थे उन्होंने मुझे फिर बांधा और पूछने लगे कि रे दुष्ट! दीपक हाथ में लेकर मन्दिर में तू क्यों घुसा यह कह मुझे ताड़न करनेलगे रोगकी व्यथा से भय से और उनके ताड़न करने से मेरे प्राण उसी समय जाते रहे प्राणमुक्त होते ही सूर्यनारायण के गण विमान में बैठाय मुझे सूर्यलोक को लेगये वहां मैंने एक कल्प पर्यंत बहुत सुख भोगा और फिर उत्तम कुलमें जन्म पाय तुम्हारा भ्राता भया यह कार्त्तिक मास में सूर्यनारायण के मन्दिर में दीपक जलाने का फल है मैंने दुष्टबुद्धि करके भूषण हरने के लिये दीपक जलाया उससे यह उत्तम फल पाया कि कुष्ठी शूद्र होकर भी इस उत्तम ब्राह्मण कुलमें मेरा जन्म भया वेद शास्त्र पढ़े और जातिस्मर भया दुष्ट बुद्धि से भी दीप जलाने का यह फल देख अब मैं नित्य भक्ति से सूर्यनारायण के सम्मुख दीप जलाता हूं हे भाइयो! आपके पूछने से यह मैंने दीपदानका संक्षेप से फल कहा इतनी कथा सुनाय ब्रह्माजी बोले कि हे विष्णुजी! यह दीपका प्रभाव भद्र ने अपने भ्राताओं को सुनाया जो पुरुष सूर्यनारायण के नाम जपता हुआ मन्दिर में दीपदान करै वह आरोग्य धन बुद्धि सन्तान पावै और जातिस्मर होय षष्ठी अथवा सप्तमी को जो दीपदान करै वह दिव्य विमान में बैठ सूर्यलोक को जाय इस लिये सूर्यनारायण के मन्दिर में भक्ति से दीप प्रज्वलित करै प्रज्वलित दीपों को अस्तव्यस्त न करै और उनका तेल भी न हरै दीपक हरनेहारा पुरुष अंधमूषक होता है इस कारण कल्याण की इच्छावाला पुरुष दीप प्रज्वलित करै हरै नहीं ॥

एकसौ पन्द्रहवां अध्याय ।

यमदूत और नरकीय जीवों का संवाद, मंदिर से दीपक हरने का दोष ।

ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! घोर नरक में पड़े हुये भूखे अति दुःखी और विलाप करते हुये जीवों को एक समय यमदूत ने कहा कि रे मूढ़ो ! विलाप करने से क्या होता है पाहिले ही क्यों न समझे कि बुरे कर्मों का आगे फल भोगना पड़ैगा हज़ारों जन्म लेकर एक बार मनुष्य जन्म मिलता है उसमें मनुष्य अपना हित नहीं करते पुत्र स्त्री धन घर क्षेत्र आदि में आसक्त हो अनेक दुष्कर्म करते हैं यह नहीं जानते कि सूर्य चन्द्र काल आत्मा ये मनुष्य के सब शुभ अशुभ कर्म को जानते हैं यह मोह की महिमा देखो कि पुत्र स्त्री रूप नरक में आसक्त हो अपना हित भूल जाते हैं सूर्य नारायण का नाम लेने में कुछ दाम नहीं लगते मन्दिर में दीप जला देने में कुछ अधिक परिश्रम नहीं पड़ता परन्तु इतना भी किसी से नहीं होसक्ता अब रोदन और विलाप करने से क्या होता है जैसा कर्म किया वैसा फल पाया फिर पाप कर्म में बुद्धि मत करना जो अज्ञान से पाप कर्म बन भी पड़ैं तो सूर्यनारायण के आराधन से उसका फल नष्ट हो जाता है यह यमदूत का वचन सुन नरक के जीव बोले कि हे यम-दूत ! हमने कौन ऐसा कर्म किया जिससे हमको इस दारुण नरक में वास करना पड़ा तब यमदूत ने कहा कि तुमने सूर्य नारायण के मंदिर से दीप हरण किये उसी से तुम यह नरक दुःख भोगते हो फिर ऐसा कभी मत करना ब्रह्माजी कहते हैं कि हे विष्णुजी ! यह दीपदान और दीपहरण का फल वर्णन किया है दीपदान करने का तो सर्वत्र ही उत्तम फल है परन्तु सूर्यनारायण के मन्दिर में विशेष फल है जो जगत् में मूक अन्ध बधिर विवेकहीन रोगी दरिद्री देख पड़ते हैं उन

सबने साधु जनों के प्रज्वलित किये हुये दीप सूर्यनारायण के मन्दिर से हरण किये हैं ॥

एकसौ सोलहवां अध्याय।

वैवस्वतके लक्षण और सूर्यनारायणकी महिमा।

विष्णु भगवान् पूछते हैं कि हे ब्रह्माजी ! सब मनुष्य विष रोग ग्रह और भांति २ के उपद्रवों से पीड़ित होते हैं इसलिये आप कोई ऐसा उपाय कथन करैं कि जिससे जीवों को रोग आदि की बाधा न होय यह सुन ब्रह्माजी बोले कि हे विष्णुजी ! जो पुरुष व्रत उपवास आदि करके सूर्यनारायण का आराधन करते हैं उनको रोग आदि नहीं सताते जो सूर्य नारायण से विमुख हैं वेही भांति २ के उपद्रवों से पीड़ित होते हैं सूर्यनारायण के भक्तपर सब ग्रह सौम्य दृष्टि रखते हैं कोई उसका धर्षण नहीं कर सकता रोग समीप नहीं आते परन्तु सूर्यनारायण का अनुग्रह उसी पुरुष पर होताहै जो सब जीवों को अपने समान मानै और भक्तिसे उनका आराधन करै ब्रह्माजी का यह वचन सुन विष्णुजी ने पूछा कि महाराज पाहिले से तो सूर्यनारायण का आराधन किया न हो और रोग आदि करके पीड़ित होजाय वह उस कष्टसे क्योंकर छूटै यह आप वर्णन करैं हमभी सूर्यनारायण का आराधन भक्ति से किया चाहते हैं यह सुन ब्रह्माजी ने कहा कि हे भगवन् ! जो आप सूर्यनारायण का आराधन किया चाहते हो तो पाहिले वैवस्वत होजाओ वैवस्वत हुये विना सूर्यनारायण की उपासना नहीं होती मनुष्यों के पाप जब क्षीण होते २ थोड़े शेष रहजायँ तब सूर्यनारायण और ब्राह्मणों में भक्ति होती है जिससे पुरुष मुक्ति पाताहै अब आप भी वैवस्वत हो सूर्यनारायण का आराधन करैं भगवान् ने पूछा कि हे ब्रह्माजी ! वैवस्वतों का क्या लक्षणहै और वैवस्वतों

को क्या करना चाहिये यह आप कहैं तब ब्रह्माजी कहने लगे कि हे विष्णुजी ! मन वचन कर्म करके सूर्यनारायण का भक्त हो और जीवहिंसा कभी न करै ब्राह्मण देवता भोजक इनको नित्य नमस्कार करै पराया धन न हरै देवता मनुष्य पशु पक्षी पिपीलिका वृक्ष पाषाण काष्ठ भूमि जल आकाश दिशा इन सबमें सूर्यनारायण को व्याप्त समझै और अपने को भी सूर्यनारायण से भिन्न न समझै वह वैवस्वत होता है जो जीवों में दुष्टभाव रक्खै वह कभी वैवस्वत नहीं हो सकता न किसी से प्रीति और न किसी से बैर जो पुरुष रक्खै निष्काम हो भक्ति से सूर्यनारायण का आराधन करै वह वैवस्वत कहाता है जिस उत्तम गतिको वैवस्वत प्राप्त होता है वह योगी और बड़े बड़े तपस्वियों को भी दुर्लभ है जो सब प्रकार से सूर्यभगवान् का दृढ़ भक्त है वह धन्य है वह नीच कुल में भी उत्पन्न होय तो भी उत्तम ही होताहै भक्ति से आराधन करने करके ही सूर्यनारायण का अनुग्रह होता है बाहर के आडंबरसे कुछ प्रयोजन नहीं सूर्यनारायण के दक्षिण किरण से हम उत्पन्न हुये हैं और उनके ही अनुग्रह से सृष्टि रचते हैं आप भी उनके वामकिरण से उत्पन्न हो उनकी इच्छा से ही सृष्टिका पालन और दैत्योंका संहार करते हो इसी भाँति रुद्र इन्द्र चन्द्र वरुण पवन अग्नि आदि सब देव सूर्यनारायण से उत्पन्न हो उनकी आज्ञानुसार अपने अपने कार्य में प्रवृत्त होरहे हैं इसलिये हे भगवन् ! आप भी उपवास पूजन जप आदि से सूर्यनारायण का आराधन करो सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक ! यह ब्रह्माजी का वचन सुन विष्णु भगवान् सूर्यनारायण का आराधन करने को शाकद्वीप में गये वहां जाय भाँति भाँति के उपचारों से सूर्यनारायण का पूजन किया और नाना प्रकार के भक्ष्य भोज्यों

से भोजकों को संतुष्ट किया इस प्रकार बहुत काल सूर्य-नारायण का आराधन कर उनके अनुग्रह से सब देवताओं में श्रेष्ठ भये हे राजन् ! आप भी सूर्यनारायण का आराधन करो जिससे सब तुम्हारे मनोरथ सिद्ध होयँ इस ब्रह्माजी और विष्णुजी के संवाद को जो श्रवण करै वह भी सब मनोवांछित फल पावै और अन्त समय सुवर्ण के विमान में बैठ गोलोक को जाय और वहां देवता गन्धर्व और अप्सराओं के साथ विहार करै ॥

एकसौ सत्रहवां अध्याय ।

सूर्यनारायण के उत्तम रूप बनाने की कथा और उनकी स्तुति ।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तु मुनि ! आपने सूर्य भगवान् के तेज न्यूनकर उत्तम रूप निर्माण करने का संक्षेप से वर्णन किया अब आप विस्तार से वर्णन कीजिये यह राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि कहने लगे कि हे राजन् ! जब सूर्यनारायण की भार्या संज्ञा अपने पिता के घर को चली गई तब सूर्यभगवान् ने विचार किया कि हमारे तेज से व्याकुल हो हमारी पत्नी चली गई और हमारा उत्तम रूप होने के अर्थ तप करती है इससे उसका मनोरथ सिद्ध होने के लिये हम विश्वकर्मा से अपना रूप उत्तम बनवावैं सूर्यनारायण यह विचार करते ही थे कि वहां ब्रह्माजी आये और सूर्य-नारायण से कहा कि आप सब देवताओं में मुख्य हैं और सब जगत् आपने व्याप्त कर रक्खा है अब आप अपने श्वशुर विश्वकर्मा से उत्तम रूप बनवा लेवैं यह कहकर विश्वकर्मा से ब्रह्माजी ने कहा कि तुम सूर्यनारायण का सुन्दर रूप बनाओ यह ब्रह्माजी की आज्ञा पाय खराद पर चढ़ाय धीरे धीरे विश्वकर्मा सूर्यनारायण का रूप सुधारने लगे उस समय ब्रह्मा इन्द्र विश्वामित्र आदि ऋषि स्तुति पढ़ने लगे

(स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ देववर्य दिवाकर । शान्तिस्त्वं सर्वलोकानां देवदेव दिवाकर १ त्वन्नाथ मोक्षिणां मोक्षो ध्येयश्च ध्यायिनामपि । त्वं गतिः सर्वभूतानां त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् २ शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश शं नोऽस्तु जगतः पते । त्वत्तो भवति वै नित्यं जगत्संलीयते त्वयि ३ त्वमेकस्त्वं द्विधा चैव त्रिधा चैव न संशयः । त्वया विना जगन्मूढं त्वयैकेन प्रबोधितम् ४) इस स्तुति से ऋषि स्तुति करते भये और विद्याधर यक्ष राक्षस नाग सब हाथ जोड़ वारंवार प्रणाम कर स्तुति करते थे हाहा हूहू नारद तुम्बुरु आदि गन्धर्व षड्ज मध्यम गान्धार आदि स्वर तीनि ग्राम मूर्च्छना और तान सहित राग गाने लगे विश्वाची घृताची उर्वशी तिलोत्तमा मेनका सहजन्या आदि अप्सरा हाव भाव सहित नृत्य करने लगीं वेणु वीणा मृदंग पणव दुन्दुभि पटह आदि बाजे बजने का आरम्भ हुआ गन्धर्वों के गान से अप्सराओं के नृत्य से और अनेक प्रकार के बाजों के शब्द से बहुत कोलाहल भया सब देवता मस्तक पर अंजलि बांध प्रणाम करने लगे इस प्रकार सब देवता गन्धर्व आदि के कोलाहल में विश्वकर्मा धीरे धीरे सूर्यनारायण का तेज छीलने लगे हे राजा ! इस कथा को जो भक्ति से श्रवण करै वह सूर्यलोक में प्राप्त होता है ॥

एकसौ अठारहवां अध्याय ।

सूर्यनारायण की स्तुति और उनके परिवार देवताओं का वर्णन ।

राजा शतानीक कहते हैं कि हे सुमन्तुमुनि ! इस सूर्य नारायण की कथा सुनते सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती इसलिये फिर भी सूर्यनारायण के ही गुण आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजा ! ब्रह्माजी ने जो ऋषियों के प्रति सूर्यनारायणकी कथा कही उसका हम वर्णन करते हैं जिसके सुनते ही सब पाप कटजायँ एक

समय सूर्यभगवान् के प्रचण्ड तेजसे सन्तप्त हो ऋषियों ने ब्रह्माजी से पूछा कि महाराज यह अग्नि के तुल्य दाह करनेवाला तेजपुञ्ज आकाश में कौन है यह हम जानना चाहते हैं आप कृपाकर वर्णन करें ऋषियों का प्रश्न सुन ब्रह्माजी कहनेलगे कि हे मुनीश्वरो! प्रलय के समय जब सब स्थावर जंगम नष्ट होगये और सर्वत्र अन्धकार व्याप्त होरहा था उस समय पहिले बुद्धि उत्पन्न हुई बुद्धि से अहंकार अहंकार से महाभूत महाभूतों से अण्ड उत्पन्न हुआ जिसमें सात लोक और सात समुद्रों सहित पृथ्वी स्थित है उसी अण्ड में हम विष्णुजी और शिवजी स्थित थे परन्तु सब अन्धकार से व्याकुल थे तब परमेश्वरका ध्यान करनेलगे ध्यान करने से अन्धकार को हरनेहारा एक तेज उत्पन्न भया उसको देख हम स्तुति करने लगे कि (ॐ आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्च त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेवः सनातनः १ जीवनं सर्वसत्त्वानां देवगन्धर्व-रक्षसाम् । मुनिकिन्नरसिद्धानामुरगाप्सरसां तथा २ त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः । वायुरिन्द्रश्च सोम-श्च विवस्वान्वरुणस्तथा ३ त्वं कालः सृष्टिकर्ता च भर्ता हर्ता विभुस्तथा । भूतादिर्भूर्भुवः स्वश्च महर्जनस्तपस्तथा ४ प्र-दीप्तदीपनं नित्यं सर्वलोकप्रकाशकम् । दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः ५ सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः । शुभ्रं परममत्युग्रं यद्रूपं तस्य ते नमः ६ वेद्यं वेदविदान्नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवाधिदेवं च यद्रूपं तस्य ते नमः ७ पञ्चतीर्थस्थितं यच्च दशैकादश एव च । अर्द्धमासमतिक्रम्य स्थितं यत्सूर्यमण्डलम् ८ तस्मै रूपाय ते देव प्रणेमुः सर्वदेवताः । विश्वकृद्विश्वरूपं च वैखानससुरार्चितम् ९ विश्वस्थितमचि-न्त्यं च यद्रूपं तस्य ते नमः । परं यज्ञात्परं देवात्सत्यलोकात्परं

दिवः १० त्वरक्रमेति यः ख्यातस्तस्मादपि परम्परात् । परमात्मेति विख्यातं तद्रूपं तस्य ते नमः ११ अविज्ञेयमचिन्त्यं च अध्यात्मगतमव्ययम् । अनादि निधनं चैव यद्रूपं तस्य ते नमः १२ नमोनमः कारणकारणाय नमोनमः पापविमोचनाय । नमो नमो वन्दितवन्दिताय नमोनमो रोगविमोचनाय १३ नमो नमः सर्ववरप्रदाय नमोनमः सर्वसुखप्रदाय । नमोनमो ज्ञाननिधे सदैव नमोनमः पञ्चदशात्मकाय १४) इति-॥ इसप्रकार हमारी स्तुतिरूप वाणी सुन वह तैजस रूप बड़े मधुर वचन से बोला कि हे देवताओ ! वर मांगो तब हम सब बोले कि हे प्रभो ! आपके इस प्रचण्डरूप को कोई देख नहीं सक्ता इसलिये आप सौम्यरूप धारण करें यह देवताओं की प्रार्थना सुन सब लोकोंको सुख देनेहारा उत्तम रूपधारी सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक ! सांख्ययोग आदि शास्त्र सूर्यनारायणसेही उत्पन्न भये हैं मोक्षकी इच्छावाले पुरुष इनकाही ध्यान करते हैं सूर्यनारायण के ध्यानसे बड़े २ पाप निवृत्त होजाते हैं अग्निहोत्र वेदपाठ और बहुत दक्षिणा करके युक्त यज्ञ सूर्यभक्ति की सोलहवीं कलाके भी समान नहीं फल देते हैं तीर्थों के भी तीर्थ मङ्गलों के भी मंगल और पवित्रों के भी पवित्र करनेहारे श्री सूर्यनारायण हैं इनका जो आराधन करें वे सब पापों से छूट सूर्यलोक को जाते हैं जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रीको पतिकी सेवा अवश्य करनी चाहिये इसी भांति सब लोकों को सूर्यनारायण की उपासना अवश्य कर्तव्य है राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तुमुनि ! सूर्यनारायणका रूप सुन्दर करने के लिये प्रथम किसने कहा यह आप वर्णन करें तब सुमन्तुमुनि कहनेलगे कि हे राजा ! एक समय ब्रह्मलोक में जाय ऋषियों ने ब्रह्माजीसे प्रार्थना करी कि महाराज अदिति के पुत्र सूर्यनारायण

आकाश में अति प्रचण्ड तेजसे तप रहे हैं इससे सब लोक नाशको प्राप्त होने लगे हम भी अति पीड़ित हो रहे हैं और आपके आसन का कमलभी सूखा जाताहै कोई सुखी नहीं इसलिये आप ऐसा उपाय करैं कि यह तेज शान्त होय यह ऋषियोंकी प्रार्थना सुन ब्रह्माजी बोले कि हे मुनीश्वरो ! आप सब देवताओं सहित सूर्यनारायणकेही शरणमें जायँ जिससे कल्याण होय यह ब्रह्माजी की आज्ञा पाय सब देवता और ऋषि सूर्यभगवान् के शरण में प्राप्तहो स्तुति करनेलगे ॥ (सदान्धमूकान्बधिरान् सकुष्ठान् दद्रुव्रणाद्यैर्विविधैर्गदैर्वृतान् । करोषि तानेव पुनर्नवानहो अतो महाकारुणिकाय ते नमः १ यदौदरं ज्योतिरनिन्धनं महद्यदप्सुतेजोयदपीह चक्षुषि । तवैव तद्रूपमनेकधास्थितं मुरद्विषः सागरतोयवासिनः २ प्रचण्डपाशासिपरश्वधायुधाः समुत्थितास्ते तु सुपापचेतसः । विप्रैस्तुसन्ध्याञ्जलिना समाहताः प्रयान्ति नाशं तव देवदर्शनात् ३ वेदो भवांस्तीर्थफलं समस्तं यज्ञेषु नित्यं भगवानवस्थितः । दमो भवान्नात्र विचारमस्ति तथासमः शान्तिकरो नराणाम् ४ नमोनमस्त्रिभुवनभूतलावनक्रतुक्रियाशतफलसम्प्रदायिने । शुभाशुभप्रतिहतकर्मसाक्षिणे सहस्रसद्दीधतये नमोनमः ५ प्रसक्तसप्ताश्वयुजेक्षमामये धुरैकरश्मिग्रथिते नमोनमः । सबालखिल्याप्सरकिन्नरोरगैः ससिद्धगन्धर्वपिशाचपन्नगैः ६ सयक्षरक्षोगणगुह्यकोत्तमैः स्तुतः सदादेव नमोनमोऽस्तु ते । यच्चापि लोके तप उच्यते नरैः तत्ते महातेज उशन्ति पण्डिताः ७ यतोरसां साक्षिपसे शरीरिणां गभस्तिभिर्हिमकुलकालसन्निभैः । जगच्च संशोषयसे सदैव यतोऽसि लोके जगतां विभुस्त्वम् ८) यह देवताओं के मुखसे स्तुति सुन प्रसन्नहो सूर्यनारायण ने कहा कि हे देवताओ ! वर मांगो तब देवताओं ने यही वर मांगा कि आपके तेजको विश्वकर्मा

न्यून करैं यह आप आज्ञा देवैं सूर्यनारायण ने देवताओं की प्रार्थना स्वीकार करी और विश्वकर्मा ने उनके तेज को छील लिया उसी तेज से विष्णुभगवान् का चक्र और देवताओं ने शूल शक्ति गदा वज्र बाण परशु आदि आयुध बनाये इस देवताओं के किये स्तोत्र को जो तीन काल पढ़ै वह रोगों करके पीड़ित नहीं होता और पुत्र धन बल ऐश्वर्य दीर्घ आयुष् और विजय पाता है सूर्यनारायण का तेज सौम्य हो जाने से और उत्तम उत्तम आयुध मिलने से देवता अति मुदित हो फिर भी सूर्यनारायण की स्तुति में प्रवृत्त भये (ॐ नमस्ते ऋचरूपाय सामरूपाय ते नमः । नमो यजुःस्वरूपाय अथर्वांगिरसे नमः १ ज्ञानैकधामभूताय निर्द्धूततमसे नमः । शुद्धज्योतिस्वरूपाय निस्तत्त्वायामलात्मने—२ नमोऽखिलजगद्व्याप्तिस्वरूपायात्ममूर्तये । सर्वकारणभूताय निष्ठायै ज्ञानचेतसाम् ३ नमस्ते सूर्यरूपाय प्रकाशालक्षरूपिणे । भास्कराय महेशाय सर्वान्तर्यामिने नमः ४ त्वं सर्वमेतद्भगवन् जगद्वै भ्रमता त्वया । भ्रमत्या विद्ध्वमखिलं ब्रह्माण्डं सचराचरम् ५ त्वदंशुभिरिदं सर्वं संस्पृष्टं जायते शुचि । क्रियते त्वत्करस्पर्शात् जलादीनां पवित्रता ६ होमदानादिको धर्मो नोपकाराय जायते । तावद्यावन्नसंयोगि जगदेतत्त्वदंशुभिः ७ प्रातर्होमं प्रशस्तं हि उदिते त्वयि जायते । अस्तंगते तथा सायं त्वयि होमः प्रशस्यते ८ ऋचस्सकलान्येतानि यजूंष्येतानि चान्यतः । सकलानि च सामानि तपत्वेदं जगत्सदा ९ ऋङ्मयस्त्वं जगन्नाथ त्वमेव च यजुर्मयः । यतस्सामयश्चैव ततो नाथ त्रयीमयः १० त्वमेव ब्रह्मणोरूपं परं चापरमेव च । मूर्तामूर्तं तथा स्थूलसूक्ष्मरूपतया स्थितम् ११ निमेषकाष्ठादिमयं कालरूपं क्षयात्मकम् । प्रसीद स्वेच्छया रूपं स्वतेजोमयमादिश १२) इस प्रकार देवताओं की स्तुति सुन बहुत

प्रसन्न हो सूर्यनारायण अभीष्ट वर देते भये देवताओं ने परस्पर विचार किया कि दैत्य वरों से दर्पित हो रहे हैं वे अवश्य सूर्यनारायण को हरने का यत्न करेंगे इसलिये हमको इनके चारों ओर रहना चाहिये यह विचार कर दंडनायक का रूप धार स्वामिकार्त्तिकेय सूर्यनारायण के बाईं ओर स्थित भये दंडनायक को सूर्यनारायण ने आज्ञा दी कि तुम जीवों के शुभाशुभ कर्म लिखो पिंगलरूप से दाहिनी ओर अग्नि और दोनों पार्श्वों में अश्विनीकुमार स्थित भये। राज्ञ और श्रौष दो द्वारपाल हैं राज्ञ कार्त्तिकेय का अवतार और श्रौष रुद्र का अवतार हैं ये दोनों द्वारपाल धर्म और अर्थ करके युक्त प्रथम द्वारपर रहते हैं दूसरे द्वारपर कल्माष और पक्षी ये दो द्वारपाल हैं कल्माष यमराज हैं और पक्षी गरुड़ हैं ये दोनों दक्षिण दिशा में हैं कुबेर और विनायक उत्तर में दिण्डी और रेवन्त पूर्व में हैं दिण्डी रुद्र का रूप है और रेवन्त सूर्यनारायण का पुत्र है ये सब देवता दैत्यों को मारने के लिये सूर्यनारायण के चारों ओर स्थित हैं ये सब सुरूप कुरूप अल्परूप और स्वेच्छरूप हैं और अनेक प्रकार के आयुध धारे हैं और चारों वेद उत्तम रूप धार चारों ओर सूर्यनारायण के स्थित हैं ॥

एकसौ उन्नीसवां अध्याय।

सूर्यनारायणके आयुध व्योमका लक्षण, ग्रह और लोकों का वर्णन।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक ! अब हम सूर्यनारायण के मुख्य आयुध व्योम का लक्षण कहते हैं वह व्योम सर्व देवमय है चार शृंगों करके युक्त है और सुवर्ण का बना है जिस प्रकार वरुण का पाश ब्रह्मा का हुंकार विष्णु का चक्र रुद्र का त्रिशूल और इन्द्र का वज्र आयुध है इसी भाँति सूर्यनारायण का आयुध व्योम है उस व्योम में

ग्यारह रुद्र बारह आदित्य तेरह विश्वेदेव आठ वसु दो अश्विनीकुमार ये सब अपनी २ कला करके स्थित हैं हर शर्व त्र्यंबक वृषाकपि शम्भु कपर्दी रैवत अपराजित अजैकपाद अहिर्बुध्न्य और गर्भ ये ग्यारह रुद्र हैं ध्रुव धर सोम नल अनल आप प्रत्यूष और प्रभास ये आठ वसु हैं नासत्य और दस्र ये दो अश्विनीकुमार हैं क्रतु दक्ष स्रुव सह्य काल काम धृति कुरु शक्र मात्र अवमान ऋभु और असह्य ये विश्वेदेव हैं इसी प्रकार साध्य तुषित मरुत् आदि देवता हैं इनमें आदित्य और मरुत् कश्यप के पुत्रहैं विश्वेदेव वसु और साध्य ये धर्म के पुत्र हैं धर्म का पुत्र तीसरा वसुसोम है और ब्रह्माका पुत्र धर्म है स्वायम्भुव स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष ये छः मनु तो व्यतीत होगये हैं और सातवां वैवस्वत मनु वर्तमान है और अर्कसावर्णि ब्रह्मसावर्णि रुद्रसावर्णि धर्मसावर्णि दक्षसावर्णि रौच्य और भौत्य ये सात मनु आगे होंगे। अब हम चौदह इन्द्रों के नाम कहते हैं विश्वभुक् विपाति विभु प्रभुशिखी मनोजव ये व्यतीत होगये ओजस्वी नाम इन्द्र वर्तमान है और बलि अद्भुत त्रिदिव सुशान्ति सुकीर्ति ऋतधामा और दिवस्पति ये सात इन्द्र आगे होंगे कश्यप अत्रि वशिष्ठ भरद्वाज गौतम विश्वामित्र और जमदग्नि ये सप्तर्षि हैं प्रवह अवह उद्वह संवह विवह परिवह और परावह ये सात मरुत् हैं और्व अग्नि का नाम शुचि वैद्युत् अग्नि का नाम पावक और अरणि से उत्पन्न हुये अग्नि का पवमान नाम है ये तीन अग्नि हैं अग्नियों के पुत्र पौत्र उञ्चास हैं और मरुत् भी उञ्चास ही हैं संवत्सर परिवत्सर इद्वत्सर अर्थवत्सर और वत्सर ये पांच संवत्सर हैं। और ब्रह्माजी के पुत्र हैं। सूर्य सोम भौम बुध गुरु शुक्र शनि राहु और केतु ये नव ग्रह हैं जगत् का भाव अभाव सदा सूचन

करते हैं। इनमें सूर्य और चन्द्रमण्डल ग्रह भौमादि पांच तारा ग्रह और राहु केतु छाया ग्रह कहाते हैं। सूर्य कश्यप के पुत्र हैं सोम धर्म के भौम महादेवजी के बुध चन्द्र के गुरु और शुक्र प्रजापति के शनि सूर्य के राहु सिंहिकाके और केतु ब्रह्माजी के पुत्र हैं सब ग्रहों के नीचे सूर्यनारायण भ्रमण करते हैं उनसे ऊपर चन्द्र चन्द्रसे ऊपर नक्षत्रमण्डल नक्षत्रमण्डल के ऊपर बुध बुध के ऊपर शुक्र शुक्र के ऊपर भौम भौम के ऊपर गुरु गुरु के ऊपर शनि और शनि के ऊपर सप्तऋषि भ्रमण करते हैं राहु सूर्यमण्डल में रहता है और कभी चन्द्रमण्डल में चला जाताहै और केतु सदा चन्द्रमण्डल में ही रहता है नौ हजार योजन सूर्यमण्डल का व्यास है और इस से त्रिगुण परिधि है इस से दूना अर्थात् अठारह हजार योजन चन्द्रमा का व्यास है चन्द्रमण्डल से द्विगुण विस्तार नक्षत्रों का है नक्षत्रों के विस्तार में चतुर्थांश न्यून करै तो बृहस्पति का व्यास होता है उस में चौथाई घटाने से शुक्र और भौम का प्रमाण सिद्ध होता है इन के व्यास में भी चौथा भाग घटाने से बुध का व्यास होजाता है बुध के समान छोटे नक्षत्र हैं सूर्यमण्डल के प्रमाण राहु हैं और केतु का प्रमाण नियत नहीं और उसकी गति का भी निश्चय नहीं। पृथ्वी को भूर्लोक कहते हैं अन्तरिक्ष को भुवर्लोक त्रिदिव को स्वर्लोक कहते हैं भूर्लोक का स्वामी अग्नि है भुवर्लोक का वायु और स्वर्लोक का प्रभु सूर्य है गन्धर्व अप्सरा गुह्यक और राक्षस भूर्लोकमें रहते हैं मरुत् भुवर्लोकमें रहते हैं और रुद्र अश्विनीकुमार आदित्य वसु और देवगण स्वर्लोक में निवास करते हैं चौथा महर्लोक है जिस में प्रजापतियों सहित कल्पवासी रहते हैं पांचवें जनलोक में ऋभु सनत्कुमार आदिक ऋषि और भूमिदान करने हारे मनुष्य बसते हैं

छठवें तपोलोक में ऋषि रहते हैं और सातवें सत्यलोक में वे पुरुष रहते हैं जो जन्म मरण से छूटजाते हैं और पुराण बांचनेवाले तथा श्रवण करनेवाले भी उसी लोक को जाते हैं भूमि से लाख योजन ऊंचा सूर्यमण्डल है और सात कोटि योजन दूर ध्रुव है तेईस लाख योजन तीनों लोकों की उँचाई है और ध्रुवसे ऊपर दूनी २ उँचाई करके बाकी चार लोक हैं देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस नाग भूत और विद्याधर ये आठ देवयोनि हैं इस प्रकार इस व्योम में सात लोक स्थित हैं मरुत् पितर मेघ अग्नि ग्रह और आठों देवयोनि तथा मूर्त और अमूर्त सब देवता इसी व्योम में स्थित हैं इसलिये जो भक्ति और श्रद्धासे व्योमका पूजन करै उसको सब देवताओं के पूजनका फल प्राप्त होता है और सूर्यलोक को जाता है इस लिये अपने कल्याण के अर्थ सदा व्योमका पूजन करै ।

एकसौबीसवां अध्याय ।

मेरुपर्वत का वर्णन ।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक ! आकाश ख वियत् व्योम अन्तरिक्ष नभ अम्बर पुष्कर गगन मेरु विपुल आप छिद्र शून्य तम इत्यादि सब नाम व्योमके हैं । लवण क्षीर दही घृत इक्षुरस मद्य और मीठा जल इनके सात समुद्र हैं हिमवान् हेमकूट निषध नील श्वेत और शृङ्गवान् ये छः वर्षपर्वतहैं और इनके मध्यमें सुमेरु स्थितहै मेरु के ऊपर आठों दिक्पालोंकी अपनी २ दिशामें पुरी हैं पृथ्वी में लोकालोक पर्वत है सब लोक ब्रह्मांडके भीतर हैं ब्रह्मांडके बाहिर चारों ओर जल है अग्नि करके वेष्टित है अग्नि वायु करके वायु आकाश करके आकाश भूतादि करके और भूतादि महत्तत्त्व करके महत्तत्त्व प्रकृति करके प्रकृति पुरुष करके और पुरुष ईश्वर

करके आवृत है वह सम्पूर्ण जगत् को आवरण करनेवाला ईश्वर सूर्यनारायण ही है भूः भुवः स्वः महः जनः तपः और सत्य ये सात ऊपरके लोकहैं और तल सुतल पाताल तलातल अतल वितल और रसातल ये सातलोक भूमिके नीचे हैं ये सब पहली भांति ईश्वर करके आवृत हैं पृथ्वी के मध्य में सिद्ध गन्धर्व देवता आदि करके सेवित चतुरस्त्र सुवर्ण का बना हुआ चार शृंगों करके युक्त सुमेरु पर्वत है उसकी उँचाई चौरासीहजार योजन है और सोलहहजार योजन भूमिमें गड़ा है इस प्रकार मिलकर एकलाख योजन मेरुपर्वत गिना जाता है अट्ठाईसहजार योजन चौड़ा और छप्पनहजार योजन लम्बा मेरुपर्वत है उसका सौमनसनाम पहिला शृंग सुवर्णका है ज्योतिष्कनाम दूसरा शृंग पद्मरागमणि से बना है तीसरा चित्र नाम शृङ्ग सर्वधातुमयहै और चौथा चन्द्रौजशनाम शृङ्ग चांदी काहै सौमनसनाम पहिले शृङ्ग में सूर्यनारायण का उदय होता है तब सब लोक देखतेहैं उसीका नाम उदयाचल है उत्तरायण में सौमनस शृंगमें दक्षिणायन में ज्योतिष्क शृंग में और मेष तुलासंक्रांतियों में मध्य के दो शृंगों में सूर्यनारायणका उदय होता है उस पर्वतके ईशानकोण में इन्द्र और विष्णु अग्नि कोणमें अग्नि नैर्ऋत्य कोण में पितर वायव्य में मरुत् और मध्यमें साक्षात् ब्रह्मा निवास करते हैं इसीको व्योम कहते हैं जहां सूर्यनारायण आप निवास करते हैं इस प्रकार सर्व देवमय और सर्वलोकमय व्योम है एक शृंगपर सूर्य दूसरे पर हेलि तीसरे पर धननाथ और चौथे शृंगपर सोम स्थितहैं मध्य में ब्रह्मा विष्णु और शिव निवास करते हैं और उन्हीं शृंगों में विधुक्षय गोपति शांडिली सुत यम विरूपाक्ष वरुण इन्द्र दशबल आदि देवता निवास करते हैं मध्यमें ब्रह्मा और अधोभाग में अनन्त की स्थिति है यह व्योम अथवा मेरु सर्व

धर्ममय और सर्वदेवमय है इसके चारों शृंग धर्म आदि चार पुरुषार्थ अथवा ऋग्वेद आदि चारों वेद हैं ।

एकसौइक्कीसवां अध्याय ।

साम्बकृत सूर्यनारायण का आराधन और स्तुति ।

राजा शतानीक पूछते हैं कि साम्ब ने किस प्रकार सूर्य-नारायण का आराधन किया और उस दारुण रोग से क्योंकर छूटा यह आप कृपा कर वर्णन कीजिये यह राजा का वचन सुन सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन् ! आपने बहुत उत्तम कथा पूछी इसको हम विस्तार से वर्णन करते हैं जिसके सुनते ही सब पाप दूर होजायँ नारदजी के मुखसे सूर्य-नारायण का माहात्म्य सुन अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्र के समीप जाय साम्ब ने प्रार्थना करी कि महाराज रोग ने मुझे दबालिया है और औषधों से कुछ शांति नहीं होती अब आप आज्ञा देवें कि मैं वन में जाय सूर्यनारायण का आराधन कर इस दुःख से छूटूं यह पुत्र का वचन सुन प्रसन्न हो श्रीकृष्ण भगवान् ने आज्ञा दी साम्ब भी पिता की आज्ञा पाते ही चन्द्रभागा नदी के तटपर जगत्प्रसिद्ध मित्रवन नाम सूर्य-क्षेत्र में जाय तप करने लगा और उपवास कर सूर्यनारायण के आराधन में प्रवृत्त होगया ऐसा तप किया कि शरीर में अस्थिमात्र रहगई नित्य मंत्रका जप करता और इस स्तोत्र करके सूर्यनारायण की स्तुति करता (यदेतन्मण्डलं शुक्लं दिव्यं चाजरमव्ययम् । युक्तं मनोजवैरश्वैर्हरितैर्ब्रह्मवादिभिः १ आदिरेष हि भूतानामादित्य इति संज्ञितः । त्रैलोक्यचक्षुरेषोत्र परमात्मा प्रजापतिः २ य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान् । एष विष्णुरचिन्त्यात्मा ब्रह्मा चैव पितामहः ३ रुद्रो महेन्द्रो वरुण आकाशः पृथिवी जलम् । वायुः शशाङ्कः पर्जन्यो धनाध्यक्षो विभावसुः ४ य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो वै

प्रकाशते। सहस्त्ररश्मिः सूर्योयं द्वादशात्मा दिवाकरः ५ य एष मण्डले ह्यस्मिन् पुरुषो दीप्यते महान्। एष साक्षान्महादेवो-वृत्तकुम्भनिभः शुभः ६ कालो ह्येष महायोगी निरोधोत्पत्ति-लक्षणः। य एष मण्डले ह्यस्मिंस्तेजोभिः पूरयन्महीम् ७ भासते ह्यव्यवच्छिन्नो धाता ह्यमृतलक्षणः। नातः परतरं किञ्चित् तेजसा विद्यते क्वचित् ८ पुष्णाति सर्वभूतानि एष एव सुधा-मृतैः। अन्त्यजान्म्लेच्छजातीयांस्तिर्यग्योनिगतानपि ९ कारु-ण्यात्सर्वभूतानि पासि देव विभावसो। श्वित्रिकुष्ठ्यन्धबधि-राञ्जडान् पंगुलकांस्तथा १० प्रपन्नवत्सलो देवो नीरुजः कु-रुषे भवान्। दद्रुमण्डलमग्नांश्च निर्धनान्पुरुषांस्तथा ११ प्रत्यक्षदर्शी त्वं देव समुद्धरासि लीलया। का मे शक्तिस्तव स्तो-तुमार्तोहं रोगपीडितः १२ स्तूयते त्वं सदादेव ब्रह्मविष्णु-शिवादिभिः। महेन्द्रसिद्धगन्धर्वैरप्सरोभिः सगुह्यकैः १३ स्तुतिभिः किं पवित्राभिरन्याभिर्वा महेश्वर। यस्य ते ऋग्यजुः-साम्नां त्रितयं मण्डले स्थितम् १४ ध्यानिनां त्वं परं ध्यानं मो-क्षद्वारञ्च मोक्षिणाम्। अनन्ततैजसाक्षोभ्य अचिन्त्याव्यक्त-निष्कल १५ यन्मया व्याहृतं किञ्चित् स्तोत्रेस्मिञ्जगतः पते। आर्तिं भक्तिञ्च विज्ञाय तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि १६) इस प्रकार साम्ब से स्तुति सुन अति प्रसन्न हो सूर्यनारायण ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा कि हे साम्ब ! वर मांग हम तेरे तपसे बहुत प्रसन्न भये हैं तब साम्बने कहा कि महाराज आपके चरणों में दृढ़ भक्ति होय यही वर चाहता हूं सूर्यनारायण ने कहा कि यह तो होहीगी परन्तु और भी वर मांगो तब फिर साम्ब ने कहा कि महाराज जो आपकी यही इच्छा है तो यह मेरे शरीर का कलंक निवृत्त होजाय तब सूर्यनारायण ने कहा कि ऐसाही होय यह करते ही साम्ब का दिव्यरूप और उत्तम स्वर होगया फिर भी सूर्यनारायण ने कहा कि हे साम्ब ! हम

प्रसन्न होके और भी वर देते हैं कि यह नगर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा और लोकमें तुम्हारी अक्षय कीर्ति होगी और हम तुमको नित्य स्वप्न में दर्शन देंगे अब तुम इस चन्द्र-भागा नदी के तटपर हमारी प्रतिमा स्थापन करो इतना कह सूर्यनारायण अन्तर्धान भये हे राजा ! इस साम्ब के किये स्तोत्र को जो पढ़ै वह राज्य धन आरोग्य पावै और साम्बकी भांति सूर्यनारायण का प्रीतिपात्र हो सूर्यलोक को जाय ।

एकसौबाईसवां अध्याय ।

सूर्यनारायण का एकविंशतिनामात्मस्त्रोत्र ।

सुमंतुमुनि कहतेहैं किहे राजा शतानीक! तप करने के समय साम्ब सहस्र नामसे स्तुति किया करता था तब स्वप्नमें सूर्य-नारायण ने कहा कि हे साम्ब ! सहस्र नाम से हमारी स्तुति करने की कुछ अपेक्षा नहीं हम अत्यन्त गुह्य पवित्र और शुभ अपने नाम तुमको बताते हैं जिनके पाठ करने से सहस्र नाम के पाठका फल होय (ॐविकर्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः । लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः १ लोकसाक्षी त्रिलोकेशः कर्ता हर्ता तमिस्रहा । तपनस्तापनश्चैव शुचिः सप्ताश्ववाहनः २ गभस्तिहस्तो ब्रह्मा च सर्वदेवनम-स्कृतः) यह इक्कीस नामका हमारा स्तोत्र त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है जो दोनों संध्याओं में इस स्तोत्र को पढ़ै वह सब पापों से छूटै और धन सन्तान आरोग्य आदि जो पदार्थ चाहै वही मिलै इतना साम्ब को उपदेश कर सूर्यनारायण अन्तर्धान भये साम्ब भी इस स्तवराज के पाठ से अभीष्ट फल को प्राप्त भया और भी जो पुरुष भक्तिसे इस स्तोत्र का पाठ करै वह सब रोगों से छूटै ।

एकसौतेईसवां अध्याय।

चंद्रभागा नदीसे साम्ब को सूर्यनारायण की प्रतिमा प्राप्त होनेका वृत्तान्त ।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक! इस प्रकार सूर्यनारायण से वर पाय साम्ब अति हर्षित हुआ एक दिन तपस्वियों के साथ पहिली भांति चन्द्रभागा नदीपर स्नान करने गया वहां स्नानकर मण्डल बनाय सूर्यनारायण का भक्तिसे पूजन किया और मन में विचार करने लगा कि सूर्य-नारायण की कैसी प्रतिमा स्थापन करूं यह विचार करते ही नदी में देखा कि अति प्रकाशवती एक प्रतिमा बही चली आती है प्रतिमा देखतेही साम्ब को निश्चय हुआ कि यह अवश्य सूर्यनारायण की प्रतिमा है और उनकी इच्छा से मेरे दृष्टिगोचर हुई यह मन में विचार नदी से उस प्रतिमा को बाहर निकाल लाया वही प्रतिमा साम्बने मित्रवन में विधिपूर्वक स्थापन करी एकदिन साम्ब ने प्रतिमासेही पूछा कि महाराज यह आपकी प्रतिमा किसने बनाई है आप कृपाकर मुझसे कहैं यह सुन प्रतिमा बोली कि हे साम्ब! पूर्वकाल में हमारा रूप प्रचण्ड तेज करके युक्त था उससे व्याकुल हो सब देवताओं ने हमसे प्रार्थना करी कि आप इस रूप को सौम्य कीजिये नहीं तो सब लोक दग्ध होजायँगे देव-ताओं की प्रार्थना हमने स्वीकार करी और शाकद्वीप में जाय विश्वकर्मा से अपना तेज छिलवा डाला उसी विश्वकर्मा ने कल्पवृक्ष के काष्ठ से यह हमारी सुलक्षण प्रतिमा बनाई और अब तुम्हारी इच्छा पूरी करने के लिये हमारी आज्ञानुसार विश्वकर्मानेही नदीमें बहाई है साम्ब यह हमारा क्षेत्र तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा मध्याह्नके पूर्व मुण्डारक्षेत्र में मध्याह्न के समय कालप्रिय में और मध्याह्न के अनन्तर इस स्थान में हमारा सान्निध्य होगा इन तीनों कालों में क्रमसे ब्रह्मा विष्णु

और शिव सदा हमारा पूजन करते हैं यह सूर्यनारायण की प्रतिमाके मुखसे सुन साम्ब अति हर्षित हुआ।

एकसौचौबीसवां अध्याय।

प्रासाद योग्य भूमि का कथन प्रासाद का सामान्य लक्षण और मेरु आदि बीस प्रासादों के विशेष लक्षण भूमिपरीक्षा अंग देवताओं के स्थापन का प्रकार।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तुमुनि! साम्ब ने सूर्यनारायण की प्रतिष्ठा किस विधि करी और प्रासाद कैसा बनाया यह आप वर्णन करें यह राजाका वचन सुन सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजा! प्रतिमा मिलने के अनन्तर साम्ब ने नारदजी का स्मरण किया स्मरण करतेही नारदजी वहां आये उनका पूजन सत्कार आदि कर आसन पर बैठाय साम्बने पूछा कि महाराज सूर्यनारायण की प्रतिष्ठा किस विधान से करनी चाहिये और प्रतिष्ठा से क्या फल होता है यह आप कृपाकर कहें। तब नारदजी बोले कि हे साम्ब! पहिले तो उत्तम प्रासाद बनाना चाहिये पीछे उसमें मूर्ति स्थापन होता है साम्ब ने फिर पूछा कि महाराज प्रासाद का क्या लक्षण है और कैसी भूमि में बनाना चाहिये यह भी आप कथन करें यह साम्बका प्रश्न सुन नारदजी कहनेलगे कि हे साम्ब! पहिले तो उत्तम जलाशय बनावै उसके तट पर सुन्दर बाग लगाय बाग के मध्य में प्रासाद बनाय उसमें देवता का स्थापन करै अथवा उत्तम जनों करके युक्त नगर में प्रासाद बनावै इष्ट अर्थात् यज्ञादि और पूर्त अर्थात् कूप तटाक आदि इन दोनों कर्मों के फलकी इच्छा होय तो देवता स्थापन करै जल और सुन्दर सघन वृक्षों करके युक्त रमणीय स्थानों में अवश्य देवता निवास करते हैं कमलों करके आच्छादित हंस कारण्डव क्रौञ्च चक्रवाक आदि पक्षियों

करके शोभित तट में पक्षियों के विहार योग्य शीतल और सघन छायायुक्त वृक्षों करके भूषित सरोवरों में उत्तम उत्तम नदियों के तटोंमें पर्वतों के निर्भरों के समीप सदा देवता विहार करते हैं ब्राह्मण आदि वर्णोंके लिये जैसी भूमि घर बनाने के लिये कही है वैसीही भूमि में देवप्रासाद भी बनावै घर की भांति देवालय में चतुष्षष्टि पद का वास्तु रचै मध्य में द्वार रक्खै विस्तार से द्विगुण प्रासाद की उँचाई होती है और उँचाई की तिहाई प्रासाद की कटि अर्थात् मध्यभाग होता है विस्तार के आधे में गर्भमन्दिर और आधे में भित्ति बनती है गर्भकी चौथाईके तुल्य चौड़ा और उससे दूना ऊंचा द्वार होता है विस्तार की चौथाई के तुल्य द्वारशाखा बनावै और द्वारशाखाओं के नीचले चतुर्थांश में प्रतीहार की मूर्ति बनाय बाकी द्वारशाखा में भांति भांति के बेल बूटे पक्षी आदि बनादेवै द्वारशाखा के अष्टमांश के तुल्य पिण्डिका अर्थात् नीचे की चौकी सहित प्रतिमा बनावै उसमें एक भाग पिण्डिका और दो भाग प्रतिमा बनती हैं मेरु मन्दर कैलास विमान नन्दन समुद्र पद्म गरुड़ नन्दिवर्द्धन कुंजर गृहराज वृष हंस सर्वतोभद्र घट सिंह वृत्त चतुष्कोण षडस्र अष्टास्र ये बीस भांति के प्रासाद होते हैं हे साम्ब ! अब तुम इनके लक्षण सुनो नौ आठ छः अथवा तीन अश्रियों करके युक्त बारह भूमिका अर्थात् खण्ड का चार द्वारों करके शोभित तीस हाथ विस्तार करके युक्त मेरु प्रासाद होता है तीस हाथ विस्तार में दश भूमिका का मन्दर प्रासाद होता है अट्ठाईस हाथ विस्तार में और आठ खण्ड का प्रासाद कैलास कहाता है सुन्दर जाली झरोखों से शोभित सात खण्ड का और इक्कीस हाथके विस्तार में विमान प्रासाद होता है छः भूमिका करके संयुक्त बत्तीस हाथ विस्तार में नन्दन प्रासाद बनता है

और समुद्र प्रासाद वर्तुल होता है और पद्मप्रासाद पद्म के आकार आठ हाथ विस्तार में होता है उसमें एक शृंग और एकही भूमिका होती है गरुड़प्रासाद गरुड़ के आकार होता है नन्दिवर्द्धनप्रासाद साठ हाथ के विस्तार में सात भूमिका करके युक्त और बीस अश्रियों करके युक्त होता है सोलह हाथ ऊँचा और हाथी की पीठ के आकार कुंजर प्रासाद होता है सोलह हाथ के विस्तार में तीन चन्द्रशालाओं करके युक्त गृहराजनाम प्रासाद बनता है बारह हाथ के विस्तार में चारों ओर वर्तुल एक भूमिका और एक शृंग करके युक्त वृषप्रासाद होता है हंसप्रासाद हंस के आकार आठ हाथ विस्तार में होता है चारद्वार बहुत से शिखर और अनेक चन्द्रशालाओं करके युक्त छब्बीस हाथ विस्तार में पांच खण्ड का प्रासाद सर्वतोभद्र कहाता है बारह हाथ के विस्तार में सिंहाक्रान्त नाम प्रासाद सिंह के आकार होता है बाकी प्रासाद नाम के सदृश रूपवाले होते हैं मयासुर के मत में एक एक भूमिका एक सौ आठ अंगुल की होती है विश्वकर्मा के मत में साढ़े तीन हाथकी भूमिका और स्थपित अर्थात् कारीगरों के मत में प्रत्येक भूमिका सौ २ अंगुल की होती है भूमिका कुछ न्यून रह जाय तो उसके ऊपर कपोतपालिका बना देने से पूरी होजाती है साम्ब पूछते हैं कि हे नारदजी! ये बीस प्रासाद आपने कहे इनमें सूर्यनारायण के लिये कौनसा प्रासाद बनवाना योग्य है और नगर में प्रासाद बनावै तो कौनसी दिशा में बनावै यह आप कृपा कर वर्णन करें यह सुन नारद-जी कहने लगे कि हे साम्ब! नगर के मध्य में अथवा पूर्व द्वारके समीप भूमि की परीक्षा कर उसमें प्रासाद बनावे सुन्दर वर्ण रस और गन्ध करके युक्त स्निग्ध भूमि अच्छी होती है कंकर तुष केश अस्थि अङ्गार आदि जिस भूमि से निकलै

वह प्रासाद योग्य नहीं जिस भूमि को ताड़न करने से मेघ अथवा दुन्दुभी के शब्द के समान शब्द होय और जिस भूमि में सब प्रकारके बीज ऊगआवें वह भूमि उत्तम होती है शुक्ल रक्त पीत और कृष्ण वर्ण की भूमि क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों के लिये श्रेष्ठ है इस प्रकार भूमि की परीक्षा कर उत्तम भूमि जान उसमें चार हाथ लम्बा चौड़ा चतुरस्र· चौका लगाय एक हाथ लम्बा चौड़ा और दश अंगुल गहरा एक गढ़ा खोदै और उस गढ़े को फिर उसी मृत्तिका से भरे जो गढ़े से निकली हो जो गढ़ा भरजाय और कुछ मृत्तिका शेष रहे तो वह भूमि उत्तम होती है मृत्तिका न बढ़े और घटै भी नहीं तो मध्यम और मृत्तिका न्यून होजाय गढ़ा न भरै वह भूमि अच्छी नहीं होती सूर्यनारायण का मन्दिर पूर्वाभिमुख बनाना चाहिये और पूर्व की ओर द्वार रखने का स्थान न होय तो पश्चिमाभिमुख बनावे परन्तु मुख्य तो पूर्वाभिमुख ही है उसमें स्थानों की कल्पना इस प्रकार करे कि मुख्य मन्दिर से दक्षिण ओर सूर्यनारायण का स्नानगृह और उत्तर की ओर अग्निहोत्रशाला बनावे शिवजी और मातृका इनका मन्दिर उत्तराभिमुख बनावे पश्चिम की ओर ब्रह्मा उत्तर को विष्णु दाहिनी ओर निक्षुभा और बायें ओर राज्ञी का स्थापन करै दक्षिण भाग में पिंगल वामभाग में दण्डनायक और सूर्यनारायण के सम्मुख श्री और महाश्वेता का स्थापन होता है देवगृह के बाहर अश्विनीकुमारों का स्थान बनावे दूसरी कक्षा में राज्ञ और श्रोष तीसरी में कल्माष और पक्षी दक्षिण में माठर उत्तर में कुबेर और कुबेर से उत्तर रेवन्त और विनायक स्थापन करै अथवा जिस दिशा में उत्तम स्थान हो वहां ही स्थापन करै वाम दक्षिण में दो मण्डल अर्घ्य देने के लिये बनावे उदय के समय दक्षिण

मण्डल में और अस्त के समय वाम मण्डल में सूर्यनारायण को अर्घ्य देवे और चक्राकार पीठ के ऊपर स्नानगृह में चार कलशों करके सूर्यनारायण की प्रतिमा को स्नान करावै स्नान के समय शंख आदि वाद्य बजें तीसरे मण्डल में सूर्यनारायण का पूजन करै सूर्यनारायण के सम्मुख खड़ा हुआ दिण्डी स्थापन करै सूर्यनारायण के सम्मुख समीप ही व्योम का स्थान बनावै जिसका हमने प्रथम वर्णन किया है मध्याह्न के समय वहां सूर्यनारायण को अर्घ्य देवै अथवा मध्याह्न के अर्घ्य के लिये चक्रनामक तीसरा मण्डल बनालेवै पहिले स्नान कराय पीछे अर्घ्य देवै और सूर्यनारायण के समीपही पुराण बांचने का स्थान बनावै यह क्रमसे देवताओं के स्थापन का विधान है गृहराज और सर्वतोभद्र ये दो प्रासाद सूर्यनारायण को अतिप्रिय हैं इसलिये ये ही बनाने चाहियें।

एकसौपचीसवां अध्याय।

सात प्रकार की प्रतिमा, प्रतिमा बनाने के योग्य वृक्ष, उन वृक्षों के काटने का विधान।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब! अब हम विस्तारसे प्रतिमा का विधान कहते हैं सब देवताओं की प्रतिमा और विशेष करके सूर्यनारायण की सात प्रकार की होती है सुवर्ण की चांदी की ताम्र की पाषाण की मृत्तिका की काष्ठ की और चित्र में लिखी हुई इन सात प्रकार की प्रतिमाओं में काष्ठ की प्रतिमा का विधान हम कहते हैं ज्योतिषियों से उत्तम मुहुर्त पूछ उस मुहूर्त में बहुत उत्सव कर अच्छे शकुन देख वन में जाय वहां प्रतिमा के लिये वृक्ष देखै दुग्ध युक्त वृक्ष दुर्बल वृक्ष चतुष्पथ देवस्थान बल्मीक श्मशान चैत्य आश्रम आदि में लगे हुये वृक्ष पुत्रक वृक्ष अर्थात् जो वृक्ष किसी अपुत्र मनुष्य ने अपना पुत्र करके लगाया होय जिनमें

कोटर बहुत होयँ और बहुत पक्षी रहते होवें वृक्ष शस्त्र वायु अग्नि बिजुली हाथी आदि करके दूषित वृक्ष एक दो शाखा वाले वृक्ष और जिनका अग्र सूखगया हो ऐसे वृक्ष प्रतिमा बनाने के योग्य नहीं होते महुवा देवदारु राजवृक्ष चन्दन बिल्व अँबाड़ा खदिर अंजन निम्ब श्रीपर्णी पनस सरल अर्जुन और रक्तचन्दन ये वृक्ष प्रतिमा के लिये उत्तम हैं महुवा आदि दो दो वृक्ष क्रम से चारों वर्णों के लिये श्रेष्ठ हैं और निम्ब आदि छः वृक्ष सर्व साधारण हैं देवदारु चन्दन शमी और महुवा ब्राह्मणों के लिये निम्ब पीपल खदिर और बिल्व क्षत्रियों के अर्थ अर्जुन खदिर रक्तचन्दन और स्यन्दन वैश्यों के लिये और तेंदू नागकेसर सर्ज अंजन आम्र और शाल ये वृक्ष शूद्रोंके लिये प्रतिमा बनाने के अर्थ उत्तम हैं इन वृक्षोंके काष्ठ से प्रतिमा अथवा लिङ्ग बनाय स्थापन करै शुचि एकांत समकेश अङ्गार कण्टक आदि से राहित और पूर्व तथा उत्तर को झुकीहुई भूमि में जो वृक्ष उत्पन्न हुआहो जो वृक्ष सुन्दर शाखा पत्र पुष्प फलोंकरके युक्तहो सीधाहो और जिसमें व्रण न होय ऐसा वृक्ष उत्तम होता है जो आपही टूटपड़े खड़ा २ सूखजाय और जिसमें मधुमक्षिका शहद का छत्ता लगावै वह वृक्ष शुभ नहीं होता कातिक आदि आठ महीनों में उत्तम मुहूर्त देख वृक्ष ग्रहण करै वृक्षके नीचे चारोंओर चौका लगाय स्नानकर सुन्दर श्वेत नये वस्त्र धारण कर गन्ध पुष्प माला धूप बलि आदि से वृक्ष का पूजन कर हवन करै ॐ भूर्भुवः स्वः इस मन्त्र से वृक्ष का पूजन करै पूजनकर इन श्लोकों से वृक्ष को सान्त्वन करै (वृक्षलोकस्य शान्त्यर्थं गच्छ देवालयं शुभम्। देव त्वं यास्यसे तत्र छेददाहविवर्जितः १ काले धूपप्रदानेन सपुष्पैर्बलिकर्मभिः। लोकास्त्वां पूजयिष्यन्ति ततो यास्यसि निर्वृतिम् २) इन श्लोकों को पढ़ धूप माल्य आदि

से कुठार का पूजनकर वृक्षके समीप रक्खै और कुठार का शिर पूर्व की ओर करै फिर मोदक खीर भात दही मांस भांति भांति के पुष्प धूप दीप आदि से देवता पितर राक्षस पिशाच नाग असुर गण विनायक आदि को रात्रि के समय बलि देकर वृक्ष का पूजन करै और वृक्षको स्पर्शकर ये श्लोक पढ़ै (अर्चार्थममुकस्य त्वं देवस्य परिकीर्त्तितः। नमस्ते वृक्षपूजेयं विधिवत्प्रतिगृह्यताम् १ यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम्। अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु कल्याणदाः सन्तु नमोस्तु तेभ्यः) इस प्रकार प्रार्थना कर शयन करै प्रभात उठ स्नानकर वृक्ष का पूजन करै और ब्राह्मण तथा भोजकों को दक्षिणा देकर स्वस्तिवाचन कराय उस वृक्षको कटवावै पूर्व ईशान और उत्तर की ओर कटकर वृक्ष गिरै तो अच्छा होता है बाकी पांच दिशा अशुभ हैं इनमें भी वायव्य और पश्चिम मध्यम हैं पहिले वृक्षकी शाखा कटवाय पीछे वृक्षको ऐसी रीति से काटै कि पूर्वादि दिशाओं में गिरै जो वृक्ष गिरतेही दोटूक होजाय अथवा उससे शहद घी तेल रुधिर आदि स्रवै वह वृक्ष ग्रहण न करना चाहिये कुठार का प्रहार करते ही जो वृक्ष में पीतवर्ण का मण्डल पड़जाय तो उस वृक्ष में गोधा होती है कालामण्डल होय तो सर्प पुण्ड्रवर्ण होय तो पाषाण कपिलवर्ण होंय तो पल्ली शुक्लवर्ण होय तो जल और मंजीठ के समान रक्तवर्ण मण्डल पड़जाय तो उस वृक्ष में कृमि होते हैं ये दोष जिस वृक्ष में न होयँ उसको ग्रहण करै काटने के अनन्तर थोड़े काल तक पत्तों से वृक्ष को ढकदेवै पीछे प्रतिमा बनवावै।

एकसौछब्बीसवां अध्याय।

प्रतिमा बनाने का प्रकार, प्रतिमा के शुभ अशुभ लक्षण।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब! एक हाथ की तीन हाथ

की साढ़ेतीन हाथ अथवा प्रासाद और द्वार के अनुसार जितना प्रमाण आवै उतनी लम्बी प्रतिमा बनावै एक हाथ की प्रतिमा सौम्य होती है दो हाथ की धन धान्य देती है तीन हाथ की प्रतिमा से सब काम सिद्ध होते हैं और साढ़े तीन हाथ लम्बी प्रतिमा स्थापन करीजाय तो सुभिक्ष क्षेम और आरोग्य होता है जो प्रतिमा अग्र में मध्य में और मूल में सम हो उसको गान्धर्वी कहते हैं वह प्रतिमा धन और धान्य देनेहारी है देवालय के द्वार का जितना विस्तार हो उसके अष्टांश के समान प्रतिमा बनावै उसमें भी एकभाग पिरिडका छोड़ दो भाग में प्रतिमा बनती है अपने चौरासी अंगुलकी प्रतिमा उत्तम होती है उसमें बारह अंगुल लम्बा और चौड़ा प्रतिमाका मुख बनता है मुखकी तिहाई ठोढ़ी और बाकी ललाट और नासिका होती है नासिका के तुल्य कान बनते हैं दो दो अंगुल के नेत्र और इसकी तिहाई में नेत्र की तारा और ताराकी तिहाई में दृष्टि बनती है ललाट और मस्तककी उँचाई समानही होती है मस्तक का विस्तार बत्तीस अंगुल होता है नासिका के तुल्य ग्रीवा होती है और मुख के समान हृदय का अन्तर बनता है मुख के तुल्य नाभि और उसके अनन्तर शिश्न बनाया जाता है ऊरु के ऊपर कटि बनती है बाहु और प्रबाहु तथा ऊरु और जंघा समान बनाई जाती हैं गुल्फ अर्थात् टँकने के नीचे चारअंगुल ऊँचे पाद बनते हैं पादों की चौड़ाई छः अंगुल होती है और पैरों के अँगूठे तीन तीन अंगुल लम्बे होते हैं और अँगूठों के समान ही तर्जनी होती हैं बाकी तीन अंगुली क्रम से छोटी बनती हैं और नख भी क्रम से छोटे होते जाते हैं पैर की लम्बाई चौदह अंगुल होती है इन लक्षणों करके युक्त प्रतिमा पूजन के योग्य होती है कन्धे छाती ऊरु भ्रू ललाट नासिका और

कपोल ये अवश्य ऊँचे होने चाहिये विशाल नेत्र कमल के समान मुख रक्तवर्ण ओष्ठ रत्नजटित मुकुट से भूषित मस्तक मणि कुण्डल कटक अंगद हार आदि भूषणों से शोभित अव्यंग धारेहुये हाथों में कमल और सुवर्ण माला लिये अति मनोहर सूर्यनारायण की प्रतिमा बनावै ऐसी मूर्ति प्रजा में कल्याण करनेहारी होती है प्रतिमा का कोई अंग अधिक होय तो राजभय होता है न्यून होय तो रोग भीति पेट बड़ा होय तो क्षुधाका भय और कृशप्रतिमा होय तो दारिद्र्य होता है प्रतिमा में क्षत होय तो शस्त्रभय होय फूटी प्रतिमा होय तो मृत्यु दहिनी ओर झुकी होय तो आयुष् का क्षय बाईं ओर झुकीहोय तो पत्नी से वियोग होता है इसलिये सुन्दर और सीधी सूर्यनारायण की प्रतिमा बनावै प्रतिमा की दृष्टि ऊपरको होय तो स्थापन करनेवाला अन्धा होजाय नीचे दृष्टि होय तो चिन्ता होय यह सब प्रतिमाओं का शुभाशुभ फल हमने कहा है कमण्डलु धारे कमलासन पर बैठे चार मुखों करके युक्त ब्रह्माजी की प्रतिमा बनावै स्वामिकार्त्तिकेय की मूर्त्ति कुमार स्वरूप हाथ में बर्छी लिये बहुत सुन्दर बनानी चाहिये और उनके ध्वजा में मयूर का चिह्न होता है चार दन्तों करके युक्त शुक्लवर्ण के ऐरावत नाम हाथी पर आरूढ़ वज्र हाथ में लिये ऐसी प्रतिमा इन्द्र की बनवावै प्रतिमा जिस प्रकार सुन्दर और सुलक्षण होय वैसे बनवानी चाहिये ।

एकसौसत्ताईसवां अध्याय ।

सूर्यनारायण का सर्वदेवमयत्व प्रतिपादन ।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब ! इसप्रकार प्रतिमा बनाय ईशान कोण में चार तोरण पल्लव पुष्पमाला पताका आदि से अलंकृत अधिवासन मण्डप बनावै काष्ठ की

प्रतिमा आयुष् और धन देतीहै मृत्तिका की प्रतिमा सर्वलोकों का हित करती है मणिमयी प्रतिमा क्षेम और सुभिक्ष करनेहारी है सुवर्णकी पुष्टि चांदीकी कीर्त्ति ताम्रकी सन्तान और पाषाणकी प्रतिमा भूमि देती है शकुन करके उपहत प्रतिमा प्रधान पुरुष को मारती है इसलिये सर्व देवमय श्रीसूर्यनारायणकी प्रतिमा उत्तम शकुन से बनावै साम्ब पूछते हैं कि हे नारदजी ! सूर्यनारायण सर्व देवमय क्योंकर हैं यह आप कृपाकर वर्णन कीजिये तब नारदजी कहने लगे कि हे साम्ब ! इस भाँति सूर्यनारायण सर्व देवमय हैं कि बुध और भौम उनके नेत्रों में स्थितहैं ललाट में रुद्र ब्रह्मा शिरमें कण्ठमें विष्णु नक्षत्र और ग्रह दांतों में धर्म और अधर्म ओष्ठों में सरस्वती जिह्वामें दिशा विदिशा कर्णोंमें ब्रह्मा और इन्द्र तालु में बारहों आदित्य भ्रूमध्य में सब ऋषि रोमकूपों में समुद्र पेट में यक्ष किन्नर गन्धर्व पिशाच दानव राक्षस ये सब हृदय में नदी बाहुओं में नाग कक्षाओं में मेरु पर्वत पीठ में धर्मराज नाभि में पृथिवी कटि में सृष्टि लिंग में अश्विनीकुमार जानुओं में पर्वत ऊरुओं में सात पाताल अलकों में वन और समुद्रों करके युक्त भूमण्डल चरणों में और कालाग्नि रुद्र सूर्यनारायण के दन्तों में स्थित हैं इस प्रकार सूर्यनारायण सर्व देवमय हैं सूर्यनारायण से सब जगत् व्याप्त है जिस प्रकार वायु से क्योंकि वायु भी सूर्यनारायण के अङ्ग में ही रहता है हे साम्ब ! यह परमज्ञान हमने तुम को कहा है अब जिस प्रकार ब्रह्माजी ने पूर्वकाल में प्रतिमा स्थापन कहा है वह हम कहते हैं ।

एकसौअट्ठाईसवां अध्याय ।

प्रतिष्ठा का मुहूर्त और मण्डप बनाने का विधान ।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब ! प्रतिपदा द्वितीया चतुर्थी

पंचमी दशमी त्रयोदशी पूर्णिमा ये तिथि सोम बुध गुरु और शुक्र ये वार और तीनों उत्तरा रेवती अश्विनी रोहिणी हस्त पुनर्वसु पुष्य श्रवण और भरणी ये नक्षत्र सूर्य प्रतिष्ठा के लिये उत्तम हैं तुष केश पाषाण अस्थि अङ्गार आदि शोधन कर दश हाथ लम्बा चौड़ा अति मनोहर मण्डप बनाय उसमें चार हाथ की वेदी रचै नदी संगम से रेता लाय उसमें बिछावै और मण्डप को भलीभांति गोबर से लीपकर पूर्व दिशामें चतुरस्र दक्षिण में अर्द्धचन्द्र पश्चिम में वर्तुल और उत्तर में पद्माकार कुण्ड बनावै बड़ पीपल गूलर बिल्व पलाश शमी अथवा चन्दन के पांच पांच हाथ के तोरण बनावै शुक्ल वस्त्र पुष्प माला कुशा आदि से प्रत्येक तोरण को भूषित कर अग्निमीले इत्यादि मन्त्र से पूर्व दिशा में तोरण खड़ा करै । अग्नि आयाहि इत्यादि मन्त्र से दक्षिण में इषे त्वोर्जेत्वा इत्यादि मन्त्र से पश्चिम में और शन्नोदेवी इत्यादि मन्त्र से मण्डप के उत्तर की ओर तोरण स्थापन करै स्वच्छ जल से परिपूर्ण चन्दन वस्त्र और पुष्प मालाओं से भूषित और सुवर्णयुक्त कलश आजिघ्र इत्यादि मन्त्र से स्थापन करै सुन्दर चित्रवर्ण के दुपट्टों से मण्डप के स्तम्भ वेष्टित करै कलशों के ऊपर यव अथवा धानों से भरे मृत्तिका के शराव रक्खै ध्वजा दर्पण पताका चामर वितान आदि से मण्डप को अलंकृत कर शङ्ख भेरी घण्टा आदि के शब्द वेदध्वनि और जय शब्दों करके बड़ा उत्सव करै मण्डप के मध्य भूषित वेदी के ऊपर कुशा बिछाय पुष्पों से ढककर प्रतिमा को रक्खै और मण्डप के आठों दिशाओं में क्रम से पीत रक्त नील कृष्ण श्वेत कृष्ण हरी और चित्रवर्ण की आठ पताका दिक्पालों की प्रीति के अर्थ लगावै पँचरंगों से वेदी को अलंकृत कर उस पर पूर्वाग्र और उत्तराग्र कुशा बिछावै वहां उत्तम बिछौने और

दो तकियों करके युक्त एक शय्या भी स्थापन करै और भांति २ के भक्ष्यभोज्य मण्डप में रक्खै एक उत्तम छत्र वहां स्थापन करै और विचित्रदीपमालासे मंडपको अलंकृत करै ।

एकसौ उनतीसवां अध्याय ।

प्रतिष्ठा समय सूर्यके स्न न कराने ी विधि व आचार्य के लक्षण ।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब ! अब हम सूर्यनारायण के स्नान का विधान कहते हैं वेदपाठी शौच आचार में निष्ठ शास्त्र जाननेहारा और सूर्यनारायण का परमभक्त ब्राह्मण अथवा भोजक स्नान करावे स्नानगृह में एक हाथ लम्बा चौड़ा और ऊंचा पीठ बिछाय हाथी गाड़ी अथवा रथ इन पर प्रतिमा को रख प्रासाद से स्नानगृह में लाय उस पीठ पर रक्खे रस्ते में वेदध्वनि और भांति भांति के बाजों के शब्द होते आवैं फिर समुद्र गङ्गा यमुना सरस्वती चन्द्रभागा सिंधु पुष्कर आदि जो तीर्थ नदी सरोवर और पर्वतों के झ-रने हैं उनका जल लाकर सूर्यनारायण को स्नान करावे आठ ब्राह्मण और आठ भोजक सुवर्ण के कलशों से स्नान करावैं स्नान के जल में रत्न सुवर्ण गन्ध सर्व बीज सर्वौषध ब्राह्मी सुवर्चला मोथा विष्णुक्रान्ता शतावरि दूर्वा शङ्खपुष्पी हलदी प्रियंगु इत्यादि सब ओषधि डाले और कलशों के मुख पर बड़ पीपल आम्र और शिरीष के कोमल पल्लव रक्खै इस भांति गायत्री मन्त्र से अभिमंत्रित सोलह कलशों से सूर्यनारायण को स्नान करावै सुवर्ण के कलश न होयँ तो चांदी तांबे अथवा मृत्तिका के कलशों से ही स्नान करावै फिर पक्की ईंटों से बनीहुई वेदी के ऊपर कुशा बिछाय उस पर मूर्त्ति स्थापनकर अभिषेक करै और अभिषक के समय ये मन्त्र पढ़े (देवास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुशिवादयः । व्योमग-ङ्गाम्बुपूर्णेन कलशेन सुरोत्तम १ मरुतश्चाभिषिञ्चन्तु भक्ति-

मन्त्रो दिवस्पते । मेघतोयाभिपूर्णेन द्वितीयकलशेन तु २ सारस्वतेन पूर्णेन कलशेन सुरोत्तम । विद्याधराभिषिञ्चन्तु तृतीयकलशेन तु ३ शक्राद्याश्चाभिषिञ्चन्तु लोकपालाः सुरोत्तम । सागरोदकपूर्णेन चतुर्थकलशेन तु ४ वारिणा परिपूर्णेन पद्मरेणुसुगन्धिना । पञ्चमेनाभिषिञ्चन्तु नागास्त्वां कलशेन तु ५ हिमवद्धेमकूटाद्या अभिषिञ्चन्तु चाचलाः । नैर्ऋतोदकपूर्णेन षष्ठेन कलशेन तु ६ सर्वतीर्थाम्बुपूर्णेन पद्मरेणुसुगन्धिना । सप्तमेनाभिषिञ्चन्तु ऋषयः सप्तखेचराः ७ वसवश्चाभिषिञ्चन्तु कलशेनाष्टमेन वै । अष्टमङ्गलयुक्तेन देवदेव नमोस्तु ते ८) ये मन्त्र पढ़ वैदिकमन्त्र भी पढ़े समुद्रंगच्छ । इमंमेगङ्गे समुद्रज्योतिः इत्यादि मन्त्र पढ़ सिनीवाली इस मन्त्र से बल्मीक की मृत्तिका और शमी उदुम्बर पीपल पलाश बड़ इन पांच वृक्षों का कषाय यज्ञायज्ञेति मन्त्र करके मूर्तिपर चढ़ाय पञ्चगव्य बनावै गायत्री से गोमूत्र गन्ध द्वारा इस मन्त्र से गोबर आप्यायस्व इस मन्त्र से दूध दधि क्राव्ण इस मंत्र से दही तेजोसि इस मंत्र से घृत और देवस्यत्वा इस मन्त्र से कुशोदक लेकर ताम्र के नये पात्र में पञ्चगव्य बनाय सूर्यनारायण को स्नान करावै या ओषधी इस मन्त्र से ओषधी स्नान कराय द्रुपदा मन्त्र से उबटना लगावै मानस्तोके इस मन्त्र से शिरः स्नान कराय विष्णोरराट इस मन्त्र से गन्धयुक्त जल करके और जातवेदसे इस मन्त्र से शुद्ध और छने हुये नदी के जल से स्नान करावै और (एह्येहि भगवन् भानो लोकानुग्रहकारक । यज्ञभागं प्रगृह्य त्वमर्कदेव नमोस्तु ते) इस मन्त्र से सूर्यनारायण का आवाहन कर सुवर्ण के पात्र से इदं विष्णुर्विचक्रमे इस मन्त्रकर सूर्यनारायण को अर्घ्य देवै पाहिले मृत्तिका के कलश से पीछे ताम्र कलश से और फिर सुवर्ण के कलश से अभिषेक करै

फिर सम्पूर्ण तीर्थोदक और सर्वौषध करके युक्त शंख सूर्य-नारायण के मस्तक पर घुमाय उसके जलसे स्नान करावै पीछे पुष्प और धूप देकर क्रम से जल दूध घृत सहत और इक्षुरस करके स्नान करावै इस रीति से जो पुरुष स्नान करावै वह अग्निष्टोम गोमेध ज्योतिष्टोम वाजपेय राजसूय और अश्वमेध यज्ञ के फलको प्राप्त होता है जो पुरुष केवल स्नान के समय सूर्यनारायण का दर्शन ही करै वह भी इनका आधा फल पावै परन्तु ऐसे स्थान में स्नान करावै कि स्नान के जल को कोई लङ्घन न करै और स्नान के दही दूध को कुत्ता काक आदि निन्दित जीव भक्षण न करैं इस विधि स्नान कराय आचमस्व यह पद कहकर वर्द्धिनी नामक पात्र से प्रतिमा के आगे तीन जलधारा देवै फिर वेदोसि इस मन्त्र करके प्रतिमा को पोंछ बृहस्पते इस मन्त्र से दो वस्त्र पहिनावै युञ्जान इस मन्त्र से गोरोचन और रक्त चन्दन चढ़ाय येनश्रियं इस मन्त्र से पुष्पमाला पहिनावै धूरसि इस मन्त्र से धूप देवै दीर्घायुष्ट्वाय इस मन्त्र करके आरती करै समिद्धाञ्जनं इस मन्त्र से अंजन लगावै इस स्नान के विधान करने के लिये जैसे ब्राह्मण और भोजक चाहिये उनके हम लक्षण कहते हैं जिसके सब अङ्ग पूरे होयँ कोई न्यून अधिक न हो शास्त्र जानता हो सुन्दर कुलीन श्रद्धावान् और आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ हो गुरुभक्त जितेन्द्रिय तत्ववेत्ता और सौर शास्त्र का जाननेवाला हो इन लक्षणों करके युक्त ब्राह्मण सूर्य-नारायण का स्नान और प्रतिष्ठा करावै और हीनाङ्ग अधिकाङ्ग वामन अति कृष्ण अति गौर चार्वाक् दुर्मुख वाचाल शूद्र का शिष्य शूद्रान्नभोजी अशुचि रोगी बालक वृद्ध कुष्ठी योगी काणा दुर्बुद्धि संकीर्णजाति अन्ध खल्वाट विकलेन्द्रिय अविनीत दुरात्मा पंगु नासिका कर्ण आदि से रहित नक्षत्र-

सूची जीविका के अर्थ विद्या पढ़ानेवाला जो ब्राह्मण होय उससे कभी प्रतिष्ठा न करावै पहिले परीक्षा करके आचार्य बनाना चाहिये ।

एकसौतीसवां अध्याय ।

सूर्यनारायण के अधिवासन और प्रतिष्ठा करने का विधान और फल ।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब ! अब हम अधिवासन कहते हैं । पवित्र भूमि में लेपन देकर पांच रंगों से बहुत सुन्दर मण्डल रचै और पताका ध्वज तोरण छत्र पुष्पमाला आदि से उसको भूषित कर मण्डल में कुशा बिछाय सूर्यनारायण की मूर्ति वहां स्थापन कर अर्घ्य पाद्य आचमन मधुपर्क धूप दीप आदि से पूजन कर अव्यंग पहिनावै जिस भांति और देवताओं को पवित्रार्पण होता है इसी प्रकार प्रतिवर्ष श्रावण मास में नया अव्यंग बनाय सूर्यनारायण को अर्पण करै उनका यही पवित्रक है नया अव्यंग समर्पण करने के समय ब्राह्मण भोजन भी करावै प्रतिमा को सुगन्ध द्रव्यों से लेपन कर पुष्पमाला चढ़ाय शम्भवाय इस मंत्र से शय्या के ऊपर शयन कराय विश्वतश्चक्षुः इस मन्त्र करके सकलीकरण करै जो न्यास अपने देहमें करै वही प्रतिमा में भी करै इसको सकलीकरण कहते हैं । ॐ हंखं खखोल्काय स्वाहा यह मूलमंत्र है इसमें त्र्यक्षरमंत्र मिलाने से साक्षात्सूर्यस्वरूप द्वादशाक्षर मन्त्र होता है इसके वर्णों को क्रम से मस्तक नासिका ललाट उदर कण्ठ हृदय दक्षिणभुज वामभुज और कुक्षि इन नौ अङ्गों में न्यास करै । ह्रांह्रींसः यह त्र्यक्षर मन्त्रहै इसके मिलने से द्वादशाक्षर मन्त्र होता है क्रम से इन बारह वर्णों के ये रंग हैं अग्निवर्ण शुभ्रवर्ण अंजनवर्ण तरुणादित्यवर्ण सुवर्णवर्ण श्वेतपद्म के समान वर्ण चमेली के पुष्प के तुल्य वर्ण हिम अथवा कुन्द पुष्प के सदृश वर्ण अमृतवर्ण विद्युत्वर्ण पीत-

वर्ण और क्षीरवर्ण इन वर्णों का इस प्रकार ध्यानकर सूर्य-नारायण की प्रतिमा को शय्या के ऊपर शयन कराय हवन करै सूर्यकान्तिमणि से अथवा अरणी से अग्नि उत्पन्न कर कुंडों में स्थापन करै फिर पूर्व के कुण्ड में वह वृक्ष दक्षिण में माध्यन्दिन उत्तर में आश्वलायन पश्चिम में कठशाखाध्यायी और मध्य के कुण्ड में भोजक हवन करै शमी पलाश उदुम्बर और अपामार्ग की समिधाओं से हवन करैं अग्नि-मूर्द्धा इस मन्त्र से कुण्ड का प्रोक्षण आदि करै अग्निरुत इत्यादि मन्त्र से अग्नि का गर्भाधान संस्कार कर मूलमन्त्र से एक सहस्र आहुति दे सीमन्त और पुंसवन करै प्राणाय स्वाहा इस मन्त्र से जातकर्म नमः स्वाहा इस मन्त्र से नाम कर्म ब्रह्मयज्ञं इस मन्त्र से निष्क्रमण अन्नप्राशन मन्त्र से अन्नप्राशन ज्येष्ठमग्ने इस मन्त्र से चौड़व्रत मन्त्र करके व्रतबन्ध आकृष्णेन इस मन्त्र से समावर्त्तन और पत्नीपञ्च इस मन्त्र से अग्नि का विवाह नामक संस्कार करै और प्रत्येक संस्कार में महाव्याहृतियों से आहुति देवै और हवन के अन्त में सब देवताओं को बलि देवै इस भांति पांच दिन तीन दिन अथवा एक ही रात्रि प्रतिमा का अधिवासन करै देवा-गार के ईशान कोण में उत्तम स्थान के बीच कुशा बिछाय वहां शय्या रक्खै दहिने भाग में निक्षुभा वामभाग में राज्ञी और पादों के समीप दण्डनायक और पिंगल को महाश्वेता मन्त्र से स्थापन करै उस रात्रि में सूर्यनारायण के समीप जागरण करै वन्दी चारण आदि स्तुति पढ़ें गीत नृत्य आदि उत्सव होतारहै प्रभात होतेही प्रतिमा को बोधन करै और ब्राह्मण तथा भोजकों को हविष्य अन्न भोजन कराय दक्षिणा दे प्रसन्न करै फिर मन्दिर के गर्भ गृह में पिंडिका के ऊपर सातअश्वों करके युक्त सुवर्ण का रथ स्थापन कर सूर्यनारायण को

अर्घ्य दे उत्तम मुहूर्त्त और स्थिरलग्न में प्रतिमा स्थापन करै प्रतिमा का मुख नीचे अथवा ऊपर को न होजाय सीधा रहै सूर्यनारायण की प्रतिमा के दहिने और बायें राज्ञी और निक्षुभा की प्रतिमा स्थापन करै फिर मोदक पायस उल्लूपिका शष्कुली आदि से दश दिक्पालों को क्रम से इन मन्त्रों करके बलि देवै इन्द्राय देवपतये बलिने वज्रधारिणे । शतयज्ञाधिपेतस्मै पूर्वे इन्द्राय वै नमः १ अग्नये रक्तनेत्राय ज्वालामालार्चिताय च । शक्तिहस्ताय तीव्राय नमो वै कृष्णवर्त्मने २ दण्डहस्ताय कृष्णाय महिषध्वजवाहिने । सूर्यपुत्राय देवाय धर्मराजाय वै नमः ३ नैर्ऋत्ये खड्गहस्ताय नीललोहितकाय च । सर्व-रक्षोधिपायेह विरूपाय नमोनमः ४ वारुण्यां पाशहस्ताय झषारूढसिताय च । निम्नगापतये वीर वरुणाय च वै नमः ५ प्राणात्मकाय धूम्राय शशगायानिलाय च । ध्वजहस्ताय भी-माय नमो गन्धवहाय च ६ गदाहस्ताय सोमाय शुष्मिणोनृ-गताय च । गारुत्मतप्रभायाथ सोमराजाय वै नमः ७ गणा-धिपतये देव नीलकण्ठाय शूलिने । विरूपाक्षाय रुद्राय त्रैलो-क्यपतये नमः ८ सर्वनागाधिराजाय श्वेतवर्णाय भोगिने । सहस्रशिरसे नित्यमनन्ताय नमोनमः ९ चतुर्मुखाय देवाय पद्मासनगताय च । कृष्णाजिननिषङ्गाय नमो लम्बोदराय च १० इन मन्त्रों से दश दिक्पालों को बलि देकर सूर्य-नारायण का पूजन करै पीछे ब्राह्मण और भोजकों को भोजन कराय दक्षिणा देवै दक्षिणा दिये विना यह सूर्यनारायण का यज्ञ सफल नहीं होता इस विधि से जो प्रतिमा स्थापन करी जाय वह देश की वृद्धि करनेवाली होती है और उसमें सदा सूर्य-नारायण का सान्निध्य रहता है चारों वर्णों में जो सूर्यनारायण का स्थापन करै वह संसार से मुक्ति पाता है जे पुरुष भक्ति से सूर्यनारायण का अधिवासन देखें वे सात जन्म तक

आरोग्य होते हैं जो तीन दिन उत्सव में रहैं और गंध पुष्प आदि से सूर्यनारायण का पूजन करैं वे सूर्यलोक को जाते हैं प्रतिष्ठा को जो भक्ति से देखै वह गोलोक में निवास करै सूर्यनारायण की प्रतिमा स्थापन करने से दश अश्वमेध और सौ वाजपेय का फल प्राप्त होता है। ध्रुवाद्योश्च ध्रुवा भूमिर्ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। श्रेयसे यजमानस्य तथा त्वं ध्रुवतां व्रज॥ इस मन्त्र से प्रतिमा स्थापन करै सूर्यनारायण के पूजन से जो फल मिलता है वह सौ यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होता जो पुरुष जन्म भर पाप करता रहै और अन्त में सूर्यनारायण के आराधन में तत्पर होजाय वह सब पापों से छूट सूर्यलोक में निवास करता है मन्दिर की ईंट जब तक चूर्ण होयँ तब तक मन्दिर बनानेवाला पुरुष स्वर्ग सुख भोगता है और प्राचीन मन्दिर का उद्धार करने से इससे भी अधिक फल प्राप्त होता है जो पुरुष उत्तम मन्दिर बनाय विधि से प्रतिमा स्थापन करै वह संसार के सब सुख भोग सौ कल्पपर्यंत गोलोक में निवास करै।

एकसौइकतीसवां अध्याय।

सब देवताओं की प्रतिष्ठा का साधारण विधान और फल।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब! जो पुरुष देवताओं के प्रासाद बनाते हैं उनको परलोक में तो उत्तम फल मिलता ही है परन्तु इस लोक में भी उनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त होजाती है यह हमने सूर्यनारायण की प्रतिष्ठा का विधान कहा है अब हम सर्व देव प्रतिष्ठा की साधारण विधि कहते हैं। प्रतिमा को पहिले स्नान कराय उत्तम वस्त्र पहिनाय गन्ध पुष्प आदि से पूजन कर उत्तम शय्या के ऊपर सुला देवे और उस रात्रि में नृत्य गीत आदि उत्सव से जागरण करै दूसरे दिन पूजन कर मन्दिरकी प्रदक्षिणा कराय शुभ लग्न

में पिण्डिका के ऊपर प्रतिमा को स्थापन करै फिर देवताओं को बलि देकर ब्राह्मण भोजन करावै पीछे स्थापन करनेवाले आचार्य ज्योतिषी और स्थपति अर्थात् कारीगर उनको भूषण वस्त्र देकर सन्तुष्ट करै इस विधि से देवप्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष दोनों लोकों में सुखी होता है विष्णु के भागवत सूर्य के मग अर्थात् भोजक शिवजी के भस्म रुद्राक्ष धारनेवाले ब्राह्मण मातृकाओं के मातृशासन जाननेहारे ब्रह्म के वैदिक ब्राह्मण जिनके श्वेताम्बर बुद्धके रक्ताम्बर इत्यादि और भी जो जिस देवता के भक्त होवें उसकी प्रतिष्ठा करावें । यह सामान्य प्रतिष्ठा विधान हमने कहाहै इसको जो विधि से करै अथवा देखै वह सब मनोवांछित फल पाय ब्रह्मलोक को जावै सूर्यनारायण का भक्ति से स्थापन कर उनके आगे पुराण की कथा कहवावै और भलीभांति से स्थापक अर्थात् आचार्य और पौराणिक का वस्त्र भूषण आदि से पूजन करै और देवताओं के मंदिरों में भी पुराण बांचने का बहुत फल है पुराण कथा सुन सब देवता प्रसन्न होते हैं ।

एकसौ बत्तीसवां अध्याय ।

ध्वजारोपण का विधान और फल ।

नारदजी कहते हैं कि हे साम्ब ! हम अब ध्वजारोपण का विधान कहते हैं जो ब्रह्माजी ने कहा है । पूर्वकाल में देवता और असुरों का घोर संग्राम हुआ उसमें देवताओं ने अपने २ रथों के ऊपर चिह्न कल्पना किये वेही ध्वज हैं लक्ष्म चिह्न ध्वज केतु इत्यादि ध्वज के नाम हैं अब ध्वज का लक्षण कहते हैं प्रासाद का जितना व्यास होय उतना लम्बा सीधा और व्रणरहित ध्वजा का बांस चाहिये अथवा चार आठ दश सोलह यद्वा बीस हाथ लम्बा ध्वजदंड होय बीस हाथ से अधिक न होय पांच सात आदि विषम हस्त का न

होय चार अंगुल उसकी मोटाई होय बहुत मोटा अथवा बहुत पतला न होय और दृढ़ भी होय टेढ़ा होय तो पुत्रनाश व्रणयुक्त होय तो धननाश विषम हस्त होय तो रोग प्राप्ति और प्रमाण से अधिक लम्बा ध्वजा का बांस होय तो सब प्रकार की हानि करै दो हाथ के बांस की संज्ञा जय है चार हाथ का बांस जयंत कहाता है छः हाथ का जैत्र आठ हाथ का शत्रुहंता दश हाथ का जयावह बारह हाथ का नन्द चौदह हाथ का उपनन्द सोलह हाथ का इन्द्र अठारह हाथ का उपेन्द्र और बीस हाथ का बांस आनन्द कहाता है ये दश भेद बांस के हैं ध्वज दंड में लटकती हुई पताका बनावै वह पताका दश प्रकार की होती है अंगुर पल्लव स्कन्ध शाखा पताका कदली केतु लक्ष्मी जय और ध्वज ये उनके नाम हैं अब इनके लक्षण कहते हैं दो अंगुल की पताका अंगुर चार अंगुल की पल्लव छः अंगुल की स्कंध आठ अंगुल की शाखा ग्यारह अंगुल की पताका चौदह अंगुल की कदली सोलह अंगुल की केतु अठारह अंगुल की लक्ष्मी बीस अंगुल की जय और चौबीस अंगुल की पताका ध्वज कहाती है देवागार के पहिले कलश तक मार्जन करै वह पताका अंगुरा कहाती है दूसरे कलश तक पहुँचे वह पल्लव और मन्दिर के तृतीय भाग पर्यंत मार्जन करै वह स्कन्ध नामक पताका होती है गज मेष महिष कबन्ध वृष हरिण वृक और नग ये आठ भूमि में छोड़े हुये ध्वज के स्थान हैं पूर्व आदि दिशाओं में ध्वज की कल्पना करै शुक्ल वस्त्र की चित्रवर्ण और मनोहर पताका बनावै और ध्वज के ऊपर देवता के सूचन करनेहारा चिह्न सुवर्ण अथवा चांदी का बनावै विष्णु के ध्वजपर गरुड़ शिवजी के ध्वजपर वृष ब्रह्माजी के पद्म सूर्य के व्योम इन्द्र के हस्ती दुर्गा के सिंह महादेवी के गोधा रेवंत के अश्व वरुण

के कच्छप वायु के हरिण अग्निं के मेष और गणपति के ध्वज के ऊपर कक्षा का चिह्न बनावै जिस देव का जो वाहन होय वही ध्वजपर बनावै विष्णु के ध्वज का दण्ड सुवर्ण का और पताका पीतवर्ण की होनी चाहिये शिव का ध्वजदण्ड चांदी का और वृष के समीप श्वेतवर्ण की पताका ब्रह्मा का ध्वजदण्ड तांबे का और कमल के समीप पद्मवर्णा पताका सूर्यनारायण के सुवर्ण का ध्वजदण्ड और व्योम के नीचे पञ्चरंगी पताका जिसमें किंकिणी लगी होयँ इन्द्र के सुवर्ण का ध्वजदण्ड और हस्ती के समीप अनेक वर्ण की पताका यमके लोह का ध्वजदण्ड और महिष के समीप कृष्णवर्ण की पताका नभोधिपति के चांदी का ध्वजदण्ड और हंस के समीप शुक्लवर्ण की पताका कुबेर के मणिमय ध्वजदण्ड और मनुष्यपाद के समीप रक्तवर्ण की पताका बलदेव के चांदी का ध्वजदण्ड और तालवृक्ष के नीचे श्वेतवर्ण पताका कामदेव के ध्वज में त्रिलोह का दण्ड और मकर के समीप रक्तवर्ण की पताका कार्त्तिकेय के त्रिलोह का ध्वजदण्ड और मयूर के समीप चित्रवर्ण पताका गणपति के ताम्रका ध्वजदण्ड और हस्तिदन्त तथा कक्ष के समीप शुक्लवर्ण की पताका मातृकाओं के पीतल का ध्वजदण्ड और अनेक वर्ण की बहुतसी पताका रेवन्त के पीतल का ध्वजदण्ड और अश्व के समीप रक्तवर्ण की पताका चामुण्डा के लोहका ध्वजदण्ड और मुण्डमालाके समीप नीलवर्ण का ध्वज गौरी के ताम्र का ध्वजदण्ड और इन्द्रगोप के समान अति रक्तवर्ण पताका अग्नि के सुवर्ण का दण्ड और मेष के समीप अनेक वर्णकी पताका वायु के लोहका दण्ड और हरिण के समीप कृष्णवर्ण की पताका और भगवती के ध्वज का दण्ड सर्व धातुमय बनाय उसके ऊपर सिंह के समीप तीन रंग की पताका चढ़ावै इस रीति से पहिले ध्वज बनाकर

उसका अधिवासन करै लक्षण युक्त वेदी बनाय कलश स्थापन कर सर्वौषध जल से ध्वज को स्नान कराय वेदी के मध्य में खड़ाकर सब उपचारों से उसका पूजनकर पुष्पमाला पहिनाय दिग्पालों को बलि देकर एक रात्रि अधिवासन करै दूसरे दिन ब्राह्मण भोजन कराय शुभमुहूर्त में स्वस्तिवाचन आदि मंगल कर्म कर ध्वज को मन्दिर के ऊपर चढ़ावै उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजैं और ब्राह्मण वेदध्वनि करैं इस प्रकार से जो ध्वज चढ़ावै उसकी सम्पत्ति नित्य बढ़ती है जिस मन्दिर पर ध्वज न होय उस मन्दिर में असुर निवास करते हैं इसलिये ध्वजहीन मन्दिर न रक्खै ध्वज के चढ़ाने के समय यह मन्त्र पढ़ै ॥ ॐएह्येहि भगवन्देव देवेश खग-वाहन। श्रीकर श्रीनिवासेश जैत्रजैत्रोपशोभित १ व्योमरूप महारूप धर्मात्मंस्त्वं चतुर्गते । सान्निध्यं कुरु दण्डेस्मिन्सा-क्षीव ध्रुवतां व्रज२ कुरु वृद्धिं सदा कर्तुः प्रासादस्यार्कवल्लभ। ॐ एह्येहि भगवन् ईश्वरविनिर्मित उपरिचर वायुमार्गानुसारिन् श्रीनिवास रिपुध्वंसक पक्षिनिलय सर्वदेवप्रिय सर्वदा शान्ति स्वस्त्ययनं कुरु सर्वविघ्नान्यपहर सान्निध्यं कुरु नमः ॥ इस मन्त्र से ध्वजदण्ड को छिद्रमें प्रवेश करै और पूर्वाभिमुख हो कर दण्ड के ऊपर पताका चढ़ावै चढ़ातेही वह पताका जिस दिशा को लटकै उसी दिशाके स्वामी के लोक में ध्वजारोपण करनेवाला पुरुष आनन्दपूर्वक चिरकाल पर्यन्त निवास करै ध्वजारोपण करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और अन्त में सूर्यलोक की प्राप्ति होती है ।

एकसौ तेंतीसवां अध्याय ।

नारदजी की आज्ञा से साम्ब का गौरमुख के समीप गमन देवलककी निंदा मगोंकी उत्पत्ति शाकद्वीपसे मगों का लाना ।

साम्ब कहते हैं कि हे नारदजी ! आपके अनुग्रह से सूर्य-

नारायण का मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हुआ और उत्तम रूप भी पाया परन्तु एक चिन्ता मुझे बहुत है कि इस मूर्ति का पूजन और रक्षा कौन करैगा यह आप मुझे बतावें जिससे मेरी चिन्ता निवृत्त होय यह सुन नारदजी ने कहा कि हे साम्ब ! ब्राह्मण तो कोई इस काम को स्वीकार न करैगा क्योंकि जो ब्राह्मण देवधन से अपना निर्वाह करते हैं वे देवल कहाते हैं और शूद्रकी भांति पंक्तिबाह्य होते हैं और देव-धन से कोई ब्राह्मीक्रिया नहीं होसक्ती जो पुरुष देवधन और ब्राह्मण धनको लोभ से ग्रहण करते हैं वे नरक में पड़ते हैं और वहां उनको गृध्रों का उच्छिष्ट भोजन मिलताहै इस-लिये कोई ब्राह्मण देवता का पूजक नहीं बनना चाहता अब तुम सूर्यनारायण से ही पूछो कि जो उनका पूजन विधि से किया करै अथवा उग्रसेन राजा के पुरोहित से कहो जो कदा-चित् इस काम को स्वीकार करें यह नारदजी का वाक्य सुन साम्ब उग्रसेन के पुरोहित गौरमुख के घर गये गौरमुख भी स्नान सन्ध्याकर अपने घर में स्वस्थ बैठे थे साम्ब ने प्रणाम कर अपना अभिप्राय उनसे प्रकट किया कि महाराज मैंने एक सूर्यनारायण का प्रासाद बनाया है उसमें पत्नीसहित सूर्यनारायण की प्रतिमा स्थापन करी है और अपने नाम से नगर बसाया है अब मेरी यह प्रार्थना है कि आप इस सबको ग्रहण करैं यह साम्बका वचन सुन गौरमुख बोले कि हे साम्ब ! हम ब्राह्मण हैं और आप राजा हो जो यह प्रतिग्रह हम आपसे ग्रहण करैं तो हमारा ब्राह्मणत्व नष्ट होजाय और शूद्रके तुल्य देवलक बनजायँ जन्मान्तर में राक्षस बनैं और तुमको भी केवल पापही प्राप्त होय देवलक जिस पंक्ति में बैठ भोजन करै वह पंक्ति अपवित्र होजाती है और कृच्छ्रचान्द्रायण किये विना शुद्ध नहीं होती

देवलक जिसके यज्ञोपवीत आदि संस्कार करै उसके पितर अधोगति को प्राप्त होते हैं और सब प्रतिग्रह तो ब्राह्मण ग्रहण करते हैं परन्तु देवप्रतिग्रह ब्राह्मण को कभी न लेना चाहिये साम्बने कहा कि महाराज कोई ब्राह्मण इसको स्वीकार न करैगा तो फिर मैं किसको यह दान देकर अपनी चिंता निवृत्त करूं और सूर्यनारायण का पूजन कौन करै यह सुन गौरमुख ने कहा कि हे साम्ब ! यह दान तुम मगको दो वही देवपूजा का अधिकारी है तब साम्बने पूछा कि महाराज मग कौन है कहां रहता है किसका पुत्र है और इसका क्या आचार है यह आप कृपा कर कथन करैं तब गौरमुख कहने लगे कि हे साम्ब ! मग सूर्यनारायण का पुत्र है एक समय निक्षुभा को शाप भया तब ऋजिह्व नाम ऋषी की कन्या हो निक्षुभा ने जन्म लिया वह अपने घर में पिता की आज्ञा से अग्नि की सेवा किया करती एक दिन उसको सूर्यनारायण ने देखा उसका उत्तमरूप और यौवन देख सूर्यनारायण कामवश होगये और विचार कर अग्नि में प्रवेश किया वह कन्या अग्नि की प्रदक्षिणा करती थी उस समय अग्नि से प्रकट हो सूर्यनारायण ने उस कन्या का हाथ पकड़ लिया और क्रोधकर कहा कि तैंने हमको उल्लंघन किया यह वेदकी विधि नहीं है अब हम तेरे में पुत्र उत्पन्न करैंगे इतना कह उसमें जलगण्डनामक पुत्र उत्पन्न किया मग अग्निजाति के द्विजाति सोमजाति के और भोजक आदित्यजाति के हैं मगों का मिहिर गोत्र और ब्रह्मव्रत है उसमें पुत्र उत्पन्न कर सूर्य-नारायण अन्तर्धान भये यह बात ऋजिह्व मुनि ने जानी तब अपनी कन्या को शाप दिया कि तैंने अपनी चंचलता से पुत्र उत्पन्न किया इसलिये यह अपूज्य होगा यह पिता का शाप सुन बहुत व्याकुल भई और अग्निरूप सूर्यनारा-

यण का स्मरण किया स्मरण करते ही सूर्यनारायण प्रत्यक्ष भये तब उनसे कहा कि महाराज इस आपके पुत्र को मेरे पिता ने शाप देदिया है कि यह अपूज्य होगा अब आप ऐसा अनुग्रह करैं कि यह पूज्य होय तब गम्भीर वाणी से सूर्य-भगवान् बोले कि हे प्रिये ! तुम्हारा पिता बड़ा तपस्वी है इस-लिये उनका शाप अन्यथा नहीं हो सकता परन्तु तुम्हारे पुत्र के वंश में वेद पढ़ैंगे और हमारे परमभक्त होंगे सदा हमारा और तुम्हारा पूजन करैंगे मग इनकी संज्ञा होगी ये सब महात्मा ब्रह्मवादी वेद के तत्त्व को जाननेवाले और हमारे ध्यान में पारायण होंगे दाढ़ी और अव्यंग सदा धारण करैंगे जो मग विधि से हीन मन्त्रवर्जित और श्रद्धा बिना भी हमारा पूजन करैंगे वेभी हमारे लोक में निवास करैंगे ये हमारे वंशके मग महात्मा और वेदवेदांगों के पारगामी होंगे इस प्रकार अपनी प्रियाको आश्वासन कर सूर्यभगवान् अन्तर्धान भये और निक्षुभा भी परम हर्ष को प्राप्त भई हे साम्ब ! इस प्रकार ये मग सूर्यनारायण से निक्षुभा में उत्पन्न भये हैं वेही इस प्र-तिग्रह को ग्रहण कर सूर्यनारायण का पूजन करैंगे यह गौरमुख का वाक्य सुन साम्बने पूछा कि महाराज वे कहां रहते हैं आप मुझे बतावें तो मैं अभी उनको ले आऊं तब गौरमुख ने कहा कि यह तो हमको भी ज्ञान नहीं कि वे किस द्वीप में बसते हैं यह बात सूर्यनारायण ही जानते हैं इस-लिये तुम उनके शरण में प्राप्त हो यह गौरमुख का वचन सुन सूर्यनारायण की प्रतिमा से साम्ब ने प्रार्थना करी कि महा-राज आपका पूजन कौन करेगा यह आप कृपाकर कहैं तब प्रतिमा बोली कि हे साम्ब ! जम्बूद्वीप में तो कोई हमारे पूजन का अधिकारी है नहीं शाकद्वीप से हमारे पूजन करने के अर्थ मगों को लावो जम्बूद्वीप के अनन्तर शाकद्वीप है उसमें

भी चारवर्ण बसते हैं मग मगस मानस और मन्दग इनमें मग ब्राह्मणों के तुल्य मगस क्षत्रियों के सदृश मानस वैश्यों के समान और मन्दग शूद्र सरीखे हैं इनमें किसी प्रकार का संकर नहीं है सब सुखपूर्वक अलग २ बसते हैं उन्हें विश्वकर्मा ने हमारे तेज से रचे हैं उनको सरहस्य वेद हमने पढ़ाये हैं और वेदोक्त विधान से वे हमारा ही आराधन करते हैं सदा अव्यंग धारे रहते और सिद्ध गन्धर्व आदि कभी उस द्वीप में आय उनके साथ क्रीड़ा करते हैं जम्बूद्वीप में हम विष्णुरूपसे पूजेजाते हैं शाल्मलिद्वीप में शक्ररूप से क्रौंचद्वीप में भगरूप से प्लक्षद्वीप में भानुरूप से शाकद्वीप में दिवाकररूप से पुष्कर-द्वीप में ब्रह्माके रूपसे और कुशद्वीप में महेश्वर रूपसे हमारा पूजन होता है हे साम्ब ! अब तुम गरुड़पर चढ़ शाकद्वीप में जावो और हमारे पूजन के लिये शीघ्र मगों को ले आवो यह सूर्यनारायण की आज्ञा पाय द्वारका में जाय साम्ब ने सम्पूर्ण वृत्तान्त अपने पिता श्रीकृष्णचन्द्र से कहा और उनकी आज्ञा से गरुड़ के ऊपर चढ़ शीघ्रही शाकद्वीप में जाय पहुँचा वहां देखा कि बड़े तेजस्वी महात्मा मग सूर्यनारायण के आराधन में तत्पर हैं साम्ब ने उनको प्रणाम कर प्रदक्षिणा करी और कुशलप्रश्न के अनन्तर उनसे कहा कि आप सब धन्य हैं जो निरन्तर सूर्यनारायण की सेवा में आसक्त हैं श्री-कृष्णभगवान् का मैं पुत्रहूँ साम्ब मेरा नाम है और मैंने चन्द्र-भागा नदी के तटपर सूर्यनारायण की प्रतिमा स्थापन करी है और सूर्यनारायण की आज्ञा से ही उनके पूजन के अर्थ आपको जम्बूद्वीप में ले जाने के लिये यहां आया हूँ मेरी यह प्रार्थना है कि आप कृपा कर जम्बूद्वीप में चलें यह साम्ब का वचन सुन मगों ने कहा कि हे साम्ब ! यह बात हमको सूर्यनारायण ने पहिले ही कह दी है यहां मगों के

अठारह कुल हैं वे तुम्हारे साथ जायँगे यह सुन साम्ब बहुत प्रसन्न भया और उन अठारह कुलों के कुमारों को गरुड़ पर बैठाय वहां से चला और मित्रवन में पहुँचा सूर्यनारायण भी मगों को देख बहुत प्रसन्न भये और साम्ब से कहा कि अब ये हमारा पूजन किया करेंगे तुम कुछ चिंता मत करना।

एकसौचौंतीसवां अध्याय।

मगों के ज्ञान का वर्णन और उनके विवाहों का कथन।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा! इस प्रकार शाकद्वीप से भोजकों को लाय धन धान्य से पूर्ण वह साम्बपुर उन अठारह कुलों को दे दिया और वे सब भी सूर्यनारायण की शुश्रूषा में प्रवृत्त भये साम्ब भी सूर्यनारायण को और मगों को प्रणाम कर अतिहर्षित हो द्वारका में आया और भोजवंशियों से मगों के लिये कन्याओं की याचना करी भोजवंशियों ने अपनी २ कन्या अलंकृत कर साम्ब को दीं साम्ब ने वे सब कन्या सूर्यनारायण के मन्दिर में भेज दीं और आप भी वहां जाय सूर्यनारायण से पूछा कि मगों का क्या ज्ञान है यह आप मुझे बतावें तब सूर्यनारायण ने कहा कि हे साम्ब! नारद मुनि से पूछो वे कहेंगे सूर्यनारायण की आज्ञा पाय नारदजी के पास जाय साम्ब ने सब वृत्तान्त कहा नारदजी बोले कि हे साम्ब! हमतो मगों का ज्ञान नहीं जानते परन्तु व्यासजी से तुम पूछो वे तुमसे सब ज्ञान कह देंगे यह सुन साम्ब वेदव्यासजी के आश्रम में गया और प्रणामकर उन से प्रार्थना करी कि महाराज शाकद्वीप से अठारह मगों के कुमार मैं लाया हूँ और वे सब सूर्यनारायण का अर्चन करते हैं परन्तु मुझे बहुत संशय है कि ये सूर्यभगवान् के पूजक क्यों भये मग और भोजक में क्या भेद है इनका ज्ञान क्या है मौनव्रत इनके लिये क्यों है ये वर्चार्च क्यों कहाते हैं

अव्यंग क्या वस्तु है जिसको मग धारते हैं वेद कैसे पढ़ते हैं यज्ञ किस विधि करते हैं पंचवेला इनकी कौन हैं यह सब आप वर्णन करैं जिससे मेरा सन्देह निवृत्त होय यह साम्ब का वचन सुन वेदव्यासजी कहने लगे कि हे साम्ब ! यह बात है तो दुर्ज्ञेय परन्तु सूर्यनारायण के अनुग्रह से हमारे स्मरण में आगई इसलिये हम वर्णन करते हैं ये सब ज्ञानी होके कर्मयोग में प्रवृत्त होरहे हैं विपर्यस्त वेद से सूर्यनारा-यण को गाते हैं इसलिये इनकी संज्ञा मग है ब्रह्माजी पवन और बड़े २ तपस्वी ऋषि कूर्च अर्थात् दाढ़ी रखते हैं इस-लिये मग भी सदा कूर्च धारण करते हैं सब मुनि मौन से भोजन करते हैं और ये मग भी शाकद्वीप के मुनि हैं इसलिये मौन से ये भी भोजन करते हैं वर्चनाम सूर्य का है उनका अ-र्चन करने से ये वर्चार्च कहाये भोजकन्याओं में उत्पन्न होने से भोजक कहावैंगे ब्राह्मणों के लिये ऋग्वेद यजुर्वेद साम-वेद और अथर्वणवेद ब्रह्माजी ने कहे येही चारों वेद विपरीत कर वद विश्ववद वीवद और आंगिरस इन नामों से मगों के लिये कहे हैं इनके पढ़ने से मग वेदवेत्ता कहाये शेषनामक महानाग सब लोकों के सुख के अर्थ सूर्य रथमें बैठ किरणों के साथ वर्षता है उसका निर्मोक अर्थात् कंचुक सूर्यनारा-यण धारते हैं उसकी संज्ञा अमाहक और अव्यंग हैं यज्ञो-पवीत के समय ब्राह्मण यज्ञोपवीत धारते हैं उससमय मगों को अमाहक धारना चाहिये ब्राह्मणों के लिये जिस प्रकार गायत्री है उसी विधि मगों के लिये महाव्याहृति पूर्वक आदित्य मन्त्र है अमाहक के विना कभी मग भोजन न करैं और मृतक शरीर तथा रजस्वला स्त्री को स्पर्श भी न करैं जिसप्रकार वेदोक्त विधि से सौत्रामणी आदि यज्ञों में ब्रा-ह्मण सुरापान करते हैं इसी भांति मग भी मन्त्रों से संस्कार

किये हुये मद्यको हवि मानकर पान करते हैं और ब्राह्मणों के तुल्य यज्ञ अग्निहोत्र आदि कर्म करते हैं और इन को भी सब विधि निषेध ब्राह्मणों के तुल्यही हैं दो बेर दण्डनायक को और तीनों सन्ध्याओं में सूर्यनारायणको धूप देना चाहिये ये पांच धूपके काल हैं।

एकसौपैंतीसवां अध्याय।

मगों के विवाह और सन्तान का वर्णन।

साम्ब कहते हैं कि हे वेदव्यासजी! मैंने अपने समीप बैठाय उन भोजककुमारों को कहा कि तुम अपना वृत्त कहो तब उनमें से एक बुद्धिमान् कुमार कहने लगा कि हे साम्ब! ये अठारह कुमार तुम लाये हो इनमें दश तो मग हैं बाकी आठ मन्दग अर्थात् शूद्र हैं यह सुन मैंने मगों के दश कुमारों को तो दश भोजकन्या दीं और मन्दगों को आठ कन्या शकों की ब्याहीं और उनको उस नगर में सुखपूर्वक बसाया उनमें मगों के पुत्र जो भोजकन्याओं में उत्पन्न भये वे भोजक कहाये और ब्राह्मणों के समान भये और मन्दगों के पुत्र जो शककन्याओं में जन्मे मन्दगही रहे परन्तु सूर्यनारायणके परिचारक ये भी भये वे सब मग अव्यंग धारते हैं इतना कह साम्ब ने पूछा कि हे व्यासजी! यह अव्यंग क्या पदार्थ है क्योंकर बनता है और इसके धारण से क्या फल है यह आप कृपाकर वर्णन करें सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा! यह साम्ब का वचन सुन व्यासजी बोले कि हे साम्ब! हम अव्यंग का लक्षण कहते हैं तुम प्रीति से सुनो।

एकसौछत्तीसवां अध्याय।

अव्यंग का लक्षण और माहात्म्य।

व्यासजी कहते हैं कि हे साम्ब! देवता ऋषि नाग गन्धर्व अप्सरा यक्ष और राक्षस ऋतु क्रमसे सूर्यनारायण के रथ के

साथ रहते हैं वासुकि नाम नाग से वह रथ बँधा है एक समय वासुकि का कञ्चुक उतर कर गिरा उसको अरुण ने उठाकर सूर्यनारायण को निवेदन किया सूर्यनारायण ने भी अति सुन्दर वासुकि का कंचुक देख सुवर्ण और रत्नों से शोभित कर अपने मध्यभाग में धारण किया और अपने भक्तों को भी धारण करने की आज्ञादी उस दिन से सूर्यपूजक उसका अनुकरण अव्यंग बनाय धारने लगे उसके धारण से भोजक पवित्र हो जाता है और उस पर सूर्यनारायण का अनुग्रह भी होता है जो भोजक इसको न धारे वह अशुचि होता है और सूर्यनारायण के पूजन का अधिकारी भी नहीं होता जो अव्यंग धारे विना सूर्यनारायण का पूजन करै वह नरक को जाता है और सन्तति तथा आरोग्य से भी हीन रहता है इसलिये अव्यंग धारे विना कभी सूर्यनारायण का पूजन न करै वह अव्यंग सर्प के निर्मोक की भांति बीचसे पोला रक्खै और कर्पास के सूत्रका बनावै एकसौ बत्तीस अंगुल का उत्तम एकसौ बीस का मध्यम और एकसौ आठ अंगुल का निकृष्ट होता है इससे छोटा नहीं बनाना चाहिये यज्ञोपवीत की भांति अष्टम वर्ष में अव्यंग धारण होता है भोजकों के लिये यह मुख्य संस्कार है इसके धारण से सब क्रियाओं का अधिकारी होजाता है अव्यंग अमाहक पठितांग और सार ये सब नाम अव्यंग के हैं यह अव्यंग सर्व देवमय सर्व वेदमय और सर्व लोकमय है इसके मूल में ब्रह्मा मध्य में विष्णु और अग्र में शिव निवास करते हैं इसी भांति ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद तो मूल मध्य अग्र में रहते हैं और अथर्वण ग्रन्थि में निवास करता है पृथिवी जल तेज वायु आकाश और भूर्लोक आदि सप्तलोक अव्यंग में निवास करते हैं सूर्यभक्त भोजक सर्वकाल में अव्यंग को धारै केवल मैथुन

के समय और सूतक में अव्यंग धारण का निषेध है।

एकसौसैंतीसवां अध्याय।

सूर्यनारायण को अर्घ्य और धूपदेने का विधान उनके मन्त्र और फल।

सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा! इस प्रकार व्यासजी से भोजक ज्ञान सुन उनको प्रणाम कर नारदजी के पास साम्ब आया उनको सब वृत्तान्त सुनाय यह पूछता भया कि हे नारदजी! सूर्यनारायण को स्नान अर्घ्य आचमन और धूप भोजक क्योंकर समर्पण करैं यह आप कृपाकर वर्णन कीजिये यह साम्ब का वचन सुन नारदजी बोले कि हे साम्ब! जो तुमने पूछा इसको हम कहते हैं तुम प्रीति से सुनो प्रथम शरीर में तीन वार मृत्तिका लगाय नदी आदि में स्नानकर शुद्धवस्त्र गायत्री मन्त्र करके पहिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर आचमन करै निर्मल जल से तीन आचमन कर तीनबेर मार्जन और अभ्युक्षण करै आचमन किये विना जो क्रिया करै वह निष्फल होती है और विना आचमन पुरुष शुचि नहीं होता वेद में कहा है कि देवता और पितर शुचि कोही चाहते हैं आचमन कर देवालय में जाय आसन पर बैठ प्राणायाम कर अनेक प्रकार के पुष्पों से सूर्यनारायणका पूजन करै और गूगलका धूप देकर।

ॐ व्रतेन नित्यं व्रतिनो वर्द्धयन्तु देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे। तस्यादित्यस्य शरणमहं प्रपद्ये यस्तेजसा प्रथममाविभाति॥

इस मन्त्र से प्रतिमा के मस्तक पर पुष्पांजलि देवै धूप की पांच बेला हैं प्रभात जिस समय तारे देख पड़ते होयँ उस समय दण्डनायक को धूप देवैं प्रदोष के समय राज्ञी को और तीनों सन्ध्याओं में सूर्यनारायण को धूप देना चाहिये अर्द्धो-दित आकाश के मध्य में स्थित और अर्द्धास्त जिस समय सूर्यमण्डल होय वेही समय पूजा के हैं पूर्वाह्ण में मिहिर

को मध्याह्न में ज्वलन को और मध्याह्न के अनन्तर वरुण को अर्घ्य देवै रक्तचन्दन पद्म करवीर कुंकुम आदि जल में मिलाय ताम्र के पात्र से सूर्यनारायण को अर्घ्य देवै अर्घ्य पात्र हाथ में उठाय दोनों जानुपर बैठ पहिले यह मन्त्र पढ़े (एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पां हि मे कृत्वा गृहाणार्घ्यं दिवाकर) पीछे अर्घ्य देवै अर्घ्य देकर आदित्य-हृदय का पाठकर यह मन्त्र जपै । ॐ नमो भगवते आदित्याय वरिष्ठाय वरेण्याय ब्रह्मणे लोककर्त्रे ईशानाय पुराणाय पुराणपुरुषाय सामाय ऋग्यजुरथर्वाय ॐ भूः ॐ भुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं ब्राह्मणे आदित्याय नमः। इस प्रकार अर्घ्यदान कर तीनों कालों में इन मन्त्रों से धूप देवै। ॐ त्वमेको रुद्राणां वसूनां च पुरातनो देवानां गीर्भिरभिष्टुतः शाश्वतो दिवि । इस मन्त्र से पूर्वाह्न में । ॐ नमो भगवते ज्वालामालाकुलाय तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयो दिवीवचक्षुराततम् । इस मन्त्र से मध्याह्न में । ॐ नमोवरुणाय आकृष्णेनरजसावर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्मयेन-सवितारथेन देवो याति भुवनानिपश्यन्। इस मन्त्रसे सायङ्काल के समय धूप देवै फिर गर्भगृह में जाय प्रतिमाको ॐ मिहिराय-नमः इस मन्त्र करके धूप देकर निक्षुभाय नमः राज्ञे नमः दण्डनायकाय नमः पिङ्गलाय नमः राक्षसाय नमः श्रौषाय नमः कल्माषाय नमः गरुत्मते नमः दिण्डिने नमः रेवन्ताय नमः ईश्वराय नमः व्योमाय नमः विश्वेभ्योदेवेभ्यो नमः रुद्रेभ्यो नमः पितृभ्यो नमः ऋषिभ्यो नमः साध्येभ्यो नमः ॐ ब्रह्मणेण्डपतये आदित्याय पुरुषस्वरूपाय नमोनमः ॐअनेकान्ताय अन्तरूपाय नमः । वासुकितक्षककर्कोटकशङ्खकुलिकपद्मेभ्यो नागराजेभ्यो नमः । तलसुतलपातालरसातलविशालादिभ्यो नमः । दैत्य-दानवपिशाचेभ्यो नमः मातृभ्यो नमः ग्रहेभ्यो नमः मुण्डकाय

नमः माठराय नमः विनायकाय नमः इन मन्त्रों से सब देवताओं को धूप देकर सूर्यनारायण की प्रार्थना करै कि (अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या मया भक्त्या विभावसो। ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं ददस्व मे ॥ तीनकाल स्नानकर जो इस विधि से पूजन करै और धूप देवै वह अश्वमेध के फल को प्राप्त होय और धन पुत्र आरोग्य पाय अन्त में सूर्यलोक को जाय विधिपूर्वक करने से ही सर्व कार्य सिद्ध होते हैं इसलिये विधिका उल्लंघन न करै उत्तम पुष्प न मिलैं तो पत्रोंसेही पूजन करै धूपही देवै भक्तिसे जलमात्रही सूर्यनारायण के अर्पण करै यह भी न होसके तो प्रणामही करै प्रणाम करने में भी असमर्थ होय तो मानसी पूजा करै यह विधि द्रव्य के अभाव में कही है द्रव्य होयं तो सब उपचारों से पूजन करना चाहिये पीछे जो मन्त्र कहे हैं उनके उच्चारणमात्र सेही धूपदानका फल होता है मुखको वस्त्र से बांध सूर्यनारायण का अर्चन करै जो पूजन के समय प्रतिमाको श्वास वायु लगजाय तो अनिष्ट होता है इसलिये भलीभांति मुखबांध पूजन करै जो सूर्यनारायण का पूजन भक्ति से देखैं वे भी अश्वमेध का फल पाय सूर्यलोक को जाते हैं और जो धूपदान के समय दर्शन करैं वे उत्तम गति पाते हैं।

एकसौअड़तीसवां अध्याय।

मगों की प्रशंसा सूर्यमण्डल का वर्णन।

सुमन्तु मुनि कहते हैं कि हे राजा शतानीक! एक दिन व्यासजी श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन के लिये द्वारका में आये श्रीकृष्णचन्द्र ने भी अपने हाथ से उनको पाद्य अर्घ्य आचमन आदि दे आसन पर बैठाय प्रणाम किया और कुशलप्रश्नके अनन्तर कहा कि हे व्यासजी! शाकद्वीप में से साम्ब जिन भोजकों को लाया है वे बहुत उत्तम हैं सदा सूर्यनारायण

के आराधन में प्रवृत्त रहते हैं और सदाचार हैं उनको देख हमको भी परम हर्ष हुआ है सूर्यनारायण के अनुग्रह विना मोक्ष नहीं मिलता और भोजकों के आराधन विना सूर्यनारायण का अनुग्रह नहीं होता यह हमारे मनका निश्चय है यह श्रीकृष्ण भगवान् का वचन सुन वेदव्यासजी कहने लगे कि हे भगवन् ! आप जैसा कहते हैं वैसाही है ये भोजक धन्य हैं जो अनन्य भक्त सूर्यनारायण के हैं ये सब कर्मनिष्ठ और ज्ञानी हैं सदा पुष्प फल अन्न औषध आदि सूर्यनारायण के अर्पण करते हैं और उनकी प्रीति के लिये घृतका हवन करते हैं ये सब सूर्यनारायण की तैजसी कला में लीन होंगे सूर्यनारायण की प्रथम कला अग्नि में स्थित है जिससे सर्वकर्मों का साधन होता है दूसरी प्रकाशिका कला आकाश में स्थित है और तीसरी कला सूर्यमण्डल में है यह मण्डल वेदत्रयस्वरूप है इस मण्डल के मध्य में सदसदात्मक वह परमात्मा स्थित है वह क्षर और अक्षर तथा सूक्ष्म और स्थूल है निष्कल और सकल ये दो उसके भेद हैं तत्त्वों करके सहित और सब भूतों में स्थित वह परमात्मा सकल कहाता है और तत्त्वहीन होय तो निष्कल तृण गुल्म लता वृक्ष सिंह वृक हाथी पक्षी देवता सिद्ध मनुष्य जलजन्तु आदि सबमें वह व्याप्त हो रहा है। जब वह दूसरी कला में स्थित होता है तो वृष्टि आदि करता है और कालात्मा कहाता है तीसरी तैजस कला में स्थित होकर अपने भक्तों को मोक्ष देता है जिस मोक्षपद में प्राप्त होनेवाले कभी नहीं शोचते ॐकार में वह परमात्मा स्थित है ॐकार की साढ़ेतीन मात्रा हैं उनमें अर्द्धमात्रा रूप मकार का जो ध्यान करते हैं उनको सदसदात्मक ज्ञान होता है पचीस तत्त्वों में स्थित सूर्यनारायण का रूप मकार है मकार के ध्यान करने से ये मग कहाते हैं और

धूप माल्य आदि से सूर्यनारायण का पूजन कर भांति भांति के पदार्थ उनको भोजन कराते हैं इससे इनकी भोजक संज्ञा है ।

एकसौउनतालीसवां अध्याय ।

श्रीकृष्णजी प्रति व्यासजी का कहा मग ज्ञानयोग का वर्णन ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे व्यासजी ! भोजकों की सब ज्ञानोपलब्धि आप वर्णन करैं हम को श्रवण करने में बड़ा कौतुक है यह भगवान् का वचन सुन व्यासजी कहने लगे कि हे श्रीकृष्णजी ! यह शरीररूप एक मन्दिर है जिस में अस्थियों की थूनी लगी हैं चर्म और स्नायुओं से यह बँधा है रुधिर और मांस से लिपा है मूत्र विष्ठा आदि दुर्गन्ध पदार्थों से परिपूर्ण है जरा शोक और रोग इसमें निवास करते हैं इस मन्दिर में बुद्धिमान् पुरुष कभी आसक्त नहीं होते विरक्त पुरुषों के ये चिह्न हैं कि वृक्षों के मूल में एकाकी रहना उत्तम वस्त्र नहीं पहिनना पत्र कपाल आदि में भोजन करना और सब जीवों को समदृष्टि से देखना तिलों में तैल गौओं में घृत और काष्ठ में अग्नि जिस प्रकार स्थित है इसी भांति परमेश्वर भी गुप्त रूप से सब पदार्थों में स्थित है पहिले चंचल चित्त को वश में करके बुद्धि और इन्द्रियों को ऐसा रोके जिस भांति पिंजरे में पक्षियों को रोकते हैं इन्द्रिय निरोध से इस शरीर की ऐसी तृप्ति होती है जैसी अमृत धारा से होय प्राणायाम से दोष धारणा से पाप प्रत्याहार से संसर्ग और ध्यान करके अनीश्वर गुण निवृत्त होते हैं अग्नि में धौंकने से जिस प्रकार धातुओं के दोष दग्ध हो जाते हैं इसी प्रकार शरीर के दोष प्राणायाम से दग्ध होते हैं पहिले चित्त शुद्धि के लिये यत्न करना चाहिये चित्त शुद्धि होने से शुभाशुभ कर्म का ज्ञान होता है तब शुभाशुभ कर्मों से छूट निर्द्वन्द्व निर्मम निष्परिग्रह और निरहंकार हो मुक्ति को प्राप्त होता है पूर्वाह्न में

रक्तवर्ण ऋग्वेद स्वरूप सूर्यनारायण का राजसरूप होता है मध्याह्न में यजुर्वेदस्वरूप शुक्लवर्ण सात्त्विकरूप और सायङ्काल में कृष्णवर्ण तामस सामवेद स्वरूप सूर्यनारायण का रूप होता है इन तीनों से भिन्न ज्योतिःस्वरूप सूक्ष्म और निरंजन चौथा रूप है जिसको वेदवेत्ता प्रतिपादन करते हैं पद्मासन से बैठ सुषुम्णा में चित्त को स्थिर कर प्रणव से पूरक कुम्भक और रेचक ये तीन प्राणायाम कर पादांगुष्ठ के अग्र से लेकर मस्तक पर्यन्त ध्यान करै नाभि में अग्नि का हृदय में चन्द्र का और मस्तक में अग्निशिखा का ध्यान कर इन सबसे ऊपर सूर्यमण्डल का ध्यान करै यह स्थान चतुर्थ है और मोक्षार्थी पुरुषों को अवश्य जानना चाहिये ऋषिलोग सूर्यनारायण के इसी तुरीयस्थान में मन को लीनकर मुक्त भये हैं और मग भी इसी स्थान का ध्यान कर मुक्तिभागी होते हैं इतना कह व्यासजी बोले कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! ज्ञान करके युक्त यह मगों का चरित हमने आपको श्रवण कराया इसको जो जाने वह उत्तम गति पाता है यह ज्ञान श्रद्धावान् पुरुष को देना चाहिये नास्तिक इसका अधिकारी नहीं है सुमन्तुमुनि कहते हैं कि हे राजा! श्रीकृष्णचन्द्र को यह भोजक ज्ञान सुनाय श्रीवेदव्यासजी अपने आश्रम को गये जो बदरी के समीप गंगा के तटपर है और त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है।

एकसौचालीसवां अध्याय।

आदित्यहृदय स्तोत्र।

राजा शतानीक पूछते हैं कि हे सुमन्तुमुनि! उदय होते हुये सूर्यनारायण का क्योंकर उपस्थान करै यह आप कृपा कर वर्णन करैं यह राजा का प्रश्न सुन सुमन्तुमुनि बोले कि हे राजा! यही बात भारत युद्ध में कुरुक्षेत्र के बीच अर्जुन

ने श्रीकृष्णचन्द्र से पूछी थी वह हम वर्णन करते हैं बड़े विनय से अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा कि धर्मशास्त्रों का रहस्य अतिगुप्त ज्ञान आपके मुख से श्रवण किया अब आप सूर्यनारायण का स्तुति रूप न्यास कहैं मैं आपसे भक्तिपूर्वक पूछता हूँ यह अर्जुन का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे पार्थ ! तुमने बहुत उत्तम और गुप्त बात पूछी है यह हमने इन्द्र आदि देवताओं के पूछने पर भी न कही परन्तु तुम हमारे परम भक्त हो इसलिये कहते हैं प्रीति से सुनो सब प्रकार के मंगल देनेहारा सर्व पापों का निवर्त्तक रोग और शत्रुओं का संहार करनेहारा धन पुत्र और विजय देनेहारा आदित्यहृदय स्तोत्र हम कहते हैं जिसके श्रवणमात्र से सब पाप कटजाते हैं और जो आदित्यहृदय तीनों लोकों में विख्यात तथा भुक्तिमुक्तिप्रद है प्रभात उठ सूर्यनारायण का स्मरण कर उनको नमस्कार करै तो अनेक प्रकार के विघ्न दूर होजायँ और जो पुरुष सूर्यनारायण का आवाहन कर आदित्यहृदय का पाठ करै वह दारिद्रय और कुष्ठ आदि महारोगों से छूट उत्तम सिद्धि पावै हे अर्जुन ! वह आदित्यहृदय स्तोत्र हम कहत हैं जो अतिगुप्त है तुम भक्ति से श्रवण करो ।

ॐ मस्य श्रीआदित्यहृदयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीकृष्णऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता हरितहयरथं दिवाकरं घृणिरिति बीजम् । ॐ नमो भगवते जितवैश्वानरजातवेदस इति शक्तिः ॐ नमो भगवते आदित्याय इति कीलकम् । श्रीसूर्यनारायणप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः ॐ ह्रांअङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूंमध्यमाभ्यां नमः ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रौंकनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । इति करन्यासः । एवं हृदयादिन्यासः । अथ

ध्यानम् । भास्वद्रत्नाढ्यमौलिः स्फुरदधररुचारञ्जितश्चारुकेशो भास्वान् यो दिव्यतेजाः करकमलयुतः स्वर्णवर्णप्रभाभिः । विश्वाकाशावकाशो ग्रहगणसहितो भाति यश्चोदयाद्रौ सर्वानन्दप्रदाता हरिहरनमितः पातु मां विश्वचक्षुः १ पूर्वमष्टदलं पद्मं प्रणवादिप्रतिष्ठितम् । मायाबीजं दलाष्टाग्रे यन्त्रमुद्धारयेदिति २ आदित्यं भास्करं भानुं रविं सूर्यं दिवाकरम् । मार्तण्डं तपनं चेति दलेष्वष्टसु योजयेत् ३ दीप्ता सूक्ष्मा जया भद्रा विभूतिर्विमला तथा । अमोघा विद्युता चेति मध्ये श्रीः सर्वतोमुखी ४ सर्वज्ञः सर्वगश्चैव सर्वकारणदेवता । सर्वेशः सर्वहृदयस्तं नमामि विभावसुम् ५ सर्वात्मा सर्वकर्त्ता च सृष्टिजीवनपालकः । हितः स्वर्गापवर्गश्च भास्करेश नमोऽस्तु ते ६ नमो नमस्तेऽस्तु सदा विभावसो सर्वात्मने सप्तहयाय भानवे । अनन्तशक्ते मणिभूषणाय ददस्व भुक्तिं मम मुक्तिमव्ययाम् ७ अर्कन्तु मूर्ध्नि विन्यस्य ललाटे तु रविं न्यसेत् । विन्यसेन्नेत्रयोः सूर्यं कर्णयोश्च दिवाकरम् ८ नासिकायां न्यसेद्भानुं मुखे वै भास्करं न्यसेत् । पर्जन्यमोष्ठयोश्चैव तीक्ष्णं जिह्वान्तरे न्यसेत् ९ सुवर्णरेतसं कण्ठे स्कन्धयोस्तिग्मतेजसम् । बाह्वोस्तु पूषणं चैव मित्रं वै पृष्ठतो न्यसेत् १० वरुणं दक्षिणे हस्ते त्वष्टारं वामतः करे । हस्तावुष्णकरः पातु हृदयं पातु भानुमान् ११ उदरे तु यमं विद्यादादित्यं नाभिमण्डले । कट्यां तु विन्यसेद्धंसं रुद्रमूर्वोस्तु विन्यसेत् १२ जान्वोस्तु गोपतिं न्यस्य सवितारन्तु जङ्घयोः । पादयोश्च विवस्वंतं गुल्फयोश्च दिवाकरम् १३ बाह्यतस्तु तमोध्वंसं भगमभ्यन्तरे न्यसेत् । सर्वाङ्गेषु सहस्रांशुं दिग्विदिक्षु भगं न्यसेत् १४ एष आदित्यविन्यासो देवानामपि दुर्लभः । इमं भक्त्या न्यसेत्पार्थ स याति परमां गतिम् १५ कामक्रोधकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः । सर्पादपि भयं नैव संग्रामेषु पथिष्वपि १६ रिपु-

सङ्कटकालेषु तथा चोरसमागमे। त्रिसन्ध्यं जपतो न्यासं महापातकनाशनम् १७ विस्फोटकसमुत्पन्नं तीव्रज्वरसमुद्भवम्। शिरोरोगं नेत्ररोगं सर्वव्याधिविनाशनम् १८ कुष्ठव्याधिस्तथा दद्रुरोगाश्च विविधाश्च ये। जपमानस्य नश्यन्ति शृणु भक्त्या तदर्जुन १९ आदित्यो मन्त्रसंयुक्त आदित्यो भुवनेश्वरः। आदित्यान्नापरो देवो ह्यादित्य परमेश्वरः २० आदित्यमर्चयेद् ब्रह्मा शिव आदित्यमर्चयेत्। यदादित्यमयं तेजो मम तेजस्तदर्जुन २१ आदित्यं मन्त्रसंयुक्तमादित्यं भुवनेश्वरम्। आदित्यं ये प्रपश्यन्ति मां पश्यन्ति न संशयः २२ त्रिसन्ध्यमर्चयेत्सूर्यं स्मरेद्भक्त्या तु यो नरः। न स पश्यति दारिद्र्यं जन्मजन्मनि चार्जुन २३ एतत्ते कथितं पार्थ आदित्यहृदयं मया। शृण्वन्मुक्तः स पापेभ्यः सूर्यलोके महीयते २४ नमो भगवते तुभ्यमादित्याय नमोनमः। आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् २५ सुवर्णः स्फटिको भानुः स्फुरितो विश्वतापनः। रविर्विश्वो महातेजाः सुवर्णः सुप्रबोधकः २६ हिरण्यगर्भस्त्रिशिरास्तपनो भास्करो रविः। मार्तण्डो गोपतिः श्रीमान् कृतज्ञश्च प्रतापवान् २७ तमिस्रहा भगो हंसो नासत्यश्च तमोनुदः। शुद्धो विरोचनः केशी सहस्रांशुर्महाप्रभुः २८ विवस्वान्पूषणो मृत्युर्मिहिरो जमदग्निजित्। धर्मरश्मिः पतङ्गश्च शरण्यो मित्रहा तपः २९ दुर्विज्ञेयगतिः शूरस्तेजोराशिर्महायशाः। शम्भुश्चित्राङ्गदस्सौम्यो हव्यकव्यप्रदायकः ३० अंशुमानुत्तमो देव ऋग्यजुः साम एव च। हरिदश्वस्तमोदारः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ३१ अग्निगर्भोदितेः पुत्रः शम्भुस्तिमिरनाशनः। पूषा विश्वम्भरो मित्रः सुवर्णः सुप्रतापवान् ३२ आतपी मण्डली भास्वांस्तपनः सर्वतापनः। कृतविश्वो महातेजाः सर्वरत्नमयोद्भवः ३३ अक्षरश्च क्षरश्चैव प्रभाकरविभाकरौ। चन्द्रश्चन्द्राङ्गदः

सौम्यो हव्यकव्यप्रदायकः ३४ अङ्गारकोऽङ्गदोगस्त्यो रक्ताङ्गश्चाङ्गवर्द्धनः। बुद्धो बुद्धासनो बुद्धिर्बुद्धात्मा बुद्धिवर्द्धनः ३५ बृहद्भानुर्बृहद्भासो बृहद्धामा बृहस्पतिः। शुक्रस्त्वं शुक्ररेतास्त्वं शुक्लाङ्गः शुक्लभूषणः ३६ शनिमाञ्छनिरूपस्त्वं शनैर्गच्छसि सर्वदा। अनादिरादिरादित्यस्तेजोराशिर्महातपः ३७ अनादिरादिरूपस्त्वमादित्यो दिक्पतिर्यमः । भानुमान् भानुरूपस्त्वं स्वर्भानुर्भानुदीप्तिमान् ३८ धूमकेतुर्महाकेतुः सर्वकेतुरनुत्तमः। तिमिरावरणः शम्भुः स्रष्टा मार्तण्ड एव च ३९ नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमाय नमोनमः। नमोत्तराय गिरये दक्षिणाय नमोनमः ४० नमोनमः सहस्रांशो ह्यादित्याय नमोनमः। नमः पद्मप्रबोधाय नमस्ते द्वादशात्मने ४१ नमो विश्वप्रबोधाय नमो भ्राजिष्णुजिष्णवे। ज्योतिषे च नमस्तुभ्यं ज्ञानार्काय नमोनमः ४२ प्रदीप्ताय प्रगल्भाय युगान्ताय नमोनमः। नमस्ते होतृपतये पृथिवीपतये नमः ४३ नमोङ्कारवषट्कार सर्वयज्ञ नमोऽस्तु ते। ऋग्वेदाय यजुर्वेदसामवेद नमोऽस्तु ते ४४ नमो हाटकवर्णाय भास्कराय नमोनमः। जयाय जयभद्राय हरिदश्वाय ते नमः ४५ दिव्याय दिव्यरूपाय ग्रहाणां पतये नमः। नमस्ते शुचये नित्यं नमः कुरुकुलात्मने ४६ नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतानां पतये नमः। नमः कैवल्यनाथाय नमस्ते दिव्यचक्षुषे ४७ त्वं ज्योतिस्त्वं द्युतिर्ब्रह्मा त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः। त्वमेव रुद्रो रुद्रात्मा वायुरग्निस्त्वमेव च ४८ योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने। एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ४९ नवयोजनलक्षाणि सहस्राद्विशतानि च। यावद्घटीप्रमाणेन क्रममाण नमोऽस्तु ते ५० अग्रतश्च नमस्तुभ्यं पृष्ठतश्च सदा नमः। पार्श्वतश्च नमस्तुभ्यं नमस्ते चास्तु सर्वदा ५१ नमः सुरारिहन्त्रे च सोमसूर्याग्निचक्षुषे। नमो दिव्याय व्योमाय सर्वतन्त्रमयाय च ५२ नमो वेदान्तवेद्याय सर्व-

कर्मादिसाक्षिणे । नमो हरितवर्णाय सुवर्णाय नमोनमः ५३
अरुणो माघमासे तु सूर्यो वै फाल्गुने तथा। चैत्रे मासे तु गोविन्दो
भानुर्वैशाखतापनः ५४ ज्येष्ठमासे तपेदिन्द्र आषाढे तपते रविः।
गभस्तिः श्रावणे मासे यमो भाद्रपदे तथा ५५ इषे सुवर्णरेताश्च
कार्त्तिके च दिवाकरः। मार्गशीर्षे तपेन्मित्रः पौषे विष्णुः सना-
तनः ५६ पुरुषस्त्वाधिके मासे नित्यमेव प्रतापयेत्। इत्येते
द्वादशादित्याः काश्यपेयाः प्रकीर्त्तिताः ५७ उग्ररूपा महात्मा-
नस्तपन्ते विश्वरूपिणः। धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रस्फुटा हे-
तवो नृप ५८ सर्वपापहरं चैवमादित्यं सम्प्रपूजयेत्। एकधा
दशधा चैव शतधा च सहस्रधा ५९ तपन्ते विश्वरूपेण सृजन्ति
संहरान्ति च। एकविष्णुः शिवश्चैव ब्रह्मा चैव प्रजापतिः ६०
महेन्द्रश्चैव कालश्च यमो वरुण एव च। नक्षत्रग्रहताराणा-
मधिपो विश्वतापनः ६१ वायुरग्निर्धनाध्यक्षो भूतकर्त्ता स्वयं-
प्रभुः। एष देवो हि देवानां सर्वमाप्यायते जगत् ६२ एष
कर्ता हि भूतानां संहर्त्ता रक्षकस्तथा। एष लोकानुलोकाश्च
सप्तद्वीपाश्च सागराः ६३ एष पाताललोकस्थो दैत्यदानव-
राक्षसाः। एष धाता विधाता च बीजं क्षेत्रं प्रजापतिः ६४ एष
एव प्रजा नित्यं संवर्द्धयति रश्मिभिः। एष यज्ञः स्वधा स्वाहा ह्रीः
श्रीश्च पुरुषोत्तमः ६५ एष भूतात्मको देवः सूक्ष्मोऽव्यक्तः
सनातनः। ईश्वरः सर्वभूतानां परमेष्ठी प्रजापतिः ६६ कालात्मा
सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः। जन्ममृत्युजराव्या-
धिसंसारभयनाशनः ६७ दारिद्र्यव्यसनध्वंसी श्रीमान्देवो
दिवाकरः। विकर्त्तनो विवस्वांश्च मार्तण्डो भास्करो रविः ६८
लोकप्रकाशकः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः। लोकसाक्षी त्रिलो-
केशः कर्त्ता हर्त्ता तमिस्रहा ६९ तपनस्तापनश्चैव शुचिः
सप्ताश्ववाहनः। गभस्तिहस्तो ब्रह्मण्यः सर्वदेवनमस्कृतः ७०
इत्येतैर्नामभिः पार्थ आदित्यं स्तौति नित्यशः। प्रातरुत्थाय

कौन्तेय तस्य रोगभयं न हि ७१ पातकान्मुच्यते पार्थ व्याधि-
भ्यश्च न संशयः। एकसन्ध्यं द्विसन्ध्यं वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ७२
त्रिसन्ध्यं जपमानस्तु पश्येच्च परमं पदम् । यदह्ना कुरुते पापं
तदह्ना प्रतिमुच्यते ७३ यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्या प्र-
तिमुच्यते । दद्रुस्फोटककुष्ठानि मण्डलानि विचर्चिका ७४
सर्वव्याधिमहारोगभूतबाधास्तथैव च । शाकिनी डाकिनी
चैव महारोगभयं कुतः ७५ ये चान्ये दुष्टरोगाश्च ज्वराती-
सारकादयः। जपमानस्य नश्यन्ति जीवेच्च शरदां शतम् ७६
संवत्सरेण मरणं यदा तस्य ध्रुवं भवेत्। अशीर्षां पश्यतिच्छा-
यामहोरात्रं धनञ्जय ७७ यस्त्विदं पठते भक्त्या वारे भानोर्म-
हात्मनः। प्रातःस्नाने कृते पार्थ एकाग्रकृतमानसः ७८ सुव-
र्णचक्षुर्भवति न चान्धस्तु प्रजायते । पुत्रवान् धनसम्पन्नो
जायते चारुजः सुखी ७९ सर्वसिद्धिमवाप्नोति सर्वत्र विजयी
भवेत् । आदित्यहृदयं पुण्यं सूर्यनामविभूषितम् ८० श्रुत्वा
च निखिलं पार्थ सर्वपापैः प्रमुच्यते । अतः परतरं नास्ति
सिद्धिकामस्य पाण्डव ८१ एतज्जपस्व कौन्तेय येन श्रेयो ह्यवा-
प्स्यासि । आदित्यहृदयं पुण्यं यः पठेत्सुसमाहित ८२ भ्रूणहा
मुच्यते पापात् कृतघ्नो ब्रह्मघातकः । गोघ्नः सुरापी दुर्भोजी
दुष्प्रतिग्रहकारकः ८३ पातकानि च सर्वाणि दहत्येव न
संशयः। य इदं शृणुयान्नित्यं जपेद्वापि समाहितः ८४ सर्वपापवि-
शुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते। अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनो धन-
माप्नुयात् ८५ रोगी च मुच्यते रोगाद्भक्त्या यः पठते सदा। यस्त्वा-
दित्यदिने पार्थ नाभिमात्रजले स्थितः ८६ उदयाचलमारूढं
भास्करं प्रणतः स्थितः । जपते मानवो भक्त्या शृणुयाद्वापि
भक्तितः ८७ स याति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः। अमित्रदमनं
पार्थ यदा कर्तुं समारभेत् ८८ तदा प्रतिकृतिं कृत्वा शत्रोश्चर-
णपांशुभिः । आक्रम्य वामपादेन आदित्यहृदयं जपेत् ८९

एतन्मन्त्रं समाहूय सर्वसिद्धिकरं परम् । ॐ ह्रींमालीढं स्वाहा । ॐ ह्रींनिलीढं स्वाहा । ॐ ह्रींमालीढं स्वाहा । इति मन्त्रः । त्रिभिश्च रोगी भवति ज्वरी भवति पञ्चभिः । जपैस्तु सप्तभिः पार्थ राक्षसीं तनुमाविशेत् ६० राक्षसेनाभिभूतस्य विकाराञ्छृणु पाण्डव । गीयते नृत्यते नग्न आस्फोटयति धावति ६१ शिवारुतञ्च कुरुते हसते क्रन्दते पुनः । एवं संपीड्यते पार्थ यद्यपि स्यान्महेश्वरः ६२ किं पुनर्मानुषः कश्चिच्छौचाचारविवर्जितः । पीड़ितस्य न सन्देहो ज्वरो भवति दारुणः ६३ यदा चानुग्रहं तस्य कर्तुमिच्छेच्छुभं करम् । तदा सलिलमादाय जपेन्मन्त्रमिमं बुधः ६४ नमो भगवते तुभ्यमादित्याय नमोनमः । जयाय जयभद्राय हरिदश्वाय ते नमः ६५ स्नापयेत्तेन मन्त्रेण शुभं भवति नान्यथा । अन्यथा च भवेद्दोषो नश्यते नात्र संशयः ६६ स्तवस्ते निखिलः प्रोक्तः पूजां चैव निबोध मे । उपलिप्ते शुचौ देशे नियतो वाग्यतः शुचिः ६७ वृत्तं वा चतुरस्रं वा लिप्तभूमौ लिखेद् बुधः । त्रिधा तत्र लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ६८ पूर्वपत्रे लिखेत्सूर्यमग्नेय्यान्तु रविं न्यसेत् । याम्यां चैव विवस्वन्तं नैर्ऋत्यां तु भगं न्यसेत् ६६ प्रतीच्यां वरुणं विंद्याद्वायव्यां मित्रमेव च । आदित्यमुत्तरे पत्रे ईशान्यां सूर्यमेव च १०० मध्ये तु भास्करं विंद्यात् क्रमेणैवं समर्चयेत् । अतः परतरं नास्ति सिद्धिकामस्य पांडव १०१ महातेजः समुद्यन्तं प्रणमेत्सुकृताञ्जलिः । सकेसराणि पद्मानि करवीराणि चार्जुन १०२ तिलतन्दुलयुक्तानि कुशगन्धोदकानि च । रक्तचन्दनमिश्राणि कृत्वा वै ताम्रभाजने १०३ धृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यां धरणीं स्पृशन् । मन्त्रपूतं गुडाकेश चार्घ्यं दद्याद्गभस्तये १०४ ॐ ह्रांह्रींह्रूंह्रैंह्रौंह्रः सूर्यमूर्तये स्वाहा । नमोऽस्तु सूर्याय सहस्रभानवे नमोऽस्तु वैश्वानरजातवेदसे । त्वमेव चार्घ्यं प्रतिगृह्ण देव देवाधिदेवाय नमो नमस्ते १०५ नमो भगवते तुभ्यं नमस्ते

जातवेदसे । दत्तमर्घ्यं मया भानो त्वं गृहाण नमोऽस्तु ते १०६ एहि सूर्यसहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते । अनुकंपय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर १०७ सर्वदेवाधिदेवाय आधिव्याधिविनाशिने । ममेप्सितं फलं देहि प्रसीद परमेश्वर १०८ सर्वसंकटदारिद्र्यशत्रून्नाशय नाशय । सर्वलोकेषु विश्वात्मन्सर्वात्मन् सर्वदर्शक १०९ नमो भगवते सूर्य कुष्ठरोगान्विखण्डय । आयुरारोग्यमैश्वर्यं देहि देव नमोऽस्तु ते ११० आदित्यं च शिवं विंद्याच्छिवमादित्यरूपिणम् । उभयोरन्तरं नास्ति आदित्यस्य शिवस्य च १११ उदये ब्रह्मणो रूपो मध्याह्ने तु महेश्वरः । अस्तमाने स्वयं विष्णुस्त्रयीमूर्तिर्दिवाकरः ११२ जयो जयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः । मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्त्तिताः ११३ हरितहयरथं दिवाकरं कनकमयाम्बुजरेणुपिंजरम् । प्रतिदिनमुदये नवं नवं शरणमुपैमि हिरण्यरेतसम् ११४ न तं व्यालाः प्रबान्धन्ते न व्याधिभ्यो भयं भवेत् । न नागेभ्यो भयं चैव न च भूतभयं क्वचित् ११५ अग्निशस्त्रभयं नास्ति पार्थिवेभ्यस्तथैव च । दुर्गतिं तरते घोरां प्रजां च लभते पशून् ११६ सिद्धिकामो लभेत्सिद्धिं कन्याकामस्तु कन्यकाम् । एतत्पठस्व कौन्तेय भक्तियुक्तेन चेतसा ११७ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च । कन्याकोटिसहस्रस्य दत्तस्य फलमाप्नुयात् ११८ इदमादित्यहृदयं योऽधीते सततं नरः । सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते ११९ नास्त्यादित्यसमो देवो नास्त्यादित्यसमा गतिः । प्रत्यक्षो भगवान् विष्णुर्येन विश्वं प्रतिष्ठितम् १२० गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलं लभते विद्वान् शान्तात्मा स्तौति यो रविम् १२१ योऽधीते सूर्यहृदयं सकलं सफलं लभेत् । अष्टानां ब्राह्मणानाञ्च लेखयित्वा समर्पयेत् १२२ ब्रह्मलोके ऋषीणां च जायते मानुषोपि वा । जातिस्मरत्वमाप्नोति शुद्धात्मा नात्र संशयः १२३

अज्ञाय लोकत्रयपावनाय भूतात्मने गोपतये वृषाय । सूर्याय
सर्वप्रलयान्तकाय नमो महाकारुणिकोत्तमाय १२४ विवस्वते
ज्ञानभृतान्तरात्मने जगत्प्रदीपाय जगद्धितैषिणे । स्वयंभुवे
दीप्तसहस्रचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः १२५ सुरैरनेकैः
परिसेविताय हिरण्यगर्भाय हिरण्मयाय । महात्मने मोक्षपदाय
नित्यं नमोऽस्तु ते वासरकारणाय १२६ आदित्यश्चार्चितो
देव आदित्यः परमं पदम् । आदित्यो मातृकारूप आदित्यो
वाङ्मयं जगत् १२७ आदित्यं पश्यते भक्त्या मां पश्यति
ध्रुवं नरः । नादित्यं पश्यते यस्तु न स पश्यति मां नरः १२८
नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे । त्रयी-
मयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरंचिनारायणशंकरात्मने १२९
यस्योदयेनेह जगत्प्रबुध्यते प्रवर्त्तते चाखिलकर्मसिद्धये । ब्रह्मे-
न्द्रनारायणरुद्रवन्दितः स नः सदा यच्छतु मण्डलं रविः १३०
नमोऽस्तु सूर्याय सहस्ररश्मये सहस्रशाखान्वितसम्भवात्मने ।
सहस्रयोगोद्भवभावभागिने सहस्रसङ्ख्यायुगधारिणे नमः १३१
यन्मण्डलं दीप्तिकरं विशालं रत्नप्रभं तीव्रमनादिरूपम् ।
दारिद्र्यदुःखक्षयकारणं च पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् १३२
यन्मण्डलं देवगणैः सुपूजितं विप्रैः स्तुतं भावनमुक्तिकोविदम् ।
तन्देवदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् १३३
यन्मण्डलं ज्ञानघनं त्वगम्यं त्रैलोक्यपूज्यं त्रिगुणात्मरूपम् ।
समस्ततेजोमयदिव्यरूपं पुनातु ० १३४ यन्मण्डलं गूढमति-
प्रबोधं धर्मस्य वृद्धिं कुरुते जनानाम् । यत्सर्वपापक्षयकारणं च
पुनातु० १३५ यन्मण्डलं व्याधिविनाशदक्षं यदृग्यजुःसाम-
सुसम्प्रगीतम् । प्रकाशितं येन च भूर्भुवः स्वः पुनातु० १३६
यन्मण्डलं वेदविदो वदंति गायन्ति यच्चारणसिद्धसंघाः ।
यद्योगिनो योगजुषां च संघाः पुनातु० १३७ यन्मण्डलं सर्वज-
नेषु पूजितं ज्योतिश्च कुर्यादिह मर्त्यलोके । यत्कालकालाद्यम-

नादिरूपं पुनातु० १३८ यन्मण्डलं विष्णुचतुर्मुखाख्यं यदक्षरं पापहरं जनानाम्। यत्कालकल्पक्षयकारणं च पुनातु० १३९ यन्मण्डलं विश्वसृजं प्रसिद्धमुत्पत्तिरक्षाप्रलयप्रगल्भम्। यस्मिन् जगत् संहरतेऽखिलं च पुनातु० १४० यन्मण्डलं सर्वगतस्य विष्णोरात्मा परंधाम विशुद्धतत्त्वम्। सूक्ष्मान्तरैर्योगपथानुगम्यं पुनातु० १४१ यन्मण्डलं वेदविदोपगीतं यद्योगिनां योगपथानुगम्यम्। तं सर्वदेवं प्रणमामि सूर्यं पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यम् १४२ ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः। केयूरवान्मकरकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशंखचक्रः १४३ सशंखचक्रं रविमण्डलस्थितं कुशेशयाकान्तमनन्तमच्युतम्। भजामि बुद्ध्या तपनीयमूर्तिं सुरोत्तमं चित्रविभूषणोज्ज्वलम् १४४ एवं ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च तपोधनाः। कीर्तयन्ति सुरश्रेष्ठं देवं नारायणं विभुम् १४५ वेदवेदाङ्गशरीरं दिव्यदीप्तिकरं परम्। रक्षोघ्नं रक्तवर्णं च सृष्टिसंहारकारकम् १४६ एकचक्रो रथो यस्य दिव्यः कनकभूषितः। स मे भवतु सुप्रीतः पद्महस्तो दिवाकरः १४७ आदित्यः प्रथमं नाम द्वितीयं तु दिवाकरः। तृतीयं भास्करं प्रोक्तं चतुर्थं तु प्रभाकरः १४८ पंचमं तु सहस्रांशुः षष्ठं चैव त्रिलोचनः। सप्तमं हरिदश्वश्च अष्टमन्तु विभावसुः १४९ नवमं दिनकृत्प्रोक्तं दशमं द्वादशात्मकः। एकादशं त्रयीमूर्तिर्द्वादशं सूर्य एव च १५० द्वादशादित्यनामानि प्रातःकाले पठेन्नरः। दुःस्वप्ननाशनं चैव सर्वदुःखं च नश्यति १५१ दद्रुकुष्ठहरं चैव दारिद्र्यं हरते ध्रुवम्। सर्वसम्पत्प्रदं चैव सर्वकामप्रवर्द्धनम् १५२ यः पठेत्प्रातरुत्थाय भक्त्या नित्यमिदं नरः। सौख्यमायुस्तथारोग्यं लभते मोक्षमेव च १५३ अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जेस्वरूपिणे। अग्न आयाहिवीतत्त्वं नमस्ते ज्योतिषांपते १५४ शन्नो देवी नमस्तुभ्यं जगच्चक्षुर्नमोऽस्तु

ते ।-पंचमायोपवेदाय नमस्तुभ्यं नमोनमः १५५ पद्मासनः पद्म-
करः पद्मगर्भसमद्युतिः । सप्ताश्वरथसंयुक्तो द्विभुजः स्यात्
सदा रविः १५६ आदित्यस्य नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिने दिने ।
जन्मान्तरसहस्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते १५७ उदयगिरिमुपेतं
भास्करं पद्महस्तं निखिलभुवननेत्रं दिव्यरत्नोपमेयम् । तिमिर-
करिमृगेन्द्रं बोधकं पद्मिनीनां सुरवरमभिवन्दे सुन्दरं विश्व-
वंद्यम् ॥ १५८ ॥

इति श्रीआदित्यहृदयस्तोत्रं समाप्तम् ।

एकसौइकतालीसवां अध्याय ।

आगे होनेवाले राजाओं का वर्णन और उनके राज्य का समय ।

राजा शतानीक कहते हैं कि हे सुमन्तुमुनि ! आपके मुखारविंद से सूर्य भगवान् के गुणानुवाद और परम पवित्र आदित्यहृदय स्तोत्र श्रवण किया जिससे चित्त को अत्यन्त आनन्द भया अब आप कृपाकर यह वर्णन करैं कि कलियुग में कौन २ राजा होंगे और कितने २ वर्ष राज्य करैंगे आप श्रीवेदव्यासजी के शिष्य और त्रिकालज्ञ हैं यह राजा का प्रश्न सुन सूतजी बोले कि हे राजा शतानीक ! आपने बहुत उत्तम प्रश्न किया अब हम कलियुग के राजाओं का वर्णन करते हैं आप प्रीति से श्रवण करैं कलियुग की संध्या से लेकर परीक्षित आदि तुम्हारे वंश के राजा इक्ष्वाकु वंश के राजा और मागध वंश के राजा एकसहस्रवर्ष तक राज्य करैंगे इन तीनों वंशों के राजाओं के अनन्तर प्रद्योत नामक पांच राजा एकसौअड़तीस वर्ष राज्य करैंगे पीछे शिशुनाग आदि दश राजा तीनसौसाठ वर्षपर्यन्त राज्य भोगैंगे यहांतक तो धर्मात्मा राजा होंगे इनके अनन्तर शूद्री के गर्भ से उत्पन्न नन्दनाम राजा होगा और

उसके आठ पुत्र सौवर्ष पर्यन्त राज्य करेंगे नन्द के पुत्रों को राज्य के अयोग्य जान कोई ब्राह्मण उनको राज्यसिंहासन से उतार मौर्यवंश के चन्द्रगुप्त को राज्य देगा तब एकसौ-सैंतीस वर्ष पर्यन्त मौर्यों के दश राजा राज्य करेंगे इनके अनन्तर शुंगनामक दश राजा एकसौदश वर्ष तक राज्य करेंगे अन्त में कण्व और जिसका दूसरा नाम वसुदेव है वह राज्य के लोभ से अपने स्वामी शुंग को मार आप राजा बनैगा तीनसौपैंतालीस वर्ष पर्यन्त इसी के घराने में राज्य रहैगा अन्त में इनको भी इनका सेवक एक शूद्र मारकर कुछ काल आप राज्य करैगा पीछे उसी आन्ध्र शूद्र के वंश के तीस राजा चारसौछप्पन वर्ष पर्यन्त कलियुग में राजा होंगे इनके अनन्तर आभीर नाम सात राजा सौ वर्ष तक भूमि का भोग करेंगे इनके बाद गर्दभ नामक दश राजा अट्ठानबे वर्ष राज्य के स्वामी होंगे फिर कंकनाम सोलह राजा दोसौ वर्ष राज्य करेंगे फिर विक्रमादित्य नाम उज्जयिनी में राजा होगा जो करोड़ों म्लेच्छों को मार धर्म स्थापन कर एकसौपैंतीस वर्ष राज्य करैगा इसके अनन्तर सौ वर्ष पर्यन्त बड़ा प्रतापी शालिवाहन नाम राजा राज्य करैगा इसके अनं-तर आठ यवन और सोलह तुरुष्क साढ़े तीनसौ वर्ष राज्य करेंगे पीछे गुरुण्ड नाम दश राजा एकसौसोलह वर्ष पर्यन्त राज्य भोग करेंगे पीछे मौननामक ग्यारह राजा तीनसौ वर्ष भूमि को भोगेंगे इनके अनन्तर किलाकिला में भूतनन्द आदि राजा एकसौपांच वर्ष राज्य करेंगे इतने तो कलियुग में चक्रवर्ती राजा होंगे पीछे खण्ड राज्य हो जायगा अर्थात् एक २ देश के जुदे २ राजा हो जायँगे उन भूतनन्द नामक राजाओं के तेरह पुत्र बाह्लिक राजा होंगे सात राजा कोशल देश में होंगे इनके अनन्तर वैदूरपति नैषध राजा

होंगे पीछे विश्वस्फुजित राजा अति क्रोधी और दुष्ट होगा वह सब वर्णों को म्लेच्छप्राय करदेगा सिन्धु के तीर में कश्मीर में और कांची आदि देशों में म्लेच्छों का राज्य हो जायगा ये सब राजा बड़े क्रोधी अल्पायुष् और अल्पसत्त्व होंगे और अपनी प्रजा को भक्षण करैंगे इस भांति का राज्य चारसौबारह वर्ष रहैगा इस प्रकार जब धर्म का नाश होने लगेगा तब पश्चिम देश में बड़ा ब्रह्मज्ञानी एक राजर्षि उत्पन्न होगा उसकी आज्ञानुसार सब राजा राज्य करैंगे कलियुग में भी धर्म की वृद्धि और म्लेच्छों का नाश वह करैगा उनके अनन्तर बड़े प्रतापी और प्रजा का रक्षण करनेहारे गौरमुख नाम राजा होंगे जिनके राज्य की बहुत शीघ्र वृद्धि हो जायगी सब राजा उनको कर देंगे वे एकसौअस्सी वर्ष नीति शास्त्र के अनुसार राज्य कर पश्चिम देश के मनुष्यों के हाथ अभाव को प्राप्त होंगे जब वेद में और ब्राह्मणों में शुद्धता होगी तब धर्म के विरोधी म्लेच्छों को राजा जीतैंगे और प्रजा के पालन करनेहारे हजारों राजा होंगे वे सब साढ़े तीनसौ वर्ष राज्य करैंगे कुछ काल के अनन्तर उनके वंश में बड़ा धर्मात्मा और प्रतापी विजय नाम राजा होगा जिसके वंश में साढ़े पांचसौ वर्ष राज्य रहैगा इनके अनन्तर रोहितक नाम नगर में नागार्जुन राजा बड़ा प्रतापी उत्पन्न होगा उसके वंश में उत्पन्न राजा एक हजार वर्ष पर्यन्त राज्य करैंगे फिर राजा बलिनामक होगा जिसके घराने में ग्यारहसौ वर्ष राज्य रहैगा इसके अनन्तर शूद्र म्लेच्छ आदि राजा होंगे सब जगत् म्लेच्छ हो जायगा धर्म कहीं नहीं रहेगा तब विष्णु भगवान् का कल्किनाम अवतार होगा वह अपने अश्व पर चढ़ सब म्लेच्छों का संहार कर धर्म का स्थापन करैगा

तब फिर सत्ययुग की प्रवृत्ति होगी इतना कह सुमन्तु मुनि बोले कि हे राजन् ! यह हमने कलियुग में होनेवाले राजाओं का संक्षेप से वर्णन किया अब तुम और क्या श्रवण किया चाहते हो वह कथन कीजिये ।

श्रीभविष्यपुराण का पूर्वार्द्ध समाप्त भया ।



श्रीगणेशाय नमः ।

भविष्यपुराण भाषा

उत्तरार्द्ध ।

पहिला अध्याय ।

श्लोक ।

नमोस्तु वासुदेवाय सशार्ङ्गाय सकेतवे ॥
सगदाय सचक्राय सश्रीकाय नमोनमः १
नमः शिवाय सौम्याय सगणाय ससूनवे ॥
सवृषव्यालशूलाय सकपालाय सेन्दवे २
शिवं ध्यात्वा हरिं स्तुत्वा प्रणम्य परमेष्ठिनम् ॥
चित्रभानुं सुभानुं च नत्वा ग्रन्थमुदीरयेत् ३

राजा शतानीक कहते हैं कि हे मुनिसत्तम सुमन्तुमुनि ! आपके अमृत से भी मधुर वचन सुनते सुनते मुझे तृप्ति नहीं होती अब आप और भी कोई उत्तम विषय वर्णन कीजिये जिससे चित्तको हर्ष होय और पुण्यकी प्राप्ति भी होय यह राजाका वचन सुन सुमन्तुमुनि बोले कि हे राजन् ! तुम श्रवण कराने के पात्रहो और श्रद्धा से सुनतेहो इसलिये फिरभी हम प्राचीन वृत्तांतका वर्णन करते हैं तुम्हारे बड़े प्रपितामह राजा युधिष्ठिर को जब राज्याभिषेक भया उस समय राजाको देखनेके लिये श्रीवेदव्यास आदि महर्षि वहां आये मार्कण्डेय माण्डव्य शांण्डिल्य शाकटायन गौतम गालव गार्ग्य ऋष्यशृङ्ग पराशर परशुराम भरद्वाज भृगु भागुरि उत्तङ्क शङ्खलिखित शौनक पुलस्त्य पुलह दाल्भ्य

बृहदश्व लोमश नारद पर्वत रैभ्य जह्नु वसुपरावसु आदि बड़े २ तपस्वी और वेदवेदांग के पारगामी ऋषीश्वरों को देख श्रीकृष्ण धौम्य और भीमसेन आदि अपने भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर सिंहासन से उठे और सब मुनीश्वरों को प्रणाम कर आसनों पर बैठाय अर्घ्य पाद्य आचमन आदि से उनका पूजन करते भये इस प्रकार सबका सत्कार कर विनय से नम्र हो राजा युधिष्ठिर श्रीवेदव्यासजी के प्रति कहने लगे कि महाराज आपके अनुग्रह से हमने निष्कण्टक राज्य पाया और अपने शत्रु दुर्योधन को मारा परन्तु अपने इष्टमित्र बंधुआदि विना यह राज्य हमको सुख नहीं देता जिस प्रकार रोगी पुरुष को भोग वन में रहने के समय कन्द मूल से निर्वाह कर जैसा सुख हमको प्राप्त होता था वैसा अब सब बन्धुओं को मार राज्य मिलने से नहीं होता जो हमारे गुरु बन्धु विपत्ति में रक्षा करनेहारे भीष्मपितामह थे उनको हमने राज्य के लोभ से मार दिया इससे अधिक कौन दुष्कर्म होगा अविवेक मद से अन्ध हम होरहे हैं और हमारा मन पापरूप कर्दम से लिप्त होरहा है उसको आप अपनी वाणीरूप निर्मल नदी प्रवाह से क्षालन कीजिये। आपने पुराणों का संस्कार किया वेद विभक्त करे अब आप बुद्धिरूप दीपक से धर्म का सर्वस्व हमको दिखावें ये सब धर्म के रक्षण करनेहारे मुनि आये हैं और अपने नेत्र भ्रमरों करके आपके मुखकमल को पान कर रहे हैं अर्थ-शास्त्र धर्मशास्त्र और मोक्षशास्त्र भीष्मपितामह से श्रवण किये अब उनके स्वर्ग गमन के अनन्तर श्रीकृष्ण और आप हमको उत्तम उपदेश करनेवाले हैं और इन सब मुनीश्वरों को भी यह निश्चय है कि युधिष्ठिर को व्यासजी अवश्य विशेष धर्मों का उपदेश करेंगे इसलिये आप सबका

मनोरथ सफल कीजिये यह राजा का वचन सुन व्यासजी बोले कि हे राजन् ! जो कुछ धर्मका उपदेश आपको करना था सो सब हमने भीष्मजीने मार्कण्डेयने धौम्यने और लोमश ने किया और तुमभी धर्मज्ञ गुणवान् और बुद्धिमान् पुरुषों के सम्मत हो धर्म अधर्म के निश्चय में कोई वस्तु आपको अज्ञात नहीं अब जगत्के सृष्टि स्थिति संहार करनेहारे श्री कृष्णभगवान् के सन्मुख धर्मका उपदेश करनेको किसकी जिह्वा प्रवृत्त होसकती है इसलिये येही तुमको धर्म उपदेश करेंगे इतना कह पाण्डवों से पूजन ग्रहणकर व्यासजी तो अपने तपोवन को गये और शान्तचित्त सब मुनीश्वर श्रीकृष्ण भगवान् के मुखकी ओर देखने लगे कि ये क्या कहते हैं।

दूसरा अध्याय।

सृष्टिकी उत्पत्ति और भूगोल का वर्णन।

राजा युधिष्ठिर श्रीकृष्ण भगवान् से पूछते हैं कि यह जगत् किसमें स्थित है कहां से उत्पन्न होता है किस में लय को प्राप्त होताहै और इसका हेतु क्याहै पृथिवी पर कितने द्वीप कितने समुद्र और कितने कुलाचल हैं पृथिवी का प्रमाण कितना है और भुवन कितने हैं यह आप वर्णन करें। यह प्रश्न सुन श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे महाराज ! आपने जो पूछा सो पुराण का विषय है परन्तु हमने भी संसार में विचरते हुये सुना है और अनुभव किया है अब निर्गुण अज विश्व-रूप परमेश्वर को प्रणामकर हम उस विषयका वर्णन करते हैं यह बात याज्ञवल्क्यमुनि ने सूर्यनारायण से पूछी थी उनको सूर्यनारायण ने जो उत्तर दिया वह हमने भी श्रवण किया वही आपको सुनातेहैं वह एक परमेश्वर सब प्राणियों में स्थित है और जलमें चन्द्रके प्रतिबिम्बोंकी भांति अनेक रूपसे देखपड़ता है ब्रह्मा विष्णु और शिव ये तीनों

सनातन देव एक एक परमात्मा के स्वरूप हैं केवल इनमें नाम का और क्रिया का भेद है वास्तवमें कुछ भेद नहीं प्रक्रिया अनुषङ्ग उपोद्घात और उपसंहार ये चार पाद वर्णनीय विषय के होते हैं यह जो विषय आपने पूछा बहुत बड़ा है परन्तु हम संक्षेप से वर्णन करते हैं पुरुष करके अधिष्ठित प्रकृति से महत्तत्त्व उत्पन्न होता है महत्तत्व से त्रिगुण अहंकार अहंकार से पांच तन्मात्रा तन्मात्राओं से पांच महाभूत और भूतों से चराचर जगत् उत्पन्न होता है प्रलयके समय स्थावर जंगम सब नष्ट होगये केवल जल ही सर्वत्र व्याप्त था उसमें भूतात्मक अण्ड उत्पन्न हुआ कुछ कालके अनन्तर उसके दो खण्ड हुये उनमें एक खण्ड भूमि और दूसरा खण्ड आकाश भया अण्डके बीच जो उल्व अर्थात् जरायु था उससे मेरु आदि पर्वत बने और धमनी अर्थात् नाड़ी नदीरूप भईं मेरुपर्वत सोलह हजार योजन तो भूमि के भीतर है और चौरासी हजार योजन भूमिके ऊपर है और मेरुके मस्तक का विस्तार बत्तीस हजार योजन है भूमि तो कमलरूप है और मेरु पर्वत कर्णिका है उस अण्ड से आदिदेव आदित्य उत्पन्न भया जो प्रातःकाल ब्रह्मा मध्याह्न में विष्णु और सायङ्काल में रुद्र रूप से स्थित होता है वह त्रयीमय एक आदित्य देवही तीनरूप धारता है ब्रह्मा से मरीचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु वशिष्ठ और नारद ये नव मानस पुत्र उत्पन्न भये पुराणों में इनको भी ब्रह्माही कहते हैं दक्षप्रजापति के पुत्र जब क्षीण होगये तब उनने कन्या उत्पन्न करी जिनमें से दश कन्या धर्म को तेरह कश्यप को सत्ताईस चन्द्रमा को दो बहुपुत्र को दो कृशाश्व को चार अरिष्टनेमिको एक भृगु को और एक शिवजी को दी जिनसे चराचर जगत् उत्पन्न

भक्ष मेरुपर्वत के तीनों शृंगोंपर ब्रह्मा विष्णु शिव की पुरी हैं और पूर्व आदि आठों दिशाओं में इन्द्रादि दिक्पालों की नगरी हैं हिमवान् हेमकूट निषध मेरु नील श्वेत और शृङ्गवान् ये सात जम्बूद्वीप में कुल पर्वत हैं जम्बूद्वीप का प्रमाण लक्षयोजन है और उसमें नव वर्ष हैं जम्बू शाक कुश क्रौंच शाल्मलि प्लक्ष पुष्कर ये सातद्वीप हैं और सातों समुद्रों करके वेष्टित हैं क्षारजल दुग्ध इक्षुरस सुरा दही घृत और स्वादु जल इनके सात समुद्र हैं सातों समुद्र और सातोंद्वीप एक से एक द्विगुण हैं भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक महर्लोक जनलोक तपोलोक और सत्यलोक ये देवताओं के निवास स्थान सातलोक हैं महातल भूमितल सुतल निस्तल तल रसातल और तलातल ये सात पाताल हैं इनमें रिण्याक्ष आदि दानव और वासुकि आदि नाग निवास करते हैं स्वायम्भुव स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत और चाक्षुष ये छः मनु व्यतीत होगये और वैवस्वतमनु अब वर्तमान है जिसके पुत्र पौत्रों ने यह पृथिवी व्याप्त कर रक्खी है बारह आदित्य आठ वसु ग्यारह रुद्र और दो अश्विनीकुमार ये तेंतीस देवता वैवस्वत मन्वन्तर में कहे हैं विप्रचित्तिसे दैत्य और हिरण्याक्षसे सब दानव उत्पन्न भये हैं द्वीप और समुद्रों करके युक्त भूमिका प्रमाण पचास कोटि योजन है और नावकी भांति यह भूमि जलपर तरती है परन्तु गलती नहीं इसके चारों ओर लोकालोक पर्वत है वहांतक सूर्यका प्रकाश पहुँचताहै उससे आगे अन्धकार है जिसको सूर्य आदि भी नहीं निवृत्त करसकते नैमित्तिक प्राकृत आत्यन्तिक और नित्य यह चारभेद प्रलय के हैं यह संसार जिससे उत्पन्न होता है प्रलय के समय उसी में लीन होजाता है ऋतुके ऊपर जिस भांति वृक्षोंके पुष्प फलआदि आपही उत्पन्न होते हैं उसी

भांति संसार भी अपने समय पर उत्पन्न होता है हिंस्र अहिंस्र मृदु क्रूर धर्म अधर्म सत्य असत्य आदि कर्मों करके भावित जीव अनेक योनियों में प्राप्त होते हैं भूमि जल करके जल तेज करके तेज वायु करके और वायु आकाश करके वेष्टित है आकाश अहंकार करके अहंकार महत्तत्त्व करके महत्तत्त्व प्रकृति करके और प्रकृति उस अविनाशी पुरुष करके परिवृत है इस भांतिके हजारों अण्ड उत्पन्न होते हैं और नाशको प्राप्त होते हैं यह सुर नर किन्नर नाग आदि करके युक्त जगत् नारायणके उदरमें स्थित है शुद्धबुद्धि पुरुष इसको भीतर बाहर से देखते हैं परन्तु परमात्माकी मायाको कोई नहीं जानता।

तीसरा अध्याय।

नारदजी को विष्णुमाया का दिखाना।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्ण ! वह विष्णुभगवान् की माया कैसी है जो सब जगत्को व्यामोह करती है उसका आप वर्णन कीजिये यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! एक समय नारदमुनि श्वेतद्वीप में नारायण के दर्शन को गये वहां नारायण के दर्शन कर उनको प्रसन्न देख नारद मुनि ने प्रार्थना करी कि महाराज आपकी माया कैसी है और कहां रहती है आप उसका रूप मुझे दिखावैं यह नारदका वचन सुन विष्णु भगवान् ने हँसके कहा कि हे नारद ! माया को देखकर क्या करोगे और जो कुछ तुम्हारी इच्छा होय सो मांगो तब फिर नारद जी ने यही कहा कि महाराज आप कृपाकर अपनी मायाही हम को दिखावैं और किसी वरकी हमको इच्छा नहीं इस प्रकार नारद का आग्रह देख विष्णु भगवान् ने कहा बहुत अच्छा आप हमारी माया देखिये यह कह नारदकी अंगुली पकड़ श्वेतद्वीप से चले मार्गमें आय भगवान् ने वृद्ध ब्राह्मण

का रूप धारा कि शिखा यज्ञोपवीत कमण्डलु मृगचर्म धारे कशा के पवित्र हाथों में पहिने वेदका पाठ करने लगे और अपना नाम यज्ञशर्मा रक्खा यह रूप धार नारद सहित जम्बूद्वीप में पहुँचे वेत्रवती नदी के तटपर शोभित विदिशा नाम नगरी में गये उस नगर में धनधान्य करके समृद्ध बड़ा उद्यमी पशुपालन में तत्पर बहुत खेती करनेवाला शीरभद्रनामक एक वैश्य था पहिले दोनों उसी के घर गये उसने भी देखा कि कोई दो ब्राह्मण हैं इनका आदर करना चाहिये यह विचारकर उनका आसन आदि से सत्कार किया और बोला कि हमारा अन्न जो आपको रुचै तो भोजन कीजिये तब हँसकर वृद्धब्राह्मणरूप भगवान् बोले कि तुम्हारे बहुत पुत्रपौत्र होयँ सब खेती और व्यापार में तत्पर रहैं और नित्य तुम्हारे पशु और खेतीकी वृद्धि होय यह हमारा आशीर्वाद है इतना कह वहांसे दोनों चले मार्गमें गंगाके तट पर ढिक्कानाम गांव में गोस्वामीनाम ब्राह्मण रहता था उस के समीप पहुँचे वह भी अपने खेत की चिंता में लगरहा था उसको भगवान् ने कहा कि हम बहुत दूर से आये हैं और तुम्हारे अतिथि हैं हमको भोजन करावो यह उनका वचन सुन दोनों को संग ले ब्राह्मण अपने घर आया वहां अपनी पत्नी से कहा कि ये दो अतिथि हैं इनकी भली भांति भोजन आदि से शुश्रूषा करो उसने भी पति की आज्ञानुसार दोनों को स्नान कराय भोजन कराया भोजन कर रात्रि को सुखपूर्वक उत्तम शय्यापर सोये ब्राह्मण भी उनकी सेवा में रहा प्रभात उठ भगवान् ने ब्राह्मण से कहा कि हम तुम्हारे घर में बहुत सुख से रहे अब जाते हैं परमेश्वर करे कि तुम्हारी खेती निष्फल होय और संतान भी न बढ़े इतना कह वहां से चल दिये मार्ग में नारद ने पूछा कि महाराज वैश्य ने कुछ

शुश्रूषा न करी जिस को तो आपने उत्तम वर दिया और इस ब्राह्मण ने इतनी सेवा कर यह शापरूप आशीर्वाद पाया इस में क्या हेतु है यह सुन भगवान् बोले कि हे नारद ! वर्ष भर मत्स्य पकड़नेवाले को जितना पाप होता है उतना एक दिन हल जोतने से होता है इसी से खेती करनेवाला नरक को जाता है वह शीरभद्र वैश्य अपने पुत्र पौत्रों सहित इसी कार्य में तत्पर है और घोर नरक में जायगा इसीसे हमने उसके घरमें विश्राम न किया और भोजन भी न किया और इस ब्राह्मण के घरमें भोजन किया और ऐसा आशीर्वाद दिया कि जिससे संसार जालमें न फँसे और मुक्ति पावे इस प्रकार बातचीत करते हुये दोनों कान्यकुब्ज के समीप पहुँचे वहां एक अतिरमणीय सरोवर देखा उस सरोवर की शोभा देख प्रसन्न हो भगवान् ने नारद से कहा कि हे नारद ! यह उत्तम तीर्थ है और आज पुण्य तिथि है इसलिये तुम स्नान करो पीछे वशिष्ठजी के नाम से प्रसिद्ध श्रीमहोदय नाम इस नगर में प्रवेश करेंगे इतना कह भगवान् उस सरोवर में झटपट एक गोता लगाय बाहिर निकल आये और नारदजी भी स्नान करने को सरोवर में प्रविष्ट भये स्नानकर जब बाहिर आये तो एक अति रूपवती स्त्री बनगये जिसके बड़े बड़े नेत्र चन्द्र सा मुख कामदेव के पाशों के समान कर्ण दर्पण से कपोल तिल पुष्पके समान नासिका काम धनुष से भ्रू हीरे से दांत मूँगा के तुल्य अति रक्तवर्ण अधर मयूर के कलाप के समान केशपाश शङ्ख की भांति तीन रेखाओं करके शोभित कण्ठ माधवी लताकी भांति कोमल और सरल जिसके भुज रक्तवर्ण के नख और पतली २ अंगुलियों से शोभित कमल से भी कोमल और अरुण जिसके हस्तपीन ऊँचे कठोर गोल अविरल श्लक्ष्ण कलशके समान

जिसके स्तन मानो चक्रवाकों का जोड़ा होय मुष्टिग्राह्य जिसका मध्य अति गम्भीर और वर्तुल जिसकी नाभि तीन बलियों करके भूषित जिसका उदर अति सुन्दर जिसकी रोमावली कामदेव का निवासस्थान अति विस्तीर्ण जिसका नितम्ब नितम्ब के मध्य में अति शोभित जिसके कुकुन्दर अर्थात् नितम्बकूप कदलीस्तम्भ के समान जिसके ऊरु सीधी रोम रहित और कोमल जिसकी जांघ दोनों गुल्फ अर्थात् टङ्कने जिसके अतिगूढ़ रक्तवर्ण की अंगुली और सुन्दर नखों से भूषित रक्तकमल के समान जिसके चरण जो भलीभांति भूमि पर टिकजाय इस प्रकार सब उत्तम लक्षणों करके युक्त जगत् को व्यामोह करनेवाली अतिरूपवती स्त्री सरोवर से निकली जिस प्रकार समुद्र से लक्ष्मी उसको देख भगवान् तो अन्तर्धान भये और वह स्त्री भी यूथच्युत हरिणी की भांति इधर उधर भयभीत हो देखने लगी इसी अवसर में अपनी सेना साथ लिये राजा तालध्वज वहां आया और उस नारी को देख कामातुर हो चिन्तन करनेलगा कि यह स्त्री कौन है कोई देवांगना है कि अप्सरा है इसका रूप ही देख मूर्च्छा होती है इतना विचार कर राजाने उससे पूछा कि हे बाले ! तू कौन है और इस स्थान में कहां से आई है यह राजा का वचन सुन उसने कहा कि महाराज मैं माता पिता से हीन और निराश्रय हूँ विवाह भी मेरा नहीं भया है अब आपके शरण हूँ यह सुनते ही प्रसन्न हो राजाने उसको अपने पीछे घोड़े पर चढ़ालिया और अपनी राजधानी में लाकर विधि-पूर्वक उससे विवाह किया विवाह के अनन्तर महलों उपवनों में सरोवरों के तीरों पर पर्वत के शृंगों पर नदी समुद्र आदि के तटों पर ऊँचे ऊँचे प्रासादों पर उस उत्तम स्त्री के साथ राजा विहार करने लगा इस प्रकार विहार करते २ एक दिन की भांति

बारह वर्ष बीत गये तेरहवें वर्ष में उसको गर्भ रहा और समय पूरा होने पर एक अलावु अर्थात् तूँबा उत्पन्न भया जिसमें सैकड़ों छोटे २ बालक थे वे सब घृत कुण्डों में छोड़े गये और थोड़े दिनों में ही बड़े पराक्रमी हृष्टपुष्ट होगये उन सबके विवाह भये और पुत्र पौत्रों की बहुत वृद्धि भई वे सब अहंकारी परस्पर विरोधी और राज्य की कामनावाले थे कुछ काल के अनन्तर राज्य के लोभ से कौरव पाण्डवों की भांति उनका परस्पर युद्ध हुआ और यादवों के तुल्य सबके सब नष्ट हो गये इस प्रकार अपने कुलका संहार देख वह स्त्री शिर और छाती पीट पीट विलाप करने लगी और मूर्च्छित हो भूमि पर गिरी और राजा भी शोक से अतिपीड़ित हो रोदन करता था इस अवसर में ब्राह्मण का वेष धार देवताओं सहित विष्णुभगवान् आये और राजा रानी को उपदेश करने लगे कि तुम दोनों शोककर बहुत रोदन मत करो यह विष्णुमाया ऐसे ही है सैकड़ों चक्रवर्ती और हज़ारों इन्द्र दीपक की भांति कालरूप प्रचण्ड पवन ने नष्ट कर दिये जो पुरुष समुद्र सुखाने को भूमि पीसकर चूर्ण कर डालने को पर्वत पीठ पर उठाने को समर्थ भये वे भी समय पाय काल के कराल मुख में गये त्रिकूट पर्वत जिसका दुर्ग अर्थात् किला समुद्र उसकी खाईं लङ्का राजधानी राक्षस जिसके योद्धा वह सब शास्त्र और वेद जाननेहारा रावण भी न रहा युद्ध में घर में पर्वत पर समुद्र में चाहे जहां जाय जो भावी है वही होता है पाताल में जाय इन्द्रलोक में प्रवेश करै मेरु पर्वत पर चढ़जाय मन्त्र औषध शस्त्र आदि करके चाहे जितनी अपनी रक्षा करै परन्तु जो होना होता है वह होता ही है इसमें कुछ सन्देह नहीं मनुष्यों को भाग्यानुसार जो कुछ शुभ अशुभ प्राप्त होना होता है वह अवश्य ही होता है हज़ारों उपाय करो परन्तु भावी किसी

प्रकार नहीं टलसक्की कोई आंसू टपकाय रोताहै कोई बड़ी प्रसन्नता से नाचता है कोई हृदय को हरनेहारा गीत गाता है कोई धन के लिये अनेक प्रकार के जाल रचता है इस भांति यह संसार एक प्रकार का नाटक है और सब जीव अनेक रूप धारनेवाले नट हैं इतना उपदेशकर उस रानी का हाथ पकड़ भगवान् ने कहा कि विष्णुमाया देखली उठो अब स्नानकर अपने पुत्र पौत्रों का और्ध्वदैहिक करो इतना कह उसी पुण्यतीर्थ में उसको स्नान कराया स्नान करतेही स्त्री रूप छोड़ नारदमुनि अपने रूपको धारण करते भये राजा ने भी अपने मन्त्री और पुरोहितों सहित देखा कि जटाधारे यज्ञोपवीत पहिने दण्ड कमण्डलु हाथों में लिये खड़ाउँओं पर चढ़े बड़े तेजस्वी एक मुनि हैं मेरी रानी नहीं उसी समय भगवान् नारदका हाथ पकड़ वहां से आकाशमार्ग करके चले और क्षणमात्र में श्वेतद्वीप पहुँचे और नारदसे कहा कि हे देवर्षि! हमारी माया देखी नारदजी ने भी हँसकर उन को प्रणाम किया और भगवान्की आज्ञा पाय तीनों लोकों में विचरने लगे इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण बोले कि महाराज यह विष्णुमायाका हमने संक्षेपसे वर्णन किया है इस माया के प्रभावसे संसारके जीव पुत्र कलत्र धन आदि में आसक्त होकर कोई रोते हैं कोई हँसते हैं कोई गाते हैं और अनेक प्रकार की चेष्टा करते हैं।

चौथा अध्याय।

संसार के दोषों का वर्णन।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! यह जीव कौनसे कर्म से देवता मनुष्य और पशु आदि योनिमें जन्म लेता है और अतिदारुण गर्भवास का क्लेश कैसे सहता है गर्भमें क्या खाता है स्वरूप और धनवान् किस कर्म से होता

है और पण्डित पुत्रवान् त्यागी होकरभी अल्पायुष् क्यों होजाता है सुखपूर्वक क्योंकर मरण होताहै और शुभाशुभकर्म का भोग किस प्रकार जीव करता है यह आप विस्तार से वर्णन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि महाराज उत्तम कर्म से देवयोनि मिश्रकर्म से मनुष्ययोनि और केवल अशुभ कर्म से तिर्यक्योनि में जीव जन्म लेता है इस धर्म अधर्म के निश्चयके लिये श्रुतिही प्रमाणहै पापसे पापयोनि और पुण्य से पुण्ययोनि प्राप्त होतीहै ऋतुकाल में निर्दोष शुक्र वायु करके प्रेरित शोणितके साथ एकता को प्राप्त होता है शुक्र के साथही कर्मों करके प्रेरित जीव भी योनि में प्रविष्ट होता है एकदिन में वह शुक्र शोणित मिलकर कलल बनता है पाँच रात्रि में कलल बुद्बुदरूप होजाता है सात रात्रि में बुद्बुद की मांसपेशी बनती है चौदह दिनमें वह मांसपेशी मांस और रुधिर से व्याप्त होकर दृढ़ होजाती है पचीस दिनमें उस पेशी में अंकुर निकलते हैं महीने में उन अंकुरों के पांच पांच भाग होजाते हैं और चार मास में वेही अंकुरों के भाग अंगुली बनजाते हैं पांचमहीनों में मुख नासिका और कर्ण बनते हैं छः महीने में दन्तपंक्ति नख और कर्णों के छिद्र बनते हैं सात महीने में गुदा लिंग अथवा योनि और नाभि बनते हैं और अंगों में संकोच भी होता है आठ महीने में अंग प्रत्यंग सब सम्पूर्ण होजाते हैं और शिर में केशभी आजाते हैं माता के भोजन का रस नाभि के द्वारा बालक के शरीर में पहुँचता है उसीसे उसका पोषण होता है गर्भमें स्थित जीव सब सुखदुःख समझता है और यह विचार करता है कि मैं अनेक योनियों में जन्मा और वारंवार मृत्युवश भया अब जन्म होतेही फिर संसार बन्धन में प्राप्त हूँगा इस प्रकार अनेक विचार करता हुआ और मोक्षका उपाय सोचता हुआ जीव अति

दुःखी गर्भ में रहता है पहाड़ के नीचे दबजाने से जितना क्लेश जीव को होय उतना जरायु से वेष्टित होने करके होता है समुद्र में डूबने से जो दुःख होय वही दुःख गर्भ के जल में भीगने से होता है तप्तलोह स्तम्भ से बांधने में जीव जो क्लेश पाता है वही गर्भ में जठराग्नि के ताप से होता है तपाई हुई सूचियों से बेधने करके जो व्यथा होती है उससे आठगुणी अधिक गर्भ में जीव को होती है गर्भवास से अधिक कोई दुःख जीवों के लिये नहीं है गर्भवास से कोटिगुण अधिक क्लेश जन्मते समय योनियन्त्र के पीड़न से होता है उस दुःख से मूर्च्छा होजाती है सूतिमारुतकी प्रेरणा से गर्भ के बाहिर निकलता है जिसप्रकार कोल्हू में पीड़न करने से तिल निस्सार होजाते हैं इसीप्रकार शरीरभी योनियन्त्र के पीड़न से निःसत्व होजाता है मुखरूप जिसका द्वार है दोनों ओष्ठ कपाट हैं सब इन्द्रियां गवाक्ष अर्थात् जाली झरोखे हैं दन्त जिह्वा गल वात पित्त कफ जरा शोक काम क्रोध तृष्णा राग द्वेष आदि जिस में उपकरण हैं ऐसा यह देहरूप अनित्य गेह नित्य आत्मा का निवास स्थान है शुक्र शोणित के संयोग से शरीर उत्पन्न होता है और नित्यही मूत्र विष्ठा आदि से भरा रहता है इस लिये अत्यन्त अपवित्र है जिस प्रकार विष्ठा से भरा हुआ घट बाहिर के धोने से शुद्ध नहीं होता इसी भांति यह देह भी स्नान आदि से शुचि नहीं होसक्ता पंचगव्य आदि शुचि पदार्थ जिसके संगसे अशुचि होजाते हैं उससे अधिक और कौन पदार्थ अशुचि होगा उत्तम भोजन पान आदि देह के संसर्ग से मलरूप होजाते हैं फिर देहकी अपवित्रता क्या वर्णन करें बाहिर से चाहे जितना देह को शुद्ध करो परन्तु भीतर तो कफ मूत्र विष्ठा आदि भरेही रहेंगे चाहे जितने सुगन्ध देह में लगावो परन्तु कभी इस देह का मालिन्य

दूर नहीं होता यह आश्चर्य है कि सब मनुष्य अपने देह का दुर्गन्ध सूँघकर नित्य अपना मल मूत्र देखकर और नासिका का मल निकाल कर भी इस देह से विरक्त नहीं होते और उनको देहमें घृणा नहीं उत्पन्न होती मोहका बड़ा प्रभाव है कि शरीरके दोष देखकर और इसका दुर्गंध सूँघकर भी इससे ग्लानि नहीं होती जन्म होतेही बाहर का पवन लगने से सब पूर्वजन्मका स्मरण जाता रहता है और जीव संसारके व्यवहार में आसक्तहो अनेक दुष्कर्म करते हैं और अपने को तथा परमेश्वरको भूलजाते हैं आंखोंके होते नहीं देखते बुद्धिके होते भला बुरा नहीं समझते सूधे मार्ग में भी उनके पैर खिसलते हैं यह सब मोहमहिमा है दिव्यदर्शी महर्षियों ने यह गर्भ का वृत्तांत प्रकट किया है इसको सुनकर भी मनुष्यों को वैराग्य नहीं उत्पन्न होता और अपना कल्याण नहीं करते यह बड़ा ही आश्चर्य है बाल्यावस्था में भी केवल दुःखही है कि बालक अपना अभिप्राय नहीं कहसक्ता और जो चाहै वह काम नहीं करनेपाता इससे नित्य व्याकुल रहता है दांत ऊगने के समय बालक बहुत क्लेश भोगते हैं और भांति भांतिके रोग और बालग्रह उनको सताते हैं क्षुधा तृषा से पीड़ित हो रोदन करते हैं मोह से बालक विष्ठा आदि भी भक्षण करलेते हैं फिर कर्णवेध के समय दुःख होता है अक्षरारम्भ के अवसर में गुरु से बड़ाही त्रास होताहै माता पिता ताड़न करते हैं युवावस्था में भी सुख नहीं अनेकप्रकार की ईर्षा मन में उपजती है कामदेव सताता है रात्रिको निद्रा नहीं आती और धनकी चिंता से दिनमें भी चैन नहीं पड़ता स्त्री से संग करके वीर्यपात करने में कुछ विशेष सुख नहीं इतनाही सुख है जितना पकेहुये गराड अर्थात् गूमड़े के फूट जाने से होता है अथवा मूत्र विष्ठाआदि त्याग करने से होता है इससे अधिक नहीं।

विचार करो तो सब दोषों के निवासस्थान अतिअशुचि नारी के देह में कोई वस्तु सुख देनेहारी नहीं है अपमानने सन्मान वियोग ने प्रियसंगम और बुढ़ापे ने यौवन नष्ट किया अब सुख काहे से होय जो पुरुष युवावस्था में नारियों को अति प्रिय होता है वही जब बूढ़ा हो जाय शरीर कांपने लगे सब अंग जर्जर होजायँ तब किसी को भला नहीं लगता इतनी दुर्दशा देखकर भी पुरुषों को वैराग्य नहीं उपजता बुढ़ापे में दुराचार पुत्र पौत्र आदि अवज्ञा करते हैं तब अत्यन्त दुःख होता है बुढ़ापे में कोई कर्म नहीं सिद्ध हो सक्ता इसलिये युवावस्था में ही अपना हित साधन करै वात पित्त आदि के वैषम्य अर्थात् न्यून अधिक होने से अनेक रोग होते हैं और यह शरीर रोगों का घर है फिर सुख कैसे होय एकसौ एक मृत्यु इस देह के हैं उनमें एक तो कालमृत्यु है बाकी सौ मृत्यु आगन्तुक अर्थात् अकालमृत्यु हैं आगन्तुक मृत्यु जप होम औषध आदि से टल भी जाते हैं परन्तु कालमृत्यु का कोई उपाय नहीं अनेक प्रकार के रोग सर्प शस्त्र विष क्रोध आदि आगन्तुकमृत्यु के द्वार हैं जब कालमृत्यु आय पहुँचे तब धन्वन्तरि भी कुछ नहीं कर सक्के और औषध तन्त्र मन्त्र तप दान रसायन योग आदि भी रक्षा नहीं करसक्के मृत्यु के समान कोई दुःख जीवों को नहीं है पुत्र स्त्री मित्र राज्य ऐश्वर्य धन आदि सबसे मृत्यु वियोग करा देता है और बड़े बड़े वैर भी मृत्यु से निवृत्त होते हैं सौ वर्ष का आयुष् पुरुष का है परन्तु कोई अस्सी कोई सत्तर और प्रायः साठ वर्ष मनुष्य जीते हैं और बहुत से साठ से पहिले ही मृत्युवश होते हैं जितना मनुष्य का आयुष् होय उसके आधे को तो रात्रि हर लेती है बीस वर्ष बाल्य और बुढ़ापे में वृथा बीतते हैं यौवन अवस्था में अनेक प्रकार की चिन्ता और काम की व्यथा रहती है

इसलिये वह समय भी निरर्थक ही जाता है इस भांति यह आयुष् समाप्त हो जाता है और मृत्यु आय पहुँचता है मरण के समय जो दुःख होता है उसकी कोई उपमा नहीं दे सके हे माता ! हे पिता ! अरे भाई ! इस भांति पुकारते हुये को मृत्यु ग्रसलेता है जैसे मेंडक को काला सर्प व्याधि से पीड़ित खाट पर पड़ा इधर उधर हाथ पैर पटकता है लम्बे सांस लेता है खाट से भूमि पर और कभी भूमि से खाटपर जाता है परन्तु कहीं चैन नहीं पड़ता कंठ में घुर २ शब्द होने लगता है मुख सूखता जाता है शरीर मूत्र विष्ठा आदि से लिप्त हो जाता है वाणी बन्ध हो जाती है पड़ा २ चिन्ता करता है कि मेरे धन को कौन भोगेगा और मेरे कुटुम्ब की रक्षा कौन करेगा इस प्रकार अनेक यातना भोगकर मनुष्य मरता है और इस देह से निकलते ही जीव दूसरे देह में प्रविष्ट हो जाता है मरण से अधिक दुःख विवेकी पुरुषों को याचन अर्थात् मांगने से होता है देखो विष्णुभगवान् भी बलि को याचना करने से वामन हो गये फिर और तो ऐसा कौन है जो याचना करने से लाघव को न प्राप्त होय आदि अन्त और मध्य में दुःख ही है बहुत खावो तो दुःख थोड़ा खावो तो दुःख किसी समय भी सुख नहीं है क्षुधा सब रोगों में प्रबल है और इसका औषध अन्न है इस लिये अन्न भी सुख का साधन नहीं प्रभात उठते ही मूत्र विष्ठा आदि की बाधा मध्याह्न में क्षुधा तृषा की पीड़ा और पेट भरने पर काम की व्यथा होती है रात्रि को निद्रा दुःख देती है धन के सम्पादन में दुःख सम्पादित धन की रक्षा करने में दुःख फिर उसके व्यय करने में अतिदुःख होता है इससे धन भी सुखदायक नहीं चोर जल अग्नि राजा और यज्ञ इनसे सदा धनवानों को भय रहता है जिस प्रकार मांस को आकाश में फेंको तो पक्षी भूमि पर श्वान आदि जीव और जल

में फेंको तो मत्स्य खाजाते हैं इसीप्रकार धनवान् को भी सर्वत्र भक्षण करते हैं सम्पादन के समय दुःख सम्पत्ति के समय मोह और नाश होजाने पर सन्ताप धनसे होता है इसलिये किसी काल में भी धन सुख का साधन नहीं हेमन्तऋतु में शीतका दुःख ग्रीष्म में दारुण सन्ताप का और वर्षाऋतु में वर्षा का दुःख होता है इसलिये काल भी सुखदायक नहीं विवाह में दुःख स्त्री गर्भवती होय तब दुःख प्रसव के समय दुःख और पतिके विदेश गमन में दुःख सन्तान के दांत नेत्र आदि के दुखने से दुःख इस भांति स्त्री भी सदा व्याकुल रहती है कुटुम्बियों को ये चिन्ता रहती हैं कि गौ नष्ट होगई खेती सूखगई भृत्य चला गया घरमें पाहुन आया स्त्री के अभी सन्तान भई है इसके लिये रसोई कौन बनावैगा इत्यादि हजारों चिन्ता कुटुम्बियों के लगी हैं जिनसे उनके शील सुत बुद्धि और सम्पूर्ण गुण नष्ट होते जाते हैं जिस भांति कच्चेघड़े में जल घड़ेसहित नष्ट होता है इसी भांति गुणों सहित देह कुटुम्बी मनुष्य का नाश को प्राप्त होता है राज्य भी सुखका हेतु नहीं जहां नित्य सन्धि विग्रह की चिन्ता लगी रहै और पुत्र से भी भय बना रहै वहां सुख का लेश भी नहीं अपनी जाति से सबको भय होता है जिस प्रकार एक मांसखंड के अभिलाषी श्वानों को परस्पर भय रहता है इस भांति संसार में कोई सुखी नहीं ऐसा कोई राजा नहीं जो सबको सुखसे राज्य करै एक को दूसरे से भय रहताही है इतना श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज! यह कर्ममय जन्मसे लेकर दुःखी है जो पुरुष जितेन्द्रिय और व्रत दान आदि में तत्पर रहते हैं वे जन्मान्तरमें सुखी होते हैं।

पांचवां अध्याय।

महापातक पातकआदिका वर्णन।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अधम कर्म करने से जीव घोर नरक में गिरते हैं और अनेक प्रकार की यातना भोगते हैं उस अधम कर्म कोही पाप और अधर्म कहते हैं चित्तवृत्ति के भेद से अधर्म के भेद जानने चाहिये स्थूल सूक्ष्म अतिसूक्ष्म आदि भेदों करके करोड़ों प्रकार के पाप हैं परन्तु हम बड़े २ पापों का संक्षेप से वर्णन करते हैं परस्त्री का चिन्तन परधन हरण की इच्छा दूसरे का अनिष्ट चिन्तन और अकार्य में अभिनिवेश ये चार मानस पाप हैं असत्य अप्रिय परनिन्दा और पैशुन्य अर्थात् चुगली ये चार वाचिक पाप हैं अभक्ष्य भक्षण हिंसा मिथ्या कामसेवन और परधन हरण ये चार पाप कायिक हैं इन कर्मों के करने से नरक प्राप्ति होती है और जो पुरुष विष्णु भगवान् से द्वेष रखते हैं वे भी घोर नरक में पड़ते हैं ब्रह्महत्या सुरापान सुवर्ण की चोरी और गुरुस्त्री गमन ये चार महापातक हैं इन पातक करनेवालों का संसर्गी मनुष्य पांचवां महापातकी गिनाजाता है ये सब नरक को जाते हैं जो पुरुष ब्राह्मण को आशा देकर पीछे क्रोध से लोभ से द्वेष से अथवा भय से निराश करदेते हैं उनको ब्रह्महत्या का पाप होता है जो विद्या के बलसे ब्राह्मणों का तिरस्कार करै वह भी ब्रह्महा है जो अपनी मिथ्या स्तुति करके अपने गुणों का उत्कर्ष दिखावै और गुरुओं के प्रतिकूल हो वह ब्रह्महा है क्षुधा तृषा से व्याकुल ब्राह्मण भोजन करनेलगे उस समय जो विघ्न करै वह ब्रह्महा है पिशुन सब लोकों के छिद्र ढूँढ़नेहारा और क्रूर पुरुष भी ब्रह्मघ्न के समान है तृषाकरके पीड़ित गौ जल पीने लगे उस समय जो विघ्न करै वह ब्रह्महत्या का भागी होता है दूसरे पर

जो मिथ्या दोष आरोपण करै और क्रोधी होय वह ब्रह्महा है देवता ब्राह्मण और गौओं की जो वृत्ति हरै वह ब्रह्महा है ब्राह्मण का न्यायोपार्जित धन हरै तो ब्रह्महत्या के समान पाप होय अग्निहोत्र का त्याग माता पिता का त्याग झूठी साक्षी मित्रद्रोह गौओं के मार्गमें वनमें और ग्राम आदि में अग्नि लगा देना ये सब घोर पाप सुरापान के समान हैं स्त्री हाथी घोड़ा गौ भूमि चांदी रत्न ओषधी चन्दन अगुरु कपूर कस्तूरी रेशमी कपड़ा इन सब का चोरना सुवर्णस्तेय के तुल्यहै बरयोग्य कन्यका विवाह न करना पुत्र मित्र आदि स्त्री भगिनी कुमारी नीच स्त्री और दूसरे वर्ण की स्त्री इन के साथ संग करना गुरु स्त्री गमन के समान है महपातकों के तुल्य ये सब पातक कहाते हैं। अब उपपातकों का वर्णन करते हैं । ब्राह्मण को कोई पदार्थ देना कहकर फिर नहीं देना ब्राह्मणका धन हरना अत्यंत अहंकार अति क्रोध दाम्भिकत्व कृतघ्नता कृपणता विषयों में अति आसक्ति सत्पुरुषों से द्वेष परस्त्री हरण कुमारीगमन आश्रम आदि को पीड़ा देना स्त्री पुत्र आदिका बेचना तीर्थयात्रा व्रत उपवास यज्ञ आदिका फल विक्रय करना स्त्रीधंन से निर्वाह करना स्त्री की रक्षा न करना मद्यपान करनेहारी स्त्री से संग करना ऋण लेकर न देना निन्दित धनका ग्रहण करना विष देना मारण उच्चाटन विद्वेषण आदि अभिचार कर्म करना मूल्य लेकर पढ़ाना और पढ़ना सब वस्तु भक्षण करना देवता अग्नि साधु गौ ब्राह्मण राजा और पतिव्रता की निन्दा करना दुःशीलता नास्तिकता रजस्वला पशु स्त्री और नीच स्त्री से मैथुन करना सब काल में मैथुन करना स्त्री पुत्र मित्र आदि की प्रीति में विघ्न करदेना प्रतिज्ञा भंग करना तलाव बन्ध रास्ता पुल आदि को तोड़ देना एक पंक्ति में भोजन का भेद करना ये सब उपपातक हैं

इन पापों के करनेहारे पुरुषों का जो संसर्ग करैं वेभी पातकी होते हैं परस्त्री को दूषित करनेहारे परद्रव्य हरनेहारे ब्राह्मणों को अनेक प्रकारों से दुःख देनेवाले सुरापान करनेवाले द्विज होकर शूद्र की सेवा में तत्पर गोष्ट जल अग्नि रथ्या अर्थात् गली और वृक्ष की छाया इन को नाश करनेहारे झूठा पत्र लिखनेवाले झूठे साक्षी धनुष शस्त्र और शय्या बेचनेवाले पशु दमन करनेहारे अर्थात् बैल बधिया करनेहारे स्वामी भृत्य और गुरु से द्रोह करनेहारे मायावी शठ भार्या पुत्र मित्र बालक वृद्ध दुर्बल रोगी भृत्य अतिथि बन्धु आदि को भूखा मारनेवाले एकाकी मीठा भोजन करनेवाले बैलों के साथ गौ को भी जोतनेवाले बकरी भेड़ भैंस आदि से जीविका करनेवाले और शस्त्र से वृत्ति करके निर्वाह करनेहारे नरक को जाते हैं जो अपने आश्रम में आये भूखे प्यासे और थकेहुये अतिथि का सत्कार नहीं करते और बालक वृद्ध अनाथ विकल दीन रोगी दुर्बल आदि पर दया नहीं करते वे नरकगामी होते हैं शिल्पी सुनार वैद्य आदि भी नरकके अधिकारी हैं जो ब्राह्मण राजा से दान लेते हैं वे नरक को जाते हैं परदारगामी और चोर को जो पाप होताहै वही रक्षा न करनेवाले राजाको होताहै और उससे भी अधिक उस ब्राह्मण को पातक लगता है जो राजप्रतिग्रह ग्रहण करै घी तेल अन्न पान मधु मांस सुरा गुड़ क्षार इक्षु शाक दही मूल फल तृण काष्ठ पुष्प पत्र औषध कांस्यपात्र जूता छतुरी शकट आसन शय्या तांबा सीसा रांग कांसी कर्पास वाद्य घर के उपकरण और भी छोटी मोटी वस्तु जो पुरुष किसीकी हरैं वे सब नरक को जाते हैं सरसों के समान भी पराई वस्तु चोरे तो नरक में अवश्य ही पड़ै इसभांति के पाप करनेहारे मनुष्यों को मरण के अनन्तर यमदूत नरक में लेजाते हैं और यमराज उनको दंड देता

है और जो पुरुष भूल से पाप करते हैं उनको गुरु शासन करके प्रायश्चित्त करादेता है इसलिये वे नरक नहीं देखते और परदारगामी तथा चोर आदि को राजा दंड देताहै और जो गुप्त पापी होय तो यमही शासन करता है प्रथम तो इन पापों से बचै और जो कभी भूल से बन भी पड़े तो प्रायश्चित्त कर देवै जो पुरुष मन वचन कर्म से पाप करैं दूसरे से करावैं अथवा पाप करते हुये पुरुषों का अनुमोदन करैं वे सब नरक को जाते हैं ये पापके भेद संक्षेप से वर्णन किये हैं इस भांति हजारों प्रकार के पाप और भी हैं मन वचन और शरीर से अनेक प्रकार के पाप करनेहारे नरक में पड़ते हैं और यमयातना भोगते हैं और जो पुरुष उत्तम कर्म करते हैं वे स्वर्ग में सुखसे आनन्द भोगते हैं।

छठा अध्याय।

शुभाशुभकर्मों के फल और नरकों का वर्णन।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि महाराज इन पापों के करने से जीव घोर नरकों को जाते हैं यमराजकी सभा में सबके शुभ अशुभ कर्मों का बिचार चित्रगुप्त आदि करते हैं और कर्मानुसार फल भोगना पड़ता है इसलिये सदा शुभकर्मही करने चाहिये किये कर्म का विना भोग किसी प्रकार क्षय नहीं होता। अब पुण्यकर्मों के फलका वर्णन करते हैं। जो ब्राह्मणों को जूता अथवा काठकी खड़ाऊं पहिनावै वह उत्तम विमान में बैठकर यमलोक को जाता है बाग लगानेहारे कुआं बावड़ी तलाव आदि बनवानेवाले उत्तम विमानों पर बैठ ठण्ढी ठण्ढी छाया में जाते हैं देवता गुरु अग्नि ब्राह्मण माता पिता आदिकी शुश्रूषा करनेहारे बड़े सत्कारपूर्वक उत्तम विमान में आरूढ़ हो गमन करते हैं दीपदान करनेहारे प्रकाश में जाते हैं अन्न ओषधी आदि देनेहारे सुखपूर्वक

जाते हैं वाहन दान करनेहारों को पैरों से नहीं चलना पड़ता भूमिदान करनेवाले सब भांति सुख से जाते हैं अन्नदान से खाते पीते सुखसे विमान में बैठे जाते हैं सब दानों में अन्न-दान उत्तम है जिससे शीघ्रही प्रसन्नता होजाय तीनों लोकों का जीवन अन्न है इसलिये अन्नदान के समान कोई दान नहीं अन्न वाहन गौ वस्त्र भूमि शय्या छत्र और आ-सन इन आठों का दान परलोक में हितप्रद है परन्तु इन सब में अन्नदान प्रधान है धर्म करनेहारे सुखपूर्वक यमलोक में जाते हैं और पापी अनेक प्रकार के दुःख भोगते वहां पहुँचते हैं इसलिये सदा धर्मही करना चाहिये छियासी हजार योजन जाकर यमराज के नगर में पहुँचते हैं पुण्यात्माओं को यही मार्ग थोड़ासा जान पड़ता है और पापियों के लिये बहुत लम्बा होजाता है पापी जिस मार्ग में चलते हैं उसमें तीखेकांटे कंकर रेता कीचड़ गढ़े और तरवार की धार के स-मान तीक्ष्ण पत्थर पड़े हैं और लोहे की सुई बिखरी हैं कहीं उस मार्ग में अग्नि लगा है कहीं सिंह वृक व्याघ्र मक्षिका सर्प वृश्चिक आदि दुष्ट जन्तु उसमें फिरते हैं किसी ओर मस्त हाथी तीखे सींगोंवाले मतवाले बैल और पर्वताकार वनमहिष घूमते हैं जिनको देखते ही प्राण मुक्त होजायँ कहीं डाकिनी शाकिनी रोग और बड़े क्रूर राक्षस क्रीड़ा कर रहे हैं उस मार्ग में कहीं छाया और जल नहीं है इस प्र-कार के भयङ्कर मार्ग में यमदूत पापियों को लोह की शृ-खलासे पैरों को बांध घसीटते हुये लेजाते हैं उन पापियों की उस समय यह दशा रहती है कि एकाएकी पराधीन मित्र बन्धु आदि से रहित अपने कर्मों को शोचते हुये और रोते हुये वस्त्रहीन भूख प्यास के मारे कण्ठ तालु ओष्ठ सूखे जाते हैं भयभीत और यमदूत उनको बारबार तर्जन करते हैं और

पैरोंमें अथवा चोटी में सांकल से बांध खैंचते लेजाते हैं उन में कइयों को अधोमुख और कइयों को ऊर्ध्वमुख करके खींचते हैं कइयों को पिछली और दोनों भुजा बांधकर लेजाते हैं कोई रोते हुये अति दुःखी चोर की भांति बँधे हुये जाते हैं यमदूत अपने शस्त्रों से किसी की नाक काटते हैं किसी के कान किसी की आंख फोड़ते हैं और उनके अंगों को तीखे शस्त्रों से छीलते हैं और रुधिर की धार उनकी देह से बहती है इस प्रकार दुःख भोगते २ यमलोक में पहुँचते हैं पुण्य करनेवाले उत्तम मार्ग से सुखपूर्वक यमलोक में पहुँच सौम्यस्वरूप यमराज का दर्शन करते हैं और यमराज भी उनका बहुत आदर कर कहते हैं कि हे महात्माओ ! आपने दिव्य सुखकी प्राप्ति के लिये बहुत पुण्य किया है इसलिये इस उत्तम विमान पर चढ़ स्वर्ग को जायँ और दिव्य अप्सराओं से विहार करैं बहुतकाल स्वर्ग में उत्तम भोग भोगकर पुण्य के क्षय होनेपर यहां आय जो कुछ तुमने थोड़ा पाप किया है उसका फल भोग लेना वही यमराज पापी पुरुषों को अति भयंकर देखपड़ता है कि ऊपर को खड़े जिसके केश लम्बी दाढ़ी नीलांजन के पर्वत समान जिसका अति क्रूर रूप अठारहों भुजों में भांति भांति के शस्त्र लिये क्रोधसे जिसका ओष्ठ फरक रहा है मस्तक में भृकुटी चढ़रही है रक्तवर्ण की पुष्पमाला और वस्त्र धारण किये है मानो अभी सब सृष्टि को ग्रास करलेता है यमराज के समीपही कालाग्नि के समान क्रूर कृष्णवर्ण मृत्यु विराजमान है और काल कृतान्त और मारी महामारी नामक कालकी दो शक्ति तथा अनेकप्रकार के रूप धारण किये सम्पूर्ण रोग वहां बैठे हैं और सबों ने शक्ति शूल अंकुश पास चक्र खड्ग वज्र दण्ड आदि शस्त्र हाथों में धार रक्खे हैं और कृष्णवर्ण भयंकर बड़े बलवान् और नानाविध शस्त्र अस्त्र हाथों

में लिये हजारों यमदूत चारों ओर खड़े हैं पापी जीव इस रूप में स्थित यमराज को देखते हैं और यमराज के समीप बैठे हुये चित्रगुप्त उनको भर्त्सन करके कहते हैं कि अरे तुमने ऐसे बुरे कर्म क्यों किये तुमने पराया धन हरा रूप के गर्व से परस्त्रियों का घर्षण किया और भी अनेक प्रकार के पातक उपपातक तुमने किये अब अपने कर्म का फल भोग करो कोई तुम्हारी रक्षा नहीं करसक्ता इसी प्रकार राजाओं को चित्रगुप्त कहते हैं कि अरे राजाओ! तुमने थोड़े दिन राज्य पाकर इतना दुष्कर्म क्यों किया राज्य लोभ से दीन प्रजा का पीड़न किया और अन्याय में प्रवृत्त रहे अनेक प्रकार के विषयों में आसक्त होकर बहुत पाप किये अब वह राज्य और रानी राजकुमार आदि काम न आवेंगे जिनके लिये इतनी भारी पापकी गठरी बांधी वे सब वहांहीं रहे और तुम एकाकी यहां आये अब तुम्हारा वह बल और पराक्रम कहां है जिससे अनाथ प्रजा को सताते थे अब यमदूत तुमको दण्ड देंगे इस भांति राजाओं को तर्जन कर चित्रगुप्त यमदूतों को आज्ञा देते हैं कि इनको लेजाकर नरकों की अग्नि में डालो इतनी आज्ञा पातेही राजा के दोनों पैर पकड़ घुमाकर अतिवेग से यमदूत तप्तशिलापर फेंकते हैं और कोई दूत दौड़कर उसके मस्तक में ताड़न करते हैं तब वह मूर्च्छित होजाता है कुछ काल के अनन्तर जब उसकी मूर्च्छा खुलती है तब नरक को लेजाते हैं सातवें पाताल में घोर अन्धकार के बीच अति दारुण अट्ठाईस करोड़ नरक हैं जिनमें पापी जीव यातना भोगते हैं वहां यमदूत उन को ऊंचे ऊंचे वृक्षों की शाखाओं में टांग देते हैं और सैकड़ों मन लोह उनके पैरों में बांधते हैं उस बोझ से उनका शरीर टूटने लगता है और अपने अशुभ कर्मों को याद कर कर रोते और चिल्लाते हैं और तपाये हुये

कांटों करके युक्त लोहदण्ड से और कशा अर्थात् चाबुकों से यमदूत उनको ताड़न करते हैं जब उनके देहों में घाव पड़जायँ तब उनमें क्षार लगाते हैं कभी उनको उतार खौ-लते हुये तेल के कड़ाह में डालते हैं वहां से निकाल विष्ठा के कूप में उनको डुबोते हैं जिनमें कीड़े काट काट खाते हैं फिर मेद रुधिर पूय आदि के कुंडों में उनको पटकते हैं जहां लोहे की चोंचवाले काक और श्वान आदि जीव उनका मांस नोच नोंच खाते हैं कभी उनको तीक्ष्ण शूलों में पिरोते हैं अ-भक्ष्य भक्षण और मिथ्या भाषण करनेवाली जिह्वा को बहुत दण्ड मिलता है उस जिह्वा को खैंच खैंच यमदूत आध कोस लंबी बढ़ा लेते हैं और उसके ऊपर अति तीक्ष्ण हल जोतते हैं जो पुरुष माता पिता और गुरुको कठोर वचन बोलते हैं उनके मुख में वज्रकी जोंकें लगाई जाती हैं और जोंकों के व्रणों में खार भरते हैं और फिर उनके मुख में औटता हुआ तेल डालते हैं और उनके मुख में विष्ठा भरते हैं सुवर्ण चोराने-वाले और परद्रव्यापहारी कंटकों से व्याप्त तपेहुये लोह के शाल्मलि वृक्ष से बांधे जाते हैं और पीठ के ऊपर लोह के मुद्गरों से ताड़न करते हैं और कभी बड़े कठोर और तीखे करोत से शिर से लेकर पैर तक उनको चीरते हैं और उनका मांस उनको ही खिलाते हैं जो अतिथि को अन्न जल बिना दिये उसके सम्मुखही आप भोजन करते हैं वे इक्षुकी भांति कोल्हू में पेरे जाते हैं असिताल नामक वनमें लेजाकर उन को खण्ड खण्ड करते हैं इस भांति अनेक क्लेश भोगने पर भी उनके प्राण नहीं निकलते रौरव और महारौरव नाम नरक में अत्यन्त पीड़ा देते हैं तपे हुये लोहेके कील पापियों के पैर हाथ छाती पार्श्व मुख मस्तक नेत्र नाक कान आदिमें ठोकते हैं गरम बालू में डालकर चनेकी भांति भूनते हैं जिस जिस पर-

नारी के साथ सङ्ग किया हो उस आकार की तप्त लोहे की नारी से आलिङ्गन कराते हैं और परपुरुषगामिनी स्त्री को तप्तलोह पुरुष से लिपटाते हैं और कहते हैं कि हे दुष्टे! जिस प्रकार तैंने निज पति को त्याग परपुरुष को आलिंगन किया उसी विधि इस लोहपुरुष को भी आलिंगन कर यहां से जल्दी न छुटैगी कभी पापियों को लोहे के कुम्भ में डाल ऊपर से ढक चूल्हे पर चढ़ाय मंदी मंदी आंच से पकाते हैं किसी समय ऊखल में डाल मूसल से कूटते हैं कभी अंधकूप में ऊपरसे पटकते हैं क्षार के कूपों में डालते हैं भ्रमर आदि कीटों से कटाते हैं जिससे सब शरीर जर्जर होजाता है दोनों टांग ग्रीवापर चढ़ादेते हैं और दोनों भुजा पिछली ओर लौटाकर दृढ़ बांध देते हैं और लोह के तीक्ष्ण कण्टक भ्रमरों से कटाते हैं मानी और क्रोधी पुरुषों के शरीर को तप्त शिला के ऊपर चन्दन की भांति घिसते हैं करीष और तुषकी अग्नि में दग्ध करते हैं संपूर्ण देह को कीड़ों से खिलाते हैं जो पुरुष शिवालय बाग़ वापी कूप मठ आदि को नष्ट करते हैं उनको तप्त कुंड में कण्ठ तक डुबोकर नीचे अग्नि देते हैं जो मैथुन आदि अनेक प्रकार के पाप करते हैं उनको अनेक प्रकार के यंत्रों से पीड़न करते हैं और जब तक चन्द्र सूर्य रहैं तबतक नरक की अग्नि में पड़े जलते हैं जो गुरुनिन्दा श्रवण करते हैं उनके कर्णों को दण्ड मिलता है इसी प्रकार जिस २ इन्द्रिय से पाप करैं वह वह इन्द्रिय कष्ट पाती है जो पुरुष परस्त्री को हाथ से स्पर्श करते हैं उनका हाथ सूचियों से बेधा जाता है और संपूर्ण शरीर में घाव करके क्षार से लेपन करते हैं जो स्निग्ध दृष्टि से परस्त्री को देखते हैं उनके नेत्र सूचियों से पूरित किये जाते हैं जो देवता अग्नि गुरु ब्राह्मण आदि का पूजन विना किये भोजन करते हैं उनके मुख में तपे हुये लोह के कील भरते हैं जो देवतापर विना चढ़ाये पुष्प

को सूंघते हैं और अपने मस्तकपर धारते हैं उनके नासिका और शिर में लोहके शंकु गाड़े जाते हैं जो मूढ़ शिवभक्त और शाश्वत शिवधर्म की निन्दा करते हैं उनकी छाती कण्ठ जिह्वा दन्त संधि आदि में लोहशंकु गाड़े जाते हैं और क्षार तप्त तैल गलाया हुआ ताम्र उनके ऊपर डालते हैं इस भांति सम्पूर्ण नरकों में यातना भोगते हैं जो पुरुष परद्रव्य हरैं शिव के उपकरण चोरैं और चोरी करने के अभिप्राय से जायँ उनके हाथ पैर लोहे के घनों से चूर्ण किये जाते हैं और क्षार ताम्र तैल आदि से उनको दग्ध करते हैं जो शिवालय आदिके समीप मूत्र अथवा विष्ठा करते हैं उनके वृषण और लिंग सूचियों से बेधकर लोह के मुद्गरों से चूर्ण करते हैं और कण्टकयुक्त तपाया हुआ लोहदण्ड उनकी गुदा में देकर शिरमें निकालते हैं और गुदा आदिको क्षार आदि से पूरित करते हैं सब इन्द्रियों का प्रवर्तक मन है इसलिये इन्द्रियों को दुःख होने से मनको दण्ड मिलजाता है जो पुरुष धनवान् होकर भी दान नहीं देते और घरमें प्राप्त अतिथि का सत्कार नहीं करते उनके हाथ पांव बांध लोह के तोरण में लटका देते हैं और हाथ पांवों के तलों में लोहे के कील ठोंकते हैं और उनके वृषणों में लोहका भार लटका देते हैं लोहकी चोंचवाले पक्षी और तीक्ष्णमुख कीटों से उनको कटाते हैं और उनके शरीर से तिल प्रमाण मांस काटकर उनको नित्य खाने के लिये देते हैं इस प्रकार की अनेक घोर यातना पापी पुरुष सम्पूर्ण नरकों में भोगते हैं जिनका सौ वर्ष में भी वर्णन नहीं होसक्ता अनेक भांति की दारुण व्यथा भोगते हैं परन्तु प्राण नहीं जाते और भी इनसे अधिक दारुण यातना हैं जिनका यहां वर्णन नहीं किया मृदु चित्त पुरुष उनको सुनकरही मर रहैं इस कारण उनको नहीं कहा पापी आपही वहां जाय उनका

अनुभव करते हैं पुत्र मित्र स्त्री आदि के लिये अनेक प्रकार के पाप करते हैं परन्तु उस समय कोई सहाय नहीं करता केवल एकाकी दुःख भोगता है और प्रलय पर्यन्त नरक में पड़ा सड़ता है महापातकी पुरुष आचन्द्रतारक नरक में पीड़ा भोगते हैं इससे आधे काल पर्यन्त चौदह नरकों में पातकी निवास करते हैं और इससे भी अर्ध समय उपपातकी नरक में रहते हैं बुद्धिमान् मनुष्य जीवन को चंचल जानकर भी पाप न करै पाप से अवश्यही नरक भोगना पड़ता है पाप का फल दुःख है और नरक से अधिक कहीं दुःख नहीं बड़ा आश्चर्य है कि मनुष्य पापकर्म में तत्पर होते हैं और यह कभी नहीं शोचते कि मरण के अनन्तर हमारी क्या गति होगी पापी मनुष्य नरकवास के अनन्तर फिर भूमि पर जन्म लेते हैं और वृक्ष आदि अनेक प्रकार के स्थावर बनते हैं पीछे कीट पतंग पक्षी पशु आदि अनेक योनियों में जन्म लेते हुये अति दुर्लभ मनुष्य जन्म पाते हैं मनुष्य जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिये जिस से नरक न देखना पड़े धर्म से मनुष्य जन्म मिलता है मनुष्यजन्म पाकर उस धर्मकी वृद्धि करनी चाहिये वृद्धि न होसके तो उतनाही बनाये रक्खै मूल में भी घाटा न होने दे जिससे नरक भोगना पड़ै मनुष्यजन्म पाकर भी ब्राह्मण होना बहुत दुर्लभ है और सब देशों में यह देश उत्तम है बहुत पुण्य से भारतवर्ष में जन्म होता है इस देश में जन्म पाकर जो अपने कल्याण के अर्थ पुण्य करै वही बुद्धिमान् है स्वर्ग भोगभूमि है और यह कर्मभूमिहै यहां जो कर्म करोगे वही स्वर्ग में भोगोगे जबतक यह शरीर स्वस्थ रहै तबतक जो कुछ पुण्य बनपड़ै सो ठीक है फिर कुछ भी नहीं होसक्ता दिनरात्रि के बहाने से नित्य एक २ टुकड़ा आयुष्का खण्डित होता जाता है तो भी मनुष्यों के बोध नहीं होता कि एक दिन मृत्यु भी आय पहुँचैगा

यह तो किसी को निश्चय है ही नहीं कि किसका मृत्यु किस समय में होगा फिर मनुष्य को क्योंकर धैर्य होय और सुख मिलै यह जानते हैं कि एक दिन इस सब सामग्री को छोड़ अकेले चले जायँगे फिर अपने हाथसेही सत्पात्रों को क्यों नहीं बांट देते इस पुरुष के लिये दानही पाथेय अर्थात् रस्ते के लिये भोजन है जे दान करते हैं वे सुखपूर्वक जाते हैं और दानहीन मार्ग में अनेक दुःख पाते भूखे मरते जाते हैं इन सब बातों को विचार पुण्यही करना चाहिये और पाप से सदा बचना चाहियें जो पुरुष अनेक प्रकार के पाप करके भी शिवजी के शरण में प्राप्त होजाते हैं वेभी नरक नहीं देखते परन्तु किये हुये पातकों का फल भोगने के लिये शिवजी की आज्ञा से कुछकाल प्रेतों के राजा बनते हैं पीछे सद्गति को प्राप्त होते हैं जो सत्पुरुष सर्वप्रकार से श्रीसदाशिव के शरण में प्राप्त हैं वे कभी पाप करके लिप्त नहीं होते जैसे पद्मपत्र जल करके इसलिये द्वन्द्वसे छूट भक्ति से श्रीशंकरका आराधन करै पञ्च महापातक करने से चिरकाल नरकवास होता है इसलिये इनसे सदा बचै और किसीभांति का भी पाप न करै।

सातवां अध्याय।

शकटव्रत का माहात्म्य।

श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि हे महाराज! यह जो हमने अति गम्भीर नरक समुद्र वर्णन किया यह व्रत उपवासरूप नौका से तराजाता है अति दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर ऐसा कर्म करै जिससे पश्चात्ताप न करना पड़ै जिसकी यहां व्रत उपवास आदि की कीर्ति बनी है वह परलोक में सुख भोगता है व्रत करनेवाले पुरुष सदा सुखी होते हैं इसलिये व्रत अवश्य करने चाहिये इसमें एक प्राचीन इतिहास हम वर्णन करते हैं योगसिद्ध करके संसिद्ध कोई एक सिद्ध अति भयं-

कर विकृतरूप धार भूमिपर विचरता था कि जिसके लम्बे ओष्ठ टूटे दांत पिंगल नेत्र चपटे कान फटा मुख लम्बा पेट टेढ़े पैर और भी संपूर्ण अंग कुरूप थे उसको मूलजालिक नाम ब्राह्मणने देखा और पूछा कि आप स्वर्ग से कब आये और किस प्रयोजन से यहां आगमन भया आपने देवताओं के चित्त को मोहन करनेहारी और स्वर्ग के भूषण रम्भा को देखा कि नहीं अब आप स्वर्ग में जायँ तो रम्भा से कहना कि अवन्तिपुरी का निवासी ब्राह्मण तुमको कुशल पूछता था यह ब्राह्मण का वचन सुन सिद्ध ने चकित हो पूछा कि हे ब्राह्मण ! तुमने हमको क्योंकर पहिचाना तब ब्राह्मण ने कहा कि महाराज कुरूपपुरुषों का एक दो अंग विकृत होता है और आपके सब अंग टेढ़े और विकृत हैं इसीसे मैंने अनुमान किया कि ये अपना रूप गुप्त किये कोई स्वर्ग के निवासी सिद्ध हैं यह ब्राह्मण का वचन सुनतेही सिद्ध वहां से अन्तर्धान भया और कई दिनों के अनन्तर फिर ब्राह्मण के समीप आया और उससे कहा कि हे ब्राह्मण ! हम स्वर्ग में गये और इन्द्रकी सभा में जब नृत्य हो चुका उसके अनन्तर एकांत में रंभा से तुम्हारा संदेश कहा परन्तु रंभा ने यह कहा कि मैं उस ब्राह्मण को नहीं जानती यहां तो उसी का नाम जानते हैं जो निर्मल विद्या पौरुष दान तप यश अथवा व्रत आदि करके युक्त होय और उसका नाम स्वर्गभर में चिरकाल स्थिर रहता है यह सिद्ध के मुख से रंभा का वचन सुन ब्राह्मण ने कहा कि हम शकट व्रत नियम से करते हैं आप रम्भा से कह दीजिये यह सुनतेही फिर सिद्ध अन्तर्धान भया और स्वर्ग में जाकर रम्भा से ब्राह्मण का सन्देश कहा और उसके गुण वर्णन किये तब रम्भा प्रसन्न होकर कहने लगी कि हे सिद्ध ! महाकाल वन के निवासी उस शकट ब्रह्मचारी को मैं जानती हूँ दर्शन

से संभाषण से एकत्र निवास से और उपकार करने से मनुष्यों का परस्पर स्नेह होता है परन्तु मुझे उस ब्राह्मण का दर्शन संभाषण आदि एक भी नहीं हुआ केवल नाम श्रवण से ही इतना स्नेह होगया है इतना सिद्ध से कह इन्द्र के समीप जाय रम्भा ने ब्राह्मण के व्रत आदिका करना और अपने उपर अनुरक्त होना वर्णन किया इन्द्र ने भी प्रसन्न हो रम्भा से पूछ उत्तम विमान में बैठाय दिव्य वस्त्र भूषण आदिसे अलंकृत कर उस ब्राह्मण को स्वर्ग में बुलाया और बड़ा सत्कार ब्राह्मण का करके रम्भा को उसके अधीन करादिया वह ब्राह्मण भी अपनी प्रिया रम्भाको पाय चिरकाल दिव्यभोग भोगता भया यह शकटव्रतका माहात्म्य हमने संक्षेप से वर्णन किया है राज्य-लक्ष्मी उत्तम लोक मनोवाञ्छित फल आदि कोई पदार्थ जगत् में दृढ़ व्रत पुरुष के लिये दुर्लभ नहीं हैं इसलिये सदा व्रत में तत्पर रहना चाहिये।

आठवां अध्याय।

तिलकव्रतका विधान और माहात्म्य।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! ब्रह्मा विष्णु शिव गौरी गणपति दुर्गा सोम अग्नि सूर्य आदि देवताओं के व्रत शास्त्रों में वर्णन किये हैं जिनके करने से भोग और मोक्ष मिलते हैं उन व्रतों को आप प्रतिपदादि क्रम से वर्णन करैं और जिस देवता की जो तिथि है और उस तिथि को जो करना चाहिये वह भी आप कथन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराज! बसन्त ऋतु के आरम्भ में जो शुक्ल प्रतिपदा होती है उस दिन नदी अथवा तालाब में स्त्री अथवा पुरुष स्नानकर देवता और पितरों का तर्पण करैं पीछे घरमें आय पिष्ट अर्थात् आटे से पुरुषाकार संबत्सर की मूर्ति लिखकर चन्दन पुष्प धूप दीप नैवेद्य

आदि उपचारों से पूजन करै और ऋतु तथा मासों के नामांत नाम मन्त्रों से पूजन और प्रणामकर यह मन्त्र पढ़ै । ॐ संवत्सरोसि परिवत्सरोसि तद्वद्वयनोसि तद्वद्वत्सरोसि उषस्ते कल्पतामहोरात्रस्ते कल्पतामर्द्धमासास्ते कल्पन्तामृतवस्ते कल्पन्तां वत्सरंस्ते कल्पताम् । यह मन्त्र पढ़ वस्त्र से उसको वेष्टित करै पीछे फल पुष्प मोदक आदि नैवेद्य चढ़ाय हाथ जोड़ प्रार्थना करै कि हे भगवान् ! आपके अनुग्रह से सुखपूर्वक वर्ष व्यतीत होय यह कहकर यथाशक्ति ब्राह्मण को दक्षिणा देवे और उसी दिनसे ललाटको नित्य चन्दन के तिलक से अलंकृत करै इस प्रकार स्त्री अथवा पुरुष इस व्रतको करै तो उत्तम भोग पावै और भूत प्रेत पिशाच ग्रह डाकिनी और शत्रु उसके मस्तक में तिलक देखतेही पराङ्मुख होजाते हैं अब हम एक इतिहास वर्णन करते हैं पूर्वकाल में शत्रुञ्जय नाम एक राजा था और चित्रलेखा नाम उसकी रानी थी उनके बहुत अवस्था बीतने पर एक पुत्र हुआ जिसके जन्म से उन को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ वह रानी सदा संवत्सरव्रत किया करती और नित्यही मस्तक में तिलक देती कुछ काल के अनन्तर राजा को प्रबल ज्वर होगया और वह बालक भी रोगाक्रान्त हुआ तब रानी अति शोकाकुल भई और दिन रात उनके समीप बैठी रहती परन्तु उन दोनों को वह वातज्वर और शिरोव्यथा इतनी बढ़ी कि मरणासन्न होगये और यमदूत उनके लेजाने को आपहुँचे परन्तु देखा कि उनके समीप तिलक लगाये चित्रलेखा रानी बैठी है उसको देखतेही उलटे लौटे भीतर तिलक के प्रभाव से नहीं प्रवेश करसके यमदूतों के लौटतेही राजा और राजकुमार आरोग्य होनेलगे और थोड़ेही काल में प्रसन्न होगये और चिरकाल तक राज्य किया हे महाराज ! यह परम उत्तम व्रत पूर्वकाल में श्रीशिवजी

महाराज ने हमको उपदेश किया और हमने आपको सुनाया यह तिलकव्रत सकल अरिष्ट को हरनेहारा है इस व्रत को जो भक्ति से करै वह चिरकाल पर्यंत संसार के सुख भोग अन्त में स्वर्ग को जाता है ।

नवां अध्याय ।

अशोकव्रत का माहात्म्य और विधान ।

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि महाराज आश्विनशुक्ल प्रतिपदा को गन्ध पुष्प धूप दीप सप्तधान्य फल नारिकेल दाड़िम पूरी लड्डूआदि अनेक प्रकार के नैवेद्य से अशोकवृक्ष का पूजन करै तो कभी शोकको प्राप्त न होय और (पितृभ्रातृपतिश्वश्रूश्वशुराणां तथैव च । अशोक शोकशमनो भव सर्वत्र नः कुले) इस मन्त्र से श्रद्धा करके अर्घ्य देवै और वस्त्र से अशोकवृक्ष को वेष्टितकर पताकाओं से अलंकृत करै इस व्रतको स्त्री भक्ति से करै वह दमयन्ती स्वाहा वेदवती और सतीकी भांति अपने पति की अति प्रिया होय वनगमन के समय सीता ने मार्ग में अशोकवृक्ष देखा और भक्ति से गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य तिल अक्षत आदि से उसका पूजन कर यह प्रार्थना करी कि हे रक्ताशोक ! मेरा वृद्ध श्वसुर राजा दशरथ चिरकाल जीवै मेरा पति लक्ष्मण आदि देवर और कौशल्या चिरंजीव होयँ इतनी प्रार्थना कर अशोक की प्रदक्षिणा दे सीता वनको गई जो स्त्री तिल अक्षत जौ गेहूँ घृत आदि से अशोकका पूजन कर यह मन्त्र पढ़े (महावृक्षं महाशाखं मकरध्वजमन्दिरम् । प्रार्थये त्वां महाभागं वनोपवनभूषणम्) पीछे प्रणाम और प्रदक्षिणाकर ब्राह्मणको दक्षिणा दे अपनी सखियों सहित घरको जाय वह स्त्री चिरकालतक अपने पति के सहित संसारके सुखभोग अन्त में गौरीलोकमें निवास करै यह अशोक व्रत सबप्रकार के शोक और रोग हरनेहारा है ।

दशवां अध्याय।

करवीरव्रत का विधान और माहात्म्य।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! ज्येष्ठमास की शुक्ल प्रतिपदाको सूर्योदय के समय बाग में जाय करवीरवृक्ष का पूजन करै लालसूत्र से वृक्ष को वेष्टित कर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य सप्तधान्य नारिकेल नारङ्गी और भी भांति भांति के फलों से पूजनकर इस मन्त्र से प्रार्थना करै। करवीराम्बिकावास नमस्ते भानुवल्लभ। मौलिमण्डलसद्रत्न नमस्ते केशवाश्रय॥ इस भांति प्रार्थना कर ब्राह्मणको दक्षिणा दे वृक्षकी प्रदक्षिणाकर घरको जाय इस व्रतको सूर्यनारायण की प्रसन्नता के लिये अरुन्धती सावित्री सरस्वती गायत्री गंगा दमयन्ती और सत्यभामा आदि और भी स्त्रियों ने किया है इस व्रतको जो भक्तिसे करै वह अनेक प्रकारके सुख भोग कर अन्त में सूर्यलोक को जाता है।

ग्यारहवां अध्याय।

कोकिलव्रत का विधान और माहात्म्य।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! पतिव्रता स्त्रियों का पति के साथ जिस व्रत के करने से अत्यन्त स्नेह रहै वह व्रत आप कथन कीजिये यह सुन श्रीकृष्ण बोले कि हे महाराज! यमुना के तटपर मथुरा नाम नगर है उसमें पूर्व समय रामचन्द्र का भ्राता शत्रुघ्न नाम राजा था उसकी रानी कीर्तिमाला नाम बड़ी पतिव्रता थी उसने एक दिन अपने कुलगुरु वशिष्ठमुनि से प्रार्थना करी कि महाराज, कोई ऐसा व्रत बतावें जिससे सौभाग्य की वृद्धि होय तब वशिष्ठजी कहने लगे कि हे कीर्तिमाले! आषाढ़ की पूर्णमासी को सायंकाल के समय यह संकल्प करै कि श्रावण मास भर नित्य स्नान रात्रि के समय भोजन और भूमि में शयन

करूँगी और ब्रह्मचर्य से रहूँगी इस भाँति स्त्री अथवा पुरुष संकल्प कर प्रभात उठ सब सामग्री ले नदी तालाब आदि पर जाय दन्तधावन कर सुगन्धयुक्त तिल और आंवले का उबटना लगाय विधि से स्नान करै इस प्रकार आठ दिन स्नान करै पीछे सर्वौषधियों का उबटना लगाय आठ दिन स्नान करै शेष दिनों में बचा और मुलहठी का उबटना मल-कर नहावै स्नानकर सूर्य भगवान् का ध्यान कर संध्या और तर्पण करै पीछे तिलपिष्ट करके कोकिला पक्षी लिखै और रक्तचन्दन चंम्पा के पुष्प पत्र धूप दीप नैवेद्य तिल चावल दूर्वा आदि से पूजन कर इस मन्त्र से प्रार्थना करै। तिलाः स्नेहं तिलाः सौख्यं त्रिवर्णं तिलकप्रिये। सौभाग्यद्रव्यपुत्रांश्च देहि मे कोकिले नमः॥ इस प्रकार पूजन कर घर में आय भोजन कर इस विधि से एक मास व्रतकर अन्त में तिलपिष्ट की कोकिला बनाय उसके सुवर्ण के नेत्र लगाय ताम्रपात्र में स्थापन कर वस्त्र धान्य गुड़ और दक्षिणा सहित श्वश्रू श्वशुर दैवज्ञ पुरोहित अथवा और किसी ब्राह्मण को देवै इस विधि से जो कोकिलाव्रत करै वह सात जन्म तक सौभाग्यवती होय और अन्त में उत्तम विमान पर चढ़ गौरीलोक को जाय इस विधि वशिष्ठजी से सुन कीर्तिमाला ने व्रत किया और मनो-वाञ्छित फल पाया और भी जो स्त्री इस व्रत को भक्ति से करै वह सौभाग्य पावै और जो पुरुष तिलपिष्ट से कोकिला बनाय ताम्रपात्र में स्थापन कर ब्राह्मण को देवैं वे बहुत काल तक नन्दनवन में विहार कर मनुष्यलोक में जन्म लेते हैं तब अत्यन्त मधुरस्वरवाले होते हैं।

बारहवां अध्याय।

बृहद्व्रत का विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! अब हम सब पाप

हरनेहारा एक व्रत कहते हैं जो सुर असुर और मुनियों को भी दुर्लभ है आश्विन मास की समाप्ति के दिन उपवास कर रात्रि के समय घृत और पायस भोजन करै दूसरे दिन प्रभात उठ पवित्र हो आचमन कर बिल्व के काष्ठ का दन्तधावन करै पीछे इस मन्त्र से महादेवजी की प्रार्थना करै। अहं देव व्रतमिदं कर्त्तुमिच्छामि शाश्वतम् । तवाज्ञया महादेव यथा निर्वहते कुरु ॥ फिर नियमकर सोलहवर्ष पर्यन्त प्रतिपदा को व्रत करै मार्गशीर्षकी प्रतिपदाको महादेव का स्मरण करता हुआ उपवास करै और स्नानकर भक्तिसे शिवपूजन करै और रात्रि के समय दीपक जलाय शिवजी को निवेदन करै शिवभक्ति सपत्नीक सोलह ब्राह्मणों का वस्त्र भूषणआदि से पूजन कर भोजन करावै अथवा आठदम्पती का पूजन करै जो सामर्थ्य न होय तो एकही जोड़ेका पूजन करै व्रतकर रात्रि को निराहारही भूमि में शयन करै सूर्योदय होते ही स्नान कर सब सामग्री ले शिवालय में जाय वहां शिवजी को अभ्यंग कराय पंचगव्य से स्नान करावै फिर क्रम से दूध घृत दही शहद इक्षुरस तिलोदक और गरम जल से स्नान करावै पीछे कर्पूर चन्दन आदि का लेप कर कमल आदि उत्तम पुष्प चढ़ावै और दो वस्त्र पताका धूप दीप घण्टा भांति भांति के नैवेद्य महादेवजी के अर्पण कर विधि से हवन करै पीछे घर में आय पंचगव्य का प्राशन कर अपने सब बन्धुओं के साथ भोजन करै इस विधानको धनवान् हो चाहे निर्धन सामर्थ्य के अनुसार करै और श्रद्धा रक्खै कार्त्तिक की प्रतिपदा से लेकर प्रतिमास इसी विधि से व्रत करै और आरम्भ के विधान सेही पारण करै दूसरे वर्ष में पूर्णिमा को नक्तव्रत करके प्रतिपदा और द्वितीया को उपवास करै और प्रतिमास दो दो उपवास करता जाय और पहिली भांति शिवजीका पूजन कर सुवर्णशृंगी रौप्यखुरी घंटा और कांस्य के

दोहनपात्र सहित उत्तम गौ महादेवजी के निमित्त शिवभक्त ब्राह्मण को देवै पीछे सोलह ब्राह्मणों का विधि से पूजनकर वस्त्र भूषण छत्र जूता दंड आदि उनको देकर उनकी पत्नियों का भी वस्त्र भूषण आदि से पूजन कर उत्तम भोजन करावै और भी यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराय दक्षिणा दे दीन अन्ध अनाथ आदि को भोजन देवै यह व्रत सब प्रकार के पाप हरनेहारा है और भूःभुवःस्वः आदि लोकों में अनेक प्रकार के उत्तम भोग देता है चारों वर्णों के लिये यह व्रत स्वर्ग की सीढ़ी है जो धन पाकर इस व्रत को न करै वह मूढ़बुद्धि है धन आयुष् रूप सौभाग्य आदि इस व्रत के करने से मिलते हैं प्रतिमास उपवास कर यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावै और अन्त में आरम्भ के विधान से समाप्त करै वर्षभर से न्यून भी व्रत श्रद्धा से करै तौ भी सम्पूर्ण फल को प्राप्त होता है जो इस विधान को पढ़ै अथवा सुनै वह उत्तम फल पावै और जो पुरुष सोलहवर्ष इस व्रत को भक्ति से करते हैं वे सूर्यमण्डल को भेदन कर शिवजी के चरणों में प्राप्त होते हैं ।

तेरहवां अध्याय ।

भद्रव्रत का फल और विधान, यमद्वितीया का विधान ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्ण ! जातिस्मर होना अत्यन्त दुर्लभ है आप यह कथन करैं कि ऋषियों के वरदान से देवताओं के सेवन से अथवा तीर्थ स्नान होम जप तप व्रत आदि के करने से जातिस्मरता प्राप्त हो सक्ती है कि नहीं और कोई व्रत ऐसा होय जिसके करनेहारा जातिस्मर होय वह आप वर्णन करैं । यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! चारभद्रों का उपवास करने से मनुष्य जातिस्मर होता है पूर्वकाल में यमुना के तट पर शुभोदय नाम वैश्य ने यह व्रत किया था वह इसके प्रभाव से स्वर्णष्ठीवी

नामक सृंजय राजा का पुत्र हुआ और जातिस्मर भया उसको चोरों ने मार डाला फिर नारदजी के प्रभाव से जिया और व्रत के प्रभाव से अपने सम्पूर्ण पूर्व वृत्तान्त को जानता भया राजा पूछते हैं कि स्वर्णष्ठीवी क्यों कहाया और चोरों ने उसको क्यों मारा और फिर क्योंकर सजीव भया ? यह आप वर्णन कीजिये यह प्रश्न सुन श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि महाराज कुशावती नगरी में सृंजय नाम राजा था एक दिन नारद और पर्वत दोनों मुनि राजा के पास गये उसी समय गूढ़गुल्फा उन्नत कुचों करके युक्त कमललोचना लम्बे और कृष्ण केशोंवाली अतिरूपवती युवती राजकन्या वहां आई उसको देख पर्वत ने कहा कि इस तरुणी का क्या उत्तम रूप है और लावण्य की कैसी झलक है कि जिसमें अंग भी स्फुट नहीं देख पड़ते इसभांति उस पर मोहित हो राजा से पर्वतमुनि ने पूछा कि यह हमारे मन को हरनेहारी कौन है राजा ने कहा कि हे पर्वतमुनि ! यह मेरी कन्या है इसी अवसर में नारद बोले कि हे राजन् ! यह अपनी कन्या हमको देदीजिये और जो दुर्लभ वर आपको चाहिये हमसे लीजिये राजा ने प्रसन्न हो कहा कि हे नारदजी ! ऐसा पुत्र चाहता हूँ कि वह जहाँ मूत्र पुरीष आदि त्यागे और जिस स्थान में निष्ठीवन करै वहां उत्तम सुवर्ण बन जाय नारद ने कहा कि ऐसा ही पुत्र तुम्हारे उत्पन्न होगा तब राजा ने अभीष्ट वर पाय अपनी कन्या को वस्त्र भूषण आदि पहिनाय नारदजी से विवाह दिया नारदजी भी ऐसी रूपवती युवती से विवाह कर बहुत प्रसन्न भये परन्तु पर्वतमुनि क्रोध से लाल नेत्रकर नारदजी से कहने लगे कि हे नारद ! पहिले इस कन्या से विवाह करने की हमने इच्छा करी और तुमने बीच में बलात्कार से अपना विवाह कर लिया इसलिये तुम्हारा स्वर्ग में गमन न

होगा और इस राजाके जो पुत्र होगा वह भी चोरों के हाथ माराजायगा यह सुन नारदजी बोले कि हे पर्वत! तू मूर्ख है तैंने वृद्धों का सेवन नहीं किया जिससे हमको शाप देताहै यह तो कन्यार्थी इसपर किसी का स्वत्व नहीं माता पिता जिसको देदेवें वही इसका स्वामी है हे पर्वत! तैंने मूढ़ता से हमको शाप दिया इसलिये तेराभी गमन स्वर्ग में न होगा और जो राजपुत्र को चोर मारडालैंगे तो हम यम-लोकसे भी उसको लेआवेंगे इस भांति परस्पर शाप देकर दोनों मुनि अपने आश्रम को गये और सातवें महीने में राजा के पुत्र हुआ वह अतिरूपवान् और जातिस्मर हुआ जहां वह मूत्र पुरीष श्लेष्मआदि त्यागता वहीं सुवर्ण होजाता इसलिये राजाने उसका नाम स्वर्णष्ठीवी रक्खा वह राजपुत्र सब जीवों की बोली समझता था राजाने भी पुत्रके प्रभाव से अनन्त धन पाय राजसूयआदि यज्ञ किये दान दिये कूप तड़ाग देवालय आदि बनवाये और बहुतसी सेना रक्खी इसी अवसर से राजपुत्रकी ख्याति सुन लोभवश होकर चोर उसको उठालेगये जब उसके देहमें कहीं स्वर्ण न देखा तब मारकर जंगल में फेंकगये राजा भी पुत्र को मरा देख अति दुःखी हो बिलाप करनेलगा तब नारदजी वहां आये और प्राचीन राजाओंके अनेक इतिहास सुनाकर राजाका शोक दूर किया और यमलोक में जाय राजपुत्र को ले आये राजाभी पुत्रको पाय अति प्रसन्न भया और नारदजीसे पूछने लगा कि महाराज यह बालक स्वर्णष्ठीवी किस कर्म के प्र-भावसे भया और जातिस्मर काहेसे है तब नारदजी ने कहा कि हे राजन्! चतुर्भद्र व्रत इसने कियाहै यह सब उसीका फल है इतना कह नारदजी अपने आश्रम को गये श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! इस व्रत के करने से उत्तम कुल में

जन्म लेकर दाता धनवान् रूपवान् जातिस्मर और दीर्घायुष् होता है चारभद्र इस व्रत के चार पाद हैं मार्गशीर्ष में पहिला फाल्गुन में दूसरा ज्येष्ठ में तीसरा और भाद्र में चतुर्थ भद्र होता है फाल्गुनशुक्ल आदि तीनमास त्रिपुष्करनाम भद्र रूप और लक्ष्मी देनेहारा है ज्येष्ठशुक्ल आदि तीन महीने विराम नामक भद्र सत्य और शौर्यदायक है भाद्रशुक्ल आदि तीनमास निरंग नाम भद्र बहुत विद्या देनेहारा है और मार्गशुक्ल आदि तीनमास समान नामक भद्र सब कामना देनेहारा है यह भद्रव्रत सब स्त्री पुरुषों को करना चाहिये राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! भद्रों का विधान आप विस्तार से कथन करें यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण कहने लगे कि महाराज यह अतिगुप्त विधान हमने किसी से नहीं कहा है अब आपको श्रवण कराते हैं सावधान होकर सुनिये। मार्गशीर्ष के शुक्लपक्ष में द्वितीया तृतीया चतुर्थी और पंचमी इन चार तिथियों को एक भक्त करै पहिले द्वितीया को मध्याह्न के समय गोबर मृत्तिका आदि लेकर स्नान करै अब हम सब मन्त्र कहते हैं इन मन्त्रों के अधिकारी ब्राह्मण आदि चारों वर्ण हैं केवल संकीर्ण अर्थात् वर्णसंकरों को इनका अधिकार नहीं है और जो विधवा स्त्री अपने आचार में स्थित हो वह भी इन मन मन्त्रों की अधिकारिणी है नदी तालाब वापी कूप और घर में स्नान करने से दशांश २ फल स्नान से होता है अर्थात् नदी स्नान के फल का दशांश फल तालाब में स्नान करने से होता है इसी भांति और भी जानो प्रथमही (त्वं मृदे वन्दिता देवैः सबलैर्दैवघातिभिः। ममापि वन्दिता भक्त्या ममाङ्गं विमलं कुरु) इस मन्त्र से मृत्तिका लेकर शरीर में लगाय जलके समीप जाय श्वेत सर्षप तिल बच और सर्वौषधि का उबटना

लम्बाय जल में मण्डल लिख ये मन्त्र पठन करै (ॐ त्वमादिः सर्वदेवानां जगतां च जगन्मय । भूतानां वीरुधानां च रसानां पतये नमः १ गङ्गासागरगं तोयं पुष्करं नर्मदा तथा । यमुना सन्निहत्या च सान्निध्यं कुरुतां सदा २) ये मन्त्र पढ़ स्नान कर शुद्ध वस्त्र पाहिन सन्ध्या और तर्पण कर घर में आय नियमपूर्वक रहै और चन्द्रोदयपर्यन्त किसी से सम्भाषण न करै इसीभांति तृतीया आदि तिथियों में भी स्नान कर नियम से रहै और क्रम से चार तिथियों में कृष्ण अच्युत अनन्त और हृषीकेश इन नामों से भगवान् का पूजन भक्ति से करै पाहिले दिन भगवान् के चरणारविन्द का पूजन करै दूसरे दिन नाभि का तीसरे दिन वक्षःस्थल का और चतुर्थ दिन में नारायण के मस्तक का पूजन विधि से करै उत्तम पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से भक्ति करके पूजन करै और रात्रि को जब चन्द्रोदय होय उस समय शशी चन्द्र शशांक और इन्दु इन नामों से क्रम करके चन्द्रमा को अर्घ्य देवै चन्दन अगुरु और कर्पूर अर्घ्य में डालै चन्द्रमा ने ब्रह्महत्या करी थी उस हत्या को छः भाग करके वृक्ष जल नदी भूमि अग्नि और ब्राह्मणों में बांट दिया और उसी हत्या की निवृत्ति के लिये अर्घ्य देते हैं यह भद्रव्रत का विधान है द्वितीया के दिन प्रेत अर्थात् पितरों का सञ्चार भया है इसलिये द्वितीया को प्रेतसंचरा कहते हैं अग्निष्वात्त बर्हिषद आज्यप सोमप ये सब पितर हैं जो इनका श्रद्धा से पूजन करै उसकी ये भी सब प्रकार से रक्षा करते हैं कार्त्तिक शुक्ल द्वितीया के दिन यमुना ने यमराज को भोजन कराया है और उसी दिन नरक के जीव बन्धन से छूटे हैं और यमराज के नगर में बड़ा उत्सव हुआ है इसलिये इसका नाम यमद्वितीया है उस दिन अपने घर में भोजन न करै बहिन के घर जाय प्रीति से भोजन करै दान देवै और वस्त्र भूषण आदि

देकर भगिनियों को प्रसन्न करै अपनी सगी बहिन न होय तो पिता के भाई की कन्या मातुल की पुत्री मौसी अथवा बुवा की बेटी ये भी बहिन हैं इनके हाथ से भोजन करै उस दिन यमुना ने यमराज को प्रीति से भोजन कराया है इस कारण जो पुरुष यमद्वितीया को बहिन के हाथ भोजन करै वह धन यश आयुष् धर्म और अपरिमित सुख पाता है इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि महाराज यह भद्रों का विधान और यमद्वितीया का विधान अतिरहस्य हमने आपको श्रवण कराया अब आप क्या सुनना चाहते हैं।

चौदहवां अध्याय।

अशून्यशयनव्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! आपने कहा कि सब धर्मों का साधन गृहस्थाश्रम है वह गृहस्थाश्रम स्त्री और पुरुष से होता है पत्नीहीन पुरुष और पुरुषहीन नारी धर्म आदि साधन करने को समर्थ नहीं होते इसलिये आप ऐसा कोई व्रत कथन करैं जिसके करने से स्त्री विधवा न होय और पुरुष पत्नीहीन न होय यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! अशून्य शयन नामक व्रत द्वितीया तिथि को होता है उसके करने से स्त्री विधवा नहीं होय और पुरुष पत्नीहीन नहीं होता उस तिथि को विष्णु भगवान् लक्ष्मी सहित शयन करते हैं उस दिन उपवास नक्त अथवा अयाचित व्रत करना चाहिये श्रावण कृष्ण द्वितीया को नदी अथवा तड़ाग में स्नान कर देवता और पितरों का तर्पण करै पीछे मृत्तिका का चतुरस्र एक स्थण्डिल बनाय उसके ऊपर लक्ष्मी सहित भगवान् का आवाहन कर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य और अनेक प्रकार के ऋतु फलों से पूजन कर हाथ जोड़ भक्ति से इस

भांति प्रार्थना करै (श्रीवत्सधारिञ्छ्रीकान्त श्रीधर श्रीपतेऽच्युत। गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥ अन्वयो मा प्रणश्येत मा प्रणश्यन्तु देवताः। पितरो मा प्रणश्यन्तु मत्तो दाम्पत्यसम्भवाः॥ लक्ष्म्या न शून्यं शयनं कदाचित्तव केशव। शय्याममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि) इन मन्त्रों से प्रार्थना कर चन्द्रोदय के समय पंचगव्य प्राशन करै और ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा देवै इस विधि से चार मासपर्यन्त कृष्णपक्ष की द्वितीया को व्रत और नारायण का पूजन करै कार्त्तिकमास की द्वितीया को लक्ष्मीनारायण की स्वर्ण की मूर्ति बनाय उत्तम शय्यापर स्थापन कर भक्ति से पूजन कर सब सामग्री और जलपूर्ण कलश सहित सत्पात्र ब्राह्मण को देकर ब्राह्मण भोजन करावे व्रत के दिन दधि अक्षत मूल फल पुष्प जल आदि सुवर्ण के पात्र में रख इस मन्त्र करके चन्द्रमा को अर्घ्य देवै (गगनाङ्गनसम्भूत दुग्धाब्धिमथनोद्भव। भाभासितदिगन्तस्त्वं निशाकर नमोऽस्तु ते) इस विधि से जो पुरुष चार मास व्रत करै उसको स्त्रीवियोग कभी नहीं होता और सब प्रकार का ऐश्वर्य प्राप्त होता है और जो स्त्री भक्ति से इस व्रत को करै वह तीन जन्म तक विधवा और दुर्भगा नहीं होती यह अशून्यशयन द्वितीया का व्रत सब कामना और उत्तम भोग देनेहारा है इसलिये अवश्य ही करना चाहिये।

पन्द्रहवां अध्याय।

गोत्रिरात्रि व्रत का विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! भाद्रशुक्ल तृतीया को प्रतिवर्ष गोपद नाम व्रत श्रद्धा से करै स्त्री अथवा पुरुष पहिले स्नान कर दधि अक्षत और पुष्पमाला आदि से गो का पूजन कर उसके शृंग आदि सब अंगों को भूषित करै

और दिनभर की तृप्तिके योग्य भोजन गोको देवै और आप भी तैल और लवण आदि क्षार से रहित अग्निपर विना सिद्ध किया भोजन करै और वनको जाती हुई तथा वनसे आती हुई गोका पूजन करै इस भांति तीन दिन व्रत रक्खै और नित्य गो पूजन करै इस व्रत के करनेहारा सौभाग्य रूप लावण्य धन धान्य यश सन्तानआदि सब पदार्थ पाताहै और उसका घर नित्य गो और बछड़ों से पूर्ण रहता है और मरण के अनन्तर दिव्य रूप धार दिव्यभूषण वस्त्र माला आदि से अलंकृत हो विमान में बैठ स्वर्ग को जाता है वहां दिव्य सौयुग निवास कर विष्णुलोक में प्राप्त हो भगवान् का पार्षद होता है जो इस गोत्रिरात्र व्रत को करै गौओं को पूजै गोविन्द को प्रणाम करै गोरस आदि भोजन करै और नियम से रहै वह अपने मनोवाञ्छित फल पाता है।

सोलहवां अध्याय।

हरकाली व्रतका विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! भाद्रशुक्ल तृतीया को सब प्रकार के धान्य एकत्र कर उन पर हरकाली भगवती की मूर्ति स्थापन कर गन्ध पुष्प धूप दीप मोदक आदि नैवेद्य और भांति २ के उपचारों से पूजन कर रात्रिके समय गीत नृत्य आदि उत्सव कर जागरण करै प्रभात होतेही सुवासिनी स्त्री उस मूर्ति को बड़े उत्सव से लेजाकर जल में विसर्जन करै इतना सुन राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्ण! हरकाली नाम भगवती का क्योंकर भया और हरकाली का पूजन करने से स्त्रियों को क्या फल प्राप्त होता है यह आप वर्णन करैं श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि महाराज दक्षप्रजापतिकी कन्या कालीनाम थी और उसका वर्ण भी नीलकमल के समान था वह शिवजी को विवाही। शिवजी भी विवाह के अनन्तर

काली भगवती के साथ विहार करने लगे एक समय विष्णु जी सहित श्रीसदाशिव अपनी सभा के मण्डप में विराजमान थे उसी अवसर में हास्य करके शिवजी ने कालीभगवती को बुलाया कि हे प्रिये! हे गौरि! यहां आओ यह शिव जी का वक्र वाक्य सुन भगवती को बहुत क्रोध हुआ और रोदन करने लगीं कि शिवजी ने हमारा कृष्णवर्ण देख हास्य करके हमको गौरी कहा है इसलिये इस देह को हम प्रज्वलित अग्नि में हवन कर देंगी यह मन में विचार अपने देह की हरितवर्ण कान्ति को शाद्वल अर्थात् हरीदूर्वायुक्त स्थल में त्याग अपना देह अग्नि में हवन किया और हिमालय की पुत्री गौरीनाम होकर शिवजी के वामांग में निवास किया उसी दिन से जगत्पूज्य श्रीभगवती का नाम हरकाली भया पूजन इस मन्त्र से करना चाहिये (हरकर्मसमुत्पन्ने हरकालि हरप्रिये। मन्त्रदैवतमूर्त्तिस्थे प्रणमामि नमोनमः) विसर्जन इस मन्त्र से करै (अर्चितासि मया भक्त्या गच्छ देवि सुरालयम्। हरकालि महागौरि पुनरागमनं त्वया) इस विधि से प्रतिवर्ष जो स्त्री अथवा पुरुष व्रत करै वह आरोग्य दीर्घआयुष् सौभाग्य पुत्र पौत्र धन बल ऐश्वर्य आदि पाता है और सौवर्षतक संसार का सुख भोगकर शिवलोक में प्राप्त होता है वहां वीरभद्र महाकाल नन्दीश्वर विनायक आदि शिवजी के गण उसकी आज्ञा में रहते हैं जो स्त्री भक्ति से इस हरकाली व्रत को करती हैं और रात्रिके समय गीत वाद्य नृत्यसे जागरणकर बड़ा उत्सव करती हैं वे पतिकी अतिप्रिया होती हैं।

सत्रहवां अध्याय।

ललिता तृतीया व्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! अब आप द्वादशमासिक व्रत कहैं जिसके करने से सब उत्तम फल

प्राप्त होयँ और प्रत्येक मासका विधान कहैं। यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्णभगवान् बोले कि महाराज हम प्राचीन वृत्तान्त कहते हैं आप श्रवण कीजिये। एक समय अनेक प्रकार के पुष्प फलयुक्त वृक्षों से शोभित आम्र चंपक अशोक कदम्ब बकुल आदि के पुष्पों पर विहार करते भ्रमरों से शब्दायमान मयूर राजहंस मृग हाथी सिंह वानर आदि जीवों करके युक्त गन्धर्व यक्ष किन्नर सिद्ध तपस्वी नाग आदिकों करके सेवित कैलासपर्वत में सब देवता और गणों करके पूजित श्रीसदाशिव विराजमान थे उस समय अति विनय से पार्वतीजी ने प्रार्थना करी कि महाराज ऐसा व्रत आप कथन करैं जिसके करने से सौभाग्य धन सुख पुत्र रूप लक्ष्मी और स्वर्ग की प्राप्ति होय और दीर्घ आयुष् तथा आरोग्यभी मिलै यह पार्वतीजी का वचन सुन हँसकर शिव जी बोले कि हे प्रिये! ऐसा कौन पदार्थ है जो आपको दुर्लभ है कि जिसकी प्राप्ति के लिये व्रत पूछतीहौ तब पार्वतीजी ने कहा कि महाराज मुझे तो आपके अनुग्रह से तीनलोक के सब उत्तम पदार्थ प्राप्तही हैं परन्तु संसारमें अनेक स्त्री मेरा आराधन करती हैं कोई पुत्र के लिये कोई पति के लिये कोई सौभाग्य के अर्थ कोई सासु करके पीड़ित अपना दुःख दूर होनेके लिये और कोई रूपलावण्यकी प्राप्तिके हेतु मेरा भक्तिसे सेवन करती हैं और मेरे शरण में प्राप्त होती हैं जिसप्रकार वे अपना २ अभीष्ट अनायास से पावैं वह उपाय आप कथन कीजिये उनके अर्थही मेरा प्रश्न है यह पार्वतीजी का वचन सुन शिवजी कहने लगे कि माघशुक्ल तृतीया को प्रभात उठ शौचकर हाथ पांव और मुख धोकर दन्तधावनकर व्रत के नियम ग्रहण करै और मध्याह्न के समय तिल और आमलक लगाय स्नानकर शुद्धवस्त्र पहिन गन्ध पुष्प धूप

दीप कर्पूर कुंकुम और भांति भांति के नैवेद्यों से भक्तवत्सला श्रीभगवती का पूजन करै पीछे ताम्रपात्र में जल अक्षत और सुवर्ण डालकर पात्र को हाथ में उठाय अपने अभीष्ट को मन में ध्यान करता हुआ ये मन्त्र पढ़े (ब्रह्मवर्त्तसमाख्याता ब्रह्मयोनिविनिर्मिता । भद्रेश्वरी ततो देवी ललिता शङ्कर-प्रिया १ गङ्गाद्वारे हरं प्राप्ता गङ्गाजलपवित्रता । सौभाग्या-रोग्यपुत्रार्थमर्थार्थज्ञनवल्लभे २ अजातघटिका भद्रे प्रतीच्छस्व नमोनमः) ये पढ़ भगवती को अर्घ्य देवै और आचमन कर रात्रि के समय भूमि में कुशा की शय्यापर सोवै दूसरे दिन प्रभात उठ स्नान कर विधि से भगवती का पूजन कर यथा-शक्ति ब्राह्मण भोजन कराय आपभी मौन से भोजन करै इस भांति प्रथम मास में कालिका भगवती का पूजन करै द्वितीय मास में पार्वती का तृतीय में शंकरप्रिया का चतुर्थ में भवानी का पांचवें में गौरी का छठे में दक्षपुत्री का सातवें में मेनाकी का आठवें में ललिता का नवम में साध्वी का दशवें में सौभाग्य-दायिनी का ग्यारहवें में उमा का और बारहवें महीने में गौरी का पूजन करे और बारहों महीनों में क्रम से कुशोदक दुग्ध घृत गोमूत्र गोबर फल निंब बच मुलहठी बिल्वपत्र पंचगव्य और शाक इनको प्राशन करै इस प्रकार बारह मास का व्रत कर श्रद्धा से भगवती का पूजन करै और इन मन्त्रों से प्रार्थना भी करै (ॐकारपूर्वके देवि नमस्कारान्तदीपिते । एभिस्तु पूजिता मन्त्रैस्तुष्यासि ब्राह्मणप्रिये । तुष्टा त्वमीप्सितान्कामान्द-दासि प्रीतिपूर्वकम्) व्रत समाप्त होने पर वेदपाठी ब्राह्मण को भार्या सहित बुलाय दोनों का शिव पार्वती बुद्धि से पूजन कर प्रीति से भोजन कराय दक्षिणा वस्त्र भूषण आदि देकर उनको सन्तुष्ट करै ब्राह्मण को शुक्ल वस्त्र और ब्राह्मणी को रक्त वस्त्र देवै इस व्रत को जो स्त्री भक्ति से करै वह अपने पति

सहित दिव्यलोक में प्राप्त हो दश हजार वर्ष उत्तम भोग भोगते हैं और मनुष्यलोक में जन्म ले फिर भी दोनों दंपती ही होते हैं और आरोग्य धन विद्या संतान आदि सब उत्तम पदार्थ उनको प्राप्त होते हैं और उस स्त्री के सदा भर्ता अधीन रहता है और वह स्त्री पति को प्राणों से भी अधिक प्रिय होती है और उत्तम रूप लावण्य और सौभाग्य पाती है और जन्मांतर में राजा की रानी हो भूमि का भोग करती है इस ललिताव्रत के विधान को जो सुने वह भी सब उत्तम फल पावै।

अठारहवां अध्याय।

अवियोग तृतीया व्रत का विधान और फल।

युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! जिस व्रत के करने से स्त्री पति करके वियुक्त न होय अन्त में शिवलोक में वास पावै और जन्मान्तर में भी विधवा न होय ऐसा व्रत आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! यही बात पार्वतीजी ने शिवजी से और अरुंधती ने वशिष्ठजी से पूछी थी उनने जो कहा वही हम आपको श्रवण कराते हैं। मार्गशीर्ष मास की शुक्लद्वितीया को आचमन कर शिव और पार्वती को दण्ड-प्रणाम करै पीछे गूलर के काष्ठ से दन्तधावन कर स्नान करै और शालिपिष्ट से शिव पार्वती की प्रतिमा बनाय उत्तम पात्र में स्थापन कर विधिपूर्वक उनका पूजन करै और रात्रि के समय खीर का भोजन करै शिव पार्वती का स्मरण करता हुआ भूमि पर शयन करै प्रभात उठ दक्षिणा सहित वह प्रतिमा आचार्य को दे उत्तम भोजन से शिवभक्त ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करै और यथाशक्ति दंपति पूजन भी करै इस भांति प्रतिमास व्रत कर पूजन करै अब हम बारह महीनों के नाम

पूजन के अर्थ कहते हैं पौषमास में गिरीश और पार्वती का पूजन कर पंचगव्य का प्राशन करै माघ में भव और भवानी का पूजन करै फाल्गुन में महादेव और उमा का अर्चन करै चैत्र में शङ्कर और ललिता का यजन करै वैशाख में स्थाणु और लोलनेत्रा का पूजन करै ज्येष्ठ में रुद्र और रुद्राणी का पूजन करै आषाढ़ में पशुपति और सती का पूजन करै श्रावण में श्रीकंठ और सुतारा का पूजन करै भाद्र में भीम और कालरात्रिका यजन करै आश्विन में शिव और दुर्गाका पूजन करै और कार्त्तिकमास में ईशान और शिवा देवी का भक्ति से अर्चन करै इन नामों से विना पूजन किये व्रतसिद्धि नहीं होती और बारह मास में क्रम.करके इन पुष्पों से अर्चन करै नीलोत्पल करवीर किंशुक चमेली कदम्ब द्रोण मालती बकुल अगस्त्य कमल कुमुद और बिल्वपत्र प्रतिमास में नित्य इन पुष्पों करके पूजन करै वर्षसमाप्ति में शिवपूजा करै सुवर्ण का कमल दो वस्त्र ध्वजा दीपक और भांति २ के नैवेद्य शिवजी के अर्पण कर आरती करै और यथाशक्ति ब्राह्मण मिथुनों का पूजनकर सुवर्ण की शिव पार्वती की मूर्ति बनाय ताम्रपात्र में स्थापन कर उसी पात्र में चौंसठ मोती चौंसठ मूंगा और चौंसठ पुखराज धर पात्र को वस्त्र से ढक आचार्य के अर्पण करै व्रती ब्राह्मण और दम्पती इन सबको सुवर्ण और वस्त्र देवै अड़तालीस जलपूर्ण कलश छत्र जूता और सुवर्ण ब्राह्मणों को बांटै और दीन अन्ध कृपणों को अन्न देवै किसी को उस दिन विमुख न जाने देवै इतना करने को समर्थ न होय तो कुछ न्यून करै परन्तु वित्तशाठ्य न करै इस व्रत के करने से रूप सौभाग्य धन आयुष् पुत्र और शिवलोक की प्राप्ति होती है इष्ट वियोग कभी नहीं होता जो पतिव्रता इस व्रत को करै वह कभी पति पुत्र सौभाग्य और धन से

वियुक्त नहीं होती और शिवलोक में निवास करती है।

उन्नीसवां अध्याय।

उमामहेश्वर व्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे कृष्णचन्द्र ! किस व्रतके करने से नारियों को बहुतसे पुत्र पौत्र सुवर्ण वस्त्र और सौभाग्य मिलताहै यह आप वर्णन करें यह राजाका प्रश्न सुन श्रीकृष्ण बोले कि हे महाराज ! सब व्रतों में उत्तम व्रत हम वर्णन करते हैं जिसके करने से स्त्रियों को बहुत सन्तान दास दासी भूषण वस्त्र और सौभाग्य प्राप्त होय यह उमामहेश्वरव्रत अप्सरा विद्याधरी किन्नरी ऋषिकन्या रम्भा सीता अहल्या रोहिणी दमयन्ती तारा अनसूया आदि सब स्त्रियों ने किया है और सब उत्तम स्त्री करती हैं मनुष्य लोक में दुर्भगा और कुरूपा स्त्रियों के हित क लिये पार्वतीजी ने इस व्रतका प्रचार किया है मार्गशीर्ष शुक्ल तृतीया को नियमपूर्वक स्त्री उपवास करै और स्नानकर शिवजी के वामांग में निवास करनेवाली श्रीललिता भगवती का पूजन करै प्रभात उठ नदी में स्नानकर शिव पार्वतीका ध्यान करती हुई यह मन्त्र पढ़ै (नमो नमस्ते देवेश उमादेहार्द्धधारक। नमो देवि नमस्तेस्तु हरकायार्द्धवामिनि) फिर घर में आय दक्षिण भागमें शिवजीकी मूर्ति और वाम भाग में पार्वतीकी मूर्ति स्थापनकर गन्ध पुष्प गुग्गुल धूप दीप और घृतपक्क नैवेद्य से भक्तिपूर्वक पूजन कर तिल और घृतसे हवन कराय अपने देहकी शुद्धि के लिये पंचगव्य प्राशन करै इस भांति बारह महीने पूजनकर प्रसन्नचित्त हो व्रतका उद्यापन करै चांदी की शिवमूर्ति और सुवर्ण की पार्वती की मूर्ति बनवाय दोनोंको चांदी के वृष के ऊपर स्थापनकर सब वस्त्र और भूषणों से अलंकृत करै चन्दन श्वेतपुष्प श्वेतवस्त्र आदि से

शिवजी का और कुंकुम रक्तपुष्प आदि से पार्वतीजी का पूजन करै पीछे शिवभक्त वेदपाठी और शांतचित्त ब्राह्मणोंको भोजन कराय सबको दक्षिणा दे प्रदक्षिणाकर यह मन्त्र पढ़ै (उमा-महेश्वरौ देवौ सर्वसत्त्वपितामहौ । व्रतेनानेन सम्प्रीतौ भवेतां मम सर्वदा) इस भांति प्रार्थना कर जितक्रोध हो व्रत समाप्त करै इस व्रत को जो स्त्री भक्तिसे करै वह शिवजीके समीप एक कल्प निवास करै और किन्नरी अप्सरा विद्याधरी आदि उसकी सेवा में रहैं फिर मनुष्यलोक में उत्तम कुलके बीच जन्म लेकर रूप यौवन पुत्र आदि सब पदार्थ पाय बहुत काल अपने पतिके साथ संसार के सुख भोग अन्त में शिव-सायुज्य पाती है चांदी और सुवर्ण की शिव पार्वती की प्रतिमा बनाय चांदी के वृषपर स्थापन कर उत्तम वस्त्र भूषणों से अलं-कृतकर भक्तिसे पूजा करै पीछे ब्राह्मणको देवे वह नारी कभी विधवा नहीं होती और पुत्र धन आदि सब पदार्थ पातीहै ।

बीसवां अध्याय ।

सौभाग्यशयन व्रतका विधान और फल ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम सौभाग्यशयन नाम व्रत कहते हैं जो पुराणों में प्रसिद्ध है प्रलय के समय सब लोक दग्ध होगये तब सबका सौभाग्य इकट्ठा होकर वैकुण्ठ में विष्णु भगवान् के वक्षस्थल में स्थित हुआ फिर जब सृष्टि भई तब आधा सौभाग्य तो ब्रह्माके पुत्र दक्षप्रजापति ने पान करलिया जिससे उनका रूप और लावण्य अधिक भया और आधे से इक्षुतांल निष्पाव क्षीर कुसुंभ कुंकुम चन्दन और लवण ये आठ पदार्थ उत्पन्न भये इनका नाम सौभाग्या-ष्टक है दक्षप्रजापति ने जो सौभाग्य पान किया उससे सती नाम कन्या उत्पन्न भई सब लोक में उसका सौन्दर्य अधिक भया इसीसे उसका नाम ललिता भया वह त्रैलोक्यसुन्दरी

कन्या शिवजीको विवाह उस जगन्माता के आराधन से भुक्ति मुक्ति और स्वर्ग का राज्य भी मिलता है इतना सुन राजा युधिष्ठिर पूछते भये कि भगवती के आराधन का क्या विधान है आप जगत् के कल्याण के अर्थ वर्णन करैं तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि महाराज चैत्रमास की शुक्ल तृतीया को ललिता भगवती का शिवजी के साथ विवाह हुआ है उस दिन पूर्वाह्ण में तिलों से स्नान कर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य भांति भांति के फल गोघृत और गन्धोदक कर के भक्ति से शिव पार्वती का पूजन करै फिर पाटला और शम्भु का चरणों में पूजन करै त्रियुगा और शिव का गुल्फों में और भद्रा सहित ईश्वर का मस्तक पर गंधमाल्य आदि से पूजन करै ये सब प्रणवादि नमोंतनाम मन्त्र कहै इस भांति पूजन कर सौभाग्याष्टक का निवेदन करै और रात्रि को भूमि पर सोवे प्रभात उठ स्नान कर ब्राह्मणदंपती का पूजन कर दोधरण अर्थात् छह माशे सुवर्ण और सौभाग्याष्टक ब्राह्मण को देवै और यह कहै कि ललिता देवी प्रसन्न होय इस भांति एक वर्ष पर्यंत प्रतिमास की तृतीया को पूजन करै और चैत्र आदि बारह महीनों में गोशृंगजल गोबर मंदार पुष्प बिल्वपत्र दही कुशोदक दूध घृत गोमूत्र घी कृष्ण तिल और पंचगव्य का प्राशन करै और ललिता विजया रुद्रा भवानी कुमुदा शिवा सुदेवी गौरी मंगला कमला सती और उमा इन नामों को दान काल में क्रमसे बारह महीनों में उच्चारण करै मल्लिका अशोक कमल उत्पल मालती कुटज करवीर बाण अम्लान कुंकुम सिंदुवार और जपा ये बारह महीनों में पूजा के लिये क्रम से पुष्प कहे हैं इनमें जो प्राप्त होय उसी से भगवती का पूजन करै परन्तु करवीर पुष्प सदा भगवती को प्रिय है इस भांति एक वर्ष व्रत करके उत्तम

शय्या बनवाय उसके ऊपर तीन पल सुवर्ण की उमा महेश्वर की प्रतिमा स्थापन कर ब्राह्मण को देवै और उसके साथ एक उत्तम गौ भी देवै और भी वस्त्र भूषण गौ दक्षिणा आदि से यथाशक्ति दम्पती पूजन करै वित्तशाठ्य न करै इस व्रत के करने से सब कामना सिद्ध होती हैं और परलोक में भी सुख की प्राप्ति होती सौभाग्य आरोग्य रूप आयुष् वस्त्र भूषण आदि का तीनसौ जन्मतक वियोग नहीं होता जो इस व्रत को बारहवर्ष करै वह तीन अयुत कल्पपर्यन्त स्वर्ग में रहै जो स्त्री पुरुष कुमारी इस सौभाग्यशयन नाम व्रत को भक्ति से करै अथवा इसके माहात्म्य को सुनै वह दिव्य देह धार स्वर्ग को जाय यह व्रत कामदेव ने शशबिन्दु ने और भी कई देवताओं ने किया है और सब को करना चाहिये।

इक्कीसवां अध्याय।

अनन्तफलदा तृतीया का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि सौभाग्य आरोग्य आदि फल देनेहारा और शत्रुओं का क्षयकारक भुक्तिमुक्तिप्रद कोई व्रत आप और भी वर्णन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे महाराज! जो व्रत विष्णु भगवान् ने लक्ष्मीजी को कहा है वह हम आपको कथन करते हैं आप सावधान हो श्रवण कीजिये वैशाख भाद्रपद अथवा मार्गशीर्ष की शुक्ल तृतीया को श्वेत सरसों का उबटन लगाय स्नान कर गोरोचन मोथा गोमूत्र दही गोबर और चन्दन इन सबको मिलाय मस्तक में तिलक करै यह तिलक सौभाग्य और आरोग्य करनेहारा है और ललिता भगवती को अतिप्रिय है प्रतिमास की तृतीया को सौभाग्यवती स्त्री रक्तवस्त्र पहिन कर विधवा पीतवस्त्र और कुमारी शुक्लवस्त्र पहिन पूजन करै पहिले पञ्चगव्य करके और केवल दुग्ध

करके भगवती को अर्घ्य देकर मधु और गन्धोदक से स्नान कराय श्वेतपुष्प और अनेक प्रकार के फल चढ़ावै धनियां मुलहठी लवण गुड़ दुग्ध घृत अक्षत और तिलों करके अर्घ्य देवै पीछे वरदायै नमः शिवप्रियायै नमः अशोकायै नमः भवान्यै नमः गौर्यै नमः त्रिनेत्रायै नमः तुष्ट्यै नमः पुष्ट्यै नमः सृष्ट्यै नमः कात्यायन्यै नमः श्रियै नमः रम्भायै नमः ललितायै नमः वासुदेव्यै नमः इन मन्त्रों से क्रमपूर्वक भगवती के चरण गुल्फ जंघा जानु हृदय लोचन ललाट और शिर का पूजन कर अपने अग्रभाग में द्वादश दल कमल लिखै पीछे वाम भाग में गौरी दक्षिण में भवानी और मध्य में रुद्राणी पश्चिम में सौम्या मदनवासिनी पाटला उग्रा उमा स्वाहा स्वधा तुष्टि मंगला कुमुदा सती और रुद्राणी इनका द्वादशदल में पूजन कर कर्णिका के ऊपर ललिता का पूजन करै अनेक प्रकार के उपचारों से पूजन कर नमस्कार करै पीछे सुवासिनी को स्नान आदि कराय उसके शिर में सिंदूर पातनकर रक्तचंदन पुष्प रक्तवस्त्र भूषण आदि से उसका पूजन करै भाद्र आदि बारह महीनों में उत्पल बन्धूक कमल कुन्द कुंकुम सिंदुवार चमेली मल्लिका अशोक पाटला चम्पक कदम्ब इन पुष्पों से क्रमपूर्वक पूजन करै गोमूत्र गोबर दुग्ध दही घृत कुशोदक गोशृंगोदक जल पुष्प तिलपिष्ट पंचगव्य और बिल्व इनका बारह महीनों में प्राशन करै प्रत्येक तृतीया को इसी विधि से पूजन करै ब्राह्मण और ब्राह्मणी को शिव पार्वती मान भोजन कराय वस्त्र भूषण आदि से उनका पूजन करै पुरुषको पीत वस्त्र और स्त्री को रक्त वस्त्र पहिनावै और भी चौबीस अथवा बारह मिथुन अर्थात् स्त्री पुरुष के जोड़ों का पूजन कर गुरुका पूजन करै जो गुरुपूजन न करैं उनकी सब क्रिया निष्फल होती हैं इस भगवती के पूजन में वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिये गर्भिणी

सूतिका और रोगिणी स्त्री दूसरे से पूजन करावैं और आप भक्ति से देखैं इस अनन्तफलदा तृतीया का व्रत जो भक्ति से करै वह सौकोटि कल्प पर्यन्त शिवजी के समीप निवास करै धनहीन भी तीन वर्ष इस व्रत को करै और पत्र पुष्प जो मिलैं उनसेही भक्ति करके पूजन करै वह भी सम्पूर्ण फल पाता है जो स्त्री इस व्रत के विधान को श्रवण करै वह भी किन्नरी विद्याधरी आदि करके सेवित पार्वती के समीप निवास करै ।

बाईसवां अध्याय ।

रसकल्याणिनी तृतीया का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम रसकल्याणिनी नाम तृतीया का विधान कहते हैं माघशुक्ल तृतीया को प्रभातही गोदुग्ध और तिलों करके स्नान कर शहद और इक्षुरस करके भगवतीको स्नान कराय चमेली अथवा कुंकुम करके पूजन करै पाहिले दक्षिण ओर के अङ्गोंकी पूजाकर वाम भागके अङ्ग पूजै ललितायै नमः इस मन्त्र करके पाद गुल्फ जंघा जानुका पूजन करै श्रियै नमः इस करके अंगुलियों का मन्दालसायै नमः इस मन्त्र करके कटिका कुमुदायै नमः इस मन्त्र करके ग्रीवाका माधव्यै नमः इस करके भुज और भुजाग्रका कमलायै नमः इस करके मुखका रुद्राण्यै नमः इस करके भ्रू और ललाटका विश्ववासिन्यै नमः इस करके मुकुटका कान्त्यै नमः इससे अलकोंका मदनायै नमः इससे ललाटका मोहिन्यै नमः इस करके भ्रूका चक्रधारिण्यै नमः इस करके नेत्रोंका पुष्ट्यै नमः इस करके मुख का उत्कण्ठिन्यै नमः इस करके कण्ठका जयायै नमः इस करके कन्धराका रम्भायै नमः इस करके वाम भुजा का विशोकायै नमः इस करके हाथका मन्मथायै नमः इस करके हृदयका पाटलायै नमः इस करके उदर का सुरतवासिन्यै

नमः इस करके कटिका चंपकश्रियै नमः इस करके ऊरुका गौर्यै नमः इस करके गुल्फका गायत्र्यै नमः इस करके शिरका पूजनकर (ॐ नमो भवान्यै कामिन्यै वासुदेव्यै जगच्छ्रियै। आनन्दायै नन्दनायै रुद्रायै च नमोनमः) इस मन्त्र से प्रार्थना कर ब्राह्मण दम्पती का पूजन करावै इसी विधि से प्रतिमास पूजन करै और माघ आदि महीनों में क्रम से लवण गुड़ नवान्न मधुपानक जीरा क्षीर दही घृत शाक धनियां और शर्करा इनको त्यागे अर्थात् भक्षण न करै और प्रतिमास एक पात्र इन पदार्थोंका भर ब्राह्मणको दक्षिणा सहित देवै और माघ में पूजन के अन्त में कुमुदा प्रीयताम् यह कहै इसी भांति फाल्गुन आदि महीनों में माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा उमा शची सती मङ्गला रतिलालसा का नाम ग्रहण करै पंचगव्यका सर्वत्र प्राशन करै और उपवास करै जो सामर्थ्य न होय तो नक्तव्रत ही करै फिर माघमास आवै तब शर्करा पूर्ण पात्र के ऊपर सुवर्णकी पार्वतीकी मूर्ति स्थापन कर वस्त्र भूषण रत्न आदिसे अलंकृत कर गोमिथुन अर्थात् एक बैल और एक गौ सहित ब्राह्मणको देवै इस विधि से जो व्रत करै वह तत्क्षण सब पापों से मुक्त होजाता है और हजार जन्म तक दुःखी नहीं होता हजार अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है जो स्त्री कुमारी विधवा आदि भी इस व्रतको करै तो सब प्रकार के उत्तम फल पावै जो इस विधान को सुनै अथवा व्रत करने के लिये औरोंको उपदेश करै वह भी सब पापों से मुक्त हो पार्वतीलोक में निवास करता है।

तेईसवां अध्याय।

आर्द्रानन्दकरी तृतीया का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब हम आर्द्रानन्दकरी तृतीयाका विधान वर्णन करते हैं जब कभी आषाढ़

शुक्ल तृतीया को रोहिणी अथवा मृगशिरा नक्षत्र होय उस दिन से इस व्रत का आरम्भ करै कुशा और गन्धोदक करके स्नान कर श्वेत चन्दन श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहिन उत्तम सिंहासन पर शिव पार्वती की प्रतिमा स्थापन कर रक्तचन्दन रक्तपुष्प आदि से पूजन करै पीछे वासुदेव्यै नमः शोकविनाशिन्यै० रम्भायै० अदित्यै० माधव्यै० आनन्दकारिण्यै० उत्कण्ठिन्यै० उत्पलधारिण्यै० परिरम्भिण्यै० विभासिन्यै० श्रुतिस्मृतिरूपायै० मदनवासिन्यै० रतिप्रियायै० इन्द्राण्यै० स्वाहायै नमः इन मन्त्रों से भगवती के और शङ्कराय नमः आनन्दाय नमः शिवाय० शूलपाणये० शम्भवाय० इन्दुधारिणे० नीलकण्ठाय० रुद्राय० नृत्यशीलाय० विषमाक्षाय० विश्ववक्त्राय० विश्वधाम्ने० ताण्डवेशाय० हव्यवाहाय० पञ्चशिराय नमः इन मन्त्रों से शिवके पाद जङ्घा ऊरु कटि नाभि स्तन कण्ठ हाथ भुजा मुख नेत्र भ्रू ललाट और मुकुट इन अंगोंका क्रमसे पूजन कर यह मन्त्र पढ़े (विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ । प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ) इस विधि से पूजन कर मूर्तियों के आगे अनेक प्रकारके कमल शंख स्वस्तिक चक्र वर्धमान आदि के चित्र पंचरंग से लिखै गोमूत्र गोबर क्षीर दही घृत कुशोदक गोशृंगोदक बिल्वपत्र कूटयुक्त जल उशीर अर्थात् खसका जल यवचूर्ण का जल और तिलोदक का क्रम से मार्गशीर्ष आदि महीनों में प्राशन करै परन्तु यह प्राशन प्रतिपक्ष की द्वितीया को कर शयन करै सर्वत्र पूजा के लिये शुक्लपुष्प श्रेष्ठ हैं और दानकाल में यह मन्त्र पढ़ै (गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशं च मङ्गलम् । सौभाग्यमस्तु ललिता शर्वाणी सर्वसिद्धये) वर्ष के अन्त में लवण गुड़ चन्दन दो श्वेतवस्त्र इक्षु और भांति भांतिके फलों सहित

सुवर्ण की शिव पार्वती की प्रतिमा सपत्नीक ब्राह्मण को देवै और 'गौरी मे प्रीयताम्' यह कहे इस आर्द्रानन्दकरी तृतीया को व्रत करनेहारा पुरुष शिवलोक में निवास करता है और इस लोक में भी धन आयुष् आरोग्य ऐश्वर्य और सुख पाता है और कभी उसको शोक नहीं होता प्रतिपक्ष में इस व्रतको करै और विधि से पूजन करै तो रुद्राणीलोक में प्राप्त होय जो इस विधान को सुनै अथवा सुनावे वह भी गन्धर्वों करके पूजित इन्द्रलोक में निवास करै जो स्त्री इस व्रत को करैं वे संसार के सब सुख भोग अन्त में अपने पति सहित गौरीलोक में निवास करती हैं।

चौबीसवां अध्याय।

चैत्र भाद्र और माघशुक्ल तृतीया का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णाचन्द्र ! चैत्र भाद्र और माघकी तृतीया रूप सौभाग्य और पुत्र देनेहारी हैं उन का आपने वर्णन क्यों न किया क्या हम भक्तिरहित हैं अथवा वेदमार्ग का उल्लंघन करनेहारे हैं कि सब जगत् में प्रसिद्ध व्रत आपने हमसे गुप्त रक्खे यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! आप धर्मार्थ में कुशल हैं और सर्वज्ञ हैं जो आपकी उन व्रतों के ही श्रवण करने की इच्छा होय तो सुनिये आप से उत्तम श्रोता कौन मिलैगा जया विजया नाम पार्वतीजी की सखी हैं उनसे एक समय मुनिकन्याओं ने पूछा कि दोनों तुम भगवती की परिचारिका हो यह बतावो कि किस दिन किन उपचारों और मन्त्रों से पूजन करके पार्वती भगवती सन्तुष्ट होती हैं यह सुन जया बोली कि हे मुनिकन्याओं ! सुनो सब कामना सिद्ध करनेहारा व्रत मैं वर्णन करती हूँ चैत्र शुक्ल तृतीया को प्रभात उठ दन्तधावन कर व्रत के नियम ग्रहण करै कुंकुम सिंदूर रक्तवस्त्र

ताम्बूल आदि सौभाग्यवती के चिह्न धार भक्ति से पूजन करै पहिले अतिसुन्दर मण्डप बनाय उसके मध्य में एक मनोहर वेदी रच एक हाथ प्रमाण का कुण्ड बनावे पीछे स्नान कर उत्तम वस्त्र पहिन मण्डप में जाय ब्राह्मण द्वारा सब कर्म करावै देवता और पितरों का अर्चन कर आठ नामों करके भगवती का पूजन करै कुंकुम कर्पूर अगुरु चन्दन आदि लेपन लगाय अनेक प्रकार के सुगन्ध युक्त पुष्प चढ़ाय धूप दीप आदि उपचार समर्पण करै पार्वती ललिता गौरी गान्धारी शाङ्करी शिवा उमा और सती ये आठ नाम हैं लड्डू अपूप आदि बहुत भांति के घृतपक्व नैवेद्य और दाड़िम नारिकेल आमलक कूष्मांड कर्कटी बीजपूर आदि फल निवेदन करै और शंख तूर्य मृदङ्ग आदि के शब्द और उत्तम गीत से उत्सव करै इस भांति भक्ति से पार्वतीजी का पूजन कर प्रदोष के समय नये मृत्तिका के घटों में जल लाकर उससे स्नान कर पूर्वोक्त विधि से फिर भगवती का अर्चन कर गीला वस्त्र पहिने और भगवती के सम्मुख पद्मासन पर बैठकर सम्पूर्ण रात्रि को व्यतीत करै प्रतिपहर में पूजन और घृतयुक्त तिलों से हवन करै उस समय कोई स्त्री गावैं कोई हर्ष से नृत्य करैं कोई भक्ति से भगवती के गुण वर्णन करैं नृत्य करके शिवजी गीत करके पार्वतीजी और भक्ति से सब देवता वश होते हैं ताम्बूल कुंकुम और उत्तम २ पुष्प सुवासिनी स्त्री भगवती को अर्पण करैं उस रात्रि को जागरण का उत्सव होय और नट वेश्या आदि के तमाशा भी होयँ इस भांति प्रसन्नता से रात्रि बिताय प्रभात ही स्नान कर पार्वती का पूजन कर तुला के ऊपर चढ़े गुड़ लवण कुंकुम कर्पूर अगुरु चन्दन आदि द्रव्यों से यथाशक्ति तुलै विशेष करके लवण की तुला करै इस विधि से जो नारी व्रत और तुलादान करै वह अपने पति सहित

इन्द्रलोक में निवास कर ब्रह्मलोक में और वहां से शिवलोक में प्राप्त होय और इस लोक में भी रूप सौभाग्य सन्तान धन आदि पावै उसके वंश में दुर्भगा कन्या और दुर्विनीत पुत्र कभी उत्पन्न न होय और उसके घर में दारिद्रय रोग शोक आदि नहीं होते जो कन्या इस व्रत को करै और वस्त्र भूषण आदि से वाचक ब्राह्मण का पूजन करै वह अभीष्ट वर पाय संसार का सुख भोगै माघमास में उत्तम मणियों करके चैत्र में विचित्र पुष्पों करके और भाद्र में भांति २ के सस्यों करके इसी विधानसे पतिव्रता नारी भगवतीका पूजन करती हैं।

पच्चीसवां अध्याय।

अनन्तादि तृतीयाका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! शुक्लपक्ष की तृतीया तो बहुत हैं परन्तु अनन्तादि तृतीयाव्रत का आप वर्णन करैं और प्रतिमासके नाम और प्राशनभी कहैं यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! यह आनन्तर्य व्रत ब्रह्मा विष्णु शिव आदि देवताओं ने भी नहीं कहा गुप्त रक्खा उसको हम वर्णन करते हैं इस व्रतका आरम्भ मार्गशीर्ष से करै द्वितीया के दिन नक्तव्रत कर तृतीया को उपवास करै गन्ध पुष्प आदि से उमादेवी का पूजन कर शर्करा और पूरी का नैवेद्य लगाय आपभी दही प्राशन कर रात्रिको शयन करै और प्रभात उठ ब्राह्मण दम्पती को भोजन करावै इस विधिसे जो नारी व्रत करै वह सम्पूर्ण अश्वमेध के फल को पाती है मार्गकृष्ण तृतीयाको कात्यायनी का पूजन कर नारिकेल नैवेद्य लगाय क्षीरप्राशन कर काम क्रोध त्याग रात्रि को शयन करै प्रभात उठ दम्पती पूजन करै तो गोमेध यज्ञ के फलको पावै पौषकृष्ण तृतीया को गौरीका पूजन कर लड्डू नैवेद्य लगाय घृतप्राशन कर शयन कर और प्रभात उठ मिथुन

पूजन करै तो नरमेधयज्ञ का फल पावै माघशुक्ल तृतीया को सुरनायिका का पूजन कर खण्डके पक्वान्न नैवेद्य लगाय कुशोदकका प्राशन कर सोवै और मिथुनको मिष्टान्न भोजन करावै तो तीर्थयात्रा का फल पावै माघकृष्ण तृतीया को स्कन्दमाता का पूजन कर अपूप नैवेद्य लगावै और पंचगव्य प्राशन कर देवीके आगे शयन कर दूसरे दिन भक्तिसे दम्पती पूजा करै तो कन्यादान का फल पावै आषाढ़मास में सती का पूजन कर दही और सत्तू नैवेद्य लगावै और गोशृंग जल प्राशन कर सोवै और मिथुन पूजा करै तो भूमिदान का फल पावै आषाढ़कृष्ण तृतीया को कूष्मांडी का पूजन कर गुड़ और घृत सहित सत्तू नैवेद्य लगाय कुशोदक प्रशान कर सोवै और मिथुन पूजा करै तो गोसहस्र दानका फल प्राप्त होय श्रावण में चन्द्रघण्टा का पूजन कर कुल्माष अर्थात् घुँघुनी नैवेद्य लगाय पुष्पोदक प्राशन कर सोवै और दम्पती का पूजन करै तो अभय दान का फल होय श्रावणकृष्ण तृतीया को रुद्राणी का पूजन कर सक्तुपिण्ड नैवेद्य लगाय पिण्याक अर्थात् खलका प्राशन कर सोवै और ब्राह्मण मिथुन पूजै तो इष्टापूर्त का फल पावै भाद्रशुक्ल में कमलालया का पूजन कर कांस्यपात्रमें मांसको रख नैवेद्य लगावै और गन्धोदकका प्राशन कर सोवै प्रभात मिथुन पूजा करै तो उत्तम लोक पावै भाद्र कृष्ण तृतीया को दुर्गा का पूजन कर गुड़युक्त पिष्ट और फल नैवेद्य लगाय गोमूत्र प्राशन कर सोवै और मिथुन पूजा करै तो अन्नदानका फल प्राप्त होय आश्विन में नारायणी का पूजन कर खण्डके पक्वान्न नैवेद्य लगावै चन्दन प्राशन कर सोवै और मिथुन पूजन करै तो अग्निहोत्र का फल पावै कार्त्तिक तृतीया को स्वाहा का पूजन करै और घी खण्डयुक्त खीर नैवेद्य लगाय कुसुम्भबीज प्राशन कर सोवै और मिथुन पूजा

करै तो गवाह्निकका फल पावै कार्त्तिककृष्ण तृतीया को चण्डी का पूजन कर गुड़युक्त उत्तम भात नैवेद्य लगावै और कुंकुम प्राशन कर रात्रि को सोवै और मिथुनपूजन करै तो एक भक्तका फल पावै फिर मार्गकृष्ण तृतीया को गुरु की आज्ञा पाय शास्त्र की रीति सें नवनाभ मंडल लिखकर सुवर्ण की शिव पार्वती की प्रतिमा बनावै उन प्रतिमाओं के नेत्रों में मोती और नीलम जड़ै ओष्ठों में प्रवाल अर्थात् मूंगा और कानों में रत्नकुंडल पहिनावै शिवजी को सुवर्ण के यज्ञोपवीत और पार्वतीजी को मोतियों के हार से अलंकृत कर श्वेत और रक्तवस्त्र पहिनावे पीछे गन्ध पुष्प धूप आदि उपचारों से पूजन कर मंडल में पूजा कर होम करै और अपराजिता भगवती का भी अर्चन करै और मुस्तक अर्थात् नागरमोथा प्राशन कर रात्रि को जागरण और गीत नृत्य आदि उत्सव करै प्रभात होते ही उत्तम शय्या और तकियों करके युक्त पलँग बिछाय उस पर मण्डल बनाय मंण्डल में शिव पार्वती की प्रतिमा स्थापन करै और वितान ध्वज माला किंकिणी दर्पण आदि से मण्डप को शोभित करै पीछे शिव पार्वती का पूजन कर यथाशक्ति ब्राह्मण दम्पतियों को भोजन कराय ताम्बूल और दक्षिणा देवै और लाल रङ्ग की सुशील सुन्दर सुवर्णश्रृंगी रौप्यखुरी कांस्य के दोहन पात्र सहित घण्टासे अलंकृत वस्त्रसे ढकी हुई बहुत दूध देने हारी सवत्सा गो जूता खड़ाऊँ छतुरी अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ और दक्षिणा गुरुके अर्पण करै और शिव पार्वतीके आगे प्रणामकर गुरुके चरणों में भी नमस्कार करै इस भांति इस व्रत को समाप्त करै जो स्त्री अथवा पुरुष इस व्रतको करै वह दिव्य विमानमें बैठ गन्धर्वलोक यक्षलोक और देवलोक में जाता है वहां बहुत काल उत्तम भोग भोगकर भूमिपर जन्म लेवै और बड़ा प्रतापी राजा होय वह स्त्री उसकी पटरानी होय जिस भांति

शिवजीके साथ पार्वती इन्द्रके साथ शची वशिष्ठके साथ अरुन्धती विष्णुके साथ लक्ष्मी और ब्रह्माके साथ सदा सावित्री रहती हैं इसी भांति वह नारी भी जन्म २ में अपने पतिके साथ सुख भोगै इस व्रत को करनेहारी नारी कभी पति से वियुक्त नहीं होती और पुत्र पौत्र आदि सब वस्तु पाती है यह आनन्तर्य व्रत हमने अति गोप्य आपको कहा आपने भी भक्त और विनीत को यह व्रत कहना इस अनंतादि तृतीया को जो स्त्री भक्ति से करती हैं वे किसी काल में भी पति पुत्र बन्धु धन और सौभाग्य से वियुक्त नहीं रहती हैं।

छब्बीसवां अध्याय।

अक्षयतृतीया का फल और विधान।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! बहुत कहनेसे क्या फल है केवल वैशाखशुक्ल तृतीया काही आप माहात्म्य श्रवण करैं उस दिन स्नान दान तप होम स्वाध्याय तर्पण आदि जो कर्म करो सब अक्षय होता है सत्ययुगका आरम्भ इसी दिन हुआ है इससे युगादि तृतीया भी इसको कहते हैं शाकल नगर में प्रिय और सत्य बोलनेहारा देवब्राह्मणपूजक और धर्मात्मा धर्म नामक एक वणिक् था उसने एक दिन कथा में श्रवण किया कि रोहिणी नक्षत्र और बुधवार करके युक्त वैशाखशुक्ल तृतीया को जो दान देवै वह अक्षय होता है यह सुन उसने अक्षयतृतीया के दिन गंगा में पितरों का तर्पण किया और जल के भरे घट अन्न सत्तू दही चना गेहूँ गुड़ खांड़ आदि इक्षुविकार और सुवर्ण ब्राह्मणों को दिया उसकी भार्या निषेधभी करती परन्तु वह अक्षयतृतीया को अवश्य ही दान करता कुछ काल के अनन्तर उसका देहांत भया तब वह कुशावती नाम नगरी में जन्म ले वहां का राजा बना उसके ऐश्वर्य और धनका अन्त नहीं था बड़ी २ दक्षिणावाले

यज्ञ किये ब्राह्मणों को गौ भूमि सुवर्ण आदि दिन राति देता रहता परन्तु उसके धन का क्षय न भया यह अक्षयतृतीया को जो उसने प्रथमजन्म में दान दिया था उसका फल है हे महाराज! इस तृतीया का फल अक्षय है अब हम इसका विधान वर्णन करते हैं सब रस अन्न शहद करके युक्त जलकुंभ पितरों की तृप्ति के लिये ब्राह्मणों को देवै और भांति २ के फल छत्र जूता आदि ग्रीष्मऋतु में उपयुक्त सामग्री अन्न गो भूमि सुवर्ण वस्त्र आदि जो जो पदार्थ अपने को प्रिय और उत्तम होयँ सब ब्राह्मणों को देने चाहियें यह अतिरहस्य हमने आपसे कथन किया है इस तिथिको किये हुये कर्म का क्षय नहीं होता इसलिये इसका नाम मुनियों ने अक्षयतृतीया रक्खा है।

सत्ताईसवां अध्याय।

अंगारकचतुर्थी का विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! परमगुह्य आप श्रवण कीजिये जो हमने वनमें भी आपको पूर्वसमय में नहीं कहा वह अब कहते हैं शिव पार्वती के रति के समय एक रुधिर बिन्दु भूमि पर गिरा उसको बड़े यत्न से भूमि ने धारण किया उसीसे भौमनामक कुमार उत्पन्न भया शिवजी के अंग से उत्पन्न भया इससे अंगारक कहाया सौभाग्य सुख आदि देने से उसका नाम मंगल रक्खा चतुर्थी के दिन जो स्त्री अथवा पुरुष इसका पूजन करैं वे रूप धन और सौभाग्य पाते हैं अब हम स्नान होम आदि सहित इस व्रत का विधान कहते हैं पाहिले संकल्प कर (त्वं मृदे विहिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल। तेन मे दह पापौघं यन्मया पूर्वसंचितम्) इस मन्त्र से जल में स्थित मृत्तिका ग्रहण करै और यह मन्त्र पढ़ता हुआ सूर्यनारायण को दिखावै (आदित्यरश्मिसंतप्तां गङ्गाजलविलोलिताम्। तामिमां शिरसि प्रोक्ष्ये पूर्वं सर्वाङ्गसन्धिषु)

पीछे मृत्तिका को सर्वांग में लगाकर (त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवरक्षसाम् । स्वेदजोद्भिज्जयोनीनां रसानां पतये नमः ॥ स्नातोहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च । नदीषु देवखातेषु सुस्नातं तेषु मे भवेत्) इन मन्त्रों को पढ़ स्नान करै (त्वं दूर्वे मृतजन्मासि सर्वदेवैश्च वन्दिता । वन्दिता दह तत्सर्वं यन्मया दुष्कृतं कृतम्) इस मन्त्र से दूर्वा को स्पर्श करै (अक्षिस्पन्दं भुजस्पन्दं दुःस्वप्नं दुर्विनीतकम् । शत्रूणां च समुत्थानमश्वत्थं शमयस्व मे) इस मन्त्र से अश्वत्थ को स्पर्श करै (सर्वदेवमये देवि देवैस्त्वं सुपूजिता । तस्मात्स्पृशामि वन्दामि वन्दिता पापहा भव) इस मन्त्र को पढ़ गौ को स्पर्शकर प्रदक्षिणा करै तो सम्पूर्ण पृथिवी की प्रदक्षिणा का फल पावै पीछे घरमें आय हाथ पांव धोय आचमन कर भौमका पूजन कर (शर्वाय शर्वपुत्राय पार्वत्या गोसुताय च । कुजाय लोहिताङ्गाय ग्रहेशाङ्गारकाय च) इस मन्त्र करके खदिर की समिधा घृत दुग्ध तिल यव और भी अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्यों से हवन करै इस भांति से हवन कर रत्न सुवर्ण कृष्ण अगुरु चन्दन अथवा और किसी उत्तम काष्ठ की भौम प्रतिमा बनाय सुवर्ण के चांदी के अथवा गुड़ सहित ताम्र के पात्र में स्थापन कर रक्तचन्दन रक्तपुष्प धूप दीप नैवेद्य फल और रक्तवस्त्र करके भक्तिसे भौम का पूजन करै कई मनुष्य मृत्तिका के पात्र में स्थापन करके भी पूजन करते हैं इस विधि पूजा कर आठ पुष्पांजलि देवै ॥ ॐ अङ्गारकाय नमः शिरसि ॐ कुजाय नमः वदने ॐ भौमाय नमः स्कन्धयोः ॐ मङ्गलाय नमः उरसि ॐ क्रूराय नमः कट्याम् ॐ आराय नमः जङ्घयोः ॐ लोहिताङ्गाय नमः गुल्फयोः ॐ महीनन्दनाय नमः पादयोः इन आठ मन्त्रों से आठों अंगों में पुष्पांजलि देकर घृत गुग्गुलु सहित अगुरु का धूप देकर पूर्वोक्त रीति से हवन करै

पीछे भोजन वस्त्र और दक्षिणा सहित वह मूर्ति ब्राह्मण को देवै इस कर्म में वित्तशाठ्य न करै फिर (सर्वौषधिरसोपेते सर्वदा सर्वदायिनि। अचले भोक्तुकामोहं तद्भुक्तममृतं भवेत्) यह मन्त्र पढ़ भूमिपर अन्न रख आपभी भोजन करै इतना सुन राजा युधिष्ठिर बोले कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! भौमवारयुक्त चतुर्थी को नक्तव्रत करने से क्या फल होता है यह भी आप वर्णन करैं श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! धन-हीन पुरुष इस अंगारकचतुर्थी का व्रत कर भक्ति से भौम का पूजन करै तो अवश्य ही धन पावै और धनवान् इस विधानसे पूजन करै कि उत्तम मंडप बनाय उसके मध्य में वेदीके ऊपर बीस पल सुवर्ण के पात्रमें दश पल अथवा पांच पल सुवर्ण की भौम की मूर्ति स्थापन कर गन्ध पुष्प आदि उपचारों करके भक्ति से पूजन करै इस प्रकार जो पूजन करै वह देह के अन्त में दिव्य विमान पर चढ़ दिव्य नारियों करके सेवित देव-लोक को जाता है वहां छत्तीस चतुर्युग पर्यन्त निवास कर पृथ्वी पर जन्मले बड़ा प्रतापी और दानी राजा होता है और जो स्त्री इस पूजन को करै वह रूप सौभाग्य पुत्र पौत्र आदि युक्त होकर चिरकाल अपने पति के साथ भोग करै और अन्त में स्वर्गवास पावै हे महाराज ! यह देवताओं को भी दुर्लभ अंगारकचतुर्थी का रहस्य आपको कहा है इस चतुर्थी को जो देवपूजन पितरों को पिण्डदान और भक्ति से भौम का पूजन करैं वे सब उत्तम फल पाते हैं।

अट्ठाईसवां अध्याय।

गणपति करके उपद्रुत पुरुष के लक्षण और गणपतिके अभिषेक का विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! मनुष्य कार्यों का आरंभ करते हैं परन्तु वे कार्य प्रायः सिद्ध नहीं होते बीच में ही विघ्न होजाता है इसमें क्या कारण है आप

कथन करैं यह राजा का प्रश्न सन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! शिवजी ने और ब्रह्माजी ने लोकों के कार्य सिद्धि के अर्थ विनायक को नियुक्त किया है और गणों का स्वामी बनाया विनायक करके उपद्रुत अर्थात् जिस पर विनायक का कोप होय उस पुरुष का हम लक्षण वर्णन करते हैं आप सुनें विनायक करके उपसृष्ट पुरुष स्वप्न में तैल के बीच डूबता है मुंडे मूड़के और कषाय वस्त्रधारी पुरुषों को देखता है ऊंट गर्दभ श्वान आदि जीवों पर चढ़ता है चाण्डालों के साथ गमन करता है चलता हुआ अपने पीछे किसी दूसरे को आते देखता है उदास रहता है विना कारण दुःखी होता है राक्षसों करके वेष्टित अपने को देखता है करवीर की माला पहिनता है गणपति करके उपद्रुत राजा राज्य नहीं पाता कुमारी को पति नहीं मिलता गर्भिणी के सन्तान नहीं होती श्रोत्रिय आचार्यत्व को नहीं प्राप्त होता शिष्य अध्ययन नहीं करता व्यापारी को लाभ नहीं होता और खेती करनेहारे की खेती निष्फल होती है इस दोष के निवृत्त करने के अर्थ श्वेत सरसों का उपटना लगाय पूर्वाह्ण में सर्वौषधि और सर्व गन्ध से शिरको धोय स्नान करै इस प्रकार गुरुवारयुक्त शुक्ल चतुर्थी को स्नान कर उत्तम आसन पर बैठ चारों वेद जाननेहारे ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराय शिव पार्वती स्कन्द भौम राहु और गणेश का पूजन करै अश्वस्थान गजस्थान बल्मीक नदीसंगम और ह्रद से मृत्तिका लाकर कुम्भमें डालै और गोरोचन तथा गुग्गुल भी उस जलमें डालै पीछे लाल बैलको चर्म बिछाय उसपर सिंहासन रख उसपर गणपति स्थापन कर इन मन्त्रों से अभिषेक करै (ॐसहस्राक्षं शताधारमृषिभिः पापहस्ततः। तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानाःपुनन्तु ते १ भगन्ते वरुणो राजा

भगमिन्द्रो बृहस्पतिः। भगं सूर्यश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो विदुः२ यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि। ललाटे कर्णयोरक्णो-रापस्तद्घ्नन्तु सर्वदा ३) इस प्रकार अभिषेक कर चतुष्पथ में कुशा बिछाय उसके ऊपर चावल भात मांस पुष्प गन्ध तीनप्रकार की सुरा मूली पूरी अपूप खीर दही फल पत्र मोदक आदि रख मितसमित शालकंटकट और सपुत्र कूष्मांडको स्वाहान्त नाम मन्त्र से बलि देवै पीछे नमस्कार कर इनका विसर्जन करै फिर विनायककी माता श्रीजगदम्बाको दूर्वा और सर्षपयुक्त अर्घ्य देकर पुष्पांजलि देवै यह सब कर्म शुक्ल वस्त्र शुक्ल गन्ध और शुक्ल पुष्पमाला से अलंकृत होकर करै इसभांति पूजनआदि कर ब्राह्मण भोजन कराय दो वस्त्र और दक्षिणा गुरु को देवै इस विधि से विनायक और ग्रहों का पूजन करै तो सब कार्य सिद्ध होयँ विघ्न निवृत्त होयँ लक्ष्मी प्राप्त होय इसी भांति सूर्य-नारायण का पूजन करने से भी सब फल प्राप्त होते हैं यह विनायक के अभिषेकका विधान हमने कहा है जो पुरुष इसको भक्तिसे करैं उनके सब अभीष्टकार्य सिद्ध होते हैं और सम्पूर्ण विघ्न भी निवृत्त होते हैं।

उनतीसवां अध्याय।

विघ्नविनायक चतुर्थीका विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! अब हम ऐसा व्रत कहते हैं जिसके करने से सब विघ्न निवृत्त होयँ फाल्गुनमास की चतुर्थीको यह व्रत ग्रहण करै नक्तव्रत रखकर तिलों से पारण करै तिलोंका हवन करै और तिलही ब्राह्मण को देवै (शूराय स्वाहा वीराय स्वाहा गजाननाय स्वाहा लम्बोदराय स्वाहा एकदंष्ट्राय स्वाहा) इन मन्त्रों से पूजन और हवन करै इसप्रकार चार महीने व्रत कर सोनेकी गणपतिकी मूर्ति बनाय पूजा कर ब्राह्मण को देवै और खीरके भरे चार ताम्रपात्र और एक तिलपूर्ण

पात्र भी गणपति के साथ देवै धनहीन होय तो मृत्तिकाकाही पात्र देवै और चांदीकी प्रतिमा बनावै इस प्रकार जो व्रत करै वह सब विघ्नों से मुक्त होता है और अन्त में रुद्रपुरको जाता है यह वराहभगवान् का वचन है जो चतुर्थी के दिन केवल कृष्ण तिलोंसे भी गणनाथ का अर्चन करै उसके सब विघ्न दूर होते हैं।

तीसवां अध्याय

शान्तिव्रतका विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं अब हम शान्तिव्रत कहते हैं जिसके करने से गृहस्थों को सब प्रकार की शान्ति होय कार्त्तिकशुक्ल पंचमीसे लेकर एक वर्ष पर्यन्त अम्ल अर्थात् खटाई न खाय और नक्तव्रत कर शेषनाग के ऊपर स्थित भगवान्‌का पूजन करै पीछे अनन्ताय नमः (पादौ) धृतराष्ट्राय नमः (कटिम्) तक्षकाय नमः (उदरम्) कर्कोटकाय नमः (उरः) पद्माय नमः (कर्णौ) महापद्माय नमः (भुजौ) शङ्खपालाय नमः (वक्षः) कुलिकाय नमः (शिरः) इन मंत्रों से इन २ अङ्गों में भगवान् के पूजन करै पीछे मौनसे भगवान् को दुग्ध करके स्नान कराय दुग्ध और तिलोंका हवन करै वर्ष पूरा होने पर सुवर्णकी नारायणप्रतिमा और शेषनाग बनवाय उनका पूजन कर ब्राह्मणको देवै और सवत्सागौ पायस से पूर्ण कांस्यपात्र दो वस्त्र और सुवर्ण भी ब्राह्मणको देवै पीछे ब्राह्मण भोजन कराय व्रत समाप्त करै इस व्रतको जो करै उसके सब प्रकारकी शान्ति होय और नागोंका भय भी कभी न होय।

इकतीसवां अध्याय।

सरस्वतीव्रतका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि मधुरवाणी विद्यामें अति कुशलता सौभाग्य दीर्घ आयुष् और स्त्री पुरुष का अवियोग कौनसे व्रतके करनेसे होता है यह आप कथन करैं यह राजा

का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! बहुत उत्तम बात आपने पूछी अब हम सारस्वतव्रतका विधान कहते हैं जिसके कीर्तनमात्रसे भी सरस्वती प्रसन्न होती हैं पंचमी आदित्यवारके दिनसे व्रतका आरम्भ करै उस दिन भक्तिसे स्वस्तिवाचन कराय गायत्रीका पूजन करै शुक्लगंध शुक्लमाला और श्वेत वस्त्र आदिसे पूजाकर हाथ जोड़ (यथा न देवि भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः । त्वां परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ॥ वेदशास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकं च यत् । न हीनं च त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥ लक्ष्मी मेधा वरा तुष्टिर्गौरी पुष्टिः प्रभावती । एताभिः पाहि तनुभिरष्टभिर्मां सरस्वति) इन मन्त्रों से प्रार्थना करै और गायत्री का ऐसा ध्यान करै कि श्वेत वस्त्र पहिने वीणा अक्षमाला कमण्डलु और पुस्तक चारों भुजाओं में धारे सब भूषणों से भूषित है इस विधि पूजन कर मौनसे रात्रि को भोजन करै और प्रत्येक पंचमीको सुवासिनी का पूजन कर सेर भर चावल घृत पात्र दुग्ध और सुवर्ण उसको देवै और यह कहै कि (गायत्री प्रीयताम्) सायङ्कालके समय मौन से रहै इस भांति तेरह महीने व्रत करै पीछे श्वेत भात और दही आदि से ब्राह्मण भोजन कराय दो श्वेत वस्त्र सवत्सागौ चन्दन तन्दुल आदि ब्राह्मणको देवै और गुरुका पूजन करै वित्तशाठ्य न करै इस विधि से जो पुरुष सारस्वतव्रत करै वह विद्वान् धनवान् कवि और मधुरकण्ठ होताहै और तीन अयुत कल्प पर्यन्त ब्रह्मलोक में निवास करता है जो इस व्रत के माहात्म्य को पढ़ै अथवा सुनै वह इतना काल विद्याधरलोक में रहता है और स्त्री भी इस व्रत को करनेसे सब फल पाती हैं ।

बत्तीसवां अध्याय।

नागपंचमी के व्रतका विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! पंचमीतिथि नागों को प्रिय है उस दिन नागलोकमें बड़ा उत्सव होता है जो उस दिन नागों का पूजन करै उसको वासुकि तक्षक कालिय मणि-भद्र धृतराष्ट्र ऐरावत कर्कोटक धनंजय आदि नाग अभय देते हैं और पंचमीके दिन जो दुग्ध से नागोंको स्नान करावै उसके कुलमें सर्पभय नहीं होता माता के शाप से नाग दग्ध होनेलगे तब दुग्ध से उनकी दाह शान्ति भई इसीसे उनको दुग्ध स्नान प्रिय है इतना सुन राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! माता ने नागों को क्यों शाप दिया और शाप मोक्ष क्योंकर हुआ राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज! समुद्र मथन के समय अतिशुक्ल वर्ण उच्चैःश्रवा नाम अश्व निकला उसको देख गरुड़ की माता विनता ने अपनी सपत्नी नागों की माता कद्रू से कहा कि देखो यह अश्व कैसा श्वेत है तब कद्रू बोली कि श्वेत तो नहीं मुझे कृष्ण देख पड़ता है विनता ने कहा कि जो तू इस अश्व में एक बाल भी कृष्ण दिखला देवै तो मैं तेरी दासी होजाऊँ और मैं तुझे श्वेत दिखादूँ तो तू मेरी दासी होजा इस प्रकार प्रण करके दोनों अपने २ स्थान को गईं कद्रूने अपने पुत्र नागों को बुलाकर कहा कि तुम कृष्णवर्ण के बाल होकर अश्व के शरीर में स्थित होजाओ जिससे मैं विनता को दासी बनाऊँ यह माता का वचन सुन नाग बोले कि हे माता! यह अधर्म हम नहीं करते यह पुत्रोंका वचन सुन क्रोध कर कद्रू ने शाप दिया कि जनमेजय राजा सर्पयज्ञ करैगा उसमें तुम दग्ध होजाओगे यह माता का शाप सुन दुःख से वासुकि-नाग मूर्च्छित होगया तब उसको सांत्वन कर ब्रह्माजी, ने

कहा कि हे वासुकि ! शोक मत कर हमारा वचन सुन यह जरत्कारु नाम तेरी बहिन है इसको बड़े तपस्वी जरत्कारु मुनि को विवाह देना इनसे आस्तीक नामक पुत्र उत्पन्न होगा वह राजा जनमेजय को अपने वचनों से प्रसन्न कर सर्पों को भय देनेहारे यज्ञको निवारण करैगा इसलिये अति रूपवती यह अपनी भगिनी जरत्कारु मुनि को दो और भी जो कुछ मुनि कहैं उसको विना विचारे अङ्गीकार करो इसीमें तुम्हारा कल्याण है यह ब्रह्माजी का वचन सुन नाग बड़े हर्ष को प्राप्त भये यह ब्रह्माजी का वरदान पञ्चमी तिथि को भया और आस्तीक ने भी सर्पसत्र पञ्चमी को निवारण किया इस कारण पञ्चमी नागों को अति प्रिय भई पञ्चमी के दिन नागों का पूजन करै पीछे ब्राह्मण भोजन कराय आप भी अपने मित्र बन्धु भृत्य आदि सहित भोजन करै प्रथम मधुर भोजन करै इस व्रत को करनेहारा पुरुष मरने के अनन्तर विमान में बैठ नागलोक को जाता है वहां बहुत काल सुख भोगकर पांच जन्मतक बड़ा प्रतापी आधि व्याधि रहित सब सम्पत्तियों करके युक्त राजा होता है इसलिये घृत दुग्ध आदि करके अवश्य नागों का पूजन करना चाहिये इतना सुन राजा युधिष्ठिर पूछतेभये कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! जिसको सर्प काटै और वह मृत्युवश होजाय फिर किस गति को प्राप्त होता है यह आप कथन करें। तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि महाराज ! वह पुरुष नीचे जाय निर्विष सर्प होता है फिर राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि जिसके माता पिता भ्राता बहिन पुत्र कन्या आदि कोई सर्प के काटने से मृत हुये हों वह उनके उद्धार के लिये कौन उपाय करै यह आप कहैं। यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! भाद्रशुक्ल पञ्चमी से व्रत का आरम्भ करै चतुर्थी

के दिन एकभक्त कर पञ्चमीं को नक्तव्रत करै और नागों का पूजन करै सुवर्ण अथवा चांदी का पञ्च फणायुक्त नाग बनाय करवीर कमल चमेली आदि पुष्प धूप भांति भांतिं के नैवेद्यों से उसको पूजे पीछे घृत पायस और मोदक ब्राह्मण को भोजन करावै इसविधि प्रतिमास की शुक्लपंचमी को व्रत करै और अनन्त वासुकि शंख पद्म कंबल कर्कोटक अश्वतर धृतराष्ट्र शंखपाल कालिय तक्षक और पिङ्गल इनका बारह महीनों में क्रम से पूजन करै वर्षभर व्रत करके ब्राह्मण भोजन करावै और इतिहासवेत्ता को सुवर्ण का नाग वस्त्र और सवत्सा गौ देकर व्रत समाप्त करै। इस व्रत को जो करै उसके वंशमें जो सर्पदष्ट होकर मृत हुआ हो वह सद्‍गति को प्राप्त होता है जो इस विधान को केवल श्रवणही करै उसके भी कुटुम्ब में सर्पभीति नहीं होती और जो पुरुष भाद्रशुक्ल पंचमी को रंग से कृष्णवर्ण के नाग लिखकर गन्ध पुष्प घृत गुग्गुल के धूप और पायस आदि नैवेद्य से उनका पूजन करते हैं उनके ऊपर तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं और उनके कुलमें सर्पका भय नहीं होता आश्विनकी पंचमी को कुशाके नाग बनाय इन्द्राणी सहित उनका पूजन करै घृत जल और दुग्ध करके उनको स्नान कराय दुग्ध और गोधूमसे बने पक्वान्नका नैवेद्य लगावे और नक्तव्रत करै उसके ऊपर शेष आदि महानाग प्रसन्न होकर सब प्रकारकी शान्ति करते हैं और उत्तम लोकको प्राप्त होता है यह पंचमीकल्प हमने वर्णन किया जहां यह पढ़ाजाय वहां सर्पभय नहीं होता।

तेंतीसवां अध्याय।

श्रीपंचमी के व्रतका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! व्रत होम

तप जप नमस्कार आदि जिस कर्म के करने से स्थिरलक्ष्मी प्राप्त होय उसका आप वर्णन करैं। यह राजाका वचन सुन श्रीकृष्णभगवान् कहनेलगे कि हे महाराज ! प्रथम भृगुमुनि की कन्या लक्ष्मी भई और विष्णुभगवान् ने उस कमललोचना गजगामिनी भामिनी को अति रूपवती देख अपने साथ उसका विवाह किया वह भी भगवान् को वर पाय अपने को कृतार्थ मानती भई और सम्पूर्ण जगत् लक्ष्मी के कटाक्षपातसे आनंदित होता भया प्रजामें क्षेम और सुभिक्ष रहने लगा सब उपद्रव शान्त होगये ब्राह्मण हवन करने लगे देवता हवि भोजन करते थे राजा चारों वर्णों का पालन प्रसन्नतापूर्वक करते थे देवता बड़े बड़े आनन्द में थे यह देख विरोचन आदि दैत्य लक्ष्मीप्राप्तिके लिये तप करनेलगे और अति उत्तम आचरण और धर्म में प्रवृत्त भये कुछ काल के अनन्तर देवताओं को लक्ष्मी का मद होगया और शौच आचार सब त्याग दिया तब देवताओं को सत्य शील आदिसे हीन देख लक्ष्मी दैत्यों के समीप चलीगई और देवता श्रीहीन भये परन्तु लक्ष्मी के प्राप्त होते ही दैत्यों को भी बड़ा गर्व हुआ कहनेलगे कि हमहीं देवता हैं हम यज्ञ हैं हम ब्राह्मण हैं सम्पूर्ण जगत् हमारा रूप है ब्रह्मा विष्णु इन्द्र चन्द्र आदि हम हैं इस प्रकार अति अहङ्कारयुक्त हो नाना प्रकार के अनर्थ करने लगे । तब लक्ष्मी व्याकुल होकर दैत्योंको भी त्याग क्षीरसागर में प्रवेश करती भई क्षीरसागर में लक्ष्मी के प्रवेश करजाने से सारा जगत् श्रीहीन अति मलिन होगया उस समय इन्द्र ने बृहस्पति से पूछा कि महाराज कोई ऐसा व्रत बतावैं जिसके करने से लक्ष्मी प्राप्त होय और फिर त्याग न करै अपने इष्टमित्रों के उपभोग में आवै लक्ष्मी पायकर भी कन्या की भांति उसका पालन न

करना पड़े क्योंकि जिस लक्ष्मी को अपने मित्र बन्धु भृत्य आदि न भोगें वह वृथा है यह इन्द्र का वचन सुन बृहस्पति कहने लगे कि हे इन्द्र ! यह अतिगुप्त श्रीपंचमी का व्रत आप को हम उपदेश करते हैं जो हमने आज तक किसी को नहीं बताया इस व्रत को तुम करो तो तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होय इतना कह बृहस्पति ने सरहस्य श्रीपंचमी व्रत का विधान इन्द्र को उपदेश किया इन्द्र उस व्रत को करने लगा और सब देवता दैत्य दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस सिद्ध विद्याधर नाग ब्राह्मण और ऋषि भी इन्द्र को व्रत करते देख व्रत करने लगे कोई सात्त्विक भाव से कोई राजस से और कोई तामस भाव से व्रत करते थे कुछ काल के अनन्तर व्रत समाप्त कर उत्तम बल और तेज पाकर सबने विचार किया कि समुद्र को मथन कर लक्ष्मी और अमृत को ग्रहण करें यह विचार परस्पर कर मन्दर पर्वत को मथान और वासुकिनाग को नेता बनाय समुद्र मथन करने लगे मथन करते २ पहिले अति उज्ज्वल चन्द्रमा निकला पीछे थोड़े काल के अनन्तर लक्ष्मी का प्रादुर्भाव भया लक्ष्मी के कटाक्ष परतेही सब देवता और दैत्य अपने २ स्वरूप को प्राप्त हो परम आनन्द को प्राप्त भये इन्द्र ने राजस भाव से व्रत किया था इसलिये त्रिभुवन का राज्य पाया और दैत्यों ने तामस भाव से किया इसलिये ऐश्वर्य पाकर भी ऐश्वर्य हीन हो गये हे महाराज ! इस भांति इस व्रत के प्रभाव से श्रीहीन जगत् फिर श्रीयुक्त हुआ इतना सुन राजा युधिष्ठिर बोले कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! यह व्रत किस विधि से किया जाता है और कब से इसका प्रारम्भ होता है यह आप वर्णन करें यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! मार्गशीर्ष की शुक्ल पंचमी को यह व्रत करना चाहिये पहिले प्रभात उठ शौच दन्तधावन आदि कर व्रत के नियम

धारण करै पीछे नदी पर जाय अथवा अपने घर में ही स्नानकर दो वस्त्रधार देवता और पितरों का पूजन तर्पणकर घर में आय लक्ष्मी का पूजन करै पहिले सुवर्ण चांदी ताम्र काष्ठ अथवा चित्रपट में ही लक्ष्मी की मूर्ति बनावै कमल के ऊपर विराजमान हाथों में कमल पुष्प धारण किये सब भूषणों से अलंकृत कमल-लोचना और दिग्गज जिसको सुवर्ण के कलशों से स्नान करा-रहे हैं इस ध्यान की मूर्ति बनाय सब उपचारों से पूजन कर। चपलायै नमः इस मन्त्र करके पादों का चंचलायै नमः इस करके जानुओं का कमलवासिन्यै ० इस करके कटि का दंठ्यै नमः इस करके नाभि का मन्मथवासिन्यै ० इस करके स्तनों का ललि-तायै ० इस करके दोनों भुजाओं का उत्कण्ठायै ० इस करके कण्ठ का मध्यायै ० इस करके मुखका और श्रियै नमःइस मन्त्र करके शिर का पूजन कर भक्ति से नैवेद्य और भांति २ के फल निवेदन करै पीछे पुष्प और कुंकुम आदि से सुवासिनी का पूजन कर मधुर भोजन उसको कराय प्रणाम कर विजर्सन करै सेर भर चावल और घृत का पात्र ब्राह्मण को देकर (श्रीशः प्रीयताम्) यह कहै इस भांति पूजन कर मौन से भोजन करै प्रतिमास यह व्रत करै और श्रीलक्ष्मी कमला सम्पत् उमा नारायणी पद्मा धृति स्थिति पुष्टि ऋद्धिसिद्धि इनका बारह महीनों में क्रमसे पूजन और कीर्तन करै बारहवें महीने की पंचमी को वस्त्र से उत्तम मण्डप बनाय गन्ध पुष्प आदि से अलंकृत कर उसके मध्य में सब उपकरणों सहित लक्ष्मी की मूर्ति स्थापन करै आठ मोती रेशमी वस्त्र सप्तधातु सप्तधान्य खड़ाऊँ जूता छतुरी अनेक प्रकार के पात्र और भांति २ के भोजन वहां स्थापन कर विधि से लक्ष्मी का पूजन करै पीछे वेदवेत्ता कुटुम्बी और सदा-चार ब्राह्मण को सवत्सा गौसहित यह सब सामग्री देवै और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय सबको दक्षिणा देवै। इस

बिधि से जो श्रीपंचमी का व्रत करै वह अपने इक्कीस कुल सहित लक्ष्मीलोक में निवास करै जो सभर्तृका स्त्री इस व्रतको करै वह रूप सन्तान और धन पावै तथा पतिकी अति प्रिया बनी रहै जो भक्ति से पंचमी का व्रत कर भृगुकी पुत्री और विष्णु भगवान् की प्रिया श्रीलक्ष्मीजी का भक्तिसे पूजन करते हैं वे संसार में चिरकाल तक राज्य आदि सुख भोगकर अन्त में विष्णुलोकके बीच निवास करते हैं।

चौंतीसवां अध्याय।

विशोकषष्ठीव्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! आपके मुखसे पंचमीका विधान सुन चित्त बहुत प्रसन्न हुआ अब आप षष्ठीका विधान वर्णन कीजिये जिसके करने से सब कामना प्राप्त होयँ यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज! हम विशोकषष्ठीका विधान कहते हैं जिसके उपवास करने से मनुष्य को शोक नहीं होता मार्गशुक्ल पंचमीको प्रभात उठ दन्तधावन कर स्नान आदि करै और ब्रह्मचर्य से रहै दूसरे दिन स्नान आदि कर सुवर्ण का कमल बनवाय उसको सूर्यनारायण का स्वरूप मान रक्तचन्दन रक्तकरवीर पुष्प और रक्तवर्ण के दोवस्त्र धूप दीप नैवेद्य आदि से पूजन कर हाथ जोड़ (यथा विशोकभवने त्वमेवादित्यसर्वदा। विशोकं कुरु मां देव भक्तं जन्मनि जन्मनि) इस मन्त्र से प्रार्थना करै इस विधि पूजन कर ब्राह्मण भोजन कराय गोमूत्र प्राशन करै और गुड़ अन्न उत्तम दो वस्त्र और सुवर्ण ब्राह्मणको देकर सप्तमीको तैल और लवण रहित भोजन मौनसे करै और पुराण श्रवण भी करै इस भांति एकवर्ष पर्यन्त दोनों पक्षोंकी षष्ठीका व्रतकर अन्त में शुक्लषष्ठी को सुवर्ण कमलयुक्त कलश उत्तम शय्या और कपिला गौ

ब्राह्मण को देवै इसमें वित्तशाठ्य न करै इस विधिसे जो व्रत करै वह करोड़ों जन्म तक स्वर्ग में निवास करता है किसी कामना से इस व्रतको करै तो वह कामना सिद्ध होती है और निष्काम होकर करै तो मोक्षप्राप्ति होय जो इस रोगविनाशिनी षष्ठी का एकबार भी उपवास करै वह कभी दुःखी नहीं होता और चन्द्रलोक में निवास करता है।

पैंतीसवां अध्याय।

कमलषष्ठी का विधान और फल।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज! और भी हम कमल-षष्ठी नाम व्रत का विधान कहते हैं जिसका उपवास करने से पुत्रप्राप्ति और ऐश्वर्यवृद्धि होय मार्गशुक्ल पंचमी को नियत व्रत होकर षष्ठी को उपवास करै और सुवर्ण का कमल दो वस्त्र खीर और खंड ब्राह्मण को देवै इसी भांति एक वर्ष-पर्यंत प्रतिषष्ठी को उपोषण करै और भानु अर्क रवि ब्रह्मा सूर्य मुक्र हरि शिव श्रीमान् विभावसु त्वष्टा वरुण इन बारह नामों से क्रम करके बारह महीनों में पूजन करै और भानुर्मे प्रीयताम् इत्यादि वाक्य प्रतिमास दान और पूजन के अन्त में उच्चारण करै व्रत के अन्त में ब्राह्मण मिथुन की पूजा कर वस्त्र भूषण शर्करापूर्ण कलश और सुवर्णका कमल ब्राह्मण को देकर (यथा न विफलाः कामास्त्वद्भक्तानां सदा रवे। तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि) यह मन्त्र पढ़ व्रत समाप्त करै जो इस पद्मषष्ठी के व्रत को करै वह सब पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक में निवास करता है और उसके इक्कीस कुल सद्गति को प्राप्त होते हैं सुरापान आदि महापातक और बड़े बड़े रोग इस व्रत के करने से निवृत्त होते हैं।

छत्तीसवां अध्याय ।

मंदारषष्ठी का विधान और फल ।

श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम सब पाप हरनेहारी और सर्वकामप्रद मंदारषष्ठी का विधान कहते हैं माघशुक्ल पंचमी को स्वल्प भोजन कर नियम से रहै और षष्ठी को उपावास करै ब्राह्मणों का पूजन कर मन्दार अर्थात् आक का पुष्प प्राशन कर रात्रि को शयन करै प्रभात उठ स्नान आदि कर ताम्रपात्र में काले तिलों करके अष्टदल कमल बनाय उसमें सुवर्णकी पद्महस्त सूर्यनारायण की मूर्ति स्थापन कर अर्कपुष्पों से और गन्ध आदि उपचारों से पूजन कर पूर्व आदि दलों में भास्कराय नमः सूर्याय० अर्काय० यज्ञाय० सुधाम्ने० चन्द्रभानवे० कृष्णाय० आनन्दाय नमः इन मंत्रों करके अर्कपुष्पों से पूजन कर मध्यमें (सर्वात्मने पुरुषाय नमः) इस मन्त्रसे पूजन करै इस प्रकार सब उपचार वस्त्र भूषण आदिसे पूजन करै वर्षके अन्त में यही मूर्तिपात्र कलश के ऊपर स्थापन कर वस्त्र सुवर्ण और गौ सहित ब्राह्मणको देवै और यह मन्त्र पढ़ै(नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च। त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात्संसारसागरात्) इस विधि से जो मन्दारषष्ठी का व्रत करै वह सब पापों से मुक्त होकर सुखपूर्वक एककल्प स्वर्ग में निवास करता है और अर्कपुष्पों से सूर्यनारायण का पूजन करै तो सूर्यलोक में निवास करै जो इस विधान को पढ़ै अथवा सुनै वह सब पापों से मुक्त होय मन्दारषष्ठीके दिन तिल रचित कमलकी कर्णिका में मन्दारपुष्पों से सूर्यनारायण का पूजन करने से जो फल प्राप्त होता है वह गौ भूमि सुवर्ण तिल पर्वत आदि के दान करने से भी नहीं मिलता ।

सैंतीसवां अध्याय।

ललिताषष्ठी का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! भाद्र महीने की शुक्लषष्ठी को रूप सौभाग्य और सन्तान कामनावाली स्त्री नदी पर जाय स्नान कर वहां से बांस के पात्रमें बालूरेत लेकर घरमें आय भगवती का पूजन करै उसी पात्रमें तपोवननिवासिनी ललिता गौरी का ध्यान कर सब उपचारों से पूजन करै पीछे चम्पक करवीर तमाल मालती नीलोत्पल केतकी और तगर पुष्प इनमें प्रत्येककी आठ आठ पुष्पांजलि (ललिता लालिता देवी सौभाग्यारोग्यदायिनी । या सौभाग्यसमुत्पन्ना तस्यै देव्यै नमोनमः) इस मन्त्र से देवै इस भांति पूजन कर भांति भांति के पक्वान्न कूष्माण्ड ककड़ी ककोड़े वृंताक बिल्व करंज आदि फल भगवती के आगे रक्खै और धूप दीप वस्त्र भूषण आदि भी समर्पण करै इस विधिसे पूजन कर रात्रि को जागरण कर गीत नृत्य आदि उत्सव करावै चार पहर सावधान होकर जागै जो स्त्री इस रात्रिको नेत्रनिमीलन करै वह दुर्भगा और बन्ध्या होय इस प्रकार जागरण कर सप्तमी को गीत वाद्य सहित मूर्ति को नदी पर लेजाय वहां पूजनकर पूजासामग्री ब्राह्मण को देवै और बालुकामयी मूर्ति को नदी में विसर्जन करै पीछे घर में आय हवन कर देवता पितर और मनुष्यों का पूजन कर कुमारिका और पन्द्रह ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्यों से सन्तुष्ट कर दक्षिणा देवै और (ललिता प्रीतियुक्तास्तु) यह वाक्य कहकर उनका विसर्जन करै इस ललिताषष्ठी के व्रत को जो पुरुष अथवा स्त्री करै उसको संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है इस व्रत के करनेहारे बहुत कालपर्यन्त गौरीलोक में निवास करते हैं।

अरतीसवां अध्याय ।

कुमारषष्ठी का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! मार्गशीर्ष मास की षष्ठी पापहरा और अति कल्याण करनेहारी है उस दिन कार्त्तिकेय ने तारकासुर का वध किया है इसलिये वह षष्ठी स्वामिकार्त्तिकेय को बहुत प्रिय है उस दिन किया हुआ स्नान दान आदि कर्म अक्षय होता है दक्षिण देश में स्थित कार्त्तिकेय का जो उस तिथि को दर्शन करै वह ब्रह्महत्यादि पापों से छूटता है उस दिन उपवास कर कुमार स्वामी के दक्षिण मस्तक पर (चन्द्रमण्डलसम्भूता तव रूपञ्च बिभ्रती । कुमार गङ्गाधारेयं पतिता तव मस्तके) इस मन्त्र से धारा पातन करै इस भांति स्नान कराय सूर्यनारायण का पहिले पूजन कर पीछे (देवसेनापते स्कन्द कार्त्तिकेय भवोद्भव । कुमारगुह गाङ्गेय शक्तिहस्त नमोस्तुते) इस मन्त्र से पुष्प धूप नैवेद्य आदि उपचारों से कार्त्तिकेय का पूजन करै दक्षिण देश के फल और मलय का चन्दन भी चढ़ावे पीछे स्वामिकार्त्तिकेय के परमप्रिय छाग कुक्कुट और मयूर इनका प्रत्यक्ष पूजन करै अथवा सुवर्ण के बनाकर पूजै और कार्त्तिकेय के समीप ही कृत्तिकाशकट की पूजा करै पीछे पूर्वोक्त नामों करके तिलों से हवन कर एक फल भक्षण कर भूमि में कुशा की शय्या के ऊपर शयन करै नारिकेल मातुलुंग नारंगी पनस जम्बीर दाड़िम द्राक्षा आम्र बिल्व आमलक ककड़ी और केला ये फल क्रम से बारह महीनों में भक्षण करै ये न मिलैं तो जो उस काल में प्राप्त होय वही एक फल खा लेवै प्रभात ही प्रत्यक्ष छाग और कुक्कुट अथवा सुवर्ण के बनवाकर ब्राह्मण को देवै और (सेनानी प्रीयताम्) यह वाक्य कहै । सेनानी शरसम्भूत क्रौंचारि षण्मुख गुह गांगेय कार्त्तिकेय स्वामी बालग्रह छाग-

प्रिय शक्तिधर और कुमार इनका बारह महीनों में क्रम से पूजन करे और इन नामों के अन्त में (प्रीयताम्) यह पद लगाय पूजा के अन्त में उच्चारण करै पीछे ब्राह्मण को भोजन कराय आप भी मौन से भोजन करै वर्ष समाप्त होने पर वस्त्र भूषण आदि से कार्त्तिकेय का पूजन करै होम करै और सब सामग्री ब्राह्मण को देवै इस विधि से जो पुरुष अथवा स्त्री व्रत करैं वे सब उत्तम फल पाय इन्द्रलोक में निवास करते हैं कार्त्तिकेय का सदा पूजन करना चाहिये राजाओं के लिये तो कार्त्तिकेय से अधिक कोई देवता पूज्य नहीं है जो राजा कार्त्तिकेय का पूजन कर युद्ध में जाय वह अवश्य ही जय पावै जो षष्ठी को नक्तव्रत करै वह कार्त्तिकेय के लोक में निवास करता है दक्षिण दिशा में जाय जो भक्ति से कार्त्तिकेय का दर्शन और पूजन करै वह शिवलोक को जाता है जो सदा कार्त्तिकेय का आराधन करै वह बहुतकाल स्वर्गसुख भोग भूमि पर जन्म ले चक्रवर्ती राजा का सेनापति होता है।

उनतालीसवां अध्याय।

विजयसप्तमी का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछतेहैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! सप्तमी का क्या विधान है उसका आप वर्णन करैं आपके मधुर वचन सुनते सुनते हमको तृप्ति नहीं होती यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! शुक्लपक्ष की सप्तमी जो आदित्यवार युक्त होय उसको विजयसप्तमी कहते हैं उस दिन किया हुआ स्नान दान जप होम उपवास आदि कर्म अनन्त फलदायक होता है उस दिन जो फल पुष्प आदि करके सूर्यनारायण की प्रदक्षिणा करै वह सर्वगुणयुक्त पुत्र पाता है पहिली प्रदक्षिणा नारिकेलों करके दूसरी बीजपूरों करके तीसरी नारंगों करके चौथी कदलीफलों करके पांचवीं

कूष्माण्डों करके छठी पके हुये तिन्दुकफलों करके और सातवीं वृन्ताकों करके करै अथवा अष्टोत्तरशत प्रदक्षिणा करै मोती लाल नीलम पन्ना हीरा गोमेद और वैडूर्य करके प्रदक्षिणा करै और भी जो उस कालमें फल मिलैं उन करके प्रदक्षिणा देवै फलसे प्रदक्षिणा करने करके फल प्राप्त होता है प्रदक्षिणाके बीच बैठे नहीं न किसी को स्पर्श करै और न किसी से सम्भाषण करै एकाग्रचित्त हो प्रदक्षिणा करने से सूर्यभगवान् प्रसन्न होते हैं गौके घृतसे वसुधारा देवै और किंकिणी युक्त ध्वज तथा श्वेत छत्र चढ़ावै पीछे गन्ध पुष्प धूप नैवेद्य आदि उपचारों से पूजनकर (भानो भास्कर मार्तण्ड चण्डरश्मे दिवाकर ॥ आरोग्यमायुर्विजयं पुत्रं देहि नमोस्तु ते) यह मन्त्र पढ़ क्षमापन करावै उपवास नक्त अथवा आयाचित व्रत करै इस भांति आदित्यवार युक्त सात सप्तमी व्रत करके सूर्यभगवान् का पूजनकर षडक्षर मन्त्र करके अष्टोत्तरशत हवन करै सुवर्णकी सूर्यप्रतिमा सुवर्णपात्र में स्थापन कर रक्तवस्त्र गौ और दक्षिणासहित (ॐ भास्कर यशस्कर समीहितार्थप्रदो भव नमो नमः) इस मन्त्र से ब्राह्मण को देवै । और भी दान श्राद्ध पितृतर्पण आदि कर्म करै जो राजा जयकी इच्छाकर इस तिथिको यात्रा करै वह अवश्यही जय पावै इसी से इसका नाम विजयसप्तमी है इस व्रतको करनेहारा पुरुष संसार के सब सुख भोग सूर्यलोक में निवास करता है और फिर भूमिपर जन्म लेकर दानी भोगी विद्वान् दीर्घायुष् नीरोग सुखी और बड़ा प्रतापी राजा होता है और स्त्री भी इस व्रतको करै तो सब उत्तम फल पाती है यह विजय सप्तमी स्वर्ग में वास अभीष्ट कामनाकी सिद्धि और विजय देती है और मुनिलोग भी इसको ढूँढ़ते हैं सूर्यभक्तों को तो इसका व्रत अवश्य करना चाहिये ।

चालीसवां अध्याय ।

आदित्यमण्डकदानका विधान ।

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि हे महाराज! अब हम आदित्य मण्डकनाम दानका विधान कहते हैं जिसके करने से सब अशुभ दूर होता है यवचूर्ण अथवा गोधूमचूर्ण में गुड़ और गौका घृत मिलाकर सूर्यमण्डल के समान अतिसुन्दर अपूप बनावै फिर सूर्यभगवान् का पूजनकर उनके आगे रक्तचन्दन का मण्डल लिख उसके ऊपर वह मण्डक धर पीछे ब्राह्मणको बुलाय उसका पूजनकर (आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञी करविनिर्मितम् । श्रेयसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छां कुरु सुव्रत) यह मन्त्रपढ़ रक्त वस्त्र और दक्षिणासहित वह अपूप ब्राह्मणको देवै ब्राह्मणभी उसका ग्रहणकर (कामदं धनदं धर्म्यं पुत्रदं सुखदं तव। आदित्यप्रीतये दत्तं प्रतिगृह्णामि मण्डकम्) यह मन्त्र पढ़ै इस प्रकार विजयसप्तमी को मण्डक दान करै और सामर्थ्य होय तो नित्यही सूर्यनारायणकी प्रीतिके लिये मण्डक देवै इस विधि जो मण्डक दान करै वह सूर्यनारायण के अनुग्रह से राजा होता है।

इकतालीसवां अध्याय ।

वर्ज्यसप्तमीका विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि और भी सप्तमी व्रत आप कहैं जिसके करने से सब मनोरथ सिद्ध होयँ यह राजाका वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहनेलगे कि हे महाराज! उत्तरायण व्यतीत होने के अनन्तर शुक्लपक्ष में आदित्यवार को सप्तमीव्रत ग्रहण करै और व्रीहि अर्थात् धान तिल यव उड़द मूँग गेहूँ मांस मद्य मैथुन कांस्यपात्र तैलाभ्यंग अञ्जन और शिलापर पिसीहुई वस्तु इन सबका षष्ठी को त्याग करै और देवता मुनि पितर इन सबका तर्पण कर सूर्यनारायण का पूजन करै और घृत युक्त तिल और यवका हवन कर सूर्यनारायण का ध्यान करता

हुआ भूमिपर सोवै ये तेरह द्रव्यों को षष्ठी के दिन त्याग केवल चने दूसरे दिन प्राशन करै इस विधि जो एक वर्ष व्रत करै तो सब मनोवाञ्छित फल पावै।

बयालीसवां अध्याय।

कुक्कुटी व्रत का फल और विधान।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! एकसमय लोमश ऋषि मथुरा में आये वहां हमारे माता पिता ने उनका भक्तिसे पूजन किया मुनिभी प्रसन्न हो अनेक प्रकारकी कथा कहने लगे उसी प्रसंग में हमारी माता से कहा कि हे देवकि! कंसने तेरे बहुत बालक मारदिये इसलिये तू मृतवत्सा होकर अति दुःखभागिनी होगई चन्द्रमुखी भी प्रथम तेरी भांति मृतवत्सा थी परन्तु पीछे व्रत के प्रभाव से जीवत्पुत्रा भई यह मुनि का वचन सुन देवकीने पूछा कि महाराज चन्द्रमुखी कौन थी और क्या व्रत उसने किया था जिससे उसके संतान जीने लगे आप कृपाकर मुझे भी वह व्रत बतावें तब लोमशमुनि कहने लगे कि हे देवकि! अयोध्याका राजा नहुष था उसकी रानी चन्द्रमुखी थी और राजाके पुरोहितकी भार्या से रानीकी बहुत प्रीति थी एक दिन वे दोनों सरयूपर स्नान करने गईं उस समय और भी बहुत सी नगरकी नारी वहां नहाने आई थीं उन सब नारियों ने स्नान कर मण्डल बनाय उसमें शिव पार्वती की प्रतिमा लिख गन्ध पुष्प अक्षत आदि से उनका भक्तिपूर्वक पूजन किया पीछे यथाविधि प्रणाम कर अपने अपने घरको सब नगरकी नारी जानेलगीं तब उनको रानी और पुरोहितानी ने पूछा कि हे नारियो! तुमने यह किसका पूजन किया तब वे स्त्री बोलीं कि शिव पार्वती का हमने पूजन किया है और शिवजी को आत्मा निवेदन कर यह सुवर्णसूत्र हाथ में धारण किया है जब तक प्राण रहैंगे तब तक इसको धारे रहैंगी और शिव पार्वती का पूजन किया करैंगी यह

सुन वे दोनों भी उस व्रत को धारण करती भईं परन्तु उनमें चन्द्रप्रभा व्रतको भूलगई और सूत्र भी न बांधा इसलिये वह मरनेके अनन्तर वानरी भई और पुरोहितानी ने व्रतका उद्यापन नहीं किया इसलिये वह मरकर कुक्कुटी बनी वहां भी उन दोनों की मैत्री रही फिर कुछ कालके अनंतर दोनों मृत्युवश भईं उनमें चन्द्रप्रभा पृथ्वीशनाम राजाकी मुख्य रानी और पुरोहितानी उसी राजाके पुरोहितकी भार्या हुई रानी का नाम ईश्वरी और पुरोहित स्त्री का नाम भूषणा था भूषणा जातिस्मरा और उत्तम पुत्रों करके युक्तभई ईश्वरीके बहुत काल में एक पुत्र उत्पन्न भया वह भी रोगी था इसीसे थोड़े कालके अनन्तर मरगया तब भूषणा उसको आश्वासन करने आई उसके बहुतसे पुत्र देख ईश्वरीके मनमें बड़ी ईर्षा भई और कुछ कालके अनंतर ईश्वरी ने भूषणाके पुत्र मरवा डाले परन्तु शिवजी के अनुग्रहसे वे मरकर भी फिर जी उठे तब ईश्वरी ने भूषणासे कहा कि हे सखि! तैंने ऐसा कौन पुण्य किया है जिससे मरेहुये भी तेरे पुत्र फिर जी उठते हैं और बहुतसे चिरंजीव पुत्र तेरे उत्पन्न भये सदा तू भूषण पहिने अति शोभित रहती है यह सुन भूषणा कहने लगी कि हे सखि! भाद्रमासकी सप्तमीको स्नान कर मण्डल बनाय उसमें शिव पार्वती का पूजन करै और शिवको आत्मनिवेदन का सूत्र हाथमें धारण कर अथवा चांदी सोनेकी अँगूठी बनाय अंगुलीमें पहिने उस दिन उपवास करै पीछे व्रतका उद्यापन करै तब शिव पार्वतीका मण्डलमें पूजनकर वह अँगूठी ताम्र के पात्र में धर ब्राह्मणको देवै और यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन करावै इस व्रत के करने से सब पदार्थ प्राप्त होते हैं हे सखि! यह व्रत तुमने और मैंने साथही कियाथा परन्तु प्रमादकर तुमने छोड़ दिया इसी से तुम्हारे सन्तान नष्ट होते हैं और राज्य

पाकर भी दुःखी रहतीहो मैंने वह व्रत भक्तिसे पालन किया इससे मैं सब प्रकार सुखी हूँ केवल व्रतोद्यापन मैंने नहीं किया इसलिये एक जन्म मुझे कुक्कुटी बनना पड़ा हे सखि! अब मैं तुमको अपने व्रत का आधा फल देती हूँ तुम ग्रहण करो जिससे सब दुःख दूर होय इतना कह भूषणा ने आधा व्रत का फल ईश्वरी को दिया तब उसके दीर्घायुष् बहुत पुत्र उत्पन्न भये और सब प्रकार का सुख प्राप्त हुआ इतना कह लोमशमुनि बोले कि हे देवकि! तू भी इस व्रत को करै तो सन्तान स्थिर रहै और त्रिलोक का स्वामी तेरा पुत्र होय इतना कह लोमशमुनि अपने आश्रम को जाते भये इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज! यह प्रसंग से हमने व्रत का माहात्म्य कहा है जो स्त्री इस कुक्कुटी व्रत को करें उनको कभी सन्तान का वियोग न होय और अन्त में शिवलोक में प्राप्त होयँ।

तैंतालीसवां अध्याय।

सप्तमीकल्प का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम सप्तमीकल्प का वर्णन करते हैं आप प्रीति से श्रवण कीजिये माघ महीने की शुक्लसप्तमी को अहोरात्र व्रत का संकल्प कर वरुण का पूजन करै और अष्टमी के दिन तिल पिष्ट गुड़ और भात ब्राह्मणों को भोजन करावै तो अग्निष्टोम यज्ञ का फल पावै फाल्गुन शुक्ल सप्तमी को सूर्य का पूजन करै तो वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होय चैत्र में देवासु का पूजन करै तो महादान का फल पावै वैशाख में भानु का पूजन करै तो अभय दान का फल प्राप्त होय ज्येष्ठ में इन्द्र का पूजन करने से अति दुर्लभ वाजपेय यज्ञ का फल मिलता है आषाढ़ सप्तमी को दिवाकर का पूजन कर बहु सुवर्ण यज्ञ का फल प्राप्त होता है श्रावण में लोलार्क का पूजन करै तो सौत्रामणी यज्ञ का

फल पावै भाद्र में शुचिका पूजन करै तो तुलादान का फल पावै आश्विन में सविता का पूजन करने से सहस्र गोदान का फल मिलता है कार्त्तिक में सप्ताश्व को पूजै तो पौण्डरीक यज्ञ का फल पावै मार्ग में रविका पूजन करने से दश राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है पौष में भास्कर का पूजन करै तो नर-मेध यज्ञ का फल पावै इस भांति एक वर्ष व्रत और पूजन कर उद्यापन करै सुन्दर भूमि पर एक हाथ दो हाथ अथवा चार हाथ रक्त चन्दन का मण्डल बनाय उसमें सिंदूर और गेरू का सूर्यमण्डल रक्त चन्दन करवीर कमल आदि रक्त पुष्प और अनेक प्रकार के नैवेद्यों से पूजन कर जल पूर्ण दश कलश स्थापन करै फिर अग्नि संस्कार कर तिल घृत गुड़ और आककी समिधाओं से आकृष्णेन इत्यादि वैदिक मन्त्र करके एक हजार आहुति देवै पीछे द्वादश ब्राह्मणों को रक्त वस्त्र एक एक सवत्सा गौ छतुरी जूता दक्षिणा और भोजन देकर क्षमापन करावै पीछे आप भी मौन से भोजन करै इस विधि से जो सप्तमी व्रत करै वह नीरोग रूपवान् और दीर्घायुष् होता है सप्तमी के दिन उपवास कर सूर्यनारायण का जो पुरुष दर्शन करै वह सब पापों से मुक्त हो सूर्यलोक में निवास करता है यह सप्तमी व्रत अशुभ का नाशकर शरीरा-रोग्य और सूर्यलोक में वास देनेहारा है जो भक्ति से इस व्रत को कर सूर्यनारायण का पूजन करैं वे पुरुष सदा आरोग्य और सुखी रहते हैं और अन्तमें सूर्यलोक में जाय सूर्यनारायण के गण बनते हैं।

चवालीसवां अध्याय।

कल्याण सप्तमी का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! और भी कोई व्रत स्वर्ग आरोग्य और सब प्रकार के सुख देनेहारा कथन करैं

यह राजाका प्रश्न सुन श्रीकृष्णभगवान् कहनेलगे कि हे महाराज ! जिस शुक्लसप्तमी को आदित्यवार होय उसको विजय सप्तमी कहते हैं उस दिन प्रभातही गोदुग्ध से स्नानकर शुक्ल वस्त्र धार अक्षतों करके अति सुन्दर कर्णिका युक्त अष्टदल कमल लिखै पीछे पूर्वादि आठों दलों में क्रम से तपनाय नमः मार्तण्डाय नमः। विवस्वते नमः। भगाय नमः। वरुणाय नमः। भास्कराय नमः। अरुणाय नमः। रवये नमः। इन मन्त्रों करके पूजनकर कर्णिका में परमात्मने नमः। इस मन्त्र से सब उपचारों करके पूजन कर शुक्ल वस्त्र फल भक्ष्य पुष्पमाला अनुलेपन गुड़ और लवण करके नमस्कारान्त नाम मन्त्रों से स्थण्डिल के ऊपर पूजा करै पीछे व्याहृति होम कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय सुवर्ण सहित तिलपात्र गुरुकी भेंट करै पीछे आपभी पायस भोजन करै इस भांति एक वर्ष यह व्रत कर सूर्यनारायण का पूजन करै और जल का कुम्भ घृतपात्र सुवर्ण वस्त्र भूषण और सवत्सा गौ दरिद्री ब्राह्मण को देवै जो इस कल्याण सप्तमी व्रतको करै अथवा इसके माहात्म्यको पढ़ै और सुनै वह सब पापों से मुक्तहो सूर्यलोक में निवास करता है।

पैंतालीसवां अध्याय।

शर्करासप्तमीका विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम शर्करा सप्तमी का विधान कहते हैं जिसके करने से आयुष् आरोग्य और ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है वैशाख शुक्ल सप्तमी को प्रभात ही तिलों से स्नानकर शुक्ल वस्त्र पाहिन स्थण्डिल के ऊपर कुंकुम करके कर्णिका सहित अष्टदल कमल लिखकर पवित्रे नमः इस मन्त्र करके शर्करा पात्र सहित जलपूर्ण कलश स्थापन करै उस कलश को रक्त वस्त्र माला आदि से अलंकृत कर (विश्ववेदमयो यस्माद्वेदकर्तेतिचोच्यते । त्वमेवामृत

सर्वस्वं गतःपाहि सनातन) इस मन्त्र से उसका पूजन करै फिर सूर्यसूक्तका जप करता हुआ दिन रात्रि व्यतीत करै अष्टमी के दिन प्रभात उठ स्नान आदि नित्यक्रिया कर सूर्यनारायण का पूजन करै पीछे वह सब सामग्री वेदवेत्ता ब्राह्मणको देकर शर्करा घृत और पायस करके यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय आप भी तैल लवण रहित भोजन मौनपूर्वक करै इस भांति प्रतिमास व्रत करके वर्ष पूरा होने पर उत्तम शय्या दुग्ध देनेहारी गौ शर्करा पूर्णघट सब गृहस्थ के उपकरणों से युक्त घर और हजार निष्क से एक निष्क पर्यन्त सुवर्ण का बना हुआ अश्व सामर्थ्यानुसार ब्राह्मण को देवै इसमें कभी वित्तशाठ्य न करै सूर्य भगवान् के मुखसे अमृत पान करने के समय जो अमृतबिन्दु गिरे उनसे शाली दुग्ध और इक्षु उत्पन्न भये हैं और शर्करा इक्षुका सार है इसलिये हव्य कव्य में प्रशस्त और सूर्यनारायण को अतिप्रिय अमृतरूप शर्करा है यह शर्करासप्तमीव्रत अश्वमेधके फलको देनेहारा है और सन्तान की वृद्धि इस व्रत से होती है इस व्रतका करनेहारा एक कल्प स्वर्ग में निवास कर मोक्ष को प्राप्त होता है।

छियालीसवां अध्याय।

अचलासप्तमीको स्नानका माहात्म्य और विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! आपने सब उत्तम फल देनेहारा माघस्नान का विधान कहा था परन्तु जो प्रातःस्नान करने को समर्थ न हो वह क्या करै नारी अति सुकुमारी होती हैं वे किस भांति माघस्नान का कष्ट सहसकैं इसलिये आप कोई ऐसा उपाय बतावैं कि थोड़े से परिश्रम से नारियों को रूप सौभाग्य संतान और अनन्त पुण्य प्राप्त होय। यह राजाका प्रश्न सुन श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे महाराज! हम अचलासप्तमी का अतिगोप्य विधान कहते हैं जिसके करने से सब उत्तम फल प्राप्त होते हैं राजा सगर के अति रूपवती

चन्द्रमती नाम वेश्या थी जिसका मनोहर रूप देख कामदेव भी कामातुर होजाय एक दिन वह वेश्या प्रभातही बैठी २ संसार की अनवस्थिति का चिंतन करने लगी कि देखो यह संसार सागर कैसा भयंकर है जिसमें डूबते हुये जीव जन्म मृत्यु जरा आदि जलजन्तुओं करके पीड़ित किसी भांति पार नहीं पाते काल रूप अग्नि सबको पकाता है धर्म काम अर्थ से रहित जो दिन बीत जाते हैं वे वृथा हैं और फिर आते भी नहीं पुत्र घर क्षेत्र धन आदि की चिन्ता में आयुष् पूरा हो जाता है और मृत्यु आ दबाता है। इस भांति अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प करती चन्द्रमती वेश्या वशिष्ठजी के आश्रम में गई वहां वशिष्ठजी को प्रणाम कर हाथ जोड़ प्रार्थना करने लगी कि महाराज मैंने न तो दान दिया न तप जप व्रत उपवास आदि किये और न शिव विष्णु आदि किसी देवताका आराधन किया अब मैं संसार से भीत हो आपके शरण में आई हूँ कोई व्रत आप मुझे उपदेश करैं जिससे मेरा उद्धार हो यह उसका दीन वचन सुन परमदयालु वशिष्ठ मुनि कहने लगे कि हे वरानने! माघशुक्ल सप्तमी को स्नान करो जिससे रूप सौभाग्य सद्गति आदि सब फल प्राप्त होयँ षष्ठी के दिन एक भक्त कर सप्तमी को प्रभात ही जलके तट पर जाय वहां दीपदान कर स्नान करो पीछे यथाशक्ति ब्राह्मण को दान दो इससे तुम्हारा कल्याण होगा यह वशिष्ठजी का वचन सुन अपने स्थान में आय सब स्नान दान आदि विधिपूर्वक करती भई उस स्नान के प्रभाव से बहुत दिन संसारसुख भोग देह त्यागने के अनन्तर इन्द्रकी मुख्य रानी शची बनी यह अचला सप्तमी के स्नान का फल है इतना सुन राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अचला सप्तमी का माहात्म्य तो सुना अब स्नान विधान सुनना चाहते हैं तब श्रीकृष्ण भगवान्

कहने लगे कि हे महाराज ! षष्ठी के दिन एक भक्त कर सूर्य नारायण का पूजन करै सप्तमी को प्रभात ही उठ नदी सरोवर तलाव आदि पर जाकर स्नान करै जब तक कोई पशु पक्षी जलको न हिलावै तब तक ही स्नान करने का फल है सुवर्ण चांदी कांस्य अथवा ताम्र के पात्र में कुसुंभ की रँगी हुई बत्ती और तिलों का तेल डाल दीपक प्रज्वलित कर शिर पर धर हृदय में सूर्यनारायण का ध्यान करता हुआ (नमस्ते रुद्ररूपाय रसानां पतये नमः । वरुणाय नमस्तेस्तु हरिवास नमोस्तु ते) यह मन्त्र पढ़ै पीछे स्नान कर देवता और पितरों का तर्पण करै और चन्दन से कर्णिका सहित अष्टदल कमल लिखकर उसके मध्य में शिवपार्वती का और पूर्व आदि आठों दलों में क्रम से रवि वैश्वानर विवस्वान् भास्कर सविता अर्क सहस्रकिरण और सर्वात्मा का पूजन करै इन नामों के आदि में प्रणव और अन्त में नमः पद लगाकर पूजै इस भांति पुष्प धूप दीप नैवेद्य वस्त्र आदि से भास्कर का पूजन कर (स्वस्थानं गम्यताम्) इस वाक्य को उच्चारण कर विसर्जन करै पीछे ताम्र के अथवा मृत्तिका के पात्र में गुड़ और घृत सहित तिल चूर्ण और सुवर्ण का बना ताम्रक रखकर रक्तवस्त्र से ढक (आदित्यस्य प्रसादेन प्रातः स्नानफलेन च । दुष्टदौर्भाग्य दुःखेभ्यो मया दत्तं तु ताम्रकम्) यह मन्त्र पढ़ विधिपूर्वक वह पात्र ब्राह्मण को देवै और (खखोल्कः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै पीछे गुरुको वस्त्र तिल गौ और दक्षिणा देकर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय व्रत समाप्त करै यह अचलासप्तमीका व्रत रूप सौभाग्य और सब प्रकार के उत्तम फल देनेहारा है जो पुरुष इस विधिसे अचलासप्तमी को स्नान करै वह संपूर्ण माघ स्नान का फल पाता है जो इस माहात्म्य को भक्तिसे पढ़ै सुनै और लोगों को इसका उपदेश करै वह उत्तमलोकको जाय।

सैंतालीसवां अध्याय।

बुधाष्टमीका विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम बुधाष्टमी का विधान कहते हैं जिसके करनेहारा कभी नरक नहीं देखता सत्ययुगके आदिमें इल नामक एक राजा भया वह एक दिन मृगया में हरिणके पीछे लगा हुआ हिमालय पर्वत के समीप एक वनमें पहुँचा उस वनमें प्रवेश करतेही स्त्री बन गया वह वन शिवजी ने पार्वतीजी के साथ विहार करने के लिये बनाया था और यही शिवजी की आज्ञा थी कि जो पुरुष इस वनमें प्रवेश करै वह तत्क्षण स्त्री बन जाय इस कारण से राजा इल नारी होगया और वन में विचरने लगा उसी समय उसको चन्द्र के पुत्र बुध ने देखा और उसके उत्तम रूप पर मोहित हो अपनी भार्या बनाय उसमें पुत्र उत्पन्न किया जिसका नाम पुरूरवा भया उसी से चन्द्रवंश का आरंभ भया जिस दिन बुधने विवाह किया उस दिन बुधाष्टमी थी इसीसे यह जगत् में पूज्य भई उर्मिला नाम मिथिला देश में एक स्त्री थी वह विपत्ति करके बहुत पीड़ित भई तब अपने बालक और कन्या को साथ लेकर अवन्ति देश को गई वहां जाय एक ब्राह्मण के घर में सेवा कर अपना निर्वाह करने लगी पीसने के समय थोड़ेसे गेहूँ चोर कर क्षुधा से पीड़ित अपने दोनों बालकों को देती कुछ काल के अनन्तर उसकी कन्या तरुण अवस्था को प्राप्त भई जिसका नाम श्यामला था उसको रूपवती देख धर्मराजने अपनी भार्या बनाया और उसकी माता उर्मिला मृत्युवश भई यमराज ने अपनी प्रिया से कहा कि और सब काम तुम करना परन्तु ये सात स्थान जिनके ताले बन्द हैं इनमें कभी मत जाना उसने भी कहा कि बहुत अच्छा परन्तु मनमें सन्देह उत्पन्न होगया एक दिन धर्मराज तो किसी

कार्य में व्यग्र थे श्यामला ने एक मकान का ताला खोलकर देखा तो उसकी माता उर्मिला को अति भयङ्कर यमदूत बांध २ कर तप्त तैल के कड़ाह में बार २ डालते हैं लज्जित होकर वह ताला बन्द किया दूसरा खोलकर देखा तो वहां भी उसकी माता को शिला के ऊपर लोढ़ीसे चटनी की भांति यमदूत पीस रहे हैं और वह चिल्लाती है इसी भांति तीसरे में उसकी माता के मस्तक में लोहे के कील ठाकते हैं चौथे में अति भयंकर श्वान उसको भक्षण कर रहे हैं पांचवें में लोहे के संदंश से उसको पीड़ित करते हैं छठे में कोल्हू के बीच इक्षु की भांति पेरी जाती है और सातवें स्थान का ताला खोल देखा तो वहां भी उसकी माता को हजारों कृमि भक्षण कर रहे हैं और वह राध रुधिर आदि से व्याप्त होरही है यह देख श्यामला ने विचार किया कि मेरी माता ने ऐसा कौन पाप किया जिससे इस दारुण गति को प्राप्त भई यह सोच कर सब वृत्तान्त अपने पति धर्मराजसे कहा धर्मराज बोले कि हे प्रिये ! इसीलिये हमने कहा था कि ये सात ताले मत खोलना नहीं तो तुमको पश्चात्ताप होगा तुम्हारी माता ने संतानके स्नेह से ब्राह्मण के गेहूँ चोरे तुम क्या नहीं जनतीहो यह सब उसी कर्म का फल है ब्राह्मण का धन प्रणय से भक्षण करै तोभी सात कुल अधोगति को प्राप्त होते हैं और चोर कर खाय तब तो जब तक चन्द्र सूर्य रहैं तब तक नरक से उद्धार नहीं होता जो गोधूम इसने चुराये थे वेही कृमि बनकर इसको भक्षण करते हैं यह यमराज का वचन सुन श्यामला बोली कि महाराज यह सब मैं जानती हूँ परन्तु अब आप ऐसा कोई उपाय बतावें जिससे मेरी माताका नरक से उद्धार होय यह उसका कथन सुन कुछ काल विचार कर यमराज ने कहा कि हे प्रिये ! सात जन्म पूर्व तैंने बुधाष्टमीका

व्रत किया था जो उसका फल तू अपनी माता को देवै तो यह इस संकट से छूटै यह सुनते ही श्यामला ने स्नान कर अपने व्रत का फल माता को दिया वह उसकी माता भी उसी क्षण दिव्य देह धार विमान में बैठ अपने पति सहित स्वर्ग को गई और आजतक स्वर्गसुख भोगती है इतनी कथा सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्ण ! बुधाष्टमी व्रत का क्या विधान है तब श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि महाराज जब शुक्लपक्ष की अष्टमी को बुधवार होय उस दिन एकभक्त व्रत करना चाहिये पूर्वाह्न में नदी आदिमें स्नानकर नया पात्र जल से भर भोजन और दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै आठ बुधाष्टमी का व्रत करै और आठों में क्रम से ये आठ पक्वान्न भक्षण करै मोदक गुड़क घेवर बटक कसार सोमलक अपूप और आठवीं अष्टमी को परी मिठाई आदि अनेक पदार्थ भोजन करै अपने इष्ट मित्रों के साथ बैठकर भोजन करै और बुधाष्टमी की कथा भी सुनै बुधकी मूर्ति बनाय पूजन करै वह मूर्ति एक माशे सुवर्ण की बनावे और गन्ध पुष्प नैवेद्य वस्त्र दक्षिणा आदि से उसका अर्चनकर (ॐबुधोयं प्रतिगृह्णातु दिव्यस्थोत्रबुधः स्वयम् । दीयते बुधराजेन्द्र तुष्यतां मे बुधोत्तमः) यह मंत्र पढ़ ब्राह्मण को सब सामग्री सहित बुध की मूर्ति देवै ब्राह्मण भी मूर्ति लेकर यह मन्त्र पढ़ै (दुर्बुद्धिबोधन्दुरितं नाशयित्वा च वो बुधः । सौमनस्यं सुखं नित्यं करोतु शशिनन्दनः) इस विधिसे जो बुधाष्टमी का व्रत करै वह सात जन्म पर्यन्त जातिस्मर होय और धन धान्य पुत्र पौत्र दीर्घायुष् ऐश्वर्य आदि संसार के सब पदार्थ पाय अन्त समय नारायण का स्मरण करता हुआ तीर्थ पर प्राण त्यागतां है और प्रलय पर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है जो इस विधानको श्रवण करै वह भी ब्रह्महत्यादि पापों से छूटता है यह अति गुप्त बुधाष्टमी विधान

हमने कहा है जो यह व्रत करै और पक्कान्नपात्र सहित बुधकी मूर्ति ब्राह्मण को देवै वह कभी यमलोक नहीं देखता।

अरतालीसवां अध्याय।

श्रीकृष्णजन्माष्टमी का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! आप जन्माष्टमी व्रत का विधान कथन करैं यह सुन श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराज! मथुरा में जब कंस मारा गया उस समय और उसी रंग बाटस्थान में जहां मल्लयुद्ध हुआ था और कुकुर अंधक वृष्णि आदि सब बैठे थे देवकी हमको आलिंगन कर स्नेहसे रोदन करने लगी और वसुदेवजी भी गद्गद वाणी हो हमको और बलदेवजी को आलिंगन कर कहने लगे कि आज हमारा जन्म सफल भया जो दोनों पुत्रों को कुशल युक्त देखते हैं इस भांति हमारे माता पिताको अति हर्षित देख सब मनुष्य वहां एकत्र भये और कहने लगे कि हे श्रीकृष्ण! आपने बड़ा काम किया जो इस दुष्ट कंसको मारा हम सब इससे बहुत पीड़ित थे अब आप यह कृपाकर कहैं कि किस दिन आप देवकी के गर्भसे उत्पन्न भयेहो हम सब उस दिन बड़ा उत्सव किया करैंगे उस समय हमारे पिताने भी कहा कि अपना जन्मदिन इनको बतादो तब हमने मथुरानिवासी जनों को जन्माष्टमी का व्रत कथन किया सिंह राशिपर सूर्य और वृष राशिपर चन्द्रमा था उस भाद्र कृष्ण अष्टमी अर्द्धरात्रके समय रोहिणी नक्षत्र में हमारा जन्म भया। यह व्रत सब वर्णोंको करना चाहिये प्रथम यह व्रत मथुरामें प्रसिद्ध भया पीछे और लोकों में इसकी ख्याति भई उसीदिन भगवती काभी बड़ा उत्सव करना चाहिये इतना सुन राजा युधिष्ठिरने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! अब इस व्रतका आप विधान वर्णन कीजिये जिसके करने से जगत् के

प्रभु आप प्रसन्न होते हैं तब श्रीकृष्ण भगवान् कहनेलगे कि हे महाराज! इस एक व्रतकेही करनेसे सात जन्मके पाप निवृत्त होजाते हैं पाहिले दिन दन्तधावन आदि कर व्रतके नियम ग्रहण करै पीछे व्रत के दिन मध्याह्न में स्नान कर देवकीका सूतिकागृह बनावे गोकुलकी भांति गोप गोपी गौ आदि से अलंकृत कर खड्ग छाग मुशल आदि रक्षाके लिये द्वारपर रक्खै षष्ठी देवीका स्थापन करै इस भांति यथाशक्ति उस सूतिकागृहको भूषित कर बीचमें पर्यंक के ऊपर सोती हुई हमारे सहित देवकी की प्रतिमा स्थापन करै प्रतिमा आठ प्रकार की होती हैं सुवर्णकी चांदीकी ताम्रकी पित्तलकी मृत्तिकाकी मणिकी रंगसे लिखी हुई और मनोमयी इनमें से सर्व लक्षणयुक्त कोई प्रतिमा बनाय स्थापन करै और स्तनपान करते हुये बालस्वरूप नीलकमल के समान वर्ण हमारी प्रतिमा देवकी के समीप पलँग के ऊपर स्थापन करै बाहर खड्ग चर्म धारण किये वसुदेवकी मूर्ति बनावे और कन्या जन्मती हुई यशोदा भी वहां बनावै और ऊपर को देवता ग्रह नाग विद्याधर आदिकी मूर्ति रचै वसुदेव कश्यप का अवतार हैं देवकी अदितिका बलदेवजी शेषनागका नन्दगोप दक्षप्रजापतिका यशोदा दितिका और गर्गमुनि ब्रह्माजी का अवतारहैं वहां नाचती गाती हुई अप्सरा और गन्धर्व बनावै और एक ओर कालियनाग को यमुना के ह्रद में स्थापन करै इस भांति अति रमणीय नवसूतिका देवी का स्थापन कर भक्ति से गन्ध पुष्प धूप दीप बीजपूर सुपारी नारंगी पनस आदि जो फल उस देश में प्राप्त होयँ उन सबसे पूजन कर (गायद्भिः किन्नराद्यैः सततपरिवृतावेणुवीणानिनादैर्भृङ्गारादर्शकुम्भप्रवरकरतलैः किन्नरैर्गीयमाना। पर्यङ्के साभिसुप्ता मुदिततरमनाः पुत्रिणी सम्यगास्ते सा देवीवेदमाता जयति सुवदना

देवकी कान्तरूपा) यह श्लोक पढ़ै । और यह ध्यान करै कि कमलवासिनी लक्ष्मी देवकी के चरण दबा रही है ॐ श्रियै: नमः देवक्यै नमः वसुदेवाय नमः बलदेवाय नमः नन्दाय नमः यशोदायै नमः इत्यादि नाम मन्त्रों से सबका अलग २ पूजन करै पीछे (अनर्घ्यं वामनं सौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् १ वाराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् । दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुडध्वजम् २ गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम् । अधोक्षजं जगद्बीजं सर्गस्थित्यन्तकारणम् ३ अनादिनिधनं विष्णुं त्रैलोक्येशं त्रिविक्रमम् । नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ४ पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषणम् । श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीधरं श्रीपतिं हरिम् । योगेश्वरं च योगीशं गोविन्दम्प्रणतोस्म्यहम् ५) इस मन्त्र से हमारी मूर्तिको स्नान करावे (यज्ञेश्वराय यज्ञाय यज्ञपतये गोविन्दाय नमः) इस मन्त्र से अर्घ्य चन्दन धूप दीप अर्पण करै (विश्वेश्वराय विश्वसम्भवाय विश्वपतये गोविन्दाय नमः) इस मन्त्र से नैवेद्य चढ़ावै (धर्मेश्वराय धर्मसम्भवाय धर्मपतये गोविन्दाय नमः) यह मन्त्र पढ़ क्षमापन करावै । इस भांति पूजन कर स्थण्डिल के ऊपर रोहिणी सहित चन्द्रमा वसुदेव देवकी नन्द यशोदा और बलदेवजी का पूजन करै तो सब पापों से मुक्त होजाय चन्द्रोदय के समय (क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव । गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम) इस मन्त्र से चन्द्रमा को अर्घ्य देकर घृतकी वसुधारा करै और षष्ठी देवी का पूजन कर उसी क्षण हमारा नामकरण आदि करै नवमी के दिन हमारे उत्सव के समान भगवती का उत्सव करै पीछे यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराय उनको सुवर्ण वस्त्र गौ आदि देकर संतुष्ट करै और यह वाक्य कहै कि (श्रीकृष्णो मे प्रीय-

त्मम्) और ये मन्त्र भी पढ़ै (यं देवं देवकी देवी वसुदेवोप्य-जीजनत् । भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ सुज-न्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोवि-न्दाय नमोनमः ॥ शान्तिरस्तु शिवं चास्तु) यह पढ़ ब्राह्मणों को विसर्जन करै इस प्रकार हमारे भक्त पुरुष अथवा स्त्री जो इस उत्सव को प्रति वर्ष करैं वे सन्तान आरोग्य धन धान्य दीर्घ आयुष् और राज्य पाते हैं जिस देश में यह उत्सव किया जाय वहां पर चक्रव्याधि और अवृष्टि आदि का कभी भय नहीं होता जिस घर में पुत्रयुक्त देवकी लिखकर पूजी जाय वहां बालक की मृत्यु गर्भपात वैधव्य दौर्भाग्य और कलह नहीं होता जो एक बार भी इस व्रत को करै वह भी विष्णुलोक को प्राप्त होता है इस व्रत के करनेहारे संसार के सब सुख भोग विष्णुलोक में निवास करते हैं ।

उनचासवां अध्याय ।

दूर्वाष्टमी का विधान और फल ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं हे महाराज ! भाद्रशुक्ल अष्टमी को दूर्वाष्टमी का व्रत जो पुरुष करै उसका वंश कभी क्षय नहीं होता दूर्वा के अंकुरों की भांति दिन दिन बढ़ता जाता है राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! यह दूर्वा कहां से उत्पन्न हुई चिरायुष् क्योंकर भई और लोक में वन्द्य और पूज्य क्यों है यह आप वर्णन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! देवताओं ने जब क्षीरसागर मथन किया उस समय विष्णु भगवान् ने अपनी पीठ पर मन्दराचल को धारण किया उसकी रगड़ से भगवान् के जो रोम उखड़ कर जल में गिरे उनसे दूर्वा उत्पन्न भई उस दूर्वा पर देवताओं ने अमृत के कुम्भ रक्खे उनसे जो अमृतबिन्दु गिरे उनके स्पर्श से यह अजर और अमर भई और देवताओंने गन्ध पुष्प धूप दीप

नैवेद्य खर्जूर नारिकेल द्राक्षा कपित्थ लकुच नारंग बीजपूर दाड़िम दही अक्षत माला आदि से (त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरासुरैः। सौभाग्यं सन्ततिं दत्वा सर्वकार्यकरी भव १ यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा ममापि देहि त्वमजरामरतां सदा) इन मन्त्रों करके दूर्वा का पूजन किया है सब देवपत्नी स्वाहा गौरी संज्ञा श्रीवेदवती दमयन्ती सीता सुकेशी घृताची रम्भा मिश्रकेशी देवयोनि कामकन्दला मेनका उर्वशी आदि सब स्त्रियों ने दूर्वा का पूजन कर अपना अपना अभीष्ट फल पाया है और भी जो नारी स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहिन दूर्वा का पूजन कर तिल पिष्ट गोधूम सप्तधान्य आदि का दान कर ब्राह्मण भोजन करावें और श्रद्धा से इस व्रतको करें वे पुत्र पौत्र सौभाग्य धन आदि सब पदार्थ पाय बहुत काल संसार सुख भोग अन्त में अपने पतिसहित स्वर्ग को जातीहैं और प्रलयपर्यंत वहां ही निवास करती हैं।

पचासवां अध्याय।

प्रतिमास की कृष्णाष्टमी का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब हम कृष्णाष्टमी का विधान वर्णन करते हैं मार्गशीर्ष मासकी कृष्णाष्टमी को उपवास के नियम धारण कर ब्रह्मचारी और जितक्रोध हो गुरुकी आज्ञानुसार उपवास करैं मध्याह्न के अनन्तर नदी आदि में स्नान कर गन्ध उत्तम पुष्प गुग्गुल धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य ताम्बूल आदि उपचारों से शिवलिङ्ग का पूजन कर कृष्णतिलों का हवन करै मार्ग मास में शंकर का पूजन करै और गोमूत्र प्राशन कर भूमि पर सोवै तो अतिरात्रि यज्ञ का फल पावै पौषकृष्णाष्टमी को शंभु का पूजनकर घृत प्राशन करै तो वाजपेय यज्ञका फलपावै माघकृष्णाष्टमीको महेश्वरका पूजन कर गोदुग्ध प्राशन करै तो आठ गोमेधयज्ञ का फल प्राप्त हो

या फाल्गुन में महादेवका पूजन कर तिल प्राशन करै तो आठ राजसूयका फल पावै चैत्र में स्थाणु का पूजन करै और यव प्राशन करै तो अश्वमेध का फल मिलै वैशाख में शिवका पूजन कर रात्रि के समय कुशोदक प्राशन करै तो दश नरमेध यज्ञों का फल पावै ज्येष्ठ में पशुपति का पूजन कर गोशृंगजल प्राशन करै तो लक्ष गोदानका फल प्राप्त होय आषाढ़ में उग्रका पूजन कर गोमय प्राशन करै तो अयुत वर्ष से भी अधिक रुद्रलोकमें निवास करै श्रावण कृष्णाष्टमीको शर्वका पूजन कर रात्रि के समय दूर्वा प्राशन करै तो बहुसुवर्णयज्ञ का फल पाता है भाद्रमें त्र्यम्बकका पूजन कर बिल्वपत्रका प्राशन करै तो तीनवर्ष दीक्षित होने का फल पावै आश्विन में भवका यजन कर तन्दुलोदक प्राशन करै तो दश पौण्डरीक यज्ञोंका फल मिलै कार्त्तिककृष्णाष्टमी को रुद्र का भक्ति से अर्चन कर दही प्राशन करै तो अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होय इस प्रकार बारह महीने शिव पूजन कर अन्त में शिवभक्त ब्राह्मणों को घृत शर्करायुक्त पायस भोजन करावै और सुवर्ण वस्त्र आदि उनको देकर प्रसन्न करै और कृष्ण तिल पूर्ण बारह कलश छत्र जूता वस्त्र आदि बारह ब्राह्मणों को देकर दुग्ध देनेहारी सवत्सा एक कृष्णवर्ण गौ महादेवजी की भेट करै इस कृष्णाष्टमी व्रतको जो एक वर्ष निरन्तर करै वह सब पापों से मुक्त हो उत्तम ऐश्वर्य पाय सौ वर्ष पर्यन्त संसार के सुख आनन्द से भोगता है इस व्रतके करने से इन्द्र चन्द्र ब्रह्मा विष्णु आदि देवता उत्तम २ पदों को प्राप्त भये हैं जो पुरुष अथवा स्त्री इस व्रतको भक्तिसे करै वह अप्सराओंसहित उत्तम विमान में बैठ देवताओं करके स्तूयमान शिवलोक को जाता है वहां हीं तीन अयुत कल्प पर्यन्त निवास करता है और जो इस व्रतके माहात्म्य को सुनै वह सब पापों से मुक्त होताहै भक्ति

से कृष्णाष्टमी व्रतकर पूर्वोक्त रीतिसे शिवपूजन और प्राशन कर तिल और अन्न सहित कृष्णवर्ण के कलश ब्राह्मणों को देवै तो अवश्यही शिवलोक को जाय।

इक्यावनवां अध्याय।

दत्तात्रेय और कार्तवीर्य की कथा अनघाष्टमी का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! ब्रह्माजी के पुत्र अत्रिऋषि भये जिनकी पत्नी अनसूया थी उनके पुत्र बड़े तपस्वी विष्णुका अवतार दत्तात्रेय नाम हुये जिनको अनघ भी कहते हैं उनकी पत्नी लक्ष्मी का अवतार थी उसका नाम अनघा था उनके आठ पुत्र बड़े तपस्वी और ब्रह्मवेत्ता भये दत्तात्रेय योगी विन्ध्याचल के बीच अपने आश्रम में योग साधन करते थे इसी समय जम्भ नामक दैत्यने ब्रह्मा जी से वर पाय बड़ी सेना साथ ले इन्द्रकी पुरी अमरावती को जाय घेरा और दिव्य सौ वर्षतक युद्ध हुआ अन्त में देवता व्याकुल हो नगर छोड़ भागे तब गदा मुद्गर पट्टिश शतघ्नी बाण खड्ग आदि अनेक प्रकार के शस्त्र धारे वृष महिष शरभ सिंह व्याघ्र वानर गैंड़े हाथी आदि वाहनों पर चढ़े हुये बड़े पराक्रमी जम्भ आदि दैत्य भी देवताओं के पीछे लगे देवता भयभीत हुये २ दत्तात्रेय के आश्रम में पहुँचे दत्तमुनि ने उनको अभय दिया और अपने शरण में रक्खा इतने में गर्जते और शस्त्रोंकी वृष्टि करते दैत्य भी वहां पहुँचे और घोर शब्द से परस्पर कहने लगे कि इस ब्राह्मण को बांधलो और इसके आश्रमवृक्षों को उखाड़कर फेंकदो यह सुन दत्तात्रेय ने क्रोधकर दैत्यों को देखा देखतेही सब दैत्य निस्तेज और पराक्रमहीन होगये तब देवताओं ने उनको जीता और स्वर्ग का राज्य पाया तब से दत्तात्रेय का प्रभाव लोक में प्रसिद्ध भया दिव्य तीनहजार वर्ष पर्यन्त दत्तात्रेय

योगी ने अपनी पत्नी सहित तप किया इतने काल में सब लोकों पर अनेक उपकार किये यह सब वृत्तान्त मार्गकृष्णाष्टमी को हुआ था दत्तात्रेय जब योगाभ्यास करते थे उस समय माहिष्मती नगरी का राजा कार्तवीर्यार्जुन एकाकी रहकर दिन रात दत्तात्रेय की सेवा करता था जब दत्तात्रेय का नियम सम्पूर्ण हुआ तब प्रसन्न हो कार्तवीर्य से कहा कि वर मांग तैंने बहुत काल सेवा करी इससे हम सन्तुष्ट हैं तब कार्तवीर्य ने प्रथम यह वर मांगा कि महाराज मेरे हजार भुजा होयँ दूसरा यह कि सम्पूर्ण पृथिवी का राज्य मिलै तीसरे यह कि धर्म से राज्य मिलै और धर्म से ही मैं पालन करूं. चौथा यह वर कि युद्ध में सदा जय होय दत्तात्रेय ने ये सब वर उसको दिये वह भी वर के प्रभाव से सब राजाओं को जीत चक्रवर्ती बना सातोंद्वीपों में उसने दश हजार यज्ञ किये सब यज्ञों में सुवर्ण की वेदी और यूप बने थे प्रत्येक यज्ञ में अपरिमित धन ब्राह्मणों को दिया देवता गन्धर्व अप्सरा आदि सदा उसके यज्ञों में वर्तमान रहते थे और नारदमुनि तो उसकी महिमा यों गाते थे कि कार्तवीर्य के तुल्य यज्ञदान तप पराक्रम और शास्त्र में न तो कोई राजा पहिले हुआ और न आगे होगा खड्ग चर्म धनुषबाण धारे सब प्रजाकी रक्षा के लिये कार्तवीर्य आप घूमता रहता था उसके राज्य में अधर्म दुराचार शोक नहीं थे और किसी का धन भी नष्ट नहीं होता था दुष्टों को वह आप दंड देता पचासी हजारवर्ष कार्तवीर्य ने धर्मराज्य किया और प्रजा को परिपूर्ण सुख दिया वह हजार भुजाओं करके ऐसा शोभित होता जिस भांति अपने सहस्र किरणों करके सूर्य शोभित होयँ नर्मदा नदी में वर्षाऋतु के समय जब कार्तवीर्य क्रीड़ा करता तब नर्मदा का प्रवाह उलटा चलने लगता मत्त होकर समुद्र में जब

विहार करने के लिये प्रवेश करता उस समय समुद्र का जल बेला के बाहर हो जाता और पाताल में नाग और असुर त्रासको प्राप्त होते हजार २ भुजाओं से जब धनुष की ज्या का शब्द करता तब ऐसा प्रतीत होता मानों प्रलयकाल के मेघ गर्जते हैं अथवा हजारों वज्रपात एकबार होते हैं एक समय कार्तवीर्य लंका से रावण को पकड़ लाया और अपने कारागार में कैद कर दिया तब पुलस्त्य मुनि ने आय बड़ी दीनता दिखाय रावण को छुटाया किसी समय अग्नि ने कार्तवीर्य से भिक्षा मांगी तब कार्तवीर्य ने सप्तद्वीपवती पृथिवी भिक्षा में दे दी इससे अग्नि प्रसन्न हो अद्यापि उसके कुंड में निवास करता है अनघ मुनि के प्रसाद से यह सब प्रभाव कार्तवीर्य का भया कार्तवीर्य ने अनघाष्टमी व्रत लोक में प्रवृत्त किया अघ नाम पाप का है पाप हरने से इसका नाम अनघा भया दत्तात्रेय मुनि को भी योग के प्रभाव से अणिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य महिमा ईशित्व वशित्व और कामावसायिता ये आठ ऐश्वर्य प्राप्त भये इतनी कथा सुन राजा युधिष्ठिर पूछते भये कि किस तिथि का व्रत कार्तवीर्य ने किया था और किस विधान से किया यह आप कथन करें तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! कार्तवीर्य ने अनघाष्टमी व्रत करके सब अभीष्ट पाया अनघाष्टमी का यह विधान है कि मार्गशीर्ष कृष्णाष्टमी को कुशा का अनघमुनि और बहुत पुत्रों सहित उनकी पत्नी अनघा बनाय स्थंडिल के ऊपर स्थापन कर स्नान कराय गन्ध आदि उपचारों से (इदं विष्णुर्विचक्रमे) इत्यादि वैदिक मन्त्रों करके उनका पूजन करै अनघ को विष्णुरूप अनघा को लक्ष्मीरूप और उनके पुत्रों को प्रद्युम्नादि रूप से भावना कर पूजन करै उस काल में जो फल मिलैं वे सब चढ़ावै और धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य निवेदन करै

पीछे यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय आप भी अपने मित्र बन्धुओं सहित भोजन करै रात्रि के समय जागरण कर बड़ा उत्सव करै नवमी के दिन प्रभात ही नदी में उनका विसर्जन करै इस व्रतको ग्रहण कर त्याग न करै प्रतिवर्ष श्रद्धासे यह दत्तात्रेय मुनिका उत्सव करे तो सब पाप दूर होयँ कुटुम्बकी वृद्धि होय विष्णु भगवान् प्रसन्न होयँ और सात जन्म तक आरोग्य रहे जो पुरुष भक्तिसे इस व्रतको करैं वे कार्तवीर्य की भांति ऐश्वर्य पाते हैं और अन्त में विष्णुलोक को जाते हैं।

बावनवां अध्याय।

सोमाष्टमी और अर्काष्टमी का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! हम और भी व्रत कहते हैं जिसके करने से सब प्रकारके कल्याण और शिवलोक की प्राप्ति होय सोमवार युक्त अष्टमी जिस दिन होय उस दिन हरिहरका पूजन करै ऐसी प्रतिमा स्थापन करै जिसका दक्षिण भाग शिवरूप और वाम भाग विष्णुरूप होय पीछे पञ्चामृत आदिसे विधिपूर्वक स्नान कराय कर्पूरयुक्त चन्दन का दक्षिण भागमें और तुरुष्क नाम सुगन्धि द्रव्ययुक्त कुंकुम का वाम भागमें लेपन करै शिवके ऊपर नीलम और विष्णु के ऊपर मोती चढ़ावै श्वेत रक्त पुष्प चढ़ाय घृतपक्क नैवेद्य लगावै और पच्चीस दीपकों करके आरती करै और निराहार रहे दूसरे दिन पूजन कर घृतयुक्त तिलों का हवन कर व्रती और ब्राह्मणों को भोजन करावै और यथाशक्ति मिथुन पूजा करै एक वर्ष इस भांति व्रत कर अन्तमें पूर्वोक्त रीति से पूजन कर श्वेत पीत वस्त्र वितान पताका घण्टा धूपदानी दीप वृक्ष और भी पूजनके उपकरण ब्राह्मणों को देवै और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै चतुरस्र मण्डल में शिवका और त्रिकोण मण्डल में पार्वती का पूजन कर वस्त्र भूषण भोजन

आदि से ब्राह्मण दम्पती का पूजन कर पचीस दीपकों से धीरे धीरे नीराजन करै इस विधिसे पांच वर्ष अथवा भक्तिसे एकही वर्ष व्रत करै वह विष्णुलोक और शिवलोक में निवास कर मोक्षको प्राप्त होता है और जो पुरुष जन्मभर इस व्रत को करै वह तो साक्षात् विष्णुस्वरूप ही होजाता है आपदा दुःख शोक ज्वर ग्रह आदि कभी उसके समीप नहीं आते इतना विधान कह श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि महाराज इसी भांति आदित्यवारयुक्त अष्टमी को भी व्रत होता है उस दिन दक्षिण भाग में शिव और वाम भाग में पार्वती का अर्चन करै शिवजीपर मोती और पार्वतीजीपर पद्मराग चढ़ावै और रत्न न मिलै तो सुवर्णही निवेदन करै चन्दन और कुंकुमका लेपन शुक्ल और रक्त पुष्प और वस्त्र घृतपक्क नैवेद्य आदि से पूजन करै बाकी सब विधान पूर्व व्रतकी भांति है परन्तु इस व्रतका पारण गोघृत से करना चाहिये व्रत के अन्त में पूर्वरीति से उद्यापन करै इस व्रतका करनेहारा सूर्यादिलोकों में उत्तम भोग भोगकर शिवलोक में प्राप्त हो जन्म मरण से रहित होता है इस व्रतको जो करै वह प्रतापी अदीन जनप्रिय नीरोग धनवान् पुत्रवान् और सुखी होता है ।

तिरपनवां अध्याय ।

श्रीवृक्षनवमी का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! देवता और दैत्यों ने जब समुद्र मथन किया उस समय समुद्र से लक्ष्मी निकली लक्ष्मीको देख सबकी इच्छा भई कि हमहीं इसको लें इसलिये देवता और दैत्योंका युद्ध होने लगा लक्ष्मी भी श्रांत हो बिल्ववृक्ष के नीचे बैठगई विष्णु भगवान् ने सबको जीत आप लक्ष्मी को ग्रहण किया बिल्ववृक्षके नीचे लक्ष्मी बैठी इसलिये बिल्ववृक्ष को श्रीवृक्ष कहते हैं भाद्रशुक्ल नवमी को

सूर्योदयके समय अनेक प्रकार के पुष्प गन्ध वस्त्र फल तिल पिष्ट माला आदि से (श्रीनिवास नमस्तेस्तु श्रीवृक्ष शिववल्लभ । ममाभिलाषितं कृत्वा सर्वविघ्नहरो भव) इस मन्त्र करके बिल्ववृक्षका पूजन करै पीछे ब्राह्मण भोजन कराय आप भी तैल लवण रहित विना अग्नि के सिद्ध किया भोजन दही पुष्प फल आदि भूमिपर रख भोजन करै इस भांति जो भक्ति से श्रीवृक्ष का पूजन करै वह अवश्य ही सब सम्पत्ति पाता है ।

चौवनवां अध्याय ।

ध्वजनवमी का विधान और फल नवदुर्गास्तोत्र ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! महिषासुर को भगवती ने मार दिया इस वैरसे दैत्यों ने देवताओं के साथ बहुत संग्राम किये और भगवती ने भी धर्म की रक्षा के लिये नाना रूप धार दैत्यों को मारा तब महिषासुर के पुत्र रक्तासुर ने साठिहजार वर्ष पर्यन्त घोर तपकर ब्रह्माजी को प्रसन्न किया और उनसे वरपाय दैत्यों को इकट्ठे कर इन्द्र के साथ युद्ध करने अमरावती में गया देवताओं ने भी देखा कि दैत्यों की सेना युद्धके लिये आई है तब सब एकत्र हो इन्द्रको आगे कर युद्धके लिये निकले और युद्ध होनेलगा रुधिर की नदी बहने लगीं और देवता दैत्य कट २ कर गिरने लगे तब रक्तासुर कोप करके देवताओं से युद्ध करने लगा और ऐसा युद्ध किया कि देवता रणको छोड़ भागे और रक्तासुरने अमरावती में अपना राज्य जमाया देवता भी कटच्छत्रापुरी में गये जहां चामुंडा और नवदुर्गासहित भगवती निवास करती है महालक्ष्मी नन्दा क्षेमकरी शिवदूती महारुण्डा भ्रामरी चन्द्रमंगला रेवती और हरसिद्धि ये नव दुर्गाओं के नाम हैं वहां जाय हाथ जोड़ सब देवता इनकी भक्तिसे स्तुति करने लगे (अमरपतिमुकुटचुम्बितचरणाम्बुजसकलभुवनसुखजननी ।

जयति जगदीशवन्दितसकलामलनिष्कला दुर्गा ॥ १ ॥ विकृतनखदशनभूषणारुधिरवसाच्छुरितखड्गकृतहस्ता । जयति नरमुण्डमण्डितपिशितसुरासवरता चण्डी ॥ २ ॥ प्रज्वलितशिखिगणोज्ज्वलविकटजटाबद्धचन्द्रमणिशोभा । जयति दिगम्बरभूषासिद्धवटेशा महालक्ष्मीः ॥ ३ ॥ करकमलजनितशोभा पद्मासनबद्धपद्मवदना च । जयति कमण्डलुहस्ता नन्दा देवी नतार्त्तिहरा ॥ ४ ॥ दिग्वसना विकृतमुखा फेत्कारोद्दामपूरितदिगौघा । जयति विकरालदेहा क्षेमकरी रौद्रभावस्था ॥ ५ ॥ क्षोभितब्रह्माण्डोदरस्वमुखस्वरहुंकृतनिनादा । जयति महीमहितासा शिवदूत्याख्या प्रथमशक्तिः ॥ ६ ॥ मुक्ताट्टहासभैरवदुस्सहरवचाकितसकलदिक्चक्रा । जयति भुजगेन्द्रबन्धनशोभितकर्णा महारुण्डा ॥ ७ ॥ पटुपटहमुरजमर्दलभल्लरिकारावनर्तितावयवा । जयति मधुव्रतरूपा दैत्यहरी भ्रामरीदेवी ॥ ८ ॥ शान्ता प्रशान्तवदना सिंहरथा ध्यानयोगसन्निष्ठा। जयति चतुर्भुजदेहा चन्द्रकला चन्द्रमङ्गला देवी ॥ ६ ॥ पक्षपुटचञ्चुघातैः संचूर्णितविबुधशत्रुसंघाता । जयति शितशूलहस्ता बहुरूपा रेवती रौद्रा ॥ १० ॥ पर्यटति शक्तिहस्ता पितृवननिलयेषु योगिनी सहिता जयति हरसिद्धिनाम्नी हरिसिद्धिर्वन्दिता सिद्धैः ११) इस प्रकार नवदुर्गा की स्तुति कर वारंवार प्रणाम कर सब देवता प्रार्थना करते भये कि हे भगवती ! इस सङ्कट में आप ही हमारी रक्षा करो और कोई हमको अवलम्ब नहीं है यह देवताओं का वचन सुन सिंह पर आरूढ़ बीस भुजाओं में नाना प्रकार के आयुध धारे नवदुर्गा सहित कुमारी स्वरूप भगवती प्रकट भई और बड़े पराक्रमी प्रचण्ड ब्रह्माजी के वरदान से गर्वित बड़े अधर्मी और अब्रह्मण्य वे दैत्य भी वहां ही आये उनमें इन्द्रमारी गुरुकेशी प्रलम्ब नरकारिष्ट पुलोमा शरभ शम्बर दुन्दुभि इल्वल नमुचि

भौम वातापि धेनुक कलि मायावृत बलबन्धु कैटभ कालजित् राहु पौंड्र आदि दैत्य मुख्य थे ये सब प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी अनेक प्रकार के शस्त्र अस्त्र और ध्वजा धारण किये अनेक भांति के वाहनों पर चढ़े थे उनके आगे पणव भेरी गोमुख शंख डमरू डिंडिम आदि बाजे बजते थे वे सब दैत्य आयकर युद्ध के बीच शर शूल परिघ पट्टिश शक्ति तोमर कुन्त शतघ्नी गदा मुद्गर आदि नाना प्रकार के आयुधों की वृष्टि भगवती के उपर करने लगे तब भगवती क्रोध से प्रज्वलित हो दैत्यों का संहार करने लगी और उनके ध्वज आदि चिह्न बलात्कार से रहकर देवताओं को दिये क्षणमात्र में ही अनन्त दैत्यों का क्षय किया और रक्तासुर को कण्ठ से पकड़ भूमि पर गिराय त्रिशूल से उसका हृदय विदारण कर दिया शेष दैत्य भय से पलायन करगये इस भांति देवताओं ने जय पाया पीछे छत्रपुर में आय भगवती का बड़ा उत्सव किया और तोरण को बड़े २ ध्वजों से अलंकृत किया देवताओं ने नवमी के दिन जय पाया और उत्सव किया इसलिये और भी जो राजा नवमी का उपवास कर भगवती का उत्सव करैं और ध्वज चढ़ावैं वे अवश्य ही जय पावैं इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! नवमीव्रत का क्या विधान है उसका आप वर्णन करैं तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! पौषशुक्ल नवमी को स्नानकर पूजन के लिये अपने हाथ से पुष्प लावै और सिंहवाहिनी कुमारी भगवती का पूजन करै और अनेक प्रकार के ध्वज भगवती के आगे स्थापन कर मालती पुष्प धूप दीप नैवेद्य पशुबलि सुरा मांस माला वस्त्र दधि चन्दन और भी विना अग्नि सिद्ध अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य भगवती को निवेदन कर (रुद्रां भगवतीं कृष्णां ग्रहनक्षत्रमालिनीम् । प्रपन्नोहं शिवां रात्रिं सर्वशत्रु-

क्षयंकरीम्) यह मन्त्र पढ़ै पीछे कुमारी और भगवती के भक्त ब्राह्मणों को भोजन कराय क्षमापन करावै उपवास करै अथवा भक्ति से एकभक्त ही करै इस भांति जो पुरुष नवमी का उपवास कर ध्वजों से भगवती का पूजन करैं उनको चौर अग्नि जल राजा शत्रु आदि का भय नहीं होता इस नवमी को भगवती का विजय भया है इसलिये यह नवमी भगवती को अतिप्रिय है जो भक्ति से नवमी को भगवती का पूजन कर ध्वजारोपण करै वह सब सुख भोग अन्त में वीरलोक को जाता है।

पचपनवां अध्याय।

उल्का नवमी का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! आश्विनशुक्ल नवमी को स्नान कर देवता और पितरों का तर्पण कर गन्ध पुष्प धूप नैवेद्य मांस मत्स्य सुरा आसव आदि से भैरवप्रिया चामुण्डा का पूजन कर हाथ जोड़ नम्र हो (महिषघ्नि महामाये चामुण्डे मुण्डमालिनि। द्रव्यमारोग्यविजयं देहि देवि नमोस्तुते) पीछे सात पांच अथवा एक कुमारी को भोजन कराय नील कंचुक भूषण वस्त्र दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करै श्रद्धा से भगवती प्रसन्न होती है यह वीरानुशासन है पीछे अभ्युक्षण कर गोबर का चौका लगाय उस पर आसन बिछाय आसन पर आप बैठे और सम्मुख पात्र धरकर जो कुछ भोजन सिद्ध होय सब परोस लेवै पीछे एक मुट्ठी तृण और आठ सूखे पत्र लेकर अग्नि से प्रज्वलित कर भोजन करने लगे जब तक वह अग्नि प्रज्वलित रहै तावत्काल में भोजन करै अग्नि शान्त होते ही आचमन कर चामुंडा का हृदय में ध्यान करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक गृह कृत्य करै इस प्रकार प्रति मास व्रत कर वर्ष समाप्त होने पर कुमारी पूजन कर उनको

वस्त्र भूषण भोजन आदि देकर क्षमापन करावै और ब्राह्मण को सुवर्ण और गौ देवै इस विधिसे जो पुरुष नवमी व्रत करैं उनको शत्रु अग्नि राजा चोर भूत प्रेत पिशाच आदि का भय नहीं होता युद्ध के बीच शस्त्र नहीं लगते और सब संकटों में चामुण्डा उनकी रक्षा करती है इस उल्का नवमी व्रतके करनेहारे पुरुष और स्त्री उल्काकी भांति तेजस्वी होजाते हैं ।

छप्पनवां अध्याय ।

दशावतार व्रत का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! सत्ययुग के आदि में भृगुऋषि भये उनकी भार्या बड़ी पतिव्रता थी जिसका नाम दिव्या था भृगु भी उससे अत्यन्त प्रसन्न रहते थे एक समय अपने अग्निहोत्र आदि अपनी भार्या को सौंप आप संजीवनी विद्या के लिये हिमालय के उत्तर भाग में जाय तप करनेलगे और शिवजी का आराधन कर उनसे संजीवनी विद्या पाय दैत्यराज को सदा विजयी किया चाहते थे इसी अवसर में गरुड़ पर चढ़ विष्णु भगवान् वहां आय दैत्यों का वध करने लगे और क्षणमात्र में दैत्यों का संहार किया तब भृगुकी भार्या भगवान् को शाप देने के लिये उद्यत हुई उसके मुखसे शाप निकलनाही चाहता था कि विष्णु भगवान् ने चक्र से उसका भी शिर भुट्टासा उड़ा दिया इतने में भृगु-मुनिभी संजीवनी विद्या पाय वहां आये तो देखा कि सब दैत्य और ब्राह्मणी भी मारीगई तब क्रोधकर विष्णु भगवान् को शाप दिया कि तुम दश बार भूमिपर जन्म लो इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! भृगुमुनि के शाप से और जगत् की रक्षा के लिये हम बार २ अवतार लेते हैं जो मनुष्य भक्ति से हमारा अर्चन करते हैं वे अवश्य स्वर्गगामी होते हैं राजा युधि-ष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आप अब दशावतार व्रतका

विधान वर्णन कीजिये तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! भाद्रपद की शुक्ल दशमी को नदी आदि में स्नान और तर्पण कर घर आय दो मूठी धान्यचूर्ण लेकर घृत में पकावै इस भांति दश वर्षतक प्रति वर्ष करै और दशों वर्षों में क्रम से पूरी घेवर कसार गणक सोमलकखण्डवेष्टित कसार अर्कपुष्प कर्णवेष्ट और मण्डक ये पक्वान्न उस चूर्ण के बनाय भगवान् को नैवेद्य लगावै और भी बहुतसा पक्वान्न बनाय आधा भगवान् को नैवेद्य लगाय चौथाई ब्राह्मण को दे और चौथाई में से आप भोजन करै प्रथम गन्ध पुष्प धूप दीप आदि उपचारों करके (मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं त्रिविक्रमम्। रामं रामं च रामं च बुद्धं चैव सकल्किनम् ॥ गतोऽस्मि शरणं देवं हरिं नारायणम्प्रभुम्। प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे विष्णुः प्रसीदतु ॥ छिनत्तु वैष्णवीं मायां भक्त्या प्रीतो जनार्दनः। श्वेतद्वीपं नयत्वस्मान्मयात्मा विनिवेदितः) इन मन्त्रों से दशावतार का पूजन करै इस प्रकार जो इस व्रत को करै वह भगवान् के अनुग्रहसे जन्म मरण से छूटै और सर्वदा विष्णुलोक में निवास करै।

सत्तावनवां अध्याय।

तारकद्वादशीका विधान फल और एक राजा की कथा।

राजा युधिष्ठिर बोले कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! मैं बड़ा पातकी हूं भीष्म द्रोण आदि महात्माओं का मैंने वध किया अब कृपा कर आप ऐसा कोई उपाय बतावैं जिससे इस पाप से छूट जाऊं राजा का यह वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! विदर्भदेश में एक बड़ा प्रतापी यशोध्वज नाम राजा था एक दिन उसने मृगया में मृग के धोखे एक तपस्वी ब्राह्मण को बाण से मार दिया उस पाप से वह मरने के अनन्तर रौरव नरक में पड़ा वहां बहुत काल तक यातना भोगकर भयङ्कर सर्प बना सर्पयोनि में भी उसने

क्रोध वश हो एक ब्राह्मण को डसा डसतेही वह ब्राह्मण मर गया और मरते मरते एक लाठी सांप को भी मारी जिससे उस के भी प्राण गये फिर वह सिंह बना और जीवों का संहार करने लगा वह सिंह एक राजा के हाथ से मारा गया फिर वह व्याघ्र हुआ और एक वैश्य को उसने वन में मारा फिर वह मार्जार हुआ और चाण्डाल बालकों के हाथ मारा गया पांचवें जन्म में समुद्र के बीच अति भयङ्कर मकर बना और एक स्त्री वहां स्नान करने आई थी उसको खैंच लेगया और धीवरों ने उसको मारा छठे जन्म में पिशाच हुआ और अनेक मनुष्यों के प्राण हरे तब एक सिद्ध ने अपनी शक्ति से उसका संहार किया सातवें जन्म में अति क्रूर ब्रह्मराक्षस हुआ और गुर्जर देश को शून्य करने लगा तब भी सदास राजा ने ब्रह्मास्त्र से उसका संहार किया फिर आठवें जन्म में व्याग्घ्र बना और एक वराह ने उसको मारा नवें जन्म में जम्बुक हुआ और श्मशान में मांस के लिये गया था वहां चिता ऊपर गिरने से दग्धहोगया दशवें जन्म में गृध्र हुआ उसको भी एक चाण्डाल ने बाण से मारा ग्यारहवें जन्म में बड़ा क्रूरकर्मा और भयङ्कर स्वरूप चाण्डाल हुआ और कई मनुष्य उसने मारे इसलिये राजाने उसको शूलीपर चढ़ाया बारहवें जन्म में बिलवासी जीव बना और एक व्याध के हाथ मरा उसने पूर्वकाल में तारक द्वादशी का व्रत किया था इसलिये इन पाप योनियों से जल्दी २ छूटता गया फिर वह विदर्भ देशका धर्मात्मा राजा हुआ और भक्ति से तारक द्वादशी का व्रत किया करता उसके प्रभाव से बहुतकाल निष्कण्टक राज्य कर स्वर्ग को गया इतना सुन राजा युधिष्ठिर पूछते भये कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! इस व्रतको क्योंकर करना चाहिये और पतिकी आज्ञापाय, नारी इस व्रत को किस विधान से करै यह आप

कहें । तब श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराजन् ! एक समय द्वारका में हमारे पास बड़े तपस्वी मुद्गलमुनि आये हमने उनको पूजन कर आसन पर बैठाया और यमादर्शन नाम व्रतका विधान उनसे पूछा तब मुद्गलमुनि कहनेलगे कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! एकसमय यमदूत आये और उनने दण्ड से हमारे मस्तक में ताड़न किया तब हमको मूर्च्छा होगई यम-दूत भी अंगुष्ठमात्र पुरुष हमारे देह से निकाल दृढ़ बांध कर यमलोक को लेगये वहां देखा कि अति भयंकर कृष्ण-वर्ण यमराज तो मध्य में सिंहासन के ऊपर बैठे हैं और उनके चारों ओर वात पित्त श्लेष्म श्वास कासज्वर स्फोटक लूता भगन्दर यक्ष्मा कुष्ठ मूत्रकृच्छ्र प्रमेह विशूचिका आदि बड़े बड़े रोग देहधारे हांथ जोड़े खड़े हैं अनेक प्रकार के शस्त्र अस्त्र लिंये दूत और हजारों राक्षस विद्यमान हैं चित्रगुप्त आदि लेखक सम्मुख बैठे सबंके पाप पुण्यका हिसाब कर रहे हैं यह अद्भुत रचना यमराज की सभा की देख हम को बहुत त्रास हुआ यमराज ने हम को देख दूतों से कहा कि रे मूर्खो ! इस मुनिको क्यों ले आये कौंडिन्य नगर में भीष्मक का पुत्र मुद्गलनाम क्षत्रिय है उसको लाओ और इस ब्राह्मण को छोड़दो तबं हमको उनने छोड़ दिया हमने भी यमराज को प्रणाम किया और यमादर्शन व्रतका विधांन उनसे पूछा उनने भी प्रसन्न हो जो हमको कहा वह विधान हम आप को कहते हैं इतना कह मुद्गलमुनि ने व्रतविधान हम को कहा वही हम आपके आगे वर्णन करते हैं मार्गशुक्ल पक्ष की द्वादशी को नदी आदि में स्नानकर तर्पण पूजन आदि कर हवनकरै सूर्यास्त पर्यंत हवन करता रहै सूर्यास्त होतेही गोबर का मण्डल भूमिपर बनाय उसमें चन्दन का ध्रुव लिख चांदी अथवा ताम्र के अर्घ्यपात्र में मोती पुष्प फल

अक्षत गन्ध सुवर्ण जल रखकर मस्तक तक उस पात्र को उठाय दोनों जानु भूमि पर टेक पूर्वाभिमुख होकर सहस्र-शीर्षा मन्त्र करके अर्घ देवै पीछे ब्राह्मण भोजन करावे बारह महीनों में क्रम से खण्डखाद्य सोमलक तिल तण्डुल गुड़ के अपूप मोदक खंडवेष्टक सत्तू अपूप मधुशीर्ष पायस घृत-पूर और कसार ब्राह्मणों को भोजन करावै पीछे क्षमापन कर मौन से आप भी भोजन करै इस विधि से जो पुरुष अथवा स्त्री व्रत करैं वे अप्सरा गन्धर्व यक्ष विद्याधर आदि करके सेवित सूर्य के समान भासमान विमान में बैठ नक्षत्र लोक को जाते हैं वहां अयुतकल्प पर्यंत निवास कर विष्णुलोक में प्राप्त होते हैं यह व्रत सती श्री उमा, सीता, राज्ञी, दमयंती, रुक्मिणी, सत्यभामा, मेनका, रम्भा, उर्वशी आदि नारियों ने किया है इस व्रत के करने से अनेक जन्मों में किये पातक कट जाते हैं ।

अट्ठावनवां अध्याय ।

अरण्य द्वादशी का विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब आप अरण्य द्वादशी का विधान वर्णन करैं तब श्रीकृष्णभगवान् कथन करने लगे कि हे महाराज ! यह व्रत रामचन्द्र जी की आज्ञा से वनमें सीता ने किया था और अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य आदि से मुनि पत्नियों को सन्तुष्ट किया उस व्रत का हम विधान कहते हैं आप प्रीति से श्रवण करैं मार्गशुक्ल एका-दशी को प्रभात ही स्नान कर भगवान् का भक्ति से पूजन करै उपवास रक्खै और रात्रि को जागरण करै दूसरे दिन स्नान आदि कर वेद वेदांग जाननेहारे ब्राह्मणों को उपवन में ले जाय भोजन कराय पंचगव्यप्राशन कर आप भी भोजन करै इस विधि से एकवर्ष व्रत करै और माघ, श्रावण और कार्त्तिक

में मण्डक घृतपूर खण्डवेष्टक अनेक प्रकार के शाक और व्यंजन अपूप मोदक सोमलक आदि भांति २ के पक्वान्न और नाना विधि शीतल भोजन से ब्राह्मणों को तृप्त करै और कर्पूर, इलायची, चतुर्जात, कस्तूरी आदि से सुगन्धित पानक उनको पिलावै सुन्दर फले फूले वृक्षयुक्त वनमें जलाशय के तट पर ब्राह्मण भोजन करावै वनमें रहने हारे मुनि उनकी पत्नी और गृहस्थ और भी ब्राह्मण को भोजन करावै वासुदेव, जनार्दन, दामोदर, मधुसूदन, पद्मनाभ, विष्णु, गोवर्द्धन, त्रिविक्रम, श्रीधर, हृषीकेश, पुण्डरीकाक्ष और वराह इन नमस्कारान्त नामों से एक एक ब्राह्मण का पूजनकर भोजन कराय वस्त्र और दक्षिणा देकर (विष्णु में प्रीयताम्) यह वाक्य कहै पीछे अपने सुहृत् सम्बन्धी और बान्धवों सहित आप भी वहां भोजन करै इस प्रकार जो अरण्य द्वादशी व्रत करै वह अपने सब परिवार सहित दिव्य विमान में बैठ श्वेत दीप को जाता है जहां के सब निवासी चतुर्भुज श्याम देह पीतवस्त्र शंख चक्र गदा पद्मधारे कौस्तुभ मणि और मुकुट कुण्डल आदि भूषणों से शोभित और लक्ष्मी करके आलिंगित साक्षात् विष्णुस्वरूप ही हैं वहां प्रलय पर्यंत निवास कर मुक्ति पाता है और जो नारी इस व्रतको करैं वे भी संसार के सब सुख भोग भगवान् के अनुग्रह से मोक्ष पाती हैं।

उनसठवां अध्याय।

रोहिणी व्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! वर्षाकाल में जब आकाश नील मेघों से आच्छादित हो जाता मयूर चारों ओर मीठी मीठी बोली बोलने लगते हैं दर्दुर कोलाहल मचाते हैं उस समय कुल स्त्री किसको अर्घ्य देती हैं क्या व्रत करती हैं और किस तिथि को करती हैं यह आप वर्णन करैं

यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! श्रावण मासके कृष्णपक्ष की एकादशी को शुचि होकर सर्वौषधि जलसे स्नान करै पीछे उड़द के आटेकी एकसौ डिडिरिका और पांच मोदक बनाय सब सामग्री लेकर उत्तम जलाशय पर जावै वहां गोबर का मण्डल बनाय उसमें रोहिणी सहित चन्द्रका गन्ध पुष्प धूप दीप अक्षत नैवेद्य आदि से पूजन कर कटिप्रमाण जल में प्रवेश कर मन में रोहिणी और चन्द्रका ध्यान करता हुआ वे डिडिरिका जल के मत्स्य आदि जीवों को खिलावै पीछे जल के बाहिर आकर चन्द्रमा को अर्घ्य देकर ब्राह्मण को भोजन कराय दक्षिणा देवै दशवर्ष पर्यंत इस विधि से जो स्त्री अथवा पुरुष व्रतकरै वह धन धान्य पुत्र पौत्र आदि सब पदार्थ पाय बहुत काल संसारसुख भोगकर ब्रह्मलोक को जाता है वहां से विष्णुपुर में और वहांसे भी शिवलोक में प्राप्त होता है ।

साठवां अध्याय ।

अवियोग व्रतका विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब आप यह वर्णन करें कि अवियोग व्रत किस विधि से किया जाता है तब श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि महाराज अवियोग व्रत सब व्रतों में उत्तम है अब हम उसका विधान कहते हैं आप श्रवण कीजिये । भाद्र शुक्ल द्वादशी को प्रभात उठ जलाशय पर जाकर स्नान करै और उसके तट पर हरे गोबर से मण्डल लिखकर उसमें लक्ष्मी सहित विष्णु गौरी सहित शिव सावित्री सहित ब्रह्मा और संज्ञा सहित सूर्यनारायण का सब उपचारों से इन मन्त्रों करके पूजन करै (सहस्रमूर्द्धापुरुषः पद्मनाभोजनार्दनः । व्यासर्षिः कपिलाचार्यो भगवान् पुरुषोत्तमः १ नारायणो मधुरिपुर्विष्णुर्दामोदरो हरिः । महा

वराहो गोविन्दः केशवो गरुडध्वजः २ कृष्णः सपुण्डरीकाक्षो विश्वरूपस्त्रिविक्रमः । उपेन्द्रो वामनो रामो वैकुण्ठो माधवो ध्रुवः ३ वासुदेवो हृषीकेशः कृष्णः सङ्कर्षणोऽच्युतः । अनिरुद्धो महायोगी प्रद्युम्नोऽनन्त एव च ४ नित्यं समेस्तु सुप्रोतः सश्रीकःकेशिसूदनः ५) उमापतिर्नीलकण्ठः स्थाणुः शम्भुर्भगाक्षिहृत् । ईशानो भैरवः शूलीस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकृत् १ कपर्दीशो महालिङ्गी महाकालो वृषध्वजः । शिवः शंभुर्महादेवो रुद्रो भूतमहेश्वरः २ ममास्त्विह हि पार्वत्या शङ्करः शङ्करश्चिरम् ३) ब्रह्मा शम्भुः प्रभुः स्रष्टा पुष्करी प्रपितामहः । हिरण्यगर्भो वेदज्ञः परमेष्ठी प्रजापतिः १ वेधाश्चतुर्मुखः कर्त्ता स्वयम्भूः कमलासनः । विरञ्चिःपद्मयोनिश्च ममास्तु वरदः प्रभुः २) आदित्यो भास्करो भानुः सूर्योर्कः सविता रविः । मार्तण्डो मण्डली ज्योतिरग्निरश्मिर्महेश्वरः १ प्रभाकरः सप्त सप्तिः पारगस्तरणिः खगः । दिवाकरो दिनकरः सहस्रांशुर्मरीचिमान् २ पद्मप्रबोधनः पूषा किरणी मेरुभूषणः । निक्षुभा बलभो देवः सुप्रीतोस्तु सदा मम ३) लक्ष्मीः श्रीः सम्पदा पद्मा मे विभूतिर्हरिप्रिया । पार्वती ललिता गौरी उमा शङ्करवल्लभा । गायत्री विकृतिः सृष्टिः सावित्री मे वरप्रदा । राज्ञी भानुमती संज्ञा निक्षुभा भास्करप्रिया) इन मन्त्रों से चारों मिथुनों का पूजन कर ब्राह्मण भोजन कराय अनेक प्रकार के दान कर आप भी भोजन करै जो इस व्रत को करै उसको कभी इष्ट वियोग नहीं होता और बहुत काल संसार सुख भोग करै क्रम से ब्रह्मा विष्णु शिव और सूर्यलोक में निवास कर मोक्ष पाता है और जो नारी इस व्रतको करै वह भी सब अभीष्ट फल पावै ।

———

इकसठवां अध्याय ।

गोवत्सद्वादशी का विधान, फल गौओंका माहात्म्य मुनियों और राजा उत्तानपादकी कथा ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अठारह अक्षौहिणी सेना मेरे निमित्त मारी गई उस पाप से मेरे चित्त में बडी ग्लानि रहती है उनके बीच ब्राह्मण क्षत्रिय आदि सब थे भीष्म द्रोण कर्ण शल्य दुर्योधन आदि सब मार दिये उनके वध का पाप दिनरात मेरे मर्मों को छेदन करता है अब आप कोई ऐसा उपाय कहैं कि इस पाप का क्षालन होय तब श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे महाराज ! आप गोवत्सद्वादशी का व्रत करैं उससे सब पातक कट जाते हैं। राजा ने पूछा कि उस व्रत का क्या विधान है और कब किया जाता है तब श्रीकृष्ण भगवान् फिर कहने लगे कि पारियात्र पर्वत पर लडुलिकाश्रम के बीच जिसका नाम ठंढा गिरि है वहां एक बड़ा वन है जिसमें अनेक मुनियों के आश्रम हैं चारों ओर सिंह, हाथी, हरिण, वानर, शश, वराह आदि जीव विहार करते हैं और वृक्षों करके वह वन अति ही रमणीय है वहां सत्ययुग में बहुत से मुनि लडुलिकाश्रम के बीच तप करने लगे बहुत काल उनको तप करते हुआ तब शिवजी वृद्ध ब्राह्मण का रूपधार लाठी हाथ में लिये कांपते हुये वहां आये और पार्वतीजी ने भी जैसा रूप बनाया वह सुनो समुद्र मथन के समय पांच गौ उत्पन्न भई हैं नन्दा, सुभद्रा, सुरभी, सुशीला और नन्दिनी ये पांचों शुक्लवर्ण हैं और देवताओं की तृप्ति तथा लोकोपकार के लिये उत्पन्न भई हैं इन पांचों धेनुओं को जमदग्नि भरद्वाज वशिष्ठ गौतम और शिवजी ने ग्रहण किया गोमय गोमूत्र गोरोचन दुग्ध दही और घृत ये छः पवित्र पदार्थ गौओं के शरीर से उत्पन्न होते हैं

गोबर से बिल्ववृक्ष उत्पन्न भया जो शिवजी को अति प्रिय है पद्महस्ता लक्ष्मी बिल्ववृक्ष में निवास करती है इससे उसको श्रीवृक्ष कहते हैं उत्पल और कमलों के बीज भी गोबरसे ही उत्पन्न भये हैं गोरोचन मांगल्य पवित्र और सर्व कार्य साधक होता है गोमूत्र से अति सुगन्ध गुग्गुल उत्पन्न हुआ जिसका धूप सब देवताओं को और विशेष करके शिवजी को प्रिय है दुग्ध से अनेक उत्तम पदार्थों की उत्पत्ति है दही मंगलप्रद है और घृतसे सब देवताओं को तृप्त करनेहारा अमृत उत्पन्न हुआ एक कुलकेही ब्राह्मण रूप और गोरूप दोभाग होगये हैं ब्राह्मणों में मन्त्र रहते हैं और गौओं में हवि गौओं से यज्ञ प्रवृत्त होते हैं सब देवता गौओं में निवास करते हैं षडंग सहित वेद गौओं से उत्पन्न भये हैं गौओं के शृंगमूलमें ब्रह्मा और विष्णु स्थित हैं शृंगाग्र में स्थावर जंगम सब तीर्थों का निवास है शिर में महादेव ललाट में पार्वती नासावंस में कार्त्तिकेय नासिका के दोनों पुटों में कंबल अश्वतर नाग कानों में अश्विनीकुमार नेत्रों में सूर्य चन्द्र दन्तों में सब वायु जिह्वामें वरुण हुंकारमें सरस्वती दोनों पार्श्व में यम और कुबेर दोनों सन्ध्यागलकंबलमें ग्रीवामें इन्द्र आठवसु पार्ष्णि में जंघाओं में चतुष्पाद धर्म खुरों के मध्य में गन्धर्व खुराग्रों में नाग खुरों के पृष्ठभागमें सम्पूर्ण राक्षस पुच्छ में आदित्य गोमूत्र में साक्षात् गंगा गोबर में यमुना रोम कूपों में तेंतीसकोटि देवता उदर में पर्वत समुद्र आदि सहित भूमि चारोंस्तनों में चारसागर दुग्धधारा में विद्युत् सहित मेघ श्वेत रक्त पीत कृष्ण गौओं के इन चार वर्णों में ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद स्थित हैं इस भांति सर्व देवमयी और सर्वतीर्थमयी धेनु हैं। यह मन में विचार पार्वतीजीने नंदिनीधेनुका रूप धारा जिसके सब अंग अति सुन्दर शुक्ल

वर्ण और चारों स्तनों से दुग्ध टपक रहा है कार्त्तिकेय बछड़ा
बने महादेवजी भी वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारे उन दोनों गौ
और बछड़ा को लेकर जहां मुनि तप करते थे वहां पहुँचे और
कुलपति भृगमुनि के पास जाय कहा कि दो दिन आप इस
हमारी गौ को अपने पास रहने देवें इतने में हम समीपवर्ती
तीर्थ की यात्रा कर आवें भृगुजीने कहा बहुत अच्छा और
यह धेनु मुनियों के हवाले करदी महादेवजी ने वहां से अन्त-
र्धान होकर सिंह का रूप धारण किया कि जिसके वक्र
कठोर और अतितीक्ष्ण नख जलते हुये पिंगलवर्ण नेत्र बड़ी २
और तीखी दाढ़ लम्बी पूंछ और लटकती हुई लाल जिह्वा
इस प्रकार अति कराल रूप धार आश्रम के समीप आय
गर्जने लगे वह घोरशब्द सुन गौ और बछड़ा त्रास को प्राप्त
भये सब मुनियों में हाहाकार मच गया गौ बछड़ा भय से
भगे और सिंह भी पीछे लगा उन सब के चरणों के चिह्न आज
तक भी शिला के ऊपर देख पड़ते हैं जिनको सब देवता पूजते
हैं और तीर्थ सहित शिवलिंग भी वहां है जिस लिंग के स्पर्श
से गोहत्या निवृत्त होती है और जंबू मार्ग में स्थित उस शिव
तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्महत्या आदि महापातक कट जाते हैं
मुनि भी यह वृत्तान्त देख प्राण त्याग करने को उद्यत भये
तब देखा कि नतो कहीं सिंह है और न बछड़े समेत गौ है सब
मुनि यह आश्चर्य देख विचार ही कर रहे थे कि पार्वती सहित
वृष पर आरूढ़ त्रिशूल हाथ में लिये कार्त्तिकेय, गणपति, नन्दी,
महाकाल, भृङ्गी; वीरभद्र, घंटाकर्ण, चामुंडा, मातृका, भूत, यक्ष,
राक्षस, गुह्यक, देव, दानव, गन्धर्वआदि सहित श्रीमहादेवजी
वहां प्रकट भये मुनि उनका दर्शन पाय कृतार्थ भये और भक्ति
से उनका पूजन किया और गोरूपिणी श्रीपार्वती का सपत्नीक
मुनियों ने प्रीति से अर्चन किया उसीदिन से कार्त्तिक कृष्णपक्ष में

गोवत्स द्वादशी व्रत का प्रचार हुआ है उत्तानपाद इस व्रत को सदा किया करता था उसका हम वृत्तान्त कहते हैं उत्तानपाद एक राजा था उसके रुची और श्रुध्नीनाम दो रानी थीं श्रुध्नी के ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न भया कुछ दिन के अनन्तर श्रुध्नी ने रुची से कहा कि हे सखि! तू इस बालक का पालन कर और मैं पति की शुश्रूषा में रहूँगी रुची ने यह बात अंगीकार करली और श्रुध्नी पति की सेवा में तत्पर भई एक दिन ईर्षा से रुचीने उस बालक को मार खण्ड २ कर रांध लिया और भोजन के समय राजा के आगे वही मांस परोसा राजा भोजन किया ही चाहता था कि वह बालक जीकर उठ खड़ा हुआ तब सब को आश्चर्य भया कि यह क्या माया है रुची ने श्रुध्नी से पूछा कि यह तेरे किस पुण्य का प्रभाव है कि सातबार इस बालक को ईर्षा से मैं वध करचुकी परन्तु यह फिर जी उठता है क्या तू मृतसंजीविनी विद्या जानती है कि कोई मणि मन्त्र ओषधी आदि तेरे पास है जिससे यह बालक नहीं मरने पाता मुझको सत्य बता दे तब श्रुध्नी ने कहा कि हे रुचि! मैंने गोवत्स द्वादशी व्रत किया है उसीका यह सब प्रभाव है इस व्रत के करने से कभी पुत्र से वियोग नहीं होता तूभी इस व्रत को करै तो बड़े प्रतापी और दीर्घजीवी पुत्र पावै यह सपत्नीका वचन सुन रुची भी व्रत करने लगी और पुत्र धन सुख आरोग्य आदि सब पाये और अन्त में पति सहित ध्रुवस्थान में प्राप्त भई ब्रह्माजीने भी उनका बहुत सत्कार किया अद्यापि ध्रुव उत्तानपाद और रुचि का आकाश में दर्शन होता है जो उनके दर्शन करै वह सब पापों से मुक्त होय इतनी कथा सुन राजा युधिष्ठिर ने गोवत्स द्वादशी व्रतका विधान पूछा तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज! कार्त्तिक कृष्ण द्वादशी को स्त्री अथवा पुरुष संकल्प कर नदी में स्नान करै

और एक भक्त व्रत रखकर मध्याह्न के समय सुशीला और सवत्सा कपिला गौ का गन्ध पुष्प जल अक्षत दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य उड़द के बड़े और भी जो पदार्थ गौ को प्रिय हों उनसे गौ और बछड़े का (ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः। प्रणवोचञ्चिकितुषे जनापनागामादितिं वशिष्ठया नमो गोभ्यो नमः स्वाहा) इस मन्त्र करके पूजन करै पीछे हाथ जोड़ (ॐ सर्वदेवमये देवि सुभद्रे भद्रवत्सले । मातर्ममाभिलाषितं सफलं कुरु नन्दिनि) यह मन्त्र पढ़ क्षमापन कराय गौ को तृप्तिपूर्वक भोजन करावै और आप भी तवे और स्थाली में सिद्ध हुआ भोजन न खाय और ब्रह्मचर्य से भूमिपर शयन करै इस व्रतका करने हारा गौ के शरीर में जितने रोम हैं उतने दिव्यवर्ष गोलोक में निवास करता है। मेरुपृष्ठ के ऊपर अष्ट दिक्पालों की पुरीं हैं और इन सबके ऊपर गोलोक है जो कार्त्तिक कृष्ण द्वादशी को गन्ध पुष्प वटक आदि से सवत्सा गौका भक्ति से पूजन करते हैं वे कभी सन्तान का कष्ट नहीं पाते और संसार का सब सुख भोग गोलोक को जाते हैं।

बासठवां अध्याय।

गोविन्दशयन व्रतका विधान चातुर्मास्य के नियम और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब हम गोविन्दशयन व्रतका विधान और चातुर्मास्य के नियम कहते हैं मिथुन के सूर्य में विष्णु भगवान् को शयन करावै और तुला के सूर्य में फिर उठावै आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी को उपवास कर शंख चक्र गदा पद्म धारे पीताम्बर पहिने ऐसी अति सुलक्षण भगवान् की प्रतिमा को पलंगके ऊपर शय्या बिछाय तकिये लगाय उसपर सुलावै प्रथम मूर्तिका पूजन कर इतिहास और पुराण जाननेहारा प्रतिमा को पंचामृत और

शुद्ध जलसे स्नान कराय उत्तम गन्धसे लेपन कर भूषण वस्त्र पहिनाय पुष्प धूप और अनेक प्रकार के नैवेद्य निवेदन कर (सुप्ते त्वयि जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेद्द्रुतम्। विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्) इस मन्त्र से प्रतिमा को शयन करावै प्रतिमा शयन से उत्थापन पर्यन्त चार महीने स्त्री अथवा पुरुष भक्ति से नियम ग्रहण करै उन नियमों को फल सहित हम कथन करते हैं गुड़ को त्यागै तो मधुर स्वर होय तैलाभ्यंग न करै तो सुन्दर शरीर होय कटुतैल छोड़ै तो शत्रु नाश होय महुआ का तैल त्यागदे तो अतुल सौभाग्य पावै पुष्प आदि उपभोग त्यागने से स्वर्ग में जाय विद्याधर बनै जो योगाभ्यास करै वह ब्रह्मपद पावै कटु तिक्त मधुर क्षार आदि रसका त्याग करै वह कभी वैरूप्य और दौर्गन्ध्य को प्राप्त न होय ताम्बूल त्यागने से भोगी और मधुरस्वर होय घृत के त्याग से स्निग्ध और लावण्ययुक्त शरीर होय फल त्याग से पुत्र और बुद्धिकी प्राप्ति होय शाक न खाय तो भोगी होय अपक्व भोजन करै तो अमल होय पादाभ्यंग और शिरोभ्यंग त्यागै तो धनका स्वामी यक्ष होय दही दूध छोड़ै तो गोलोक में प्राप्त होय स्थालीपाक त्यागने से स्वर्ग को जाय कड़ाही तवे का पदार्थ त्यागे तो बहुत सन्तति होय भूमिपर सोवै तो चतुर होय मधु मांस त्यागै तो सदा मुनि और सदायोगी होय सुराका त्याग करने से आरोग्य प्राप्त होय इत्यादि और भी वस्तुओं के परित्याग से धर्म होता है एकान्तर उपवास करने से ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है नख और केशों के धारण करने से नित्य गंगास्नान का फल प्राप्त होता है जो मौन रक्खे उसकी आज्ञा कभी भंग न होय भूमिपर रखकर भोजन करै तो भूमिपति होय (ॐ नमो नारायणाय) इस मन्त्र को जपै तो अनशनव्रत का फल पावै विष्णु भगवान् के चरणों

में प्रणाम करै तो गोदान का फल होय चरणों के स्पर्श करने से कृतकृत्य होजाय जो नित्य विष्णु भगवान् के सम्मुख लोगों का पुराण सुनावै और धर्मोपदेश करै वह साक्षात् वेद-व्यासही है और अन्त में विष्णुलोक को जाय पुष्पमाला से भगवान् का पूजन करै तो विष्णुलोक में प्राप्त होय विष्णुभगवान् के आगे प्रेक्षणक अर्थात् नाच तमाशा करावै तो अप्सरा लोक में निवास करै तीर्थ में स्नान करै तो निर्मल देह पावै पंचगव्य प्राशन करने से चान्द्रायण का फल होय एक भक्त करने से अग्निहोत्र का फल मिलै नित्य गंगा स्नान करै तो नरक न देखै पात्र का त्याग करै तो पुष्कर स्नान का फल होय पत्रों में जो भोजन करै तो कुरुक्षेत्र का फल पावै शिला पर भोजन करै तो प्रयाग स्नानका फल होय इत्यादि व्रतों से भगवान् प्रसन्न होते हैं चारोंवर्णों में विवाह यज्ञोपवीत चूड़ाकरण आदि शुभ क्रिया विष्णुशयन में न करै और भी गृहप्रवेश देवप्रतिष्ठा आदि न करै इसी प्रकार दक्षिणायन में और मलमास में भी शुभकृत्य न करै भाद्र शुक्ल एकादशी को भगवान् करवट लेते हैं उसदिन भी महापूजा और बड़ा उत्सव करै अब हम इस शयन का कारण कहते हैं पूर्वकाल में योगनिद्रा ने बड़ा तपकर हमको प्रसन्न किया और यह वर मांगा कि आपके शरीर में मेरा निवास होय तब हमने विचार किया कि हमारे वक्षस्स्थल में लक्ष्मीका निवास है चारों भुजाओं में शङ्ख चक्र आदि रहते हैं नाभि के नीचे गरुड़ ने रोक रक्खा है शिरपर मुकुट और कानों में कुण्डल रहते हैं केवल नेत्र खाली हैं यह विचार हमने योगनिद्रा को कहा कि चार महीने हमारे नेत्रों में निवास कियाकर उसदिन से चार महीने हमारे लोचनों में प्रसन्न होकर योगनिद्रा निवास करती है और हम शेषशय्या पर सोते हैं चातुर्मास्य में जो पुरुष अथवा स्त्री व्रत

और नियम से रहै वह अवश्यही विष्णुलोक में निवास करै फिर कार्त्तिकशुक्ल एकादशी को (इदं विष्णुर्विचक्रमे) इस मन्त्र करके विष्णुभगवान् को शयन से उठावै उस दिन से सब शुभ कृत्यों की प्रवृत्ति होती है शयन से भगवान् को उठाय पहिली भांति महापूजन कर रथपर बैठाय नगर में घुमावै और दीप माला आदि बड़ा उत्सव करै जहां २ भगवान् का रथ जाय वह भूमि स्वर्गसमान होजाती है रात्रि को देवालय में जागरण करै द्वादशी के दिन प्रभातही स्नानकर भगवान् का अर्चन करै और घृतयुक्त तिलों का हवन कर घृत क्षीर दही मोदक आदि पदार्थ ब्राह्मणों को भोजन करावै ग्यारह आठ पांच दो अथवा एकही ब्राह्मण का गन्ध पुष्प आदि से पूजन कर श्राद्धोक्त विधि से नित्य भोजन करावै और भी ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करै और चातुर्मास्य में जिस वस्तुका त्याग किया होय वह भी ब्राह्मण को देवै पीछे आप भी भोजन करै इस विधि से जो व्रत करै वह विष्णुलोक में प्राप्त होता है जिसका यह चातुर्मास्यव्रत निर्विघ्न पूरा होजाय वह कृतकृत्य होजाता है और अन्त में विष्णुलोक को जाता है जो भगवान् का यह उत्सव करै और इसका अनुमोदन करै वह विष्णुलोक में प्राप्त होय जो सुनै ध्यान करै स्तुति करै हवन करै परन्तु हृदय में भगवान् की भक्ति होय वह अवश्यही विष्णुलोक में निवास करै जिसदिन भगवान् सोवैं और जिसदिन उठैं उसदिन जो उपवास और भगवान् का अर्चन करै वह सद्गति पावै इसमें कुछ सन्देह नहीं ।

तिरसठवां अध्याय ।

सब प्रकारकी शान्ति करनेहारा नीराजन विधान ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! पूर्वकाल में प्रजापाल नाम एक राजा था उसने अपनी प्रजा के सब उपद्रव

शान्त होने के लिये शान्ति करी जिससे उसकी प्रजा अत्यन्त सुख को प्राप्त भई इसी से राजाका नाम प्रजापाल पड़ा और ज्वर आदि सब बड़े २ रोग राजा के आधीन रहते थे उसी समय बड़ाप्रतापी रावण नाम लंकाका राजा था सब देवता जिसकी आज्ञा मानते थे अखण्ड चन्द्रमण्डल छत्ररूप बनता था इन्द्र जिसका सेनापति था वायु झाडू देता वरुण जल छिड़कता कुबेर धन की रक्षा करता यम शत्रुओं का संहार करता मनु मन्त्र के समय सेवा में आता मेघ लेपन करते और वृक्ष पुष्पवृष्टि करते ब्रह्मा सहित सप्तऋषि शान्ति आदि में तत्पर रहते नाग पहरा देते गन्धर्व गाते और अप्सरा नाचतीं गङ्गा आदि नदी स्नान करातीं अग्नि रसोई बनाता विश्वकर्मा अन्न का संस्कार करता मयासुर सब शिल्प के काम बनाता सब राजा नगर की रक्षा करते सूर्यभगवान् प्रकाश करते एकदिन रावणने पूछा कि हमारी सेवा में जो नहीं आया हो उसको शीघ्र लाओ तब एक राक्षस हाथ जोड़ कर बोला कि महाराजाधिराज काकुत्स्थ मान्धाता धुंधुमार नल अर्जुन ययाति नहुष भीम विदूरथ आदि सब राजा आपकी सेवा में स्थित हैं केवल एक प्रजापाल नाम राजा यहां नहीं आता यह सुनतेही रावणने अति कोप किया और दूत से कहा कि जल्दी जाकर प्रजापाल से कहो कि शीघ्र हमारी सेवा में आवे नहीं तो चन्द्रहास नामक खड्ग से उसका मुण्ड रुण्ड से अलग करदेंगे यह आज्ञा पातेही धूम्राक्षनाम दूत राजा प्रजापाल के पास गया राजाको देखा कि दिन रात प्रजाकी रक्षा में तत्पर है दूतने रावण का संदेश सुनाया राजाने सुनकर दूत को तो विसर्जन किया और ज्वरको बुलाकर कहा कि तुम रावण के पास जाओ यह आज्ञा पातेही लङ्कामें रावण के पास ज्वर पहुँचा और रावण के शरीर को आक्रान्त किया रावण अति व्याकुल भया और

जाना कि यह सब काम प्रजापाल का है तब ज्वरसे कहा कि प्रजापाल अपने स्थान में ही रहै हमको उसकी सेवा से कुछ प्रयोजन नहीं इतना कहतेही ज्वरने उसको छोड़ दिया उस प्रजापालने सब रोग और उपद्रव शान्त करनेहारी शान्ति बनाई है उसका हम विधान कहते हैं हरिप्रबोध के अनन्तर कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी को प्रदोष के समय अरणी से अग्नि उत्पन्न कर वर्धमान वृक्षकी समिधाओं से प्रज्वलितकर शान्ति मन्त्रों से हवन करै और विष्णुभगवान् की प्रतिमा बनाय गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य वस्त्र भूषण रत्न लाजा इक्षु आदि से पूजन कर लक्ष्मी ब्रह्मा चण्डिका आदित्य शङ्कर गौरी कार्त्तिकेय गणपति ग्रह पितर नाग आदि देवताओं का पूजन कर सब का नीराजन अर्थात् आरती करै गौ भैंस आदि को भी भूषित कर उनका नीराजन करै पीछे घण्टादि वाद्यों के शब्द से उनको त्रास देवै जिससे वे दौड़ें उनके पीछे पीछे बछड़े और उनके पीछे रक्त पीत श्वेत वस्त्र पहिने गोपाल दौड़ते फिरैं इसभांति कोलाहल कर घोड़े हाथी आदि का पूजन और नीराजन करै फिर राजा सिंहासन पर बैठे और पुरोहित मंत्री भृत्य आदि चारों ओर बैठैं और राज्यके चिह्न छत्र चामर आदिका पूजन और नीराजन करके राजा के ऊपर धारै पीछे सर्व शुभ लक्षणयुक्त वेश्या अथवा और कोई सौभाग्यवती स्त्री राजा का नीराजन करै ब्राह्मण वेदघोष करैं अनेक प्रकार के बाजे बजैं पीछे चतुरंगिणी सेनाका नीराजन करै यह शान्ति जिस देश में करीजाय वहां रोग और दुर्भिक्षका भय नहीं होता प्रजाका आयुष् बढ़ता है यह शान्ति प्रजा के कल्याण के अर्थ प्रतिवर्ष करनी चाहिये जो राजा भगवान् का नीराजनकर गौ ब्राह्मण हाथी घोड़े सेना और राजचिह्नों का नीराजन करैं वे संसार में सुखभोग उत्तम लोक पाते हैं यह राजा प्रजापाल का वाक्य है।

चौंसठवां अध्याय।

भीष्मपंचक का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम भीष्मपंचक का विधान कहते हैं भीष्मपंचक का व्रत वशिष्ठ भृगु गर्ग आदि मुनि ब्रह्मचर्य जप होम आदि में तत्पर ब्राह्मण सत्य शौच में परायण क्षत्रिय शीरभद्र आदि स्वधर्मनिष्ठ वैश्य और अनेक उत्तम शूद्र भी करते हैं जिसने यह व्रत किया उसने सब उत्तम कर्म किये इस भीष्मपंचक में मद्य मांस मैथुन असत्य भाषण शिकार खेलना आदि का त्याग करै पांच दिन विष्णु भगवान् का पूजन कर शाकाहार करै भर्ताकी आज्ञा से सुख प्राप्ति के लिये स्त्री इस व्रत को करै विधवा नारी पुत्र पौत्रों की वृद्धिके लिये अथवा मोक्ष के अर्थ इस व्रतको करै नित्य स्नान दान वैश्वदेव और विष्णु भगवान् का पूजन करै कार्त्तिक शुक्ल एकादशी से व्रत करके पूर्णमासी को अति भयंकर जिसका मुख खड्ग हाथ में लिये विकृत स्वरूप ऐसी पाप पुरुषकी लोहकी मूर्त्ति बनाय काले तिलों के ढेरपर स्थापन कर सुवर्ण के कुण्डल और कृष्ण वस्त्र उसको पहिनाय करवीर पुष्प आदि से धर्मराज के नामों करके भक्तिपूर्वक उसका पूजन कर हाथों में पुष्पांजलि लेकर (यदन्यजन्मनि कृतमिहजन्मनि वा पुनः। पापप्रशममायातु तत्पापं तव पूजनात्) यह मन्त्र पढ़ पुष्पांजलि देकर ब्राह्मण को वह प्रतिमा देवै और (कृष्णो मे प्रीयताम्) यह वाक्य कहै पीछे नीलोत्पलके समान श्यामवर्ण चतुर्भुज चतुर्दंष्ट्र अष्टपाद त्रिनेत्र शङ्कुकर्ण व्याघ्रचर्म ओढ़े जटा धारे सर्पों के भूषण पहिने ऐसे रुद्रका ध्यान करै शरशय्यापर सोये हुये भीष्मने यह व्रत कहा है जो इस व्रतको करै वह ब्रह्महत्या गोहत्या आदि बड़े बड़े पापों से छूट जाता है और सद्गति पाता है।

पैंसठवां अध्याय।

मल्लद्वादशी का विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! मल्लद्वादशी का क्या विधान है आप उसका वर्णन करैं यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! हमारी अवस्था जब आठ वर्ष की थी उस समय यमुना के तटपर भाण्डीर वटके नीचे हमको सिंहासन पर बैठाय सुभद्र भद्र सुभद्रांग इन्द्रभट आदि बड़े बड़े मल्ल गोप और गोपाली पालिका धन्या धनिष्ठा राधा अनुराधा सोमा तारका आदि गोपी इन सबने दही दुग्ध सुरा मांस आदि से कंस के वध के अर्थ हमारा पूजन किया और तीनसौ मल्लोंने भक्ति से पूजनकर मल्लयुद्ध किया और हमारी प्रसन्नता के लिये बड़ा उत्सव किया परस्पर बड़े प्रेम से मिले उस दिन से यह मल्लद्वादशी प्रसिद्ध हुई इस व्रत को कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी से आरम्भ करैं और प्रतिमास क्रम से केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर इन नामों से गन्ध पुष्प धूप दीप गीत वाद्य मल्लयद्ध घृत दुग्ध दान आदि से हमारा पूजन करैं और (कृष्णो मे प्रीयताम्) यह वाक्य कहै यह विधि इस व्रत की है बाल्यावस्था में यह उत्सव हमने किया है इसलिये यह द्वादशी हमको बहुत प्रिय है मल्लों ने इस व्रतकी प्रवृत्ति करी इसलिये इसका नाम मल्लद्वादशी है और अरण्य में करी इसलिये अरण्यद्वादशी कहाई जिन गोपों ने हमारा पूजन किया उनके भैंस गौ आदि की बहुत वृद्धि भई और भी जो पुरुष इस व्रत को करैं वे आरोग्य बल ऐश्वर्य और सद्गति पावैं।

छियासठवां अध्याय ।

वामनद्वादशीका विधान और फल ।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! पूर्वकाल में विदर्भदेश का स्वामी दमयन्ती का पिता बड़ा पराक्रमी और प्रजा-पालक राजा भीम भया है एक दिन तीर्थयात्रा करते हुये ब्रह्मा जी के पुत्र पुलस्त्य मुनि वहां आये राजा ने उनका बड़ा सत्कार किया अपने हाथ से आसन बिछाय बैठाया पाद्य अर्घ्य आदि से उनका पूजन किया पुलस्त्य मुनि ने भी प्रसन्न हो राजा से कुशल पूछा तब राजाने अति विनय से कहा कि महाराज जहां आपका आगमन होय वहां सब प्रकार का कुशल ही होता है इस भांति अनेक प्रकार की स्नेह की बातें राजा और मुनि परस्पर करते रहे कुछ कालके अनन्तर राजा ने पूछा कि महाराज संसार के जीव दिन रात अनेक प्रकार के दुःखों से पीड़ित रहते हैं गर्भवास बड़ा दुःख है पीछे अनेक प्रकार के रोग सताते हैं यह दशा जीवोंकी देख मुझे अत्यन्त त्रास होता है ऐसा कौन उपाय है जिस से थोड़ा परिश्रम करकेही जीव संसार के दुःखों से छूटैं ऐसा उपवास दान आदि जो कर्म होय उसका आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन पुलस्त्य मुनि कहने लगे कि हे राजन् ! माघ शुक्ल द्वादशी का उपवास करै तो मनुष्य कभी दुःखभागी न होय राजाने व्रतका विधान पूछा तब पुलस्त्य मुनि बोले कि हे राजन् ! यह व्रत अति गुप्त है तुम्हारे स्नेह से हम कहते हैं अदीक्षित को यह व्रत कभी मत कहना जितेन्द्रिय धर्म-निष्ठ और विष्णुभक्त पुरुष इस व्रतके अधिकारी हैं ब्रह्महा गुरुघाती गोघ्न स्त्रीघातक कृतघ्न मित्रद्रोही आदि बड़े बड़े पातकी भी इस व्रतके करने से निष्पाप होजाते हैं पहिले अच्छे मुहूर्त में दश हाथ लम्बा चौड़ा मण्डप बनाय उसके

मध्य में पांच हाथ विस्तार की वेदी बनावै वेदी के ऊपर पांच रंगका मण्डल बनावै और आठ अथवा चार कुण्ड बनावै मण्डल के मध्य में कर्णिका के बीच पश्चिमाभिमुख भगवान् की मूर्ति स्थापनकर गन्ध पुष्प धूप दीप भांति भांति के नैवेद्यों से शास्त्रोक्त विधि करके वेदवेत्ता ब्राह्मणों से पूजन करावै और नारायण के सम्मुख दो स्तम्भ गाड़कर उनके ऊपर एक आड़ा काष्ठ रख उसमें एक दृढ़ छींका बांधे उसपर सुवर्ण चांदी ताम्र अथवा मृत्तिका का शतच्छिद्र कलश उत्तम जलसे पूर्णकर रक्खै पलाश की समिधा तिल घृत क्षीर और शमीपत्रों से हवन करै और ईशान कोण में ग्रहों का पीठ स्थापनकर ग्रहपूजा करै और अपनी अपनी दिशामें इन्द्र यम वरुण और कुबेरका पूजन करै पीछे शुक्लवस्त्र चन्दन से भूषित दर्भपाणि यजमान को पीठके ऊपर पूर्वोक्त कलश के नीचे ब्राह्मण बैठावैं यजमान भी एकाग्रचित्त होकर (नमस्ते देव देवेश नमस्ते भुवनेश्वर । व्रतेनानेन मां त्राहि परमात्मन्न-मोस्तु ते) यह मन्त्र पढ़े और कलश से गिरती जलधारा को मस्तकपर धारै उस समय चारों दिशाओं में ब्राह्मण हवन करैं शान्तिकाध्याय विष्णुसूक्त पुण्याहवाचन आदि पढ़ैं अनेक प्रकार के बाजे बजैं इस भांति बड़ा उत्सव करावै हरि-वंश सौवर्णिक उपाख्यान और महाभारत आदि का यज-मान श्रवण करै इस भांति सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत करै और ब्राह्मण हवन करते रहैं इतना कह श्रीकृष्णभगवान् बोले कि हे महाराज ! विष्णुभगवान् वामनरूप धार बलिके पास गये और कहा कि हे दैत्येन्द्र ! तीन पद भूमि आप हमको देवैं तो हम रहने को कुटी बनालेवैं बलिने कहा कि तुमको जहां चाहिये तीन पद भूमि ग्रहण करो तब वामन वृद्धि को प्राप्त भये दोनों पैर भूमि पर रख इन्द्रादिकों के लोक नाभि से

आवृत्तकर ब्रह्मलोक में शिर लगाया एक पाद क्रम में, इतना दबाया और दूसरा चरण उसपर रक्खा और तीसरे पाद-न्यास को स्थान नहीं मिला तब देवदुन्दुभी बजानेलगे सब देवता और सिद्ध प्रंशसा करनेलगे इस भांति त्रिभुवन को वशमें कर बलिको भगवान् ने कहा कि तुम पाताल में निवास करो और यथेच्छ भोग भोगो और वर्तमान इन्द्र के अनन्तर तुम इन्द्र बनोगे बलि भी भगवान् की आज्ञा प्राय प्रणाम कर पाताल को गया भगवान् ने दिक्पालों को कहा कि अपने अंपने स्थान को जाओ इस भांति जगत्कार्य करके भगवान् अन्तर्द्धान भये यह सब कृत्य भगवान् ने एकादशी को किया था इसलिये यह तिथि भगवान् को अति प्रिय है फाल्गुन शुक्ल में पुष्पयुक्त एकादशी होय तो विजया एकादशी कहाती है उस दिन उपवास कर रात्रि के समय सुवर्ण के काष्ठ के अथवा बांसके पात्रमें कमण्डलु छत्र खड़ाऊँ माला आदि स्थापन कर श्वेत वस्त्र से ढकै पीछे गन्ध पुष्प धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य तिल जौ गोधूम आदि से भगवान् का पूजन कर मृगचर्म और सुवर्ण सहित वह पात्र भगवान् को निवेदन करै मन्त्रसे पूजा करै तो शतगुण भक्ति से करै तो लक्षगुण और मंत्रसहित भक्तिसे पूजन करै तो कोटिगुण फल होता है रात्रि को जागरण कर बड़ा उत्सव करै प्रभात होतेही स्नान कर भगवान् का पूजन कर सब सामग्री ब्राह्मण को देकर (वामनोदान-कर्ता च द्रव्यस्थो वामनस्वयम् । वामनोस्य प्रतिग्राही तेन वै वामने नमः) यह मन्त्र पढ़ै ब्राह्मण भी दान लेकर (वामनः प्रतिग्रह्णाति वामनो नो ददाति च । वामनस्तारको नित्यं तेन वै वामने नमः) यह मन्त्र पढ़ै (मत्स्यं कूर्मं वराहं च नरसिंहं तु वामनम् । रामं रामं च कृष्णं च तेन वै वामने नमः) इस मंत्र से पूजन करै ॐ मत्स्याय नमः जानुनोः । वराहाय नमः गुह्ये ।

नरसिंहाय नमः नाभ्याम् । वामनाय नमः उरसि । रामाय नमः भुजयोः । रामाय नमः मुखे । कृष्णाय नमः शिरसि । इस प्रकार न्यास करै इस प्रकार एकादशी को उपवास और पूजन कर द्वादशी को ब्राह्मण भोजन कराय आप भी भोजन करै इस व्रत को करनेहारा एक मन्वन्तरपर्यन्त विष्णुलोक में निवास करता है फिर भूमिपर जन्म लेकर धन धान्य हाथी घोड़े पुत्र पौत्र रूप सौभाग्य आरोग्य दीर्घायुष् आदि पाकर चक्रवर्ती राजा होता है यह एकादशी का विधान है इसी प्रकार श्रवणयुक्त द्वादशी को भी व्रत पूजन आदि करै तो सब फल पावै उस दिन ब्राह्मणों को दही भात भोजन करावै यह वामन द्वादशी का व्रत सगर काकुत्स्थ धुन्धुमार गाधि आदि बड़े बड़े राजा और वशिष्ठ आदि मुनियों ने कियाहै इस व्रत के करने से अणिमादि सिद्धि और सद्गति प्राप्त होती है ।

सरसंठवां अध्याय ।

प्राप्तिद्वादशी का विधान और फल ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम पौष कृष्ण द्वादशी व्रतका विधान कहते हैं जिसके करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं उस दिन उपवास कर विष्णु भगवान् का पूजन करै और पाखण्डों के साथ सम्भाषण आदि न करै प्रतिमास भगवान् का पूजन करै पौष से लेकर ज्येष्ठपर्यन्त क्रमसे पुण्डरीकाक्ष माधव विश्वरूप पुरुषोत्तम अच्युत और जय का पूजन करै इस छःमहीने के प्रथम पारण में तिलों से स्नान और तिल प्राशन करै आषाढ़ादि छःमहीनों में भी इनहीं नामों से भगवान् का पूजन करै परन्तु पंचगव्य का प्राशन और स्नान करै एकादशी को उपवास कर द्वादशी को इस विधान से पूजन कर ब्राह्मण भोजन करावै इस भांति एक वर्ष व्रतकर सवत्सा गौ सुवर्ण वस्त्र पात्र आसन आदि वस्तु

ब्राह्मण को देवै और (केशवः प्रीयताम्) यह वाक्य कहे। भक्ति से जो इस संप्राप्ति द्वादशी का व्रत करै वह पापों से मुक्त होय सब कामना पावै इस माहात्म्य को जो श्रवण करै उसके भी सब मनोरथ सिद्ध होते हैं जो विष्णुभक्त इस प्राप्ति द्वादशी व्रत को श्रद्धा से करैं वे संसार सुख भोग अन्त में स्वर्ग में वास करते हैं।

अरसठवां अध्याय।

गोविंदद्वादशी का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम गोविन्द द्वादशी का विधान कहते हैं जिसके करने से अभीष्ट फल मिलता है पौष शुक्ल द्वादशी को उपवास कर पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से गोविन्द का पूजन कर इसी नाम का उच्चारण करता रहै पाखण्डों से सम्भाषण न करै फिर ब्राह्मणों को यथा-शक्ति दक्षिणा देकर आप भी गोमूत्र गोमय दधि अथवा गोदुग्ध प्राशन करै दूसरे दिन स्नान कर उसी विधि से गो-विन्द का पूजन कर ब्राह्मण भोजन कराय आप भी गोदुग्ध आदि भोजन करै और गौको तृप्तिपूर्वक भोजन करावै इसी प्रकार प्रतिमास व्रत करै वर्ष समाप्त होने पर सुवर्ण की गोविन्द प्रतिमा बनाय पुष्प धूप दीप माला वस्त्र भूषण नैवेद्य आदि से पूजन कर (गोविन्दो गोपतिर्गोप्ता श्रीकान्तः श्रीधरो हरिः। सर्वकामफलावाप्तिं करोतु मम केशव) यह मन्त्र पढ़ सवत्सा गौ सहित ब्राह्मणों को देवै और (गोविन्दः प्रीयताम्) यह वाक्य कहे उस दिन भी गौवों को भोजन देवै सुवर्ण शृङ्ग रौप्य खुर उत्तम वृष प्रतिमास ब्राह्मण को देने से जो फल प्राप्त होता है वही इस व्रत के करने से भी होताहै और इस गोविन्द द्वादशी व्रत का करनेहारा सब सुख भोग गोलोक को जाता है।

उनहत्तरवां अध्याय।

अखण्ड द्वादशी व्रतका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्ण! उपवास आदि में जो कुछ वैकल्य अर्थात् किसी बात की न्यूनता रहजाय तो क्या फल होता है यह आप कथन करैं यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज। उपवास आदि के प्रभाव से राज्य उत्तम रूप आदि पाकर वैकल्य दोष से काणे अन्धे कुबड़े होजाते हैं वैकल्य दोष से ही स्त्री पूरुषों में वियोग होता है उत्तम कुल में जन्म पाकर भी दुःशील होते हैं धनाढ्य होकर भी धन का भोग और दान नहीं करसक्ते उत्तम रूप युक्त होकर वस्त्र भूषणों से हीन रहते हैं इसलिये यज्ञ में व्रतमें और भी धर्मकृत्यों में विकलता न होने देवै राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! जो कदाचित् उपवास आदि में वैकल्य हो भी जाय तो कौन कर्म करना चाहिये जिससे वह अच्छिद्र होय तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे महाराज! अखण्ड द्वादशी का व्रत करने से सब प्रकार का वैकल्य दोष दूर होता है उसका आप विधान सुनैं मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशी को स्नान कर भगवान् का भक्ति से पूजन करै उपवास रक्खे और नारायण का स्मरण करता रहै पूजा के अन्त में (सप्तजन्मनि यत्किंचिन्मया खण्डं व्रतं कृतम्। भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे॥ यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वयैव पुरुषोत्तम। तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्तु वै) यह मन्त्र पढ़ै और चार महीने में प्रथम पारण कर ब्राह्मणों को तिलपात्र देवै और भगवान् का पूजन करै चैत्रादि चार मास के अनन्तर दूसरा पारण करै और शर्करापात्र ब्राह्मणों को देवै श्रावणादि चार मास के अनन्तर तीसरा पारणकर नारायण का पूजन करै और घृतपूर्ण पात्र ब्राह्मणों को देवै सुवर्ण चांदी ताम्र

मृत्तिका अथवा पलाशपत्र के पात्र अपने वित्तानुसार बना कर देवै पीछे जितेन्द्रिय बारह ब्राह्मणों को क्षीर भोजन कराय वस्त्र भूषण और दक्षिणा देकर क्षमापन करावै और आचार्य का भी विधिपूर्वक पूजन करै इस विधि से जो अखण्ड द्वादशी का व्रत करै उसके सात जन्मतक किये हुये व्रत सम्पूर्ण फलदायक हो जाते हैं इसलिये स्त्री पुरुषों को व्रतों का वैकल्य दोष निवृत्त करने के लिये अवश्य यह व्रत करना चाहिये।

सत्तरवां अध्याय।

मनोरथ द्वादशी का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! स्त्री अथवा पुरुष फाल्गुन शुक्ल एकादशी को उपवास कर भगवान् का पूजन करै और उठते बैठते हरिका स्मरण करता रहै द्वादशी के दिन प्रभातही स्नान कर भगवान् का अर्चन करै और घृत से हवन कर ब्राह्मण को दक्षिणा देकर (पातालसंस्था वसुधा यमासाद्य मनोरथम् । अवाप वासुदेवोसौ प्रददातु मनोरथान् ॥ भ्रष्टराज्यश्च देवेन्द्रो यमभ्यर्च्य जगत्पातिम् । मनोरथमवाप्तो मे स ददातु मनोरथान्) यह मन्त्र पढ़ै पीछे मौन से हविष्य भोजन करै चार मास में प्रथम पारण करै रक्तपुष्प तुलसी गुग्गुल धूप और हविष्यान्न नैवेद्य से भगवान् का अर्चन कर गोशृङ्ग जल प्राशन करै फिर आषाढ़ आदि चार मास के अनन्तर चमेली के पुष्प राल धूप और शाल्यन्न का नैवेद्य इनसे भगवान् का यजन कर कुशोदक प्राशन करै कार्त्तिकादि चार मास के अनन्तर तीसरा पारण करै जपापुष्प उत्तम धूप और कषाय रसयुक्त नैवेद्य से नारायण का पूजन कर गोमूत्र प्राशन करै प्रतिमास ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै वित्तशाठ्य न करै वर्ष के अन्त में एक कर्ष सुवर्ण की नारायण प्रतिमा बनाय पूजन कर दो वस्त्र और दक्षिणा

सहित ब्राह्मण को देवै और बारह ब्राह्मणों को भोजन कराय प्रत्येक को जलका घट छतरी जूता वस्त्र और दक्षिणा देवै इस द्वादशी व्रत के करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं इसी से इसका नाम मनोरथ द्वादशी है इन्द्र ने त्रैलोक्य का राज्य इसी व्रत से पाया है और भी कोई जिस अभिलाष से इस व्रत को करै वह उसको अवश्य पावे पुत्र धन आरोग्य आदि सब पदार्थ इस व्रत से मिलते हैं कभी इष्ट वियोग नहीं होता स्त्री और शूद्र भी इस व्रत को कर स्वर्ग को जाते हैं और लाखों वर्ष वहां उत्तम भोग भोगकर अच्छे कुल में जन्म पाते हैं जो पुरुष भगवान् का पूजन नहीं करते गो ब्राह्मण की सेवा नहीं करते और मनोरथ द्वादशी का व्रत नहीं करते वे किस प्रकार अपना अभीष्ट फल पासक्ते हैं।

इकहत्तरवां अध्याय।

तिल द्वादशी का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! थोड़े से परिश्रम से अथवा स्वल्पदान से सब पाप कट जायँ ऐसा कोई उपाय आप कहें यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! माघ कृष्ण द्वादशी को जब मूल अथवा पूर्वाषाढ़ नक्षत्र होय तब एकादशी के दिन उपवास कर द्वादशी को श्रीकृष्ण भगवान् का पूजन करै ब्राह्मण को कृष्ण तिल देवै और आप भी स्नान प्राशन आदि कृष्ण तिलों से करै और (कृष्णो मे प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर अन्तमें तिलों से पूर्ण कृष्णवर्ण के कुम्भ पक्वान्न छत्र जूता वस्त्र और दक्षिणा बारह ब्राह्मणों को देवै जितने उन तिलों के बोने से तिल उत्पन्न होयँ उतने हजार वर्ष इस व्रतका करने हारा स्वर्ग में निवास करता है और किसी जन्ममें अन्ध बधिर कुष्ठी आदि नहीं होता सदा आरोग्य रहता है इस तिल

दान से बड़े बड़े पाप कटजाते हैं न इस व्रत में बहुत परिश्रम और न बहुत धनका व्यय इसलिये अवश्य यह व्रत करना चाहिये तिलों से स्नान करै तिल दान करै और तिलही भोजन करै तो अवश्यही सद्गति पावै ।

बहत्तरवां अध्याय ।

एक वैश्यकी कथा और सुकृत द्वादशी का विधान.।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! ऐसा कौन कर्म है कि जिसके करने से सन्ताप होय और ऐसा कौन है जिसको करके सन्ताप न होय यह आप वर्णन करैं आपके वचन सुनते सुनते हमको तृप्ति नहीं होती यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! आपने जो पूछा उसका हम वर्णन करते हैं पूर्वकालमें विदिशा नगरी के बीच शीरभद्र नाम एक वैश्य था वह पुत्र पौत्र कन्या स्त्री आदि में ऐसा आसक्त था कि दिन रात उनके भरण पोषण में लगा रहता कभी स्वप्न में भी परलोक की चिन्ता नहीं करता न्याय से अन्याय से सब प्रकार धनका उपार्जन करता कभी दान हवन देवपूजन आदि कर्मका नाम भी नहीं लेता कुछ काल के अनन्तर वह वैश्य मृत्युवश भया और वेत्रवती नदी के तटपर बड़ा प्रेत बना एक दिन ग्रीष्म ऋतु में विपीत नामक वेदवेत्ता ब्राह्मणं ने उस प्रेत को देखा कि सूर्य किरणों से अत्यन्त सन्तप्त नदी के बालू में लोटता है सब अंग में छाले पड़गये हैं तृषा से कण्ठ सूखता है और जिह्वा लटकपड़ी है और अतिदुःखी हो चिल्ला रहा है यह उसकी दशा देख ब्राह्मण को बड़ी दया आई और उसका वृत्तान्त पूछा तब वह प्रेत कहने लगा कि हे ब्राह्मण ! पूर्वजन्ममें परलोकके लिये कोई कर्म नहीं किया उससे अब दग्ध होरहा हूं धन घर खेत पुत्र स्त्री आदि की चिन्ता में सदा आसक्त रहा कभी अपने हित

का चिन्तन न किया इससे यह कष्ट भोगरहा हूँ यह काम किया और यह करना है इसी चिन्ता में सब जन्म खोया उसका फल भोगता हूँ लोभवश होकर शीत उष्ण सब सहे परन्तु धर्म के लिये किंचित् भी कष्ट न सहा उससे अब जला-जाता हूँ देवता पितर और अतिथि का कभी मैंने पूजन आदि न किया उसी से अब मुझे अन्न जल नहीं मिलता अन्याय से मैंने बहुत धन एकत्र किया उसका उपभोग अब औरही करते होंगे यह सोच सोच मुझे कल नहीं पड़ती घरमें आये ब्राह्मण का कभी मैंने पूजन न किया न देवार्चन कभी बनपड़ा केवल कुटुम्ब का पोषण किया उससे अब एकाकी दग्ध होता हूँ जिनके लिये मैंने अनेक पाप किये वे सब तो इस समय सुख भोगते हैं और मैं एकाकी इस गरम रेतमें पड़ा जलता हूँ पापका सञ्चय मैंने किया और चैन औरों ने उड़ाया यह विचार २ दिन रात मनहीं मन में जला जाता हूँ और बाहिर से सूर्यकिरणों करके दग्ध होरहा हूँ परन्तु न तो भीतर शोक दग्ध करता है न बाहर सूर्य यह केवल मेरा पापही दो भाग होकर भीतर बाहरसे मुझे जलाताहै हे मुनीश्वर ! ऐसा भी कोई उपाय है कि जिससे इस दुर्गति से मेरा उद्धार होय इस भांति शीर-भद्रके अति दीन वचन सुन विपीत मुनि बोले कि हे शीर-भद्र ! दश जन्म पहिले तैंने द्वादशी का उपवास किया है उस के प्रभाव से यह बड़ा भारी तेरे पापका पहाड़ क्षय होगया है अब तू स्वल्प कालमें ही उत्तम गति को प्राप्त होगा वह द्वादशी व्रत पापका क्षय और पुण्य का जय करने हाराहै इसी से उसका नाम सुकृत द्वादशी है इस भांति शीरभद्र को आश्वासन कर विपीत मुनि अपने आश्रम को गये और शीरभद्र भी द्वादशी व्रतके प्रभाव से थोड़े कालके अनन्तर मोक्ष को प्राप्त भया इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे

महाराज ! यह उपवास का प्रभाव है कि इतना पाप थोड़ेही काल में क्षय हुआ इसलिये सदा मनुष्य को पुण्य के लिये यत्न करना चाहिये और अपने कल्याण के अर्थ उपवास आदि करते रहना चाहिये राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्ण-चन्द्र ! पापों से अतिदारुण नरकयातना भोगनी पड़ती है ऐसा कौन व्रत है जिससे सब पाप निवृत्त होयँ और मोक्ष प्राप्त होय उसका आप वर्णन करैं तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! फाल्गुन शुक्ल एकादशी को उपवास करै और काम क्रोध लोभ दम्भ मोह आदि का त्यागकर संसार की असारता का भाव न करता हुआ (ॐ नमो नारायणाय) इस मन्त्र का दिनभर स्मरण करता रहै इसी भांति द्वादशी को भी करै प्रथम चारमास के पारण में सुवर्ण चांदी ताम्र अथवा मृत्तिका के पात्रों में यव भरकर ब्राह्मणों को देवै आषाढ़ादि दूसरे पारण में घृतपात्र देवै और कार्त्तिकादि चार मास के पारण में तिलपात्र ब्राह्मणों के अर्पण करै और (नारायण नमस्तेस्तु जहि पापमशेषतः । अनेकजन्म-जनितं बाल्ययौवनवार्द्धके ॥ पुण्यानि वै विवर्द्धन्तु पापं यातु च संक्षयम् । आकाशादिषु शब्दादौ महदादिषु पार्थिवे ॥ प्रकृतौ पुरुषे चैव ब्रह्मण्यपि च यः प्रभुः । यथा सर्वत्र धर्मात्मा वासुदेवो व्यवस्थितः ॥ तेन सत्येन मे पापं नरकार्तिप्रदं सदा । प्रयातु क्षीणतां पुण्यं वृद्धिमभ्येत्वनुत्तमम्) ये मन्त्र पढ़ै पीछे मौनसे भोजन करै वर्ष पूरा होने पर सुवर्ण की विष्णुमूर्ति बनाय पूजन कर वस्त्र सुवर्ण सवत्सा धेनु और दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै इस विधि से जो पुरुष अथवा स्त्री इस सुकृत द्वादशी का व्रत करै वह कभी नरक नहीं देखता जो नारायण का भक्त होय उसको कभी नरक बाधा नहीं होती विष्णुका नाम उच्चा-

रण करतेही सब पाप नष्ट होजाते हैं फिर नरक का क्या भय है वासुदेव नारायण आदि नामों को जो उच्चारण करता रहै ह कभी यम का मुख नहीं देखता पाखंडी पुरुषों को कभी इस व्रत का उपदेश न करै।

तिहत्तरवां अध्याय।

धरणी द्वादशी व्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! यह सब वेदों में प्रसिद्ध है कि विधिपूर्वक यज्ञ करने से बड़े २ दान देने से और बड़े परिश्रम से परमेश्वर की प्राप्ति होती है परन्तु कलियुग के मनुष्य न तो दान देसकैं न यज्ञ उनसे होसक्का फिर उनका मोक्ष किस प्रकार होय यह आप वर्णन करैं जिससे चारों वर्ण अल्प आयास करके मुक्तिभागी होयँ यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! हम परमरहस्य आपसे कहते हैं प्रीति से श्रवण कीजिये जब प्रलय के समय भूमि जल में डूबकर रसातल को चलीगई उस समय अपने उद्धार के लिये भूमिने व्रत किया उस व्रत से भगवान् प्रसन्न भये और भूमि को उस संकट से उद्धार कर अपने स्थान में स्थापन किया जो व्रत भूमिने किया उसका हम विधान कहते हैं मार्गशुक्ल दशमी को शौच आदि कर अष्टांगुल प्रमाण क्षीर वृक्षके काष्ठका दन्तधावन करै स्नान कर भगवान् का पूजन और अग्निहोत्र करै पीछे हविष्य अन्नका भोजन करै एकादशी के दिन स्नान कर शंख चक्र गदा पद्मधारे पीत वस्त्र पहिने प्रसन्न मुख श्रीनारायण का ध्यान कर सूर्यनारायण को अर्घ्य देवै और यह मन्त्र पढ़ै (एकादश्यां निराहारः स्थित्वाचाहं परेऽहनि। भोक्ष्यामि पुण्डरीकाक्ष शरणं मे भवाच्युत) पीछे भगवान् का पूजन कर उपवास रक्खे और रात्रि को

(ॐनमो नारायणाय) यह मन्त्र जपता हुआ भगवान् के आगे शयन करै प्रभात उठ नदी के तटपर जाय (धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि सर्वदा । तेन सत्येन मां भद्रे पापान्मोचय सुव्रतम्) इस मन्त्र से मृत्तिका ग्रहण करै (ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैस्स्पृष्टानि ते रवे । भवन्ति पूतानि सदा मृत्तिकां किरणैःस्पृश) इस मन्त्र से मृत्तिका को सूर्यदर्शन करावे (त्वयि सर्वे रसा नित्यं स्थिता वरुण सर्वदा । तेनेमां मृत्तिकां प्लाव्य मां पूतं कुरु मांचिरम्) इस मन्त्र से मृत्तिका में जल डालै उस मृत्तिका को शरीर में लगाय स्नान कर सन्ध्या तर्पण आदि करै पीछे देवगृह में आय (केशवाय नमः पादयोः । दामोदराय नमः कट्याम् । नृसिंहाय नमः ऊर्वोः । श्रीवत्सधारिणे नमः उरसि । कौस्तुभधारिणे नमः कण्ठे । श्रीपतये नमः वक्षसि । त्रैलोक्यविजयाय नमः मुखे । सर्वात्मने नमः शिरसि । रथाङ्गधारिणे नमः चक्रे । शङ्खपाणये नमः शङ्खे । गम्भीराय नमः गदायाम् । शान्तमूर्तये नमः पद्मे) इन मन्त्रों से भगवान् के इन इन अंगों बिषे पूजन करै फिर चार कलश जल पूर्ण स्थापन करै उनके बीच चन्दन सुवर्ण रत्न आदि डाल तिलपात्रों से उनको आच्छादन करै वे चारों कलश चार समुद्र हैं उनके मध्य में वस्त्रयुक्त एकपीठ स्थापन करै उस पर सुवर्ण चांदी ताम्र अथवा काष्ठ का जल पूर्णपात्र रख उसमें मत्स्यरूपी भगवान् की सुवर्ण की प्रतिमा स्थापन करै पीछे गन्ध पुष्प धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य और फलों से भगवान् का पूजन कर (रसातलगता वेदा यथा देव त्वयाहृताः । मत्स्यरूपेण तद्वन्मां भवादुद्धर केशव) यह मन्त्र पढ़े और रात्रि के समय जागरण कर बड़ा उत्सव करै प्रभात उठ स्नान कर भगवान् का पूजन करै और वे चारोंघट चारवेद जाननेवाले ब्राह्मणों को एक २ देकर मत्स्यावतार की मूर्ति सहित वह

पात्र भी कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै पीछे यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय आप भी अपने परिवार सहित मौन से भोजन करै इस विधि से जो द्वादशी व्रत करै उसका पुण्य फल ब्रह्मा के तुल्य आयुष् होय तो भी नहीं वर्णन कर सक्के इस व्रत का करनेहारा अवश्यही ब्रह्मलोक को जाता है और जन्म २ में किये ब्रह्महत्यादि पाप इससे कटजाते हैं यह मत्स्यद्वादशी का विधान है इसी भांति पौष शुक्ल द्वादशी को कूर्म भगवान् का पूजन करै स्नान आदि पूर्ववत् करके (कूर्माय नमः पादयोः । नारायणाय नमः कट्याम् । सङ्कर्षणाय नमः उदरे । विशोकाय नमः उरसि । मत्स्यरूपाय नमः भुजयोः । हरये नमः कण्ठे । सर्वात्मने नमः शिरसि) इन मन्त्रों से इन अङ्गों का पूजन कर गन्ध पुष्प आदि उपचारों से विधिपूर्वक भगवान् का अर्चन कर एक कलश स्थापन करै और ताम्रपात्र में जल भर कर उसमें सुवर्ण की कूर्म भगवान् की प्रतिमा स्थापन कर घृत पूर्ण कलश के ऊपर उस पात्र को रक्खै और भक्ति से पूजनकर रात्रिको जागरण और गीत नृत्य आदि उत्सव कर दूसरे दिन वह मूर्तिसहित पात्र ब्राह्मण को देवै और ब्राह्मणों को खीरखण्ड और घृत भोजन कराय आप भी भोजन करै इसविधि से व्रत करनेहारा संसारचक्र से मुक्त हो विष्णुलोक को जाता है अनेक जन्मों के किये पाप तत्क्षण नाश को प्राप्त होते हैं और पूर्वोक्त सब फल इस व्रतके करने से प्राप्त होता है इसी भांति माघशुक्ल में वाराह द्वादशी का व्रत करै इस व्रत में भी स्नान पूजन कलशस्थापन आदि पहिली भांति कर (अमृतोद्भवाय नमः । दिव्याग्राय नमः । गादिने नमः । प्रद्युम्नाय नमः) इन मन्त्रों से क्रम करके शङ्ख चक्र गदा और पद्म का पूजन कर कुम्भ के ऊपर सुवर्ण अथवा ताम्र का पात्र सब जीवों से पूर्ण कर स्थापन करै उस

बीच सुवर्ण की वराह भगवान् की प्रतिमा स्थापन करै कि जिनके दंष्ट्राग्र पर सप्तद्वीपवती पृथिवी स्थित है फिर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य और दो श्वेत वस्त्रों से भगवान् का पूजन करै रात्रि को जागरण करै और प्रभात उठ स्नान आदि कर कलश सहित वराह नारायण की मूर्ति वैष्णव ब्राह्मण के अर्पण करै केवल इसी व्रतको करै तो सौभाग्य लक्ष्मी कीर्ति पुष्टि और सद्गति पाता है जो वर्षभर करै उसके फल और पुण्यका तो क्या अन्त है इसी प्रकार फाल्गुन शुक्ल द्वादशी को व्रतकर (नरसिंहाय नमः पादयोः । गोविन्दाय नमः उदरे । विश्वजिते नमः कट्याम् । अनिरुद्धाय नमः उरसि । शितिकण्ठाय नमः कण्ठे । वैनतेयाय नमः शिरसि । असुरध्वंसनाय नमः चक्रे । तोयात्मने नमः शङ्खे । वैकुण्ठाय नमः गदायाम् । सर्वात्मने नमः पद्मे) इन मन्त्रों से इन अंगों का पूजन कर सब उपचारों से नृसिंह भगवान् का पूजन करै पीछे कलश स्थापन कर उसपर मूर्तिस्थापन करै और भक्ति से पूजन कर वेदवेत्ता ब्राह्मण को देवै इस व्रतके करने से सब पाप दूर होते हैं और उत्तम फलकी प्राप्ति होती है इसी प्रकार चैत्र शुक्ल द्वादशी को स्नान आदि कर (वामनाय नमः पादयोः । विष्णवे नमः कट्याम् । वासुदेवाय नमः उदरे । श्रीवत्सधारिणे नमः उरसि । विश्वभृते नमः कण्ठे । यमरूपिणे नमः शिरसि । विश्वजिते नमः भुजयोः । शङ्खाय नम शङ्खे । चक्राय नमः चक्रे) इन मन्त्रों से इनका पूजनकर वामन भगवान् का स्थापन करै उनके समीप कमंडलु छतुरी खड़ाऊं और दण्ड भी रक्खै पीछे सब उपचारों से पूजनकर ब्राह्मण को देवै और (ह्रस्वरूपी विष्णुः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस व्रतके करने से अपुत्र का पुत्र निर्धन को धन और भ्रष्टराज्य को राज्य प्राप्त होता है इस व्रतका करनेहारा बहुत काल

और शत्रुसंहार के लिये कल्किनारायण का भक्ति से पूजन करै इन सब का पूजन और दान करने से अभीष्ट कामना सिद्ध होती हैं इस प्रकार आश्विन शुक्ल द्वादशी को स्नान आदि कर (पद्मनाभाय नमः पादयोः । पद्मयोनये नमः कट्याम् । सर्वदेवाय नमः उदरे । पुष्कराक्षाय नमः उरसि । अव्ययाय नमः शिरसि । शङ्खाय नमः शङ्खे । चक्राय नमः चक्रे) इन मन्त्रों से इन अंगों का पूजन कर कलश स्थापन करै और उसको वस्त्र माला आदि से अलंकृत कर उसके ऊपर सुवर्ण की पद्मनाभ की मूर्ति स्थापन कर भक्ति से पूजन करै पीछे दक्षिणा सहित दरिद्र ब्राह्मण के अर्पण करै इस व्रत के करने से जितना पुण्य होता है उसका कौन वर्णन कर सक्ता है ब्रह्महत्या आदि पाप तो भगवान् का नाम स्मरण करते ही नष्ट होजाते हैं फिर व्रत और पूजन भी करै तो क्या कहना है इसी प्रकार कार्त्तिक शुक्ल द्वादशी को स्नान आदि कर (नमो दामोदराय) इस मन्त्र करके भगवान् के सर्वाङ्ग का पूजन कर चार कलश स्थापन करै ये चारों समुद्र हैं इनके मध्यमें अति सुन्दर पांचवां कलश स्थापन करै उसके बीच सुवर्ण रत्न आदि डाल श्वेत वस्त्र से उसको आच्छादित करै उसके ऊपर ताम्रपात्र में सुवर्ण की भगवान् की प्रतिमा स्थापन कर भक्ति से सब उपचारों करके पूजन करै दूसरे दिन पांच ब्राह्मणों को भोजन कराय चारों को चार कलश और पांचवें को मूर्ति सहित कलश देवै वेदवेत्ता ब्राह्मण को देवै तो सौगुणा फल होता है वेदवेदांग जानने हारे को देने से सहस्रगुणा सरहस्य वेदज्ञाता को देने से लक्षगुणा और पौराणिक को देने से अनन्त गुण फल प्राप्त होता है इस प्रकार कलश देकर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै और दीन अनाथ अन्ध आदि को भी भोजन देकर

सन्तुष्ट करै यह व्रत धरणी ने किया तब भगवान् ने प्रसन्न हो वराहरूप धार भूमि का उद्धार किया। प्रजापति ने इसी व्रत के प्रभाव से प्रजा और मुक्ति पाई। कृतवीर्य राजा ने इस व्रत के करने से सहस्रबाहु नामक चक्रवर्ती पुत्र पाया। शकुन्तला ने यह व्रत किया तो उसके भरत नाम चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न भया और भी अनेक राजाओं के अभीष्ट इस व्रतसे सिद्ध भये हैं जो इस व्रतको करै अथवा इसके माहात्म्यको सुनै वह विष्णुलोक को प्राप्त होय और उसके सात पुरुष सद्गति को प्राप्त होयँ सम्पूर्ण माहात्म्य तो इस धरणी द्वादशी का कौन वर्णन करसक्ता है यह हमने थोड़ा सा कहा है।

चौहत्तरवां अध्याय।

विशोकद्वादशी और गुड़धेनु आदि दशधेनुओं के दानका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि ऐसा कौन व्रत है जिसके करने से इष्टवियोग न होय ऐश्वर्य प्राप्ति होय और शोक मोह आदि का नाश होकर संसार से मुक्ति मिलै यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! यह देवता दैत्य आदि सबमें गुप्त है जो आपने पूछा परन्तु हम आपके स्नेह से कथन करते हैं आश्विन मास में विशोक द्वादशी का व्रत करने से ये फल प्राप्त होते हैं उसका यह विधान है कि दशमी के दिन शौच आदि कर पूर्वमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठ दन्तधावन कर स्नान करै पीछे सन्ध्या तर्पण आदि कर घर आय नारायण का पूजन करै और लघु भोजन करै एकादशी के दिन निराहार रहै और भक्ति से लक्ष्मी सहित नारायण का पूजन करै रात्रि को जागरण कर प्रभात उठ सर्वौषधि जल और पञ्चगव्य से स्नान कर श्वेत वस्त्र और पुष्पमाला पहिन विशोकाय नमः। वरदाय नमः। श्रीशाय नमः। जलशायिने नमः। कन्दर्पाय नमः।

माधवाय नमः । दामोदराय नमः । विपुलाय नमः । पद्मनाभाय नमः । मन्मथाय नमः । श्रीधराय नमः । मधुलिहे नमः । चक्रिणे नमः । गदिने नमः । वैकुण्ठाय नमः । यज्ञमुखाय नमः । वामनाय नमः । विश्वरूपिणे नमः । सर्वात्मने नमः । इन मन्त्रों से क्रम करके पाद जंघा जानू ऊरू गुह्य कटि उदर पार्श्व नाभि हृदय वक्षस्स्थल. दोनों हाथ वाम भुजा दक्षिण भुजा कंठ मुख ललाट किरीट और सर्वांगका पूजन करै पीछे नदीके बालू से सुन्दर चतुरस्त्र स्थण्डिल बनाय उसपर लक्ष्मी की और सूर्य की प्रतिमा स्थापन कर । ॐ देव्यै नमः । शान्त्यै नमः । विशोकायै नमः । इन मन्त्रों से पूजन करै सुवर्ण का कमल वस्त्र और अनेक प्रकार के नैवेद्य चढ़ावै रात्रिको नृत्य गीत आदिक उत्सव करै दूसरे दिन उत्तम शय्यापर बैठाय वस्त्र भूषण भोजन आदि करके ब्राह्मण मिथुन का पूजन करै और गुड़ धेनु सहित वह शय्या भी उनको देवै और (यथा लक्ष्मीर्न देवेश त्वां परित्यज्य गच्छति । तथा विशोकता मेस्तु भक्तिरग्र्या च केशवे) यह मन्त्र पढ़ कर क्षमापन करावै और सूर्य की तथा लक्ष्मी की प्रतिमा ब्राह्मण को देवै उत्पल करवीर बाण कुंकुम नागकेसर सिंदुवार मल्लिका अशोक पाटला कदम्ब और चमेली ये पुष्प पूजन के लिये प्रशस्त हैं इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आपने गुड़धेनु देनी कही उसका आप विधान भी कहैं कि क्योंकर गुड़धेनु बनती है और क्या मन्त्र है तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! अब हम गुड़धेनु का विधान कहते हैं आप प्रीति से श्रवण कीजिये पहिले भूमि को गोबरसे लीप उसके ऊपर दर्भ बिछाय दर्भों के ऊपर कृष्ण मृगचर्म बिछावै उसके ऊपर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख गुड़धेनु बनावै एक भार प्रमाण गुड़की धेनु और इसके चतुर्थांश गुड़ करके बछड़ा

बनावै इक्षुके पाद सीपी के कर्ण मोतियों के नेत्र श्वेत सूत्र की शिरा मूँगाकी भ्रू ताम्रकी पीठ नवनीत के रत्न और श्वेत चामरके उनके रोम बनाय श्वेत कम्बल से दोनों को आच्छादन करै और गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य अनेक प्रकार के फल और सुगन्ध द्रव्यों से उनका पूजन करै और हाथ जोड़ (या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देहे व्यवस्थिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ॥ विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीःस्वाहा या च विभावसोः । चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपा सुरप्रिया ॥ चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च । या लक्ष्मीर्लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे ॥ स्वधा त्वं पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां यतः । सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥) ये मन्त्र पढ़ै पीछे वह धेनु सत्पात्र ब्राह्मण को देवै सब धेनुओं का यही विधान है पापके नाश करनेहारी दश धेनु कही हैं उनके हम नाम और स्वरूप कहते हैं गुड़धेनु घृतधेनु तिलधेनु जलधेनु क्षीरधेनु मधुधेनु शर्कराधेनु दधिधेनु रसधेनु और प्रत्यक्षधेनु ये दश धेनु हैं कोई मुनि सुवर्णधेनु और नवनीतधेनु भी कहते हैं गुड़धेनु के तुल्य सब के दानका विधान और मन्त्र हैं जिसपर श्रद्धा होय उसका दान करै व्रतों में विशोक द्वादशी व्रत उत्तम है उसका अंग गुड़धेनु है इसलिये वह सब धेनुओं में उत्तम है अयन संक्रान्ति विषुव व्यतीपात और चन्द्रग्रहणादि पर्वों में गुड़धेनु आदि दश धेनुओं का दान करै यह विशोक द्वादशी व्रत सब पाप हरने हारा है जिस व्रतके करने से मनुष्य सौभाग्य आयुष् आरोग्य पाता है और अन्त में विष्णुलोक को जाता है और हजारों जन्म तक दुःख शोक आदि से पीड़ित नहीं होता जो स्त्री इस व्रतको कर नृत्य गीत आदि उत्सव करै वह भी सम्पूर्ण फल पाती है जो इस माहात्म्य को सुनै पूजन देखै अथवा व्रत

करने के लिये औरों को उपदेश करै वह भी इन्द्रलोक में निवास करता है।

पचहत्तरवां अध्याय।

विभूतिद्वादशीका विधान फल और राजा पुष्पवाहन की कथा।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब हम विभूति-द्वादशी व्रतका विधान कहते हैं आप श्रवण कीजिये का-र्त्तिक वैशाख मार्गशीर्ष आषाढ़ अथवा फाल्गुन शुक्ल द-शमी को मनुष्य लघु भोजन करै रात्रि के समय यह नियम ग्रहण करै कि एकादशी को निराहार रह भगवान् का अ-र्चनकर द्वादशी को ब्राह्मणों के साथ भोजन करूँगा हे मधु-सूदन! यह मेरा व्रत निर्विघ्न समाप्त होय प्रभात उठ स्नान आदिकर भूतिदाय नमः। विशोकाय नमः। शिवाय नमः। विस्त्रमूर्तये नमः। कन्दर्पाय नमः। आदित्याय नमः। दामो-दराय नमः। वासुदेवाय नमः। माधवाय नमः। मुक्तिकृते नमः। श्रीधराय नमः। केशवाय नमः। शार्ङ्गधराय नमः। बरदाय नमः। शङ्खपाणये नमः। चक्रपाणये नमः। खड्गपाणये नमः। गदापाणये नमः। परशुपाणये नमः। सर्वात्मने नमः। इन मन्त्रों से शुक्ल माल्य अनुलेपन आदि करके पाद जानु ऊरू कटि मेढ़ हस्त उदर स्तन हृदय कण्ठ मुख केश पृष्ठ कर्ण इन अङ्गों का और शङ्ख चक्र खड्ग गदा परशु इन आयुधों का और सर्वाङ्ग का पूजन करै सुवर्ण का मत्स्य उत्पल सहित वित्ता-नुसार बनाकर जलके कुम्भ के बीच भगवान् के आगे स्थापन करै और शुक्ल वस्त्र से ढका गुड़ तिलयुक्त पात्र भी स्थापन करै रात्रि को जागरण कर इतिहास आदि श्रवण करै प्रभात उठ भगवान् का पूजन कर तीन कर्ष सुवर्ण का उत्पल और वह सब सामग्री कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै और इसी विधान से मास क्रम करके दशावतार दान करै और उत्पल सहित व्यास

और दत्तात्रेय की प्रतिमा का भी दान करै इस प्रकार एक वर्ष व्रत करके लवण पर्वत गुड़ शय्या ग्राम क्षेत्र घर और वस्त्र भूषण आदि देकर गुरु को सन्तुष्ट करै और भी ब्राह्मणों को भोजन कराय दक्षिणा गौ और वस्त्र देवै सामर्थ्य न होय तो भक्तिपूर्वक थोड़ी थोड़ी ही सब वस्तु देवै भगवान् भक्ति से प्रसन्न होते हैं इस विधि से जो पुरुष तीन वर्ष इस व्रत को करै उसके सौ कुलों का उद्धार होता है और हजारों युग वह स्वर्ग में निवास कर चक्रवर्ती राजा होता है पूर्वकाल में रथं-तर कल्प के बीच बड़ा प्रतापी पुष्पवाहन नाम एक राजा भया उसने बड़ा तप किया तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न हो उस को एक सुवर्ण का कमल दिया जिसपर अपने अन्तः पुर और भृत्यों सहित बैठ सप्तद्वीपों में वह विचरता था उसको प्रसन्न हो जहां ब्रह्माजी ने कमल दिया वह द्वीप पुंष्करद्वीप कहाया पुष्परूप वाहन ब्रह्माजी ने उसको दिया इसलिये राजा का नाम पुष्पबाहन भया तीन लोक में कोई स्थान राजाको उस कमल के प्रभाव से अगम्य नहीं था उस राजा की रानी अति रूपवती पतिव्रता और हजारों उत्तम ना-रियों करके सेवित लावण्यवती नाम थी उसका पुत्र भी बड़ा पराक्रमी विनीत और धर्मात्मा था यह सब अत्युत्तम सा-मग्री अपनी देख राजा को बड़ा विस्मय भया तब प्रचेता मुनि के पास जाय राजा ने बड़े विनय से प्रणाम कर पूछा कि महाराज ऐसा मैंने कौन पुण्य किया है जिससे इतना ऐश्वर्य ऐसी उत्तम भार्या और पुत्र पाये और इतना बड़ा विमान मिला कि जिसमें लाखों हाथी घोड़े और सेना चढ़ जाय तो भी खाली ही रहता है आप यह मेरा सन्देह निवृत्त कीजिये यह राजा का वचन सुन क्षणमात्र ध्यान कर प्रचेता मुनि बोले कि हे राजन् ! पूर्वकाल में अति क्रूर स्वभाव कृष्णवर्ण

रक्त नेत्र और सब जीवों को भय देनेहारा एक व्याध था वह नित्य वन के जीव मार उनके मांस से अपने कुटुम्ब का पोषण किया करता एक समय वृष्टि न होने से उस देश में बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा एक दिन उस दुर्भिक्ष में वह व्याध सारे वन में भटका परन्तु कोई जीव हाथ न आया इससे व्याकुल हो घर को लौटा रस्ते में उसने एक सरोवर में कमल फूले देखे वहां से बहुत से कमल तोड़ लिये और घर आय वहां से अपनी पत्नी को सङ्ग ले कमल बेचने के लिये विदिशा नगरी में गया सारे नगरमें फिरा परन्तु कमल किसी ने न पूछे तब सायङ्काल के समय क्षुधा तृषा से व्याकुल अपनी भार्या सहित एक स्थान में बैठगया वहां उसने रात्रि के समय गीतवाद्य का बड़ा शब्द सुना और जाना कि अनङ्गवती नाम वेश्या विभूतिद्वादशी का व्रत करके अपने गुरु को लवणाचल और सब उपस्करों के सहित उत्तम शय्या देती है यह शब्द सुन वह व्याध भी अपनी भार्या सहित वहां गया और जायकर देखा कि मण्डप के बीच सुवर्ण की भगवान् की प्रतिमा स्थापन कर रक्खी है और सब उसका पूजन कर रहे हैं उसने सोचा कि ये कमल हमारे किसी काम के नहीं इस मूर्तिपरही चढ़ा देवैं यह विचार दोनों स्त्री पुरुषों ने दूर से कमल के पुष्प भगवान् की प्रतिमा पर फेंक दिये अनङ्गवती भी कमल के उत्तम पुष्प देख प्रसन्न भई और तीन सौ मोहर उनको पारितोषिक दिया उस प्रसन्नता में उन दोनों को रात्रि भर निद्रा न आई वेश्याने भी अपने गुरुको वस्त्र भूषण ग्राम घर शय्या और लवण पर्वत देकर सन्तुष्ट किया और ब्राह्मण भोजन कराय भार्या सहित उस व्याध को भी भोजन दे विसर्जन किया कुछ दिनके अनन्तर वह पापी व्याध और उसकी स्त्री मृत्युवश भये हे राजन्! वह व्याध तुम हो और

व्याधकी भार्या तुम्हारी रानी है तुमसे विना इच्छाही विभूति-द्वादशी को उपवास और रात्रि को जागरण बनपड़ा इससे तुम जन्मान्तर में राजा रानी भये और भगवान् पर तुमने कमल चढ़ाये इस से तुमको कमलाकार यह विमान मिला ब्रह्मा के रूप से विष्णु भगवान् ही तुमपर प्रसन्न भये हैं वह अनङ्गवती वेश्या भी कामदेवकी भार्या और रतिकी सपत्नीप्रीत नाम भई है हे राजन् ! इस शरीर के अनन्तर तुम मोक्ष को प्राप्त होगे इतनी कथा सुन प्रसन्न हो मुनि को प्रणाम कर राजा अपनी राजधानी को आया और विभूतिद्वादशी का व्रत श्रद्धा से करने लगे इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे महाराज ! भक्ति से विभूतिद्वादशी का व्रत करै और वित्तशाठ्य न करै तो अवश्य ही अभीष्ट फल पावै जो इस माहात्म्य को सुनै अथवा सुनावै वह सद्गति पावै ।

छिहत्तरवां अध्याय ।

मदनद्वादशी का विधान और फल गर्भिणी स्त्रीके धर्म ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब हम मदनद्वादशी का विधान सुनना चाहते हैं जिस व्रतके करने से दिति ने उनचास पुत्र पाये यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे हे महाराज ! वशिष्ठ आदि मुनियों ने जो विधान दितिको बताया था वही हम आपको कहते हैं चैत्र शुक्ल द्वादशीको उत्तम कलश चावलों से पूर्ण श्वेत वस्त्रों से आच्छादित फल और इक्षुरस सहित स्थापन करै उसके ऊपर गुड़ और सुवर्ण सहित ताम्रपात्र रक्खै उसके ऊपर केला का पत्र बिछाय उसपर रति सहित कामदेव की मूर्ति स्थापन करै फिर गन्ध पुष्पादि उपचारों से पूजन कर। कामाय नमः। सौभाग्यदाय नमः। स्मराय नमः। मन्मथाय नमः। शातोदराय नमः । अनङ्गाय नमः। पद्ममुखाय नमः। पञ्च-

शराय नमः। सर्वात्मने नमः। इन मन्त्रों से पाद जंघा ऊरु कटि उदर वक्षस्स्थल मुख बाहू और मस्तक का पूजन करै दूसरे दिन मूर्ति सहित वह कुम्भ ब्राह्मण को देवै और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै परन्तु लवण रहित भोजन ब्राह्मण को देवै फिर ब्राह्मण को दक्षिणा देकर (प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः। हृदये सर्वभूतानां येनानन्दो विधीयते) यह मन्त्र पढ़े व्रतके दिन आप भी एक फल भक्षणकर रात्रिके समय भूमिपर सोवै। इस प्रकार बारह महीने व्रतकर तेरहवें मास में उत्तम शय्या सुवर्णकी कामदेव और रतिकी प्रतिमा शुक्ल वर्णकी सवत्सा गौ और वस्त्र ब्राह्मण दम्पतीका पूजन कर उनको देवै और गौ का दुग्ध शुक्ल तिल और पायस करके कामदेव के नामों से हवन करै और ब्राह्मणों को भोजन कराय उनको दक्षिणा पुष्पमाला इक्षुदण्ड और वस्त्र आदि देकर सन्तुष्ट करै इसमें वित्तशाठ्य न करै इस विधिसे जो इस व्रत को करै वह सौभाग्य रूप धन पुत्र पावै और बहुत दिन संसारका सुख भोग विष्णुलोक को जावै दितिने उत्तम वर और सन्तान के लिये यह व्रत किया तब कश्यपजीने आप आकर उसको वरा कुछ कालके अनन्तर दितिने कश्यपजी से शत्रुओं के संहार करनेहारा पुत्र मांगा कश्यपजीने उस को वर दिया थोड़ेही समय में दितिके गर्भ रहा तब कश्यपजी ने दिति से कहा कि हे प्रिये! इस गर्भ को तुम सौ वर्ष पर्यन्त धारण करो और सन्ध्या के समय भोजन न करो वृक्ष के नीचे शून्य घर में और जलके बीच कभी मत जाओ ऊखल आदिके ऊपर मत बैठो उद्विग्नचित्त मत रहो भस्म से नखसे और अङ्गार से भूमिपर रेखा न करो व्यायाम गात्रभङ्ग कलह अति हास्य आदिका त्याग करो केश खोलकर और नग्न होकर कभी मत बैठो उत्तर और पश्चिम को शिर

करके मत शयन करो पैर गीले मत रक्खो अमङ्गल वचन न बोलो नित्य गुरुशुश्रूषा और मङ्गल में तत्पर रहो सर्वौषधियुक्त गरम जलसे स्नान करो खोटी स्त्री और मृतवत्सा स्त्री का स्पर्श न करो वस्त्रके वायुको त्यागो जल्दी मत चलो पराये घर न जाओ नदी को उल्लंघन मत करो दुष्ट वचन मत सुनो ग्लानि करनेहारी वस्तुको न देखो अजीर्ण से बचती रहो गर्भकी रक्षा करनेहारी ओषधी धारण करो इस विधिसे जो गर्भिणी स्त्री रहे वह उत्तम पुत्र पाती है नहीं तो गर्भ गिर जाता है अथवा स्तंभन होजाता है तुम इसी रीति से चलो तो अति सुन्दर और पराक्रमी पुत्र तुम्हारे होगा इतना उपदेश दिति को कर कश्यप मुनि अन्तर्धान भये दितिभी पति की कही रीति पर चली और उनचास पुत्र उसके जन्मे और भी जो नारी इस व्रतको करै वह अवश्य ही पुत्र पावै और पति सहित संसार का सुख भोग करै।

सतहत्तरवां अध्याय।

दुर्गामहिमा और अङ्कपाद व्रत का विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! बड़े घोर वन में समुद्रतरण में संग्राम में चौर आदि के भयमें व्याकुल हुआ मनुष्य किस देवता का स्मरण करै जो उस सङ्कटके समय उसकी रक्षा करै यह आप कथन करैं तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज! सर्व मङ्गल मङ्गला श्रीदुर्गा भगवती का स्मरण करनेहारा पुरुष कभी दुःख और भय को प्राप्त नहीं होता जब हम और बलदेवजी अपने गुरुसे सब विद्या पढ़चुके उस समय हमने गुरुदक्षिणा के लिये कहा तब गुरुने हमारा दिव्य प्रभाव जान यही कहा कि हे पुत्र! हमारा पुत्र प्रभासक्षेत्र में गया था वहां उसको किसीने मार दिया हम उसी पुत्रको चाहते हैं जहां होय वहांसे तुम लाकर

हमको देदो तब हम यमलोक में गये वहांसे गुरुपुत्र को लेकर गुरुके समीप आये और उनको उनका पुत्र दिया और गुरुको प्रणाम कर चलनेलगे तब गुरुने कहा कि हे पुत्रो! इस स्थान में तुम अपने पाद का चिह्न कर जाओ हमने भी गुरुकी आज्ञानुसार किया उस दिनसे दक्षिण पाद बलदेवजी का मध्यमें सर्व मङ्गलाका और वाम पाद हमारा सब वहां पूजते हैं प्रतिमास की शुक्ल त्रयोदशी को एकभक्त नक्त अथवा उपवास रहकर मृत्तिका अथवा सुवर्ण की प्रतिकृति बनाय गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य मधु शीधु सुरा आसव मांस और बलि करके जो स्त्री अथवा पुरुष पूजन करै वह सब पापों से मुक्त हो स्वर्ग में निवास करता है जहां शुक्ल त्रयोदशी को पुष्प मांस सुरा बलि आदि करके पादके अंकका पूजन किया जाय वहां मारी दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते।

अठहत्तरवां अध्याय।

दुर्गन्धनाशन व्रतका विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! ऐसा कौन व्रत है जिसके करने से शरीर का दुर्गन्ध नष्ट होजाय और दौर्भाग्य भी दूर होय तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! यही बात विष्णुमती रानी ने जातूकर्ण्य मुनि को पूछीथी तब मुनिने यह कहा कि हे पतिव्रते! ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी को नदी में स्नानकर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य श्वेतार्क पुष्प करवीर पुष्प और निंब करके सूर्यनारायण का पूजन करै निंब सूर्यभगवान् को बहुत प्रिय है इस भांति पूजन कर व्रत रक्खे इस प्रकार चार त्रयोदशी को व्रत और पूजन करै तो शरीर का दुर्गन्ध और दौर्भाग्य नष्ट होय जो स्त्री इस व्रतको भक्तिसे करै और अर्क करवीर और निंबका पूजन करै

वे दौर्भाग्य दौर्गन्ध्य और बन्ध्यापन से छूट पति के साथ अनेक प्रकार के सुख भोगती हैं ।

उनासीवां अध्याय ।

यमादर्शन व्रतका विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! ऐसा कौन व्रतहै जिसके करने से यमको न देखना पड़ै तब श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे महाराज ! मुद्गल मुनि ने यह बात हम से कही कि हे यदुपुङ्गव ! जब यमने मुद्गल क्षत्रिय को लाने की आज्ञा दी उसी समय यमदूत गये और उसको ले आये वह बड़ा धर्मात्मा था इसलिये यमराज ने भी उसका सत्कार किया और समीप बैठाया तब मुद्गल क्षत्रिय ने पूछा कि हे धर्मराज ! कोई ऐसा उपाय जीवों के लिये कहैं जिससे आपके लोकका दारुण मार्ग न देखना पड़ै तब यमराज कहने लगे कि हे मुद्गल ! जो पुरुष को नरक का भय होय तो मार्गशीर्ष आदि प्रतिमास की शुक्ल त्रयोदशी को तेरह आठ अथवा पांच ब्राह्मणों को हमारे नामसे बुलावै वे ब्राह्मण वेदवेत्ता शान्तचित्त आचारनिष्ठ सौम्यदर्शन और सूर्यभक्त होयँ पीछे उनको दिनके पहिले प्रहरमें तैलाभ्यङ्ग कराय गरम जल से नहवाय अच्छी धोती पहिनाय पूर्वाभिमुख सबको आसन पर बैठावै पीछे अपने हाथ से गुड़के अपूप पक्वान्न और अनेक प्रकार के सात्त्विक व्यञ्जन उनके आगे परोसै जब वे प्रसन्नता से भोजन कर आचमन आदि करचुकैं तब प्रत्येक को तिल चावलों से पूर्ण ताम्रपात्र छतुरी जूता वस्त्र जलपूर्ण कलश और दक्षिणा देवै पंक्तिभेद न करै और (ॐनमः शनैश्चरोमृत्युर्दण्डहस्तोविनाशकः । अभवः प्रलयः शान्तिर्दुस्वप्नः शमनोन्तकः ॥ लोकपालोधनी क्रूरोरौद्रोघोरोनमः शिवः । नमः प्रसन्नमानस्को ददातु मम

वाञ्छितम्) यह मन्त्र पढ़ै पीछे प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणों को विसर्जन करै और उनके साथ पहुँचाने के लिये जाय इस व्रत को जो एक बारभी करै वह यमलोक को नहीं देखता यह यमराजने मुद्गल क्षत्रिय से कहा और हे श्रीकृष्ण ! हमको उसने छोड़दिया तब हम अपने शरीर में प्रविष्ट भये और आज आपके मिलने को आये श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! इतनी कथा सुनाय मुद्गल मुनि अपने आश्रम को गये इस व्रतको जो स्त्री अथवा पुरुष करते हैं वे यमको जीत इन्द्रलोक में निवास करते हैं जो एक वर्ष प्रति त्रयोदशी को यह यमादर्शन नाम व्रत करैं वे गन्धर्व और अप्सराओं करके सेवित दिव्य विमान में बैठ इन्द्रलोक में प्राप्त होते हैं और आधि व्याधि और बड़े भयंकर यमदूतों करके कभी पीड़ित नहीं होते और चिरकाल पर्यन्त स्वर्गमें निवास करते हैं ।

अस्सीवां अध्याय ।

अनंगत्रयोदशी व्रतका विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! शरीरको क्लेश देनेहारे बहुत व्रत करने से क्या प्रयोजन है एक अनंग त्रयोदशी काही व्रत करै तो सब कुछ पावै यह त्रयोदशी सब प्रकारके सुख देनेहारी नरक का भय हरनेहारी और मंगल वृद्धि करनेहारी है शिवजी ने कामदेव को दग्ध कर दिया फिर अनंग होकर सबके मनमें कामदेव का निवास भया तब कामदेवने इस व्रतको किया इसीसे इसका नाम अनंग त्रयोदशी पड़ा अब हम इस व्रतका विधान कहते हैं मार्ग शुक्ल त्रयोदशी को नदी तड़ाग आदि में स्नान कर जितेन्द्रिय हो पुष्प धूप दीप नैवेद्य और कालोद्भव फलों करके शशिशेखरका पूजन करै और तिल सहित अक्षतों करके हवन करै रात्रि को मधु प्राशन कर शयन करै वह कामदेव के तुल्य उत्तम

रूप पाता है। पौष में योगेश्वर का पूजन कर चन्दन प्राशन करै तो शरीर में चन्दन के समान गन्ध होजाय और राजसूययज्ञ का फल पावै। माघ में नाट्येश्वर का पूजन कर मौक्तिक चूर्ण प्राशन करै तो सौभाग्य और बहु सुवर्ण यज्ञ का फल पावै। फाल्गुन में वीरेश्वर का पूजन कर कमल प्राशन करै तो तप्त सुवर्ण के समान शरीर की कान्ति होजाय और गोमेध यज्ञ का फल पावै चैत्र में सुरूप का पूजन करै और कर्पूर प्राशन करै तो चन्द्रके तुल्य मनोहर होजाय और नरमेध यज्ञ का फल पावै। वैशाख में महारूप का पूजन कर जातीफल प्राशन करै तो उत्तम जाति पावै उसके सब काम सफल होयँ और सहस्र गोदान का फल पाय विष्णुलोक में निवास करै। ज्येष्ठ में प्रद्युम्न का पूजन करै और लवंग प्राशन करै तो लावण्य सब प्रकार के सुख और वाजपेय यज्ञ का फल पावै। आषाढ़ में उमापति का पूजन कर तिलोदक प्राशन करै तो तिलोत्तमा के समान रूप पाय सौवर्ष सुख भोगै और पौण्डरीक यज्ञ का फल पाय स्वर्ग को जावै। श्रावण में ईशान का पूजन कर बिल्वपत्र का प्राशन करै तो अनन्त पुण्य पावै। भाद्र में सद्योजातका पूजन कर अगुरु प्राशन करै तो भूमिपर सर्वका गुरु बनै और पुत्र पौत्र धन आदि पाय बहुत दिन संसारसुख भोग अन्त में पौण्डरीक यज्ञ के फल को प्राप्तहो विष्णुलोक में निवास करै। आश्विनमें त्रिदशाधिपति का पूजन कर स्वर्णोदक प्राशन करै तो उत्तम रूप विद्या और सुवर्ण कोटि दान का फल पावै। कार्त्तिक में विश्वेश्वर का पूजन कर मदन फल प्राशन करै तो मदन के समान रूपवान् होय और अन्त में शिवलोक में निवास करै जो इस व्रत में किसी दिन विघ्न होजाय तो दूसरे दिन उसी विधान से व्रत करलेवै एक वर्ष इस प्रकार व्रत करके कलश स्थापन कर उसके ऊपर ताम्रपात्र में

सुवर्ण की शिवप्रतिमा स्थापन कर श्वेत वस्त्र से आच्छादन करै और गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से पूजन कर शिवभक्त ब्राह्मण को देवै और उसके साथ सवत्सा गौ छत्र जूता और यथाशक्ति दक्षिणा देवै और शिवभक्त ब्राह्मणों को भोजन कराय दक्षिणा वस्त्र और जलपूर्ण कलश उनको देवै और शिव-लिंग को पंचामृत से स्नान करावै इस प्रकार जो व्रत करै और व्रत पारण के समय बड़ा उत्सव करै वह निष्कंटक राज्य आयुष् बल यश और सौभाग्य सौजन्म तक पाता है और अन्त में शिवलोक में निवास करता है इस अनंग त्रयोदशी व्रत को जो पूर्वोक्त रीति से भक्तिपूर्वक करै वह अवश्यही शिवलोक को प्राप्त होता है।

इकासीवां अध्याय।

पाली व्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! जलपूर्ण तड़ाग और सरोवरों में कुल स्त्री किसको अर्घ्य देती हैं यह आप कथन करैं तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज! भाद्रशुक्ल चतुर्दशी को ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र और स्त्री तड़ाग के तटपर जाकर फल पुष्प वस्त्र दीप चन्दन महावर सप्तधान्य अग्निपाक विना सिद्ध किये अन्न तिल चावल खजूर नालिकेर बीजपूर नारंगी द्राक्षा दाड़िम सुपारी आदि करके वरुण का पूजन करै पहिले मण्डल लिख उसमें गया पुष्कर प्रभास और वरुणा सहित वरुण को लिख कर पूजन करै और (वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसां पते। अपां पते नमस्तेस्तु रसानां पतये नमः॥ मा क्लेदं मा च दौर्गन्ध्यं मा वै-रस्यं मुखेस्तु मे। वरुणो वारुणी भर्ता वरदोस्तु सदा मम) इस मन्त्र से मध्याह्न के समय वरुणको अर्घ्य देवै और अग्नि विना सिद्ध किया भोजन करै और सब नैवेद्य ब्राह्मण को देवै इस

विधि से जो इस पालीव्रत को करै तत्क्षण सब पापों से मुक्त होजाता है और आयुष् यश सौभाग्य पाता है और समुद्र के जल की भांति उसके धन का किसी को अन्त नहीं आता ।

बयासीवां अध्याय ।

रंभाव्रत का विधान और फल ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि ब्रह्मसभा में देवलमुनि के उपदेश से अप्सरा गन्धर्व और देवताओं ने कदली को अर्घ्य दान किया है उसका हम विधान कहते हैं इसी भाद्र शुक्ल चतुर्दशी को नाना प्रकार के फल सप्तधान्य दीप चन्दन दही दूर्वा अक्षत वस्त्र पक्वान्न जायफल लवंग लवलीफल आदि करके (विचित्रकदलीकन्दकदल्ये कामदायिनि । शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोस्तु ते) इस मन्त्र से केला के वृक्षका पूजन कर अर्घ्य देवे पीछे अग्नि विना सिद्ध किया भोजन करै जो पुरुष अथवा स्त्री भक्ति से इस व्रतको करै उसके वंश में दुर्भगा दरिद्रा वन्ध्या पापिनी व्यभिचारिणी कुलटा वेश्या पुनर्भू दुष्टा और पतिविरोधिनी कोई कन्या नहीं उत्पन्न होती इस व्रत को करनेहारी नारी सौभाग्य पुत्र पौत्र धन आयुष् कीर्ति आदि पाकर सौ वर्षपर्यन्त अपने पति के साथ संसार के सुख भोगती है । यह रम्भाव्रत गायत्री ने स्वर्ग में किया गौरी ने कैलास में इन्द्राणी ने नन्दनवन में लक्ष्मी ने श्वेतद्वीपमें राज्ञी ने भारत मण्डलमें अरुन्धती ने दारुवनमें स्वाहाने मेरु पर्वत पर सीतादेवी ने अयोध्या में देवकी ने रैवताचल पर और भानुमती ने यह व्रत नागपुरमें किया है जो स्त्री भाद्रमासमें पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्य आदि करके कदलीका पूजन करैं वे कभी दुःखों करके पीड़ित न होयँ और उनके वंश में विधवा कुरूपा कुलटा आदि कन्या उत्पन्न न होयँ ।

तिरासीवां अध्याय।

उतथ्यमुनि और अंगिरामुनिकी कथा, शिवचतुर्दशीका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! पूर्वकाल में जब अग्नि नष्ट होगया और देवताओं को अग्निका काम पड़ा उस समय अग्निका काम किसने दिया यह आप वर्णन करें आप सब कुछ जानते हैं इसलिये पूछा है यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! जब तारकासुरने देवताओं को पराजित कर स्वर्ग से निकाल दिया उस समय सब देवता ब्रह्माजीके समीप गये और उनसे प्रार्थना करी कि महाराज तारकासुर ने हमको बहुत सताया है उसके नाश का कोई उपाय कल्पना कीजिये तब ब्रह्माजी ने कहा कि हे देवताओ ! पार्वती और शिवजी के वीर्य से उत्पन्न और गंगा अग्नि कृत्तिका आदि करके वर्द्धित बालक इस दैत्यको मारैगा यह ब्रह्माजी का बचन सुन देवता शिवजी के समीप गये और प्रणामकर सब वृत्तान्त सुनाया शिवजी ने भी बालक उत्पन्न करना अंगीकार कर देवताओं को विसर्जन किया और आप मैथुनमें प्रवृत्त भये इसमें एक दिव्य हजार वर्षसे भी अधिक काल बीत गया और मैथुन समाप्त न भया तब देवताओं को बड़ा भय हुआ और परस्पर विचार करने लगे कि शिव पार्वती से जो बालक उत्पन्न होगा वह तारकासुर का वध करैगा परन्तु अभी तो सुरतही समाप्त नहीं होता बालक क्या जाने कब उत्पन्न होगा इसलिये इन के सुरतनिवृत्तिका उपाय करना चाहिये यह सब देवताओं ने विचारकर अग्नि और वायुको वहां भेजा अग्निको पार्वतीजी ने देखा और लज्जित हो शिवजी को सूचन किया तब शिवजी ने कहा कि हे प्रिये ! अब हमारे वीर्य को अग्नि धारण करेगा यह शिवजी का वचन सुनतेही अग्नि वहां से

अन्तर्धान भया तब देवता अग्नि को ढूँढ़ने लगे परन्तु स्वर्ग भूमि आकाश आदि में कहीं पता न लगा तब देवताओं ने कृमि कीट पतंग और मण्डूकों को पूछा उनने अग्नि का मार्ग बताया इसलिये उनको अग्नि ने शाप दिया कि तुम्हारी मनुष्यवाणी जाती रहै फिर देवताओं ने हाथियों को पूछा हाथियों ने कहा कि अग्नि हमारे शरण में आया है यह सुनतेही हाथियों को अग्नि ने शाप दिया कि तुम्हारी जिह्वा उलटी होजाय यह शाप दे अग्नि हाथियों के मुखसे निकल चलागया तब तेवताओं ने हाथियों को वर दिया कि अग्नि के शाप से तुम्हारी जिह्वा उलटी तो होजायगी परन्तु संज्ञा और चेष्टा करके सब कुछ कह सकोगे और समझोगे इतना कह देवता आगेगये वहां जीवंजीव नामक पक्षी देखा उसको देवताओं ने अग्निका पता पूछा परन्तु वह कुछ न बोला और वारंवार पूछने पर भी चुप रहा तब अग्नि ने प्रसन्न हो उसको वर दिया कि हे जीवंजीव मैं प्रसन्न होकर तुझको वर देता हूँ कि जब तक तेरी इच्छा हो तब तक जीता रह और मनुष्य के समान तेरी वाणी होय और जो तेरा मांस भक्षण करै वह भी अजर और अमर होजाय एक सौ बारह वर्ष के अनन्तर क्षणमात्र तू म्लान हुआ करैगा परन्तु मृत नहीं होगा यह वर जीवंजीव को देकर अग्नि वहां से चला और बांस के बीच जाय छिपा देवता भी वहां पहुँचे और बांस से कहा कि उष्मा करके तेरा वर्ण कलुष होरहा है इसलिये तेरे गर्भ में अग्नि है हे वंश ! तू हमको अग्नि बतादे हम तुझको वर देते हैं कि जो गृहस्थी अथवा ब्रह्मचारी तेरी यष्टि धारण करेगा उसको पञ्चाग्नि तपने का फल प्राप्त होगा यह देवताओं से वर पाय वंश ने अग्निको प्रकट कर दिया तब प्रसन्न हो देवताओं ने अग्नि से कहा कि तुम शिवजी का

वीर्य धारण करो अग्नि ने देवताओं के कहे से शिवजीका वीर्य धारा परन्तु उसके तेज से दग्ध होने लगा तब जाकर वह वीर्य अग्नि ने गङ्गा में डाला गङ्गा भी दग्ध होनेलगी तब अपने तटपर शरवनके बीच फेंक दिया वहां कुमार उत्पन्न भया जिसने तारकासुर को मारा इतनी कथा सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! जितने काल अग्नि गुप्त रहा उतने समय में अग्नि का काम किसने किया यह आप कथन करें तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! उतथ्यमुनि और अङ्गिरामुनि का विद्या में और तपमें परस्पर बड़ा विवाद हुआ उतथ्य कहैं कि हम अधिक हैं और अङ्गिरा कहैं कि हम इसका निश्चय करने के लिये दोनों ब्रह्मलोक में गये और ब्रह्माजी से सब वृत्तान्त कहा तब ब्रह्माजी ने उनसे कहा कि तुम जाकर सब देवता और लोकपालों को लेआओ तब सबके सम्मुख तुम्हारा विवाद देखकर निश्चय कहैंगे यह ब्रह्माजी का वचन सुन दोनों मुनि गये और देवता ऋषि गन्धर्व किन्नर यक्ष राक्षस दैत्य दानव आदि सबको बुला लाये केवल सूर्यभगवान् नहीं आये तब ब्रह्माजी ने कहा कि सूर्य को भी किसी प्रकार से लाओ यह सुन उतथ्यमुनि सूर्यनारायण के समीप गये और उनसे कहा कि आप शीघ्र हमारे साथ ब्रह्मलोक को चलैं तब सूर्य भगवान् ने कहा कि हे उतथ्य मुनि ! हमारा चलना किस प्रकार होसके जो हम तुम्हारे साथ जायँ तो जगत् में अन्धकार छाजाय इसलिये हम नहीं चल सक्के यह सुन उतथ्य मुनि वहां से चले आये और ब्रह्माजी को सब वृत्तान्त सुनाया तब उसने अङ्गिरामुनि से सूर्यभगवान् के लाने के लिये कहा अङ्गिरामुनि ब्रह्माजी की आज्ञा पाय सूर्यनारायण के समीप गये और सब बात कही सूर्यनारायण ने वही उत्तर

इनको दिया जो उतथ्य को दिया था तब अङ्गिरा ने कहा कि आप ब्रह्मलोक को जाइये हम आपके बदले यहां रहकर प्रकाश करेंगे यह सुन सूर्यनारायण ब्रह्मलोक को गये और अङ्गिरा प्रचण्ड तेज से तपने लगे सूर्य भगवान् ने ब्रह्माजी से पूछा कि किसलिये हमको आपने बुलाया है तब ब्रह्माजी ने कहा कि आप तो शीघ्र अपने स्थान पर जायँ नहीं तो अङ्गिरामुनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को दग्ध करडालैगा देखो गोलोक दग्ध होकर कृष्णवर्ण होगया है शाकद्वीप जला जाता है इसलिये शीघ्रही आप जायँ यह सुनते ही सूर्य भगवान् उलटे अपने स्थान पर आये और अङ्गिरामुनि को प्रशंसा कर विसर्जन किया तब अङ्गिरा देवताओं के समीप आये और देवताओं से कहा कि हम तुम्हारा कौन कार्य करें तब देवताओं ने अंगिरामुनिकी बड़ी स्तुति करी और कहा कि जब तक हम अग्निको ढूंढैं तब तक आप अग्निका काम दीजिये यह देवताओं का वचन सुन अंगिरामुनि अग्नि का काम देने लगे जब अग्नि आये तो देखा कि अंगिरामुनि अग्नि बन रहे हैं उनसे कहा कि हे मुनि! हमारा स्थान छोड़दो हम तुम्हारे ज्येष्ठपुत्र बनैंगे और और भी बहुत पुत्र तुम्हारे होंगे यह वर पाय अंगिराने अग्निका स्थान छोड़ दिया अग्नि का अवतार बृहस्पति अंगिराके ज्येष्ठ पुत्र भये और सैकड़ों पुत्र पौत्र और भी अंगिरामुनि के उत्पन्न भये अग्नि को अपना स्थान चतुर्दशी तिथि को प्राप्त भया इसलिये यह तिथि अग्नि को अति प्रिय है स्वर्ग में देवता और भूमि पर मान्धाता मनु नहुषआदि बड़े २ राजाओं ने इस तिथि को माना है जो पुरुष युद्ध में मारे जायँ सर्प आदि काटने से मरैं नदी पर्वत अग्नि विष आदि निमित्त से मरे हों और जिनने आत्मघात किया हो उनका इस तिथि में श्राद्ध करना चाहिये जिससे वे सद्गति को प्राप्त होयँ

इस तिथि के व्रत का हम विधान कहते हैं चतुर्दशी को उपवास करै और गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से त्रिलोचन श्रीसदाशिव का पूजन करै और रात्रि को पञ्चगव्य अथवा लवण तैल रहित भोजन करै और अग्नये स्वाहा हव्यवाहाय स्वाहा सोमाय स्वाहा अङ्गिर से स्वाहा । इन मन्त्रों से अष्टोत्तरशत कृष्णतिलों का हवन करै दूसरे दिन प्रभातही स्नान कर पञ्चामृत से शिवजी को स्नान कराय भक्तिसे पूजन करै और पूर्वोक्त रीति से हवन कर हाथ जोड़ (नमोस्तु भूत पतये नमः सूर्याग्निरूपिणे । पुत्रान्यच्छ सुखं यच्छ मोक्षं यच्छ नमोस्तु ते) यह मन्त्र पढ़ै पीछे आरती कर ब्राह्मण को भोजन कराय उनको दक्षिणा दे मौन से आप भी भोजन करै इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर सुवर्ण की शिव की प्रतिमा बनाय चांदी के वृष पर चढ़ाय दो श्वेत वस्त्रों से आच्छादित कर ताम्रपात्र में स्थापन करै पीछे गन्ध श्वेत पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से पूजन कर ब्राह्मण को देवै जो बन पड़ै तो इस व्रत को सदाही करता रहै एक वर्ष जो इस व्रत को करै वह दीर्घ आयुष् भोग कर तीर्थ पर प्राण त्यागता है और दिव्य विमान में बैठ दिव्य नारियों करके सेवित स्वर्ग में जाय देवताओं के साथ विहार करता है वहां बहुत काल सुख भोग भूमि पर राजा होता है और दाता यज्ञ करनेहारा चतुर ब्राह्मण प्रिय पुत्र पौत्र और उत्तम पत्नी करके युक्त होता है शुक्ल चतुर्दशी को जो मनुष्य भक्ति से शिवपूजन करैं उनको सब दुर्लभ पदार्थ भी प्राप्त होते हैं ।

चौरासीवां अध्याय ।

श्रवणिका व्रतका विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! श्रवणिका व्रत किसप्रकार करना चाहिये और कब करना चाहिये यह

आप वर्णन करैं यह सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! मार्गशीर्ष आदि बारहों महीनों में जब द्रव्य प्राप्ति होय और भक्ति होय तबहीं यह व्रत करना चाहिये और विधान इसका यह है कि शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को अथवा अष्टमी को पूर्वाह्न में स्नान आदि कर पतिव्रता सुरूपा और सौभाग्यवती ग्यारह नारियों को निमन्त्रण देकर बुलावै और वेदवेदांग जाननेहारे एक ब्राह्मण को निमन्त्रित करै फिर पाद्य अर्घ्य चन्दन पुष्प धूप दीप आदि से उन सब का पूजन कर कण्ठसूत्र कटिसूत्र वस्त्र आदि उनको देकर अनेक प्रकार के पक्वान्न उनके आगे परोसे और एक एक जलपूर्ण वर्द्धनीपात्र भी सबके आगे रक्खै वे वर्द्धनीपात्र पुष्पमाला चन्दन वस्त्र आदि से भूषित और सुवर्णयुक्त होयँ फिर हाथ जोड़कर यजमान यह मन्त्र पढ़ै (यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्द्धके वापि यत्कृतम् । तत्सर्वं नाशमायातु ऋणं देवर्षिपितृजम् ॥ इमं मांसमये पूर्णे तारयस्व भवार्णवात् । अनृणो गन्तुमिच्छामि विष्णोः पदमनुत्तमम्) वे सब ब्राह्मणी भी एवमस्तु यह वाक्य उच्चारण करैं पीछे वह ब्राह्मण वर्द्धनीपात्र उठाकर (अमुख्याः शिरसो देव्याःसमुत्तीर्य रुहक्रमम् । कटुकं निम्बवृक्षं च ततो वृक्षमधोरुहम् ॥ ततो गच्छ महादेवं श्रवणिश्रवणिकोत्तमे) इस मन्त्र से यजमान के शिर पर घुमावै पीछे यजमान उन सब को भोजन वस्त्र दक्षिणा आदि देकर सन्तुष्ट करै जो स्त्री अथवा पुरुष इस व्रत को करै वह सुखपूर्वक प्राण त्यागता है और इस व्रत का करनेहारा पुरुष आरोग्य पुत्र पौत्र धन आदि पाय सौ वर्ष संसार का सुख भोग अन्त में इन्द्रलोक को जाता है और स्त्री इस व्रतको करै तो गौरीलोक में निवास करै स्त्री को मन्त्र विना भी व्रत आदि करने से उसका फल होसक्ता है जो इस व्रत के माहात्म्य को भक्ति से सुनैं वे भी सब पापों से छूट परमगति

को प्राप्त होते हैं जो पुरुष भक्ति से श्रवणिका व्रत करैं और गुड़ घृतयुक्त पक्वान्न स्त्रियों को भोजन कराय दक्षिणा सहित जल पूर्णपात्र उनको देवैं वे बहुत दिन सुख भोग उत्तम गति पाते हैं।

पचासीवां अध्याय।

नक्तव्रत का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब आप नक्त-व्रत का विधान श्रवण कीजिये जिसके जानने से ही मनुष्य मोक्ष को प्राप्त होय चाहे जिस मास की कृष्णचतुर्दशी को ब्राह्मण भोजन कराय नक्तव्रत का आरम्भ करै प्रतिमास में दो अष्टमी और दो चतुर्दशी होती हैं उस दिन भक्ति से शिव पूजन करै और शिवध्यान में तत्पर रहै रात्रि के समय भूमि को पात्र बनाय उसपर रख भोजन करै उपवास से उत्तम भिक्षा भिक्षा से अयाचित और अयाचित से भी उत्तम नक्त है इसलिये नक्तव्रत करना चाहिये पूर्वाह्न में देवता भो-जन करते हैं मध्याह्न में मुनि अपराह्न में पितर और साय-ङ्काल में गुह्यक आदि भोजन करते हैं इसलिये सबके पीछे नक्त भोजन करना चाहिये नक्तव्रत करनेहारा पुरुष नित्य स्नान हविष्य और लघु अन्न का भोजन नित्य हवन और भूमि शयन करै इस भांति एक वर्ष व्रत करके अन्त में सुवर्ण का चांदी का अथवा ताम्रका पात्र घृत से भर पूर्ण कलश के ऊपर स्थापन करै कपिला गौ के पंचगव्य से मृत्तिका के शिवलिङ्ग को स्नान कराय फल पुष्प यव क्षीर दधि दूर्वा तिल चावल ये आठ वस्तु जल में डाल अर्घ्य देवै दोनों जानु भूमि पर रख पात्र को शिरतक उठाय महादेवजी को अर्घ्य देवै पीछे अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य और भात करके बलि देवै और एक उत्तम सवत्सा गौ और एक धुरन्धर वृष दरिद्री और वेदवेत्ता ब्राह्मण को दक्षिणा सहित देवै

इस व्रत का करनेहारा दिव्य देह धार अप्सराओं . करके सेवित उत्तम विमान में बैठ रुद्रलोक को जाता है वहां तीन सौ कोटि वर्षपर्यन्त सुख भोग कर राजा बनता है एक बार भी जो इस विधान से नक्तव्रत कर श्रीसदाशिव का पूजन करै वह विमान में बैठ स्वर्गको जाता है ।

छियासीवां अध्याय ।

प्रतिमास की शिवचतुर्दशी का विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! और भी जो कोई भुक्ति मुक्ति देनेहारा व्रत होय तो आप वर्णन कीजिये तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! अब हम तीनों लोकों में प्रसिद्ध शिवचतुर्दशी का विधान कहते हैं मार्गशीर्ष मास की शुक्ल त्रयोदशी को एक बार भोजन करै और चतुर्दशी को निराहार रहकर पार्वती सहित शिवजी का पूजन करै गन्ध पुष्प धूप दीप आदि करके । नमः शिवाय नमः सर्वात्मने नमस्त्रिनेत्राय नमो हरये नमः इन्दुमुखाय नमः श्रीकण्ठाय नमः सद्योजाताय नमो वामदेवाय नमोऽघोराय नमस्तत्पुरुषाय नमः ईशानाय नमोऽनन्तधर्माय नमो ज्ञानरूपाय नमोऽनन्तवैराग्याय नमोऽनन्तैश्वर्याय प्रधानाय नमः व्योमात्मने नमः व्योमव्योमात्मरूपाय नमः ॥ इन मन्त्रों से पाद ललाट नेत्र मुख कण्ठ कर्ण भुज हृदय स्तन उदर पार्श्व कटि ऊरु जानु जङ्घा गुल्फ और पृष्ठ इन अंगों का पूजन करै ॥ सृष्ट्यै नमः तुष्ट्यै नमः । इन मन्त्रों से पार्वती का अर्चन करै फिर सुवर्ण का वृष शुक्ल वस्त्र पंचरत्न और अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्य ब्राह्मण को देवै (प्रीयतां देव देवोत्र सद्यो जातः पिनाकधृक्) यह मन्त्र पढ़ उत्तराभिमुख हो घृत प्राशन कर भूमिपर शयन करै प्रतिमास की शुक्ल चतुर्दशी को यही विधान करै और मार्गशीर्ष आदि महीनों में शयन के समय

(शङ्कराय नमस्तुभ्यं नमस्ते परवीरहन् । त्र्यम्बकाय नमस्तेस्तु महेश्वरततः परम् १ नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः । नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्द्धधारिणे ॥ नमो भीमाय चोग्राय त्वामहं शरणं गतः २) ये मन्त्र हाथ जोड़कर पढ़ै और इन बारह महीनों में क्रम से गोमूत्र गोमय दुग्ध दधि घृत कुशोदक पंचगव्य घृत दुग्ध कमल गोशृङ्ग जल कृष्णातिल ये प्राशन करै और मन्दार मालती केतकी सिंदुवार अशोक मल्लिका कुब्जक पाटला अर्कपुष्प कदम्ब कमल और उत्पल इन करके क्रमसे बारहों चतुर्दशियों को पूजन करै इस प्रकार एक वर्ष करके कार्त्तिक मास में भक्ति से शिवपूजन कर अनेक प्रकार के भोजन वस्त्र भूषण दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर नीलेरंग का वृष छोड़ै और एक गौ तथा एक वृष सुवर्ण का बनवाय आठ मोतियों सहित उत्तम शय्या पर रक्खे जलका कुम्भ चावल घृत दक्षिणा आदि सहित वह सब सामग्री वेदवेत्ता शान्तचित्त सपत्नीक ब्राह्मणको देवै इसमें कभी वित्तशाठ्य न करै इस व्रतको जो पुरुष भक्ति से करै उसके सब पाप नष्ट होजाते हैं हजार अश्वमेध का फल पाता है और दीर्घायुष् ऐश्वर्य सन्तान विद्या आदि पाय बहुत दिन संसार सुख भोग विष्णुलोकादिकों में विहार करता हुआ शिवलोक में प्राप्त होता है इस व्रत के सम्पूर्ण फल को बृहस्पति ब्रह्मा अनन्त सिद्ध आदि भी नहीं वर्णन कर सकै जो इस माहात्म्य को पढ़ै सुनै वह भी शिवलोक को जाता है जो नारी पतिकी और गुरुकी आज्ञा लेकर इस व्रतको करै तो वह भी परमेश्वर के अनुग्रह से शिवलोक को प्राप्त होय ।

सत्तासीवां अध्याय ।

सर्व फलत्याग व्रतका माहात्म्य और फल ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम सर्व फलत्याग का माहात्म्य वर्णन करते हैं आप प्रीति से श्रवण करैं मार्गशुक्ल चतुर्दशी को अथवा और मास की अष्टमी को ब्राह्मणों को पायस भोजन कराय दक्षिणा दे इस व्रतका आरम्भ करै वर्षभर कोई फल मूल भक्षण न करै वर्ष के अन्त में चतुर्दशी के अथवा अष्टमी के दिन सुवर्ण के रुद्र धर्मराज और कूष्माण्ड मातुलुङ्ग वृन्ताक पनस आम्रातक कपित्थ कलंज श्रीफल जम्बीर कदली फल बेर दाड़िम ये फल सुवर्ण के बनावै उदुम्बर नारिकेल द्राक्षा दोनों कटेली कङ्कोल एला ककड़ी करीर कुटज शमी ये फल चांदी के बनावै और ताम्र का तालफल बनावे और पिण्डारक खर्जूर सूरण कन्द पनस लकुच चिर्भट शाल्मलि फल करैला इंगुदी पटोल ये सब फल भी तांबे के बनवावै दो जल के कुम्भ दो वर्द्धनीपात्र दो पात्र भोजन सहित और धेनु तथा पूर्वोक्त सब फल वेदवेदांग जाननेहारे शांतचित्त और कुटुम्बी ब्राह्मण को शिवजी और यमराज की प्रसन्नता के लिये देवै और (यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः । तथा सर्वफलत्यागाच्छिवप्रीतिः सदास्तु मे ॥ यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ । तद्युक्तफलदानेन स्यातां मे च वरप्रदौ ॥ यथा फलन्ति कामानि शिवभक्तस्य सर्वदा । तथानन्तफलावाप्तिरस्तु मे जन्मजन्मनि ॥ यथा भिन्नान्न पश्यामि शिवविष्ण्वर्क पद्मजान् ॥ तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शङ्करः सदा) ये मन्त्र पढ़ै । सब उपकरणों सहित उत्तम शय्या भूषण दक्षिणा और जलकुम्भ ब्राह्मण को देकर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावे परन्तु तैल क्षारवर्जित भोजन देवै जो सब फल न त्याग

सकै तो एकही फलका त्याग करै और सुवर्ण आदि बनवाय इस विधान से ब्राह्मण को देवै यह व्रत शैव वैष्णव भागवत योगी आदि सबको करना चाहिये वेदवेत्ता इस सर्व फल त्याग व्रतको अति शस्त कहते हैं फलों में जितने परमाणु होयँ उतने हजार युग इस व्रतका करनेहारा रुद्रलोक में निवास करता है नारियों को भी यह व्रत अवश्य करना चाहिये इस व्रत के करनेहारे को किसी जन्म में इष्टवियोग नहीं होता और अन्त में स्वर्गवास मिलता है जो भक्ति से इस माहात्म्य को पढ़ै अथवा सुनै वह भी सब पापों से छूट स्वर्ग को जाता है।

अट्ठासीवां अध्याय।

तारा के निमित्त देवताओं से चन्द्रमाका युद्ध विजयपूर्णिमा व्रतका विधान फल और अमावास्या को श्राद्धआदि करने का फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! पूर्णिमा तिथि चन्द्रमा की प्रिया है उस दिन मास पूर्ण होता है इसलिये उसको पूर्णमासी कहते हैं पौर्णमासी को युद्ध में चन्द्रमा ने देवताओं से जय पाया है बृहस्पति की स्त्री तारा में चन्द्रमा आसक्त होगया था इसलिये देवताओं से युद्ध हुआ राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! तारा किस की पुत्री थी चन्द्रमा उसमें क्योंकर आसक्त भया और देवताओं से किस विधि युद्ध हुआ यह आप कथन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! प्रजापति की अतिसुन्दरी तारा नाम कन्या थी उसको प्रजापति ने बृहस्पति को बिवाह दिया वह भी यत्नपूर्वक अपने पति की सेवा करने में प्रवृत्त भई एक दिन उस अति सुन्दरी को चन्द्रमा ने देखा देखतेही चन्द्रमा कामवश हुआ और तारा से कहने लगा कि हे तारे ! मेरे समीप शीघ्र आगमन कर मैं तेरे अधीन हूं तारा ने भी चन्द्रमा का अभिप्राय जान कहा

कि हे चन्द्र! मैं अंगिरामुनि के पुत्र बृहस्पति की भार्या हूं और परदारा का तुमको गमन करना योग्य नहीं यह तारा का वचन सुन कर भी चन्द्रमा ने न माना और तारा का दहिना हाथ पकड़ अपने स्थान को लेगया यह बात बृहस्पति ने जानी और बड़ा कोप कर सब वृत्तान्त इन्द्र से कहा इन्द्रने चन्द्रमा के पास दूत भेजा परन्तु चन्द्रने कुछ न माना तब इन्द्र ने सब देवताओं को बुला कर यह वृत्तान्त सुनाया यह सुनतेही सब देवता और गन्धर्व क्रोध से जल उठे और रथों पर चढ़ नाना प्रकार के शस्त्र अस्त्र धार चन्द्र से युद्ध करने उठ धाये चन्द्रमा ने देवताओं की इस भांति चढ़ाई देख दैत्य दानव राक्षस आदि अपनी सहाय के लिये बुलाये और आप भी रथ पर चढ़ युद्ध के लिये निकला दोनों ओर की सेना मिलतेही घोर युद्ध होने लगा चन्द्रमा ने हिमवृष्टि से देवताओं को भगा दिया और युद्ध में जय पाय चन्द्रमा गर्जने लगा देवता भी पराजित हो विष्णु भगवान् के शरण में गये और सम्पूर्ण वृत्तान्त उनके आगे वर्णन किया यह वृत्तान्त सुन विष्णु भगवान् गरुड़ पर चढ़ सुदर्शनचक्र धार सब देवताओं को साथ ले चन्द्रमा से युद्ध करने के लिये आये फिर देवता और दैत्यों का घोर युद्ध आरम्भ हुआ परन्तु चन्द्रमा ने ऐसा युद्ध किया कि क्षणमात्र में इन्द्र सहित सब देवता और गन्धर्वों को जीत युद्ध से विमुख किया तब विष्णु भगवान् ने बड़ा कोप किया और शंखध्वनि कर चन्द्रमा को मारने के लिये सुदर्शनचक्र उठाया उस समय ब्रह्माजी ने कहा कि आपके चक्र को त्रैलोक्य में कोई अवध्य नहीं है और चन्द्रमा को हमने ब्राह्मणों का राजा बनाया है इसलिये आप इसका वध न करें जो और उपाय आप कहें वह किया जाय तब विष्णु भगवान् ने कहा कि अमावास्या को चन्द्रमा

नष्ट होय और फिर जन्म लेकर पूर्णिमापर्यन्त वृद्धि को प्राप्त होय और ब्राह्मणों के हव्य कव्य देवता और पितरों को पहुँचावै यह दक्ष का भी शाप चन्द्रमा को है यह बात सब देवताओं ने स्वीकार करी ब्रह्माजीने चन्द्रमा को बुलाकर समझाया और कहा कि हे पुत्र! गुरुकी भार्या तुम देदो फिर कभी ऐसा अविनय मत करना चन्द्रमा ने ब्रह्माजी की आज्ञा मानि उसी समय तारा को बृहस्पति के अर्पण किया परन्तु सब देवताओं के सम्मुख यह कहा कि इसमें मेरा गर्भ है जो सन्तान होगी वह मेरी होगी यह चन्द्र का वचन सुन बृहस्पति ने कहा कि जिसका क्षेत्र होय वह उस बीज का स्वामी होता है बीज चाहे जिसका हो यह वेदशास्त्र सम्पन्न और धर्मनिष्ठ ऋषियों ने कहा है इसलिये इसका सन्तान तुमको नहीं मिल सक्ता तब चन्द्रमा ने कहा कि आप का वचन ठीक नहीं है माता तो केवल गर्भ धारण करने के लिये एक थैली है सन्तान के ऊपर पिताका ही स्वत्त्व रहता है यह पौराणिक मुनियों का मत है इस भांति चन्द्रमा और बृहस्पति को विवाद करते देख ब्रह्माजी ने एकान्त में तारासे पूछा कि तैंने किस से गर्भ धारण किया है यह ब्रह्माजी का वचन सुन लज्जासे ताराने कुछ उत्तर न दिया और उस गर्भ को उसी क्षण वहां ही त्याग दिया वह बालक ऐसा तेजस्वी उत्पन्न भया कि सम्पूर्ण स्वर्ग में प्रकाश होगया ब्रह्माजी ने उस बालकसे ही पूछा कि तू किसका पुत्र है बालक ने उत्तर दिया कि चन्द्रमा का पुत्र हूं तब ब्रह्माजीने प्रसन्न हो और बालक की बुद्धिमत्ता देख उसका नाम बुध रक्खा और चन्द्रमा को दिया चन्द्रमा उस बालक को ले प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया और बृहस्पति भी अपनी भार्या को ले धीरे २ अपने संदन को गये चन्द्रमा ने कहा कि पूर्णिमा को हमारा विजय

हुआ और उत्तम पुत्र पाया इसलिये यह तिथि हमको अत्यन्त प्रिय है इस दिन जो पुरुष और स्त्री व्रत कर हमारा पूजन करेंगे उनके सब मनोरथ पूर्ण होंगे इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! पूर्णिमा के दिन नदी आदि में स्नानकर देवता और पितरों का तर्पण करै पीछे घरमें आय मण्डल बनाय उसके बीच नक्षत्रों सहित चन्द्रमा लिख श्वेत गन्ध पुष्प धूप दीप घृतपक्व नैवेद्य और शुक्ल वस्त्र करके चन्द्रमा का पूजन कर क्षमापन करावै और सायं-काल के समय (गगनार्णवमाणिक्यं चन्द्रदाक्षायणीप्रिय । गृहाणार्घ्यं मया दत्तमत्रिनेत्रसमुद्भव) इस मन्त्र से अर्घ्य देकर रात्रिके समय मौनसे शाकाहार करै यह व्रत सब मनोरथ पूर्ण करनेहारा है अमावास्या तिथि पितरों को प्रिय है उस दिन दान तर्पण आदि करने से पितरों की तृप्ति होती है जो अमा-वास्या को उपवास करै उसको अक्षयवट के नीचे श्राद्ध करने का फल होता है जो अमावास्याको पिंडदान करै वह इक्कीस कुलका उद्धार करता है और आप भी बहुत काल पितृलोक में सुख भोगकर पांच जन्मतक धनवान् और विद्वान् ब्राह्मण होता है एक वर्षपर्यंत पूर्णिमाव्रंत करके नक्षत्र सहित चन्द्रमा की सुवर्ण की प्रतिमा बनाय वस्त्र भूषण आदि से उसका पूजन कर ब्राह्मण को देवै इस व्रतका करनेहारा पुरुष सब पापों से मुक्त हो चन्द्रमा की भांति शोभित होता है और पुत्र पौत्र धन आरोग्य आदि पाय बहुत काल संसारसुख भोग अन्त समय प्रयाग में प्राण त्यागकर विष्णुलोक को जाता है वहां गन्धर्व और अप्सरा उसकी सेवा में रहती हैं वहां तीन अयुत कल्प निवास करता है जो पुरुष पूर्णिमा को चन्द्रमा का पूजन करैं और अमावास्या को पितृतर्पण पिण्डदान आदि करैं वे धन धान्य सन्तान आदि से कभी खाली नहीं रहते ।

नवासीवां अध्याय।

वैशाखी कार्त्तिकी और माघी पूर्णिमा का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि वर्ष भरमें कौन २ तिथि स्नान दान आदि में अधिक पुण्यप्रद हैं उनका आप वर्णन करें यह सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! वैशाख कार्त्तिक और माघ इन तीन महीनों की पूर्णिमा स्नान दानके लिये अतिश्रेष्ठ हैं इनको स्नान दान विना न बितावे तीर्थों में स्नान करै और वित्तानुसार दान देवै वैशाखी को गंगा में कार्त्तिकी को पुष्कर में और माघीको काशीमें स्नान करै उस दिन जो पितरों का तर्पण करै वह अनन्त फल पाता है और पितरों का दुष्कृत से उद्धार करता है वैशाखी को भोजन सुवर्ण और वस्त्र सहित जलपूर्ण कुम्भ ब्राह्मणों को देवै वह सब उत्तम फल पावै अनेक प्रकार के भोजन गौ भूमि सुवर्ण वस्त्र आदि कार्त्तिकी पूर्णिमा को देवै और माघी पूर्णिमा को देवता और पितरों का तर्पण कर सुवर्ण सहित तिलपात्र कम्बल रुई के वस्त्र कपास रत्न आदि दान करै कार्त्तिकी पूर्णिमा को वृषोत्सर्ग करै भगवान् का नीराजन करै हाथी घोड़े रथ और घृत धेनु आदि दश धेनुओं का दान करै और कदली खजूर नारिकेल दाड़िम मातुलुंग ककड़ी वृन्ताक करेला बिम्ब कूष्माण्ड आदि फल दान करै इन तिथियों को जो स्नान दान आदि नहीं करते वे जन्मान्तर में रोगी और दरिद्री होते हैं ब्राह्मणों को दान देने का तो फल हैही परन्तु बहिन भानजे दौहित्र बूआ आदिको दान देनेका भी इन तिथियों में बड़ा पुण्य होता है मित्र कुलीन विपत्ति करके पीड़ित दरिद्री और आशा करके दूरसे आया हो वह अतिथि उत्तम है उसको दान देने से स्वर्गकी प्राप्ति होती है सीता और लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जब वन को चलेगये उस समय मातामह के घरसे

आय भरत ने कौशल्या के आगे बहुत शपथ किये परन्तु कौशल्या को विश्वास न भया तब भरत ने यह शपथ किया कि वैशाखी कार्त्तिकी और माघी पूर्णिमा विना स्नान दान के मेरी व्यतीत होयँ जो मेरी सम्मति से रामचन्द्र वन को गये होयँ तो यह सुनतेही कौशल्या को विश्वास आगया और भरत को अपने अंक में बिठाय आश्वासन किया इन तीनों तिथियों का सम्पूर्ण माहात्म्य कौन वर्णन कर सक्ता है यह हमने संक्षेप से कहा है इन तीनों तिथियों को जल अन्न वस्त्र पात्र छतुरी आदि दान करनेहारे पुरुष इन्द्रलोक को जाते हैं।

नब्बे का अध्याय।

युगादि तिथियों का माहात्म्य और विधान।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! और भी जो तिथि ऐसी होयँ कि जिनको किये स्नान दान जप आदि अक्षय होते हैं उनका आप वर्णन करें यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज! यह अत्यन्त रहस्य हम आपको कहते हैं जो आजतक किसी को नहीं कहा था वैशाख शुक्ल तृतीया कार्त्तिक शुक्ल नवमी भाद्र कृष्ण त्रयोदशी और माघ की पूर्णिमा ये चारों तिथि युगादि हैं अर्थात् इन तिथियों को क्रम से चारों युगों का प्रारम्भ हुआ है इन तिथियों को उपवास तप दान जप होम आदि करने से कोटि गुण फल होता है वैशाख शुक्ल तृतीया को गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य वस्त्र भूषण आदि से लक्ष्मी सहित नारायण का पूजन कर मेष के चर्म पर लवणधेनु स्थापन करै और उसके चतुर्थांश प्रमाण बछड़ा बनावै पीछे शास्त्र की रीति से दान कर ब्राह्मण को देवै और (श्रीधरः श्रीपतिः श्रीमान् श्रीशः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै तो दशहजार गोदान का फल पावै कार्त्तिक शुक्ल नवमी को नदी तड़ाग आदि में स्नान

कर पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि करके पार्वती सहित श्रीसदाशिव का पूजन करे और तिलधेनु दान करै (अष्टमूर्त्ति नीलकण्ठः प्रीयताम्) यह वाक्य उच्चारण करै इस प्रकार तिलधेनु दान करनेहारा शिवलोक में निवास करता है भाद्र कृष्ण त्रयोदशी को पितृ तर्पण कर शहद और घृत युक्त अनेक प्रकार के पक्वान्नों से ब्राह्मण भोजन कराय दुग्ध देनेहारी सुन्दर तरुण सवत्सा गौ ब्राह्मण को देवै और (पिता पितामहः प्रपितामहश्च प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस प्रकार गोदान करने से जो फल प्राप्त होता है उसका कोटि वर्ष में भी वर्णन नहीं करसक्के वह पुरुष इस लोक में पुत्र पौत्र ऐश्वर्य और परलोक में सद्गति पाता है माघपूर्णिमा को गायत्री सहित ब्रह्माजी का पूजनकर सुवर्ण वस्त्र अनेक प्रकार के फलों सहित नवनीत धेनु का दान करे और (पितामहः पद्मयोनिः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस प्रकार दान करनेवालों को तीनलोक में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं इन युगादि तिथियों में जो दान करै वह अक्षय होता है निर्धन होय तो थोड़ा २ हीं दान करै उसीका अनन्त फल है शय्या आसन छतुरी जूता वस्त्र सुवर्ण भोजन आदि ब्राह्मणों को देना चाहिये इन तिथियों को यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय मौन से आप भी भोजन करै युगादि तिथियों को दान पूजन आदि करने से कायिक वाचिक और मानसिक सब प्रकार के पाप नष्ट होजाते हैं और दान करनेहारा अक्षय स्वर्गवास पाता है इन युगादि तिथियों में किये स्नान दान आदि कोटि गुण होजाते हैं यह व्यासादि मुनि कहते हैं।

इक्यानबे का अध्याय।

सत्यवान् और सावित्रीकी कथा, सावित्री व्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! अब आप

सावित्री व्रतका विधान कथन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! सावित्री नाम्न राजकन्या ने वनमें जिस प्रकार यह व्रत किया उसका हम नारियों के हितके अर्थ वर्णन करते हैं पूर्वकाल में बड़ा पराक्रमी सत्यवादी क्षमावान् जितेन्द्रिय प्रजाके हितमें तत्पर अश्वपति नाम राजा था उसके कुछ संतान न भई इसलिये वह सावित्री व्रत किया करता कुछ कालके अनन्तर ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री ने प्रसन्न हो राजाको वर दिया कि हे राजन् ! एक कन्या तेरे उत्पन्न होगी इतना कह कमण्डलुधरा श्रीसावित्री देवी अन्तर्द्धान भई और थोड़े कालके अनन्तर राजाके अति सुन्दरी एक कन्या उत्पन्न भई सावित्री के वरसे प्राप्त भई इसलिये राजाने उसका नाम सावित्री रक्खा कुछ कालके अनन्तर वह तरुण अवस्था में प्राप्त हुई तब तो उसका इतना तेज बढ़ा कि मानों तप्त सुवर्ण के उसके अङ्ग होयँ और देखनेवालों को यही निश्चय होय कि यह कोई देवकन्या है वह कन्या भी पिताके उपदेश से सावित्री व्रत किया करती एक दिन व्रतकर शिरस्नान किया और सावित्री का पूजन और हवन आदि कर अपनी सखियों सहित पिताके पास गई पिताको प्रणामकर विनय से हाथ जोड़ बैठ गई राजा ने पुत्री का रूप और तारुण्य देख कहा कि हे पुत्री ! तू अब वर योग्य हुई और कोई तेरेको वरता नहीं अब तू मेरे धर्मकी रक्षाकर मैंने धर्मशास्त्रों में यह सुना है कि जो कन्या पिताके घर रजस्वला होजाय वह वृषली कहाती है और उसका पिता ब्रह्महत्या को प्राप्त हो नरक को जाता है इसलिये वृद्ध अमात्यों को साथ लेकर तू स्वयंवर के लिये जा और जहां अपने योग्य कोई राजकुमार देखै उसी को वर ले सावित्री ने भी यह पिताकी आज्ञा अङ्गीकार

करी और सब राजपरिकर साथले वहां से चली थोड़े काल में ही राजर्षियों के आश्रम सब तीर्थ और तपोवनों में घूमती वृद्ध ऋषियों को अभिवन्दन करती मन्त्रियों सहित अपने पिता के समीप आपहुँची उस समय नारदमुनि भी वहां बैठे थे सावित्री नारदजी को और पिता को प्रणाम कर अपना वृत्तान्त कहने लगी कि हे महाराज ! सब आश्रम और तीर्थ मैंने देखे और एक राजकुमार को मैंने वर भी लियाहै द्युमत्सेन एक राजा है ईश्वर की इच्छा से वह राज्य करता २ अन्धा हो गया तब उसके शत्रु रुक्मी ने उसका राज्य हरलिया और उसको निकाल दिया वह अब अपनी रानी समेत तपोवन में रहता है उसका एक पुत्र परम धार्मिक पिता का आज्ञाकारी सत्यवान् नाम है उसको मैंने वरा है यह सावित्री का वचन सुन नारदमुनि बोले कि हे राजन् ! यह बात तेरी कन्याने अच्छी न करी वह बालक रूपवान् पितृभक्त ब्रह्मण्य है और शिवि राजा के समान सत्यवादी है इसीसे उसका नाम सत्यवान् पड़ा और ययाति के सदृश उदार चन्द्रके तुल्य प्रियदर्शन और अश्विनीकुमारों के समान रूपवान् है उसको अश्व बहुत प्रिय है इसलिये मृत्तिका के अश्व बनाया करता है और चित्रों में भी अश्वही लिखता है इसलिये इसका नाम चित्राश्व भी पड़ गया है अब वह राजा द्युमत्सेन का पुत्र तरुण अवस्था को प्राप्त भया है बली है प्रतापी है इस प्रकार सब गुण उसमें हैं परन्तु यही बड़ा भारी दोष है कि आज से वर्षवें दिन मृत्युवश होजायगा यह नारदजी का वचन सुन सावित्री बोली कि हे देवर्षे ! राजा एक वचन कहते हैं ब्राह्मण एक बात बोलते हैं कन्या एक बार वरी जाती है ये तीनों बातें बार बार नहीं होतीं अब वह दीर्घायुष् हो चाहे अल्पायुष् निर्गुण हो वा गुणवान् मैंने उसको वर लिया दूसरे पति को

कभी न वरूँगी मन में निश्चय करके वचन से कहा जाता है और जो वचन कहा वही करना चाहिये इसलिये मैंने जो मन में निश्चय कर कहा वही करूँगी यह सावित्री का निश्चय युक्त वचन सुन नारदजी ने कहा कि हे पुत्रि! जो तेरा ऐसा दृढ़ निश्चय है तो शीघ्र विवाह कर परमेश्वर सब बात भली करेंगे इतना कह नारदमुनि स्वर्ग को गये और राजा ने भी शुभमुहूर्त में सावित्री का सत्यवान् से विवाह कर दिया सावित्री भी मनोवांछित भर्ता पाय अति हर्ष को प्राप्त भई और सुखपूर्वक दोनों अपने आश्रम में रहने लगे परन्तु नारदमुनि का वाक्य सावित्री के हृदय में खटकता था जब वर्ष पूरा होने पर आया तब सावित्री ने विचार किया कि अब मेरे पतिका मृत्यु समीप है यह शोच भाद्र शुक्ल द्वादशी के प्रदोष से तीन रात्रिका व्रत ग्रहण कर बैठी और सावित्री भगवती का पूजन करती रही और यह निश्चय था ही कि आजसे चौथे दिन सत्यवान् का मृत्यु होगा तीन दिन रात सावित्री ने नियम से व्यतीत किये चौथे दिन देवता पितरों को सन्तुष्ट कर ब्राह्मण भोजन कराय अपने श्वशुर और सास के चरणों पर प्रणाम किया सत्यवान् वन से काष्ठ लाया करता उस दिन भी काष्ठ लेने चला तब सावित्री भी उसके सङ्ग चलपड़ी सत्यवान् ने वहां काष्ठ काटकर बोझ बांधा और घरको चला परन्तु उसके मस्तक में वेदना उत्पन्न हुई जिससे चल न सका काष्ठका बोझा तो उतार दिया और सावित्री से कहा कि हे प्रिये! मेरे शिर में बहुत व्यथा है इस लिये थोड़ा काल तेरे उत्सङ्ग में शिर रखकर सोना चाहता हूँ सावित्री ने कहा कि हे प्राणनाथ! आप मेरे अङ्क में शिर रख कर सुख से शयन कीजिये आपके शिरकी व्यथा निवृत्त होजायगी तब आश्रम को चलेंगे सत्यवान् सावित्री के अंक

में शिर धरके वट वृक्षकी छाया में सोया इतने में यमराज वहां आये सावित्री ने उनको देख प्रणाम किया और कहा कि देवता दैत्य गन्धर्व आदि तुम कौन हो इस वन में मेरा धर्षण करना चाहते हो तो यह कभी नहीं हो सकैगा कोई पुरुष मुझको स्पर्श नहीं कर सक्ता मैं पतिव्रता हूँ दूसरे पुरुष को मेरा स्पर्श दीप्त अग्नि ज्वाला की भांति है यह सावित्री का वचन सुन धर्मराज ने कहा कि हे सावित्रि ! सब लोक को क्षय करनेहारा मैं यम हूँ इस तेरे पतिका आयुष् समाप्त हो गया है परन्तु तू पतिव्रता है इसलिये मेरे दूत इसको न लेजा सके तब मैं आप लेने आया हूँ इतना कह यमराज ने सत्यवान् के शरीर से अंगुष्ठमात्र पुरुष को खैंच लिया और लेकर अपने लोक को चला सावित्री भी उसके पीछे हो ली बहुत दूर जाकर यमराज ने सावित्री से कहा कि हे पतिव्रते ! अब तू लौटजा इस मार्ग में इतनी दूर कोई नहीं आता तब सावित्रीने कहा कि महाराज पति के साथ आते हुये मुझे न तो ग्लानि भई और न कुछ श्रम मैं सुखपूर्वक चली आती हूँ वर्णाश्रमों का आधार वेद शिष्यों का आधार गुरु और नारियों का आधार पति है भूमि पर सबको आश्रय है परन्तु मुझको इसके विना दूसरा कुछ अवलम्ब नहीं इस भांति धर्मयुक्त और मधुर सावित्री के वचन सुन यमराज प्रसन्न होकर कहने लगा कि हे पुत्रि ! मैं तेरे से प्रसन्न हुआ जो वर तुझे अपेक्षित हो मांग तब सावित्री ने पांच वर मांगे कि मेरे श्वशुर के नेत्र अच्छे होजायँ और राज्य मिल जाय मेरे पिता के सौ पुत्र होयँ मेरा भर्ता दीर्घायुष् पावै सौ पुत्र मेरे उत्पन्न होयँ और हमारी सदा धर्म में दृढ़ श्रद्धा रहै धर्मराज ने ये सब वर सावित्री को दे घरको बिदा किया सावित्री भी प्रसन्न होती हुई अपने पति को संग लेकर आश्रम में आई भाद्र की

पूर्णिमा को जो उसने व्रत किया था यह सब उसका फल है इतनी कथा सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! उस व्रत का विधान आप विस्तार से वर्णन करें तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! भाद्र शुक्ल त्रयोदशी को शौच आदि कर तीन दिन के व्रत का नियम ग्रहण करै जो तीन दिन उपवास रहने की शक्ति न होय तो त्रयोदशी को नक्त चतुर्दशी को अयाचित और पूर्णिमा को उपवास करै नित्य नदी तड़ाग आदि में स्नान करै और पूर्णिमा को सरसों का उबटना लगाय स्नान करै और बांस के पात्र में एक सेर नदी का बालू ले आवै पीछे सुवर्ण की ब्रह्मा सहित सावित्री की प्रतिमा बनाय उस पर स्थापन कर दो रक्तवर्ण वस्त्रों से उनको आच्छादित करै फिर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य से पूजन कर कूष्माण्ड नारिकेल ककड़ी तुरई खजूर कैथा दाड़िम जामुन जम्भीरी नारङ्गी अखरोट पनस गुड़ लवण जीरा सप्तधान्य आदि सब वस्तु बांस के पात्र में रख (ॐकारपूर्विके देवि वीणापुस्तकधारिणि । वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे) यह मन्त्र पढ़ सावित्री को अर्पण करै रात्रि के समय जागरण करै गीत वाद्य नृत्य आदि का बड़ा उत्सव होय नारी मिल कर गीत गावैं ब्राह्मण सावित्री कथा कहैं इस प्रकार सारी रात्रि उत्सव से बिताय प्रभातही सब सामग्री सहित सावित्री मूर्ति (सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या सहासना । ब्रह्मणः प्रीणनार्थाय ब्राह्मणप्रतिगृह्यताम्) यह मन्त्र पढ़ वेदवेत्ता अग्निहोत्री दरिद्री और सावित्री कल्प जाननेहारे ब्राह्मण को देवै और सब सामग्री ब्राह्मण के घर पहुँचा देवै आप भी उसके साथ दश कदम जाय और यथा-शक्ति ब्राह्मण भोजन कराय आप भी हविष्य अन्न भोजन करै इसी प्रकार ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को वटवृक्ष के नीचे

काष्ठ भार सहित सत्यवान् और सावित्री की प्रतिमा बनाय पूजन करै रात्रि को जागरण आदि कर प्रभात वह प्रतिमा ब्राह्मण को देवै इस विधान से जो सावित्री व्रत करै वह पुत्र पौत्र धन आदि सब पदार्थ पाय चिरकाल तक भूमि पर सब सुख भोग अपने पति सहित ब्रह्मलोक को जाती है यह व्रत पुण्यवर्द्धक पापहारक दुःखप्रणाशन और धन-दायक है जो नारी भक्ति से इस व्रत को करैं वे सावित्री की भांति दोनों कुलों का उद्धार कर पति सहित चिरकाल तक सुख भोगती हैं जो इस माहात्म्य को पढ़ै अथवा सुनै वह भी मनोवाञ्छित फल पावै।

बानबे का अध्याय।

कलिंगभद्रा रानी की कथा कृत्तिकाव्रत का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! पूर्वकाल में मध्य-देश के बीच वृकस्थल नाम ग्राम में कलिंगभद्रा नाम अतिरूप-वती और बहुपुत्रा राजा दिलीप की रानी थी वह सदा ब्राह्मणों को दान देती देवार्चन करती ब्राह्मण भोजन कराती उस समय में कलिङ्गभद्रा रानी के समान कोई दूसरा दान देनेहारा न था एक समय उसने कार्त्तिक मास में छः महीने का कृत्तिका व्रत धारण किया और नित्य पूजन दान ब्राह्मण भोजन हवन आदि में तत्पर रहती व्रत में थोड़ा काल अवशेष था कि एक दिन उस को रात्रि समय पति के साथ सोती हुई को भयङ्कर सर्पने काटा काटतेही उसके प्राण जाते रहे और जन्मान्तर में बकरी बनी परन्तु व्रत के प्रभाव से बकरी भी जातिस्मरा थी उसने अपना कृत्तिका व्रत फिर ग्रहण किया अपने यूथ से अलग हो उपवास करने लगी एक दिन उसको उसके स्वामी ने बांध रक्खा था उस समय किसी जातिस्मर ऋषि ने उसको देखा और जाना कि यह रानी कलिङ्गभद्रा है तब दयाकर

बन्धन से उसको छुटाया वहां से छुट उसने बेरी के पत्र भक्षण कर शीतल जल पानकर व्रत पारण किया ऋषि अपने आश्रम को गये और वह अपने व्रत में तत्पर भई और कुछ काल के अनन्तर उसने प्राण त्याग किया और गौतम ऋषि की भार्या अहल्या के गर्भ से उत्पन्न भई माता पिता ने उसका नाम योगलक्ष्मी रक्खा और तरुण भई जब गौमत मुनि ने बड़े तपस्वी और शान्तचित्त शांडिल्यमुनि को विवाह दी वह भी शांडिल्य के घरमें सरस्वती स्वाहा अरुन्धती गौरी राज्ञी गायत्री अथवा साक्षात् महालक्ष्मी की भांति शोभित होती थी नित्य देवता पितर और अतिथियों के सत्कार में लगी रहती ब्राह्मणों को भोजन देती एक दिन शांड़िल्यमुनि ने योगबल से सब वृत्तान्त जानकर पूछा कि हे प्रिये ! कृत्तिका कितनी हैं तब योगलक्ष्मी को भी पूर्ववृत्त स्मरण आया और कहा कि महाराज छः कृत्तिका हैं तब शांडिल्यमुनि ने उसको मन्त्र और कृत्तिका व्रत का फिर उपदेश किया जिसके करने से दोनों चिरकाल संसार सुख भोग स्वर्ग को गये राजा युधिष्ठिर ने इतनी कथा श्रवण कर पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! कृत्तिका व्रत का क्या विधान है आप वर्णन करैं तब श्रीकृष्णचन्द्र कहने लगे कि हे महाराज ! कार्त्तिक की पूर्णिमा को कृत्तिका नक्षत्र में चन्द्रमा और बृहस्पति होयँ और उस दिन सोमवार होय वह महाकार्त्तिकी होती है महाकार्त्तिकी तो बहुत वर्षों में और बड़े पुण्य से प्राप्त होती है इसलिये साधारण कार्त्तिकी पूर्णिमा को ही उपवास करै कार्त्तिकी पूर्णिमा को प्रभातही दन्तधावन आदि कर नक्तव्रत का अथवा उपवास का नियम ग्रहण करै पुष्कर प्रयाग कुरुक्षेत्र नैमिष कुशावर्त बिल्वक गोकर्ण अर्बुद अमरकण्टक आदि किसी तीर्थ में अथवा अपने घरमेंही स्नान करै फिर देवता ऋषि पितर

और अतिथि का पूजनकर सायङ्काल के समय घृत और दुग्ध से पूर्ण पात्र में सुवर्ण चांदी रत्न नवनीत अन्न और पिष्ट से छः कृत्तिका की मूर्ति क्रम से बनाय स्थापन करै फिर उनको रक्तसूत्र से वेष्टितकर सिन्दूर कुंकुम चन्दन चमेली के पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से उनका पूजनकर (ॐसप्तर्षिदारा ह्यनंरत्नस्थवल्लभा ये ब्राह्मणा ऋषिभावेन युक्ताः । तुष्टाः कुमारस्य यथार्थमातरो ममापि सुप्रीततरा भवन्तु स्वाहा) यह मन्त्र पढ़ सब कृत्तिकाओं की मूर्ति ब्राह्मण को देवै ब्राह्मण भी ग्रहण करके (शर्मदाः कामदाः सन्तु इमा नक्षत्रमातरः । कृत्तिकादुर्गसंसारात्तारयन्त्वावयोः कुलम्) यह मन्त्र पढ़ै पीछे ब्राह्मण सब सामग्री लेकर घर को जाय और छः कदम तक यजमान उसके पीछे चलै पीछे लौटकर ब्राह्मण भोजन करावै इस प्रकार जो पुरुष कृत्तिका व्रत करै वह सूर्य के तुल्य प्रकाशवान् विमान में बैठ नक्षत्रलोक में जाता है वहां प्रलय काल पर्यन्त दिव्य देह धार दिव्य नारियों के साथ बिहार करता है जो स्त्री इस व्रत को करै वह भी अपने पति सहित नक्षत्रलोक में जाय बहुत काल दिव्य भोग भोगती है और जो स्त्री पुरुष इस माहात्म्य को भक्ति से सुनै वह सब पापों से मुक्त होता है इस विधि से सुवर्ण आदि की छः कृत्तिका बनाय पात्रमें रख गन्ध पुष्प अक्षत धूप दीप नैवेद्य आदि से पूजनेहारा जन्म मरण से छूट जाता है ।

तिरानबे का अध्याय ।

मनोरथपूर्णिमा का विधान और फल ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! फाल्गुन की पूर्णिमा को स्नान आदि कर लक्ष्मी सहित जनार्दन का पूजन करै और चलते फिरते बैठते उठते जनार्दन का स्मरण करै और पाखण्ड पतित नास्तिक चण्डाल आदि से सम्भाषण न

करै जितेन्द्रिय रहे रात्रि के समय चन्द्रमा को नारायण का रूप और रात्रि को लक्ष्मी रूप भावना कर (श्रीर्निशाचन्द्र रूपस्त्वं वासुदेव जगत्पते । मनोभिलषितं देव पूरयस्व नमो नमः) इस मन्त्र से अर्घ्य देवै पीछे तैल लवणरहित भोजन मौन से करै इसी प्रकार चैत्र वैशाख ज्येष्ठ इन तीन महीनों में भी पूजन कर प्रथम पारण करै आषाढ़ श्रावण भाद्रपद और आश्विन इन चार महीनों की पूर्णिमा को श्री सहित श्रीधर का पूजन कर चन्द्रमा को अर्घ्य देवै और पूर्ववत् दूसरा पारण करै कार्त्तिक आदि चार महीनों में भूति सहित केशव का यजन कर चन्द्रमा को अर्घ्य देवै और तीसरा पारण करै प्रत्येक पारण के अन्त में ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै प्रथम पारण के चार महीनों में पञ्चगव्य दूसरे पारण के चार महीनों में कुशोदक और तीसरे में सूर्य किरणों करके तप्त जल प्राशन करै रात्रि के समय गीत वाद्य भगवान् के गुण कीर्तन आदि करै और प्रतिमास जलकुम्भ जूता छतुरी सुवर्ण वस्त्र भोजन और दक्षिणा ब्राह्मण को देवै और मार्गशीर्ष आदि महीनों में केशव नारायण माधव गोविन्द विष्णु मधुसूदन त्रिविक्रम वामन श्रीधर हृषीकेश राम पद्मनाभ इनका कीर्तन करै प्रतिमास देने को समर्थ न होय तो वर्ष के अन्त में सुवर्ण का चन्द्रबिम्ब बनाय फल वस्त्र आदि से पूजन कर ब्राह्मण को देवै इस प्रकार व्रत करने हारे पुरुष को अनेक जन्म पर्यन्त इष्टवियोग नहीं होता और वह पुरुष नारायण स्मरण करता हुआ मृत्युवश हो स्वर्ग को जाता है यमराज का मुख नहीं देखता बहुत काल स्वर्ग सुख भोगकर धन धान्ययुक्त सत्कुल में जन्म लेता है जो इस मनोरथ पूर्णिमा का व्रत करे और रात्रि को लक्ष्मी रूप तथा चन्द्रमा को नारायण स्वरूप मान चन्दन तिल अक्षत आदि से अर्घ्य देवैं उनके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ।

चौरानबे का अध्याय।

अशोकपूर्णिमा का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम अशोकपूर्णिमा का विधान कहते हैं जिस उपवास को कर मनुष्य कभी शोक को नहीं प्राप्त होता फाल्गुन की पूर्णिमा को शिर आदि अङ्गों में मृत्तिका लगाय नदी आदि में स्नान कर मृत्तिका का स्थंडिल बनाय उसके ऊपर भूधर नारायण और अशोका धरणी का पुष्प पत्र नैवेद्य आदि से पूजन कर हाथ जोड़ (यथा विशोकां धरणि कृतवांस्त्वां जनार्दनः। तथा मां सर्वशोकेभ्यो मोचयाशेषधारिणि ॥ यथा समस्तभूतानामाधारत्वे व्यवस्थिता। तथा विशोकं कुरु मां सकलेच्छाविभूतिभिः ॥ ध्यानमात्रे यथा विष्णोः सावधानासि मेदिनि। तथा मनः सुस्थितं मे कुरु त्वं भूतधारिणि) ये मन्त्र पढ़ै पीछे रात्रि के समय चन्द्रमा को अर्घ्य देवै उपवास रक्खै अथवा रात्रि के समय तैल क्षारवर्जित भोजन करै चार चार मास में एक एक पारण करै प्रत्येक पारण के अन्त में विशेष पूजा और जागरण करै प्रथम पारण में धरणी द्वितीय में मेदिनी और तृतीय में वसुन्धरा का पूजन करै प्रतिपारण में दो वस्त्र ब्राह्मण को देवै और धरणी सहित भगवान् को घृत स्नान करावे वस्त्र के अभाव में सूत्र से धरणी का पूजन करै और घृताभाव में दुग्ध से स्नान करावे वर्ष के अन्त में सवत्सा गौ भूमि वस्त्र भूषण आदि ब्राह्मण को देवै यह व्रत पाताल में स्थित भूमिने किया तब भगवान् ने वराह रूप धार उसका उद्धार किया और प्रसन्न होकर कहा कि हे धरणि! तेरे इस व्रत से हम परम सन्तुष्ट भये और भी जो पुरुष स्त्री इस व्रत को भक्ति से कर हमारा पूजन करैंगे और यथा विधि पारण करैंगे वे जन्म जन्म में सब प्रकार के क्लेशों से छूट तुम्हारी भांति सब कल्याण के भाजन होंगे जो पुरुष इस अशोक

पूर्णिमा व्रतको करै वह सब पापों से और शोक से छुट सब प्रकार की सम्पत्ति पावै ।

पंचानबे का अध्याय ।

रानी शीलघनाकी कथा और अनन्तव्रतका विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! भक्ति से नारायण का आराधन करैं तो सब मनोवाञ्छित फल प्राप्त होते हैं परन्तु स्त्री पुरुषों को सन्तानहीन होना इस से अधिक कोई दुःख और शोक नहीं सब सुखोंका हेतु सन्तान है जगत् में वे धन्य हैं जो सर्वगुणसम्पन्न आरोग्य बलवान् धर्मज्ञ शास्त्रवेत्ता दीन अनाथों का आश्रय भाग्यवान् हृदय को आनन्द देने हारा और दीर्घायुष् पुत्र पाते हैं अब हम ऐसा व्रत सुनना चाहते हैं कि जिसके करने से ऐसे लक्षणों करके युक्त पुत्र उत्पन्न होयँ यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! इसमें एक प्राचीन इतिहास हम वर्णन करते हैं हैहय वंश में कृतवीर्य नाम राजा हुआ है उसकी हजार रानियों में मुख्य सब लक्षणों करके युक्त शीलघना नाम रानी थी उसने एक दिन पुत्रप्राप्ति के लिये ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी से पूछा तब मैत्रेयी ने उसको यह व्रत उपदेश किया कि मार्गशीर्ष मास में जिस दिन मृगशिरा नक्षत्र होय उस दिन स्नान आदि कर अनन्त भगवान् के वाम चरण का पूजन गन्ध पुष्प धूप दीप आदि से करै और (अनन्तं सर्वकामानामनन्तं भगवत्फलम् । नमाम्यनन्तं च पुनस्तदेवापुत्रजन्मानि ॥ अनन्तपुण्योपचयमनन्तं च महाव्रतम् । यथाभिलषितावाप्तिं कुरु मे पुरुषोत्तम) ये मन्त्र पढ़ प्रार्थना कर एकाग्रचित्त हो वारंवार प्रणाम कर ब्राह्मण को दक्षिणा देवै और (अनन्तः प्रीयताम्) यह वाक्य उच्चारण करै और गोमूत्र प्राशन करै और रात्रि के समय तैल क्षारवर्जित भो-

जन करै इसी विधि से पौष मास पुष्य नक्षत्र में भगवान् की वाम कटि का पूजन कर गोमूत्र प्राशन करै माघ मास मघा नक्षत्र में भगवान् के भ्रू का पूजन करै फाल्गुन में फाल्गुनी नक्षत्र में स्कन्ध का पूजन करै इन चार महीनों में गोमूत्र प्राशन करै और सुवर्ण सहित तिल ब्राह्मण को देवै चैत्र में चित्रा नक्षत्र में भगवान् के दक्षिण स्कन्ध का पूजन करै वैशाख में विशाखा नक्षत्र में दक्षिण भुजा का पूजन करै ज्येष्ठ में ज्येष्ठा नक्षत्र में दक्षिण कटिका पूजन करै आषाढ़ में पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में दक्षिण पाद का पूजन करै इन चार महीनों में पञ्चगव्य प्राशन करै ब्राह्मण को सुवर्ण देवै और रात्रि को भोजन करै श्रावण मास में श्रवण नक्षत्र में भगवान् के दोनों चरणों का पूजन करै भाद्रमें पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में गुह्य का पूजन करै आश्विन में अश्विनी नक्षत्र में हृदय का पूजन करै और कार्त्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र में अनन्त भगवान् के शिर का पूजन करै इन चार महीनों में घृत प्राशन करै और घृतही ब्राह्मण को देवै प्रथम चार मास में घृत से हवन करै द्वितीय चार मास में धान्य से और तृतीय चार मास में अनन्त भगवान् की प्रीति के लिये दुग्ध से हवन करै इस प्रकार बारह महीनों में तीन पारण कर वर्ष के अन्त में सुवर्ण की अनन्त भगवान् की मूर्ति और चांदी के हल मूसल बनावै पीछे मूर्ति को ताम्र पीठ पर स्थापन कर दोनों ओर हल मूसल रख पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से पूजन कर (अनन्ताय नमः। सर्वात्मने नमः। शेषाय नमः। कामाय नमः। वासुदेवाय नमः। सङ्कर्षणाय नमः। सर्वार्थदायिने नमः। श्रीकण्ठनाथाय नमः। इन्दुमुखाय नमः) इन मन्त्रों से शिर पाद जानु कटि पार्श्व उदर भुज कण्ठ और मुख का पूजन करै (हलाय नमः। मुसलाय नमः) इन मन्त्रों से हल मूसल का पूजन करै और नील वस्त्र पुष्प माला आदि

से अनन्त भगवान् का पूजन कर बारह घट अन्न और जल युक्त स्थापन करै उनमें बारह महीनों का पूजन करै नक्षत्र व देवता व संवत्सर और सब नक्षत्रों के राजा चन्द्रमा का विधि-पूर्वक पूजन करै फिर पुराणवेत्ता धर्मज्ञ शान्त प्रियदर्शन ब्राह्मण का वस्त्र भूषण आदि से पूजन कर यह सब सामग्री उसके अर्पण करै और (अनन्तः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै पीछे और ब्राह्मणों को भी भोजन दक्षिणा आदि देकर संतुष्ट करै इस बिधिसे जो इस अनन्तव्रत को समाप्त करै वह सब अभीष्ट फल पावै हे शीलघने ! जो तू उत्तम पुत्र की इच्छा रखती है तो विधिपूर्वक श्रद्धासे इस व्रत को कर श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! इस प्रकार मैत्रेयी से उपदेश पाय शीलघना व्रत करने लगी व्रत के प्रभाव से अनन्त भगवान् संतुष्ट हुये और रानी शीलघना को पुत्र दिया शीलघना के पुत्र का जन्म होतेही आकाश निर्मल होगया सुखदेनेहारा पवन चलने लगा देवदुन्दुभि बजने लगे पुष्पवृष्टि भई सारे जगत् में मंगल हुआ गन्धर्व और अप्सरा नाचने गाने लगे सब लोकों का मन धर्म में आसक्त हुआ राजा कृतवीर्य ने अपने पुत्र का नाम अर्जुन रक्खा जो कृतवीर्य का पुत्र होने से कार्तवीर्य कहाया कार्तवीर्य ने बड़ा तप करके विष्णु भगवान् के अवतार श्री दत्तात्रेयजी का आराधन किया और ये वर पाये कि हे अर्जुन! तू चक्रवर्ती हो जो सायंकाल और प्रभात (नमोस्तु कार्तवीर्याय) यह वाक्य उच्चारण करैंगे उनको प्रस्थभर तिलदान का पुण्य होगा और जो तुम्हारा स्मरण करते रहेंगे उन पुरुषों का द्रव्य नष्ट नहीं होगा इतना वर भगवान् से पाय राजा कार्तवीर्य धर्म से सप्त द्वीपवती पृथिवी का पालन करने लगा उसने बड़ी २ दक्षिणावाले यज्ञ किये सब शत्रुओं को जीता इस भांति रानी शीलघनाने अनन्त व्रत के प्रभाव से अति उत्तम

पुत्र पाया जो पुरुष अथवा स्त्री इस कार्तवीर्य के जन्म को श्रवण करै वह सातजन्म पर्यंत संतान का दुःख न पावे जो इस अनन्त व्रतको भक्तिसे करे वह उत्तम संतान और ऐश्वर्य पावे।

छियानबे का अध्याय।

साम्भरायिणी की कथा और मास नक्षत्र व्रत का माहात्म्य।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! ऐश्वर्य आदि के प्राप्त न होने से इतना कष्ट नहीं होता जितना प्राप्त होकर नष्ट होजाने से होता है इसलिये आप ऐसा कोई व्रत कहैं जिसके करने से ऐश्वर्यभ्रंस और इष्टवियोग न होय यह वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! यह बड़ा भारी दुःख है कि प्राप्त हुये सुख का नाश होजाना इस के लिये यह विधान करना चाहिये कि बारह महीनों के नाम नक्षत्रों में कार्त्तिकादि मासों में पुष्प धूप दीप आदि से भगवान् का पूजन करै कार्त्तिकादि चार महीनों में कृसरान्न नैवेद्य लगावै और यही ब्राह्मणों को भोजन करावै फाल्गुनादि चार महीनों में संयाव नैवेद्य लगावै और आषाढ़ आदि चार मास में पायस नैवेद्य लगावै पंचगव्य प्राशन करै और भक्ति से नारायण का अर्चन कर (नमो नमस्ते च्युत संक्षयोस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैतु पुण्यम्। ऐश्वर्यवित्तादिसदाऽक्षयं मे क्षयन्तमो यातु तव प्रसादात् ॥ यथाच्युतत्वं परतः परस्मात्सुब्रह्मभूतः परतः परात्मा। तथा मुरारे कुरु वाञ्छितं मे हरापदं पापहराप्रमेय॥ अच्युतानन्त गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम्। तदक्षयं सदा देव कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥) इन मन्त्रों से प्रार्थना करै पीछे रात्रि के समय भगवान् का नैवेद्य आप भक्षण करै वर्ष पूरा होने पर घृत पूर्ण ताम्रपात्र और दक्षिणा ब्राह्मण को देकर (अच्युतः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस प्रकार सात वर्ष व्रत कर सुवर्ण की अच्युतमूर्ति बनाकर स्थापन करै और उसके

आगे भगवान् की परमभक्ता और पतिव्रता साम्भरायिणी नाम ब्राह्मणी की चांदी की मूर्ति बनाय स्थापन करै पाछे उनका गन्ध पुष्पादि उपचारों से पूजन कर क्षमापन करावै प्रतिवर्ष जो घृतपात्र न दिया होय तो उसी समय घृतपूर्ण सात ताम्रपात्र सुवर्ण सात सवत्सा गौ सात जलपूर्ण घट छतरी जूता उत्तम शय्या सब सामग्री सहित घर और भूमि वित्तानुसार ब्राह्मण को देवै और लक्ष्मी सहित विष्णु भगवान् का पूजन कर वारंवार प्रणामकर क्षमापन करावै इस विधि से जो व्रत और भगवान् का पूजन करै उसके धन ऐश्वर्य आदि का क्षय नहीं होता और स्वर्गवास पाता है इतना कथन कर श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज! स्वर्ग में बड़ी तपस्विनी सिद्धा और सबके सन्देह हरनेहारी साम्भरायिणी नामक एक नारी रहती है एक समय इन्द्र ने बृहस्पति से पूछा कि हमारे पहिले जितने इन्द्र होगये हैं उनका क्या आचरण और चरित था आप वर्णन कीजिये बृहस्पति ने कहा कि हे देवराज! सब इन्द्रों का वृत्तान्त तो हम नहीं जानते केवल एक दो इन्द्रों का समाचार हमको विदित है तब इन्द्र ने कहा कि हे देवगुरो! आपके विना हम यह वृत्तान्त किससे पूछें बृहस्पति कुछ काल विचारकर कहने लगे कि हे पुरन्दर! न तो देवता और न गन्धर्व इतने प्राचीन वृत्त को जानते हैं केवल तपस्विनी और धर्मज्ञा साम्भरायिणी अति प्राचीन वृत्तान्त जानती हैं उससे आप पूछें यह सुन बृहस्पति को सङ्ग ले इन्द्र साम्भरायिणी के स्थान पर गये साम्भरायिणी ने बड़े सत्कार से उनको बैठाया और पूजन आदि कर विनय से आगमन का प्रयोजन पूछा तब बृहस्पति बोले कि हे साम्भरायिणी! देवराज को प्राचीन वृत्तान्त सुनने का बड़ा कुतूहल है जो तू व्यतीत इन्द्रों

का चरित्र जानती होय तो वर्णन कर यह सुन साम्भरायिणी बोली कि हे देवगुरो ! जितने इन्द्र होचुके हैं सबका वृत्तान्त मैं भलीभांति जानती हूँ बहुत से मनु और सप्तर्षि मैंने देखे हैं मनुओं के पुत्रोंको जानती हूँ और सब मन्वन्तरों का चरित्र मुझे विदित है जो तुम पूछो वही सुनाऊँ यह साम्भरायिणी का वचन सुन इन्द्र और बृहस्पति ने स्वायम्भुव स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष आदि मनु और व्यतीत इन्द्रों का वृत्तान्त उससे पूछा सब वृत्त ठीक २ साम्भरायिणी ने वर्णन किया और एक इन्द्र का समाचार यों कहा कि शंकुकर्ण नाम दैत्य पूर्वकाल में बड़ा प्रतापी हुआ वह सब देवताओं को जीत स्वर्ग में इन्द्र को जीतने आया उस समय शची और इन्द्र एक शय्यापर थे शंकुकर्ण को देखतेही भयसे इन्द्र शय्या के नीचे छिपे और शची बृहस्पति के घर भागगई शंकुकर्ण उस शय्या के ऊपर बैठगया और सब देवता उसके दर्शन के लिये आनेलगे विष्णु भगवान् भी शंकुकर्ण को मिलने आये उनको देख वह शय्या पर से उठा और बड़े स्नेही बन्धुकी भांति विष्णु भगवान् को आलिंगन किया विष्णु भगवान् ने भी उसको आलिंगन कर ऐसा निष्पीड़न किया कि उसके सब अस्थि चूर्ण होगये और घोरशब्द करता हुआ मृत्युवश भया दैत्य को मरेजाने इन्द्र भी शय्या के नीचे से शिर झुकाये निकले और विष्णु भगवान् की स्तुति करने लगे हे देवराज ! यह वृत्तान्त मैंने अपने नेत्रों से देखा था तब इन्द्र ने साम्भरायिणी से पूछा कि तू इतने प्राचीन वृत्तान्त क्योंकर जानती है साम्भरायिणी ने कहा कि स्वर्ग का ऐसा कोई वृत्तान्त नहीं है जो मैं न जानती हूं तब इन्द्र ने इसका कारण पूछा कि ऐसा क्या सत्कर्म तैंने किया है जिसके प्रभाव से अक्षय स्वर्गवास तैंने पाया

तब साम्भरायिणी ने कहा कि मैंने प्रतिमास मासनक्षत्रों में सात वर्ष पर्यंत भगवान् का पूजन किया और उपवास किया है यह सब उसी कर्म का फल है जो पुरुष अक्षय स्वर्गवास इन्द्रपद ऐश्वर्य सन्तति आदि चाहै उसको अवश्य विष्णु भगवान् का आराधन करना चाहिये हे देवेन्द्र! जो तुमने पूछा सो मैंने वर्णन किया अब और जो पूछने की इच्छा होय सो पूछिये धर्म अर्थ काम और मोक्ष ये चारों पदार्थ विष्णु भगवान् के आराधन से प्राप्त होते हैं इतना सुन बृहस्पति और इन्द्र साम्भरायिणी पर बहुत प्रसन्न भये और दोनों भक्तिपूर्वक साम्भरायिणी का बताया व्रत करने लगे श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! जो इस साम्भरायिणी के किये व्रत को सात वर्ष पर्यंत भक्ति से करैं वे अक्षय स्वर्गवास पाते हैं।

सत्तानबे का अध्याय।

वैष्णव नक्षत्र पुरुष व्रत का विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! पुरुष और स्त्रियों को उत्तम रूप किस कर्म के करने से प्राप्त होता है और उत्तम रूप पाकर भी फिर अंगभंग आदि दोष किस कर्म के करने से होते हैं यह आप वर्णन करैं कई अतिरूपवान् स्त्री पुरुष काने अंधे लँगड़े आदि हो जाते हैं उत्तम गति लावण्य और मीठे वचन रूपवान् के ही अच्छे लगते हैं कुरूप को केवल विडम्बना है इसलिये उत्तम रूप प्राप्ति का उपाय वर्णन कीजिये यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! यही बात अरुन्धती ने वशिष्ठजी से पूछी थी तब वशिष्ठजी ने यह कहा कि हे प्रिये! विष्णु भगवान् का आराधन और पूजन बिन किये क्योंकर उत्तम रूप प्राप्त हो सक्ता है जो पुरुष अथवा स्त्री उत्तम रूप ऐश्वर्य और सन्तान चाहै उसको नक्षत्र पुरुष रूप विष्णु भगवान्

का पूजन करना चाहिये अरुन्धती ने नक्षत्र पुरुष का विधान पूछा तब वशिष्ठजी कहने लगे कि हे प्रिये ! चैत्रमास से लेकर भगवान् के पाद आदि अंगों का पूजन करै उपवास रख स्नान कर नक्षत्र पुरुष के अंगों का पूजन इस विधि से करै कि मूल में पाद रोहिणी में जंघा अश्विनी में जानु दोनों आषाढ़ाओं में ऊरु दोनों फाल्गुनी में गुह्य कृत्तिका में कटि दोनों भाद्र-पदाओं में पार्श्व रेवती में कुक्षि अनुराधा में वक्षस्स्थल धनिष्ठा में पृष्ठ विशाखा में दोनों भुजा हस्त में दोनों हाथ पुनर्वसु में अंगुलि आश्लेषा में नख ज्येष्ठा में ग्रीवा श्रवण में कर्ण पुष्य में मुख स्वाति में नाभि शतभिषा में मुख मघा में नासिका मृगशिरा में नेत्र चित्रा में ललाट और भरणी में शिर और आर्द्रा में केशों का पूजन करै उपवास के दिन तैलाभ्यङ्ग न करै नक्षत्र नक्षत्रदेवता और चन्द्रमा का भी प्रति नक्षत्र में पूजन करै और ब्राह्मणभोजन करावै जो अशौच आदि होजाय तो दूसरे नक्षत्र में उपवास कर पूजन करै व्रत समाप्त होने पर सुवर्ण का नक्षत्र पुरुष बनाय उत्तम शय्यापर स्था-पन करै और ब्राह्मण मिथुन को शय्यापर बैठाय वस्त्र भूषण आदि से उनका पूजन कर सप्तधान्य सवत्सा गौ छतरी जूता घृतपात्र और दक्षिणा सहित वह नक्षत्र पुरुष (यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित्॥ तथा सुरूपमारोग्यं सुखञ्च तदिहास्तु मे १ यथा च लक्ष्म्या शयनं न शून्यं ते जनार्दन॥ शय्याममाप्य शून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि २) ये मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै जो इतना देने का सामर्थ्य न होय तो घृत-पात्र सहित एक गौ ब्राह्मण को देवै इस व्रत के करने से सर्वाङ्ग सुन्दररूप मनकी प्रसन्नता आरोग्य उत्तम सन्तान मीठी वाणी और ऐश्वर्य सात जन्म तक प्राप्त होते हैं और सब पाप निवृत्त हो जाते हैं इतनी कथा कह श्रीकृष्ण भगवान्

बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार नक्षत्रपुरुष का विधान वशिष्ठजी ने अरुन्धती को कथन किया वही हमने आप को सुनाया जो इस विधि से नक्षत्ररूप भगवान् का पूजन करते हैं वे अवश्य ही उत्तम रूप पाते हैं ।

अट्ठानबे का अध्याय ।

शैव नक्षत्रपुरुष व्रतका विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! यह आपने विष्णुनक्षत्रपुरुष का विधान वर्णन किया अब आप शिव-भक्तों के कल्याण के अर्थ शैवनक्षत्रपुरुष का विधान कहैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! नक्षत्रपुरुष का जिस दिन पूजन करै उस दिन उपवास अथवा नक्तव्रत करना चाहिये फाल्गुन शुक्लपक्ष में हस्त नक्षत्र होय उस दिन से शैवनक्षत्रव्रत का धारण करै और प्रदोष के समय शिवपूजन करै (शिवाय नमः शङ्कराय नमः हराय नमः शम्भवे नमः भीमाय नमः त्रिनेत्राय नमः अनङ्गाङ्गहराय नमः सुरज्येष्ठाय नमः शूलिने नमः पार्वतीपतये नमः कपालिने नमः सद्योजाताय नमः वामदेवाय नमः खट्वाङ्गधारिणे नमः रुद्राय नमः खण्डेन्दुधारिणे नमः पृष्ठकाय नमः कृत्तिवाससे नमः वाचस्पतये नमः भैरवाय नमः स्थाणवे नमः पूष्णोदन्तविनाशिने नमः सर्वदर्शिने नमः त्र्यम्बकाय नमः अन्धकारये नमः सोमधारिणे नमः पाशांकुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधराय गजासुरान्तकान्धकादिविनाशमूलकाय शिवाय नमः) इन मन्त्रों से हस्त आदि सत्ताईस नक्षत्रों में क्रमसे पाद गुल्फ जानु ऊरु मेढ़ू कटि नाभि दोनों पार्श्व उदर वक्षस्थल हृदय दोनों भुजा हाथ नख पृष्ठ कण्ठ जिह्वा दन्त ओष्ठ नासिका नेत्र दोनों कर्ण शिर और सर्वांग का पूजन कर गन्ध पुष्प धूप दीप आदि उप-

चार निवेदन करै और रात्रि के समय तैल क्षार रहित भोजन करै प्रतिनक्षत्र में सेरभर चावल और घृतपात्र ब्राह्मण को देवै दो नक्षत्र एक दिन होजायँ तो दो अङ्गों का एक दिन पूजन करै सूतकादि में पूजन न करै फिर वह नक्षत्र आवै तब उस अङ्ग का पूजन करै इस प्रकार व्रतकर अन्त में सुवर्ण की शिव पार्वती की प्रतिमा बनाय उत्तम शय्या पर स्थापन करै पीछे उनका सर्वोपचारों से पूजन कर कपिला गौ छत्र चमर दर्पण जूता वस्त्र भूषण अनुलेपन आदि सहित वह मूर्ति ब्राह्मण को देवै और यह मन्त्र पढ़ै (यथा न देवशयनं तव पर्वतजातया। शून्यं कदाचिद्भवति तथा मे सन्तु सिद्धयः। यथा न देवः श्रेयान्वै त्वदन्यो विद्यते क्वचित्। तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्) पीछे प्रदक्षिणा कर विसर्जन करै और शय्या गौ आदि सब सामग्री ब्राह्मण के घर पहुँचा देवै इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज! दुश्शील दांभिक कुतार्किक निन्दक लोभी आदि को यह व्रत न बताना चाहिये शान्तस्वभाव शिवभक्त इस व्रत के अधिकारी हैं इस व्रत के करने से महापातक भी निवृत्त होजाते हैं जो स्त्री पति की आज्ञा पाय इस व्रत को करै उसको कभी इष्ट वियोग नहीं होता जो इस व्रत के माहात्म्य को पढ़ै अथवा श्रवण करै उसके पितरों का नरक से उद्धार होजाता है।

निन्नानबे का अध्याय।

सम्पूर्ण व्रतका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! जो नक्षत्रपुरुष व्रतको ग्रहण करके फिर न करसकै तो कौन कर्म करने से वह व्रत सम्पूर्ण होय यह आप कथन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज! यह अतिरहस्य बात आपने पूछी है आप के अनुरोध से हम वर्णन

करते हैं अनेक प्रकार के उपद्रव मद मोह आदि से जो व्रत भग्न होजायँ उनकी पूर्ति के लिये अवश्य यह सम्पूर्ण व्रत करना चाहिये इस व्रत के करने से खण्डित व्रत पूर्ण फल देनेहारे होजाते हैं जिस देवता का व्रत भग्न होजाय उस की पत्नी सहित सुवर्ण की अथवा चांदी की मूर्ति बनाय उस व्रत के दिन स्थापन कर पञ्चामृत से स्नान करावे पीछे जलपूर्ण कलश के ऊपर विराज कर गन्ध पुष्प अक्षत धूप दीप वस्त्र भूषण बलि आदि से पूजन कर (व्रतहीनस्य दीनस्य प्रायश्चित्तमजानतः । शरणं भव खिन्नस्य कुरुष्वाद्य दयां प्रभो ॥ तपश्छिद्रं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं पूजने मम । तव प्रसादात्तद्देव सर्वमच्छिद्रमस्तु नः स्वाहा ॥ अमुकदेवतायै नमः पूर्वतो दक्षिणतः पश्चिमत उत्तरतः उपर्यधस्ताद्दिक्पालेभ्यो नमः) इस मन्त्र से अर्घ्य देवे पीछे देवता के पाद जानु कटि शिर वक्षस्स्थल कुक्षि हृदय पृष्ठ बाहु शिखा और केशों का पूजनकर (पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेस्तु सुरोत्तम । ऐहिकामुष्मिकीं नाथ कार्यसिद्धिं दिशस्व मे) इस मन्त्र को पढ़ क्षमापन कराय सत्पात्र ब्राह्मण को सम्मुख बैठाय उसका पूजन कर (इदं व्रतं मया खण्डं कृतमासीत्पुरा द्विज । भगवंस्त्वत्प्रसादेन सम्पूर्णं तदिहास्तु मे) यह मन्त्र पढ़ सब सामग्री सहित वह प्रतिमा ब्राह्मण को देवे और ब्राह्मण भी ग्रहण कर (वाक्यं पूर्णं मनःपूर्णं पूर्णःकायोव्रतेन ते । सम्पूर्णस्य प्रसादेन भव पूर्णमनोरथः ॥ ब्राह्मणा यत्प्रभाषन्ते ह्यनुमोदन्ति देवताः । सर्वदेवमयो विप्रो न तद्वचनमन्यथा ॥ जलधिः क्षारतां नीतः पावसर्वमभक्ष्यताम् । सहस्रनेत्रः शक्रोपि कृतो विप्रैर्महात्मभिः ॥ ब्राह्मणानान्तु वचनाद् ब्रह्महत्या प्रणश्यति । अश्वमेधफलं साग्रं प्राप्यते नात्र संशयः ॥ व्यासबाल्मीकिगर्गगौतमपराशरधौम्यवशिष्ठाङ्गिरसनारदादिमुनि वचनात्सम्पूर्णं ते व्रतं भवतु) ये मन्त्र पढ़े यज-

मान भी ब्राह्मणको विसर्जनकर सब सामग्री उसके घर भेज देवै पीछे पंचयज्ञ कर भोजन आदि करै इस सम्पूर्ण व्रत को जो एक बार भी भक्तिसे करै वह प्रथम किये हुये खण्डित व्रतका सम्पूर्ण फल पाता है और व्रत खण्डन करने के पाप से छूटता है इस व्रत का कर्ता पुरुष धन रूप आरोग्य कीर्ति आदि पाय सौ वर्ष पर्यन्त भूमि पर सुख भोग स्वर्ग जाय देवता बनता है वहां देवताओं के साथ बहुतकाल विहार कर अन्त में मोक्ष को प्राप्त होता है श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! यह व्रत प्राय-श्चित्त हमको गोकुल में प्रसन्न हो गर्गजी ने उपदेश किया था आप भी इस व्रतको करैं जिससे जन्मान्तरों में भी किये खण्डित व्रत सम्पूर्ण होजायँ।

सौका अध्याय।

वेश्याओं को कल्याण देनेहारे कामव्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! वर्णाश्रमों के धर्म और आचार तो हमने पुराणों में बहुत बार श्रवण किये अब यह सुनना चाहते हैं कि स्त्रियों का कौन देवता है और किस व्रत उपवास आदि के करने से नारी स्वर्ग को जाती हैं यह आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! हमारे सोलह हजार रानी हैं वे रूप में और गुणों में सब एक से एक बढ़कर हैं एक समय वसन्तऋतु में कि जब सब वन उपवन फूल रहे थे कोकिला कुहू कुहू शब्द करते थे उन सब रानियों ने कामदेव के समान रूपवान् हमारे पुत्र साम्ब को देखा साम्ब को देखतेही वे सब काम के वश हो व्याकुल भईं हमने यह चेष्टा उनकी देख शाप दिया कि हमारे स्वर्ग गमन के अनन्तर तुमको चोर लूटैंगे यह हमारा वचन सुन वे सब अतिदीनता से अश्रुपात करती हुईं बोलीं कि हे प्राण-

नाथ ! सब जगत् के स्वामी आप हमारे पति इस दिव्य नगर में रत्नजटित भवनों में निवास देवताओं के सदृश पुत्र इन सबको त्याग चारों की दासी बन किस विधि हमारा कालक्षेप होगा और क्योंकर हमारा उद्धार होगा यह उनका दीन वचन सुन हमने कहा कि तुम सब अग्नि की पुत्री अप्सरा हो और हमारी रानी बनने के लिये तुमने शुक्ल पक्ष की द्वादशी का व्रत कर शय्या आदि का दान किया उससे हम तुमको पति मिले एक समय तुम सब मानसरोवर में जलक्रीड़ा कर रही थीं वहां नारद मुनि आये तुमने उनका आदर सत्कार न किया तब उनने तुमको शाप दिया कि पति से तुम्हारा वियोग होय चोर तुमको हर लेजायँ और वेश्या बनजाओ इस प्रकार तुमको नारदजी का शाप पाहिले ही था और वैसाही शाप हमारे मुख से निकल गया इस-लिये तुम अवश्य चोरों की दासी बनोगी परंतु अब भी जो हम कथन करैं सो सुनो पूर्वकाल में जब देवासुर-संग्राम हुआ उसमें लाखों दैत्य दानव राक्षस आदि मारे गये उन सबकी विधवा नारियों को एकत्र कर देवराज ने आज्ञा दी कि तुम सब वेश्या बनकर राजाओं के मन्दिरों में और देवा-लयों में रहो राजा और बहुश्रुत ब्राह्मण तुम्हारे पति होंगे धन देनेहारे पुरुष की देवता की भांति शुश्रूषा करना सुरूप कुरूप का विचार मत करना और निर्धन को कभी समीप मत आने देना जो धन विना किसी पुरुष का संग करोगी तो ब्रह्म-हत्या के तुल्य पातक तुमको होगा बहुत मद्य मत पीना सदा कुटिल बुद्धि होना परन्तु जिसकी दासी बनकर रहो उसके साथ कभी व्यभिचार मत करना दासी होकर जो स्वामी से व्यभिचार करै वह अधोगति को प्राप्त होती है और उत्तम दिनों में उपवास कर देवता और पितरों की प्रीति के लिये गौ

भूमि वस्त्र सुवर्ण आदि ब्राह्मणों को देते रहना और भी तुम्हारे उद्धार के लिये हम उपाय कहते हैं जिस दिन आदित्यवार को हस्त पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र होय उस दिन सर्वौषधि जल से स्नान कर कामदेवरूप विष्णुभगवान् का पूजन करै (कामाय नमः मोहकारिणे नमः उत्कण्ठकाय नमः आनन्दाय नमः पुष्पचापाय नमः पुष्पबाणाय नमः अनङ्गाय नमः मकरध्वजाय नमः) इन मन्त्रों से पाद जङ्घा कण्ठ मुख वामाङ्ग दक्षिणाङ्ग शिर और सर्वाङ्ग का पूजन कर (नमः श्रीपतये तार्क्ष्यध्वजांकुशधराय च । गादिने पीतवस्त्राय शङ्खिने चक्रिणे नमः ॥ नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः । नमः शान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै । नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थदाय च) इन मन्त्रों से गन्धमाल्य पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि करके कामदेव स्वरूप गोविन्द का पूजन करै पीछे वेदवेत्ता और धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों को बुलाय उसका पूजन कर सेरभर चावल सहित घृतपात्र उसको देवै और (माधवः प्रीयताम्) यह वाक्य उच्चारण करै पीछे भोजन आदि कर उस ब्राह्मण को कामदेव का रूप मान सब प्रकार उसको सन्तुष्ट करै इस भांति एक वर्ष पर्यन्त आदित्यवार व्रत करके तेरहवें मास में गुड़ पूर्ण कलश ऊपर ताम्रपात्र में सुवर्ण की रतिसहित कामदेव की प्रतिमा स्थापन कर उसका पूजन करै और ब्राह्मण मिथुन बुलाय वस्त्र भूषण आदि से उनका पूजन कर सब उपस्करों करके सहित उत्तम शय्या छत्र जूता दीवट पादुका आसन इक्षुदण्ड सवत्सा गौ और दक्षिणा सहित वह मूर्ति (यथांतरं न पश्यामि कामकेशवयोस्सदा । तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णोस्सदा मम) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै ब्राह्मण भी (कोदात्कस्मा अदात्) इत्यादि वैदिक मन्त्र पढ़ प्रतिग्रह लेवै पीछे प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण को विसर्जन करै और

सब सामग्री उसके घर भेजै उस दिन से यह नियम रक्खै कि आदित्यवार को जो ब्राह्मण रति की इच्छा से आवै उस का सब प्रकार से सन्तोष करै और एक एक पुराणज्ञ और शान्तचित्त ब्राह्मण का सदा पूजन करै और उसकी आज्ञा से दूसरे का भी करै जो किसी प्रकार का विघ्न होय तो प्रणय से ही ब्राह्मण को सन्तुष्ट करै श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि इतना कथन कर इन्द्र ने कहा कि वेश्याओं के उद्धार के लिये यह व्रत हमने कहा है तुम्हारा उद्धार इस व्रत के करने से होगा हे महाराज! यही व्रत हमने गोपियों को उपदेश किया जो वेश्या भक्ति से इस व्रत को करै वह कई कल्प विष्णुलोक में निवास करती है।

एकसौएक का अध्याय।

वृन्ताक त्याग विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम वृन्ताक त्याग का विधान कहते हैं एक वर्ष छः महीने अथवा तीन मास वृन्ताक का त्याग कर पीछे भरणी अथवा मघा में उपवास कर स्थंडिल बनाय उस पर अक्षत पुष्पों से (यममावाहयामि धर्मराजमावाहयामि कालमावाहयामि चित्रगुप्तमावाहयामि मृत्युमावाहयामि परमेष्ठिनमावाहयामि) इन मन्त्रों से आवाहन कर गन्ध पुष्प नैवेद्य आदि करके पूजन करै पीछे अग्नि स्थापन कर तिल और घृत करके (यमाय स्वाहा धर्मराजाय स्वाहा कालाय स्वाहा नीलाय स्वाहा चित्रगुप्ताय स्वाहा वैवस्वताय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा परमेष्ठिने स्वाहा) इन मन्त्रों से आहुति देकर अग्निर्मूर्द्धा इत्यादि वैदिक मन्त्र करके अष्टोत्तरशत आहुति देवै और भूषण वस्त्र छत्र जूता काला कम्बल काला बैल गो और दक्षिणा सहित सुवर्ण का वृन्ताक ब्राह्मण को देवै और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन भी

करावै इस विधि का करनेहारा पौंडरीक यज्ञ का फल पाता है सातजन्म पर्यन्त यम का दर्शन नहीं करता और सात हजार कोटिवर्ष पर्यन्त स्वर्ग में सुख भोगता है जो पुरुष एक वर्ष वृन्ताक त्याग अन्त में घृत तक्र सहित सुवर्णवृन्ताक ब्राह्मण को देवै वह कभी यमलोक न देखै।

एकसौदो का अध्याय।

ग्रह नक्षत्र व्रत का फल सहित विधान।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम ग्रह नक्षत्र व्रत का विधान कहते हैं जिसके करने से क्रूर ग्रह भी सौम्य होजायँ और लक्ष्मी धृति तुष्टि तथा पुष्टिकी प्राप्ति होती है आदित्यवार को हस्त नक्षत्र होय उस दिन सूर्य भगवान् का पूजन कर नक्तव्रत करै इसी प्रकार सात आदित्यवारों को नक्तव्रत कर अन्त में सुवर्ण की सूर्य भगवान् की प्रतिमा बनाय ताम्रपात्र में स्थापन कर घृत से स्नान कराय रक्त चन्दन रक्त पुष्प रक्त वस्त्र धूप दीप आदि से पूजन कर मोदक नैवेद्य लगावै और छतरी जूता दो रक्त वस्त्र दक्षिणा सहित वह मूर्ति (आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते दिवाकर। त्वरयातारयस्वास्मान-स्मात्संसारसागरात्) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै इस व्रत के करने से आरोग्य सम्पत्ति और सन्तान की प्राप्ति होती है चित्रानक्षत्रयुक्त सोमवार से आरम्भ कर सात सोमवार को नक्त-व्रत करै अन्त में चांदी की चन्द्रप्रतिमा बनाय चांदी अथवा कांस्य के पात्र में स्थापन कर श्वेत पुष्प श्वेत वस्त्र आदि से पूजनकर दही भात नैवेद्य लगाय छतरी जूता दक्षिणा सहित वह मूर्ति ब्राह्मण को दे यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै इस व्रत के करने से चन्द्रमा प्रसन्न होता है और चन्द्रमा प्रसन्न हो जाने से सब ग्रह अनुग्रह करते हैं स्वाति नक्षत्र युक्त भौमवार को व्रत का आरम्भ कर सात नक्तव्रत करै अन्त में

सुवर्ण की भौम प्रतिमा बनाय ताम्रपात्र में स्थापन कर रक्त चन्दन रक्त वस्त्र आदि से पूजन कर घृत युक्त कसार नैवेद्य लगाय (जन्मनः प्रभवेऽपि त्वं मङ्गलः पृच्छसे बुधैः । अमङ्गलं निहत्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम्) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै इसी प्रकार विशाखा युक्त बुधवार में बुध का पूजन कर (बुध त्वं बुद्धिजननो बोधव्यःसर्वदा नृणाम् । तत्त्वावबोधं कुरु मे राजपुत्र नमोनमः) यह मन्त्र पढ़ बुध प्रतिमा ब्राह्मण को देवै अनुराधा युक्त बृहस्पतिवार से सात नक्तव्रत कर अन्त में सुवर्ण की बृहस्पति मूर्ति बनाय सुवर्ण पात्र में स्थापन कर गन्ध पीत पुष्प पीत वस्त्र यज्ञोपवीत आदि से पूजन कर खण्ड के भक्ष्य नैवेद्य लगाय (धर्मशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ज्ञान-विज्ञानपारग । अलब्धबुद्धिगाम्भीर्य देवाचार्य नमोस्तु ते) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै इसी प्रकार ज्येष्ठा युक्त शुक्र-वार को व्रत का आरम्भ करै और सात नक्तव्रत कर अन्त में सुवर्ण की शुक्र प्रतिमा बनाय चांदी अथवा बांस के पात्र में स्थापन कर श्वेत चन्दन श्वेत वस्त्र आदि से पूजन कर घृत पायस का नैवेद्य लगाय (भार्गवो भर्गशुक्रोपि शुक्रकर्मवि-शारदः । हत्वा ग्रहकृतान् दोषान् सर्वकामप्रदो भव) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै मूलयुक्त शनिवार से सात नक्तव्रत सात शनिवारों में कर अन्तमें शनि राहु और केतुका पूजन करै तिल और घृत करके ग्रहों के नाम से होम करै अर्क पलास खदिर अपामार्ग पिप्पल उदुम्बर शमी दूर्वा और कुशा ये नवग्रहों की क्रम से समिधा हैं इनमें प्रत्येक समिधा करके एक सौ आठ आठ अथवा अट्ठाईस अट्ठाईस आहुति देवै शनैश्चर आदि की सुवर्ण की प्रतिमा बनाय कस्तूरी नीलवस्त्र आदि से पूजन कर कृसर नैवेद्य लगावै और (शनैश्चर नमस्तेस्तु नमस्ते राहवे तथा । केतवे च नमस्तुभ्यं सर्वसम्पत्प्रदो भव)

यह मन्त्र पढ़ सब सामग्री सहित ब्राह्मण को देवै इस विधान के करने से सब ग्रहों की पीड़ा शान्त हो जाती है और क्रूरग्रह भी सौम्य हो जाते हैं शनि राहु और केतुकी प्रतिमा को लोहपात्र में स्थापन कर पूजा करै और कृष्णागुरु का धूप देवै जो इस विधान को करै उसके सब उपद्रव शान्त हो जाते हैं और जो इस ग्रहकल्प को पढ़ै अथवा श्रद्धा से श्रवण करैं उसके ऊपर सब ग्रह अनुग्रह कर धन सन्तान आरोग्य सुख ऐश्वर्य आदि देते हैं।

एकसौतीन का अध्याय।

पिप्पलाद मुनि की कथा और शनैश्चर व्रत का विधान तथा फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं पूर्वकाल में त्रेतायुग के बीच अनावृष्टि होने से बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा उस घोरकाल में कौशिकमुनि अपने स्त्री पुत्रों को साथ ले घर छोड़ दूसरे देश को चले परन्तु रस्ते में सब कुटुम्ब का पोषण न होसका इसलिये निर्दय हो हृदय को कठोर कर एक बालक को मार्ग में ही छोड़ दिया वह अकेला बालक भूखा प्यासा वन में रोता फिरता था अकस्मात् एक पीपल का वृक्ष उसने देखा और उसके समीप एक बावड़ी भी दृष्टि आई बालक ने पीपल के फल बीन २ खाये और ठंढा जल पिया कुछ स्वस्थ हो वहीं रहने का विचार किया मुनि का बालकही तो था वहांही आश्रम बनाय तप करने लगा नित्य पीपल के फल खाय कालक्षेप करता एक दिन नारद मुनि वहां आ निकले बालक ने उनको प्रणाम किया और आदर से बैठाया नारद जी उसकी अवस्था और विनय देख बहुत प्रसन्न हुये और उसकी दीनता पर दयालु हो बालक के मौंजीबन्धन आदि सब संस्कार कर पदक्रमः रहस्य सहित वेद उसको पढ़ाय वैष्णव द्वादशाक्षर मन्त्र का उपदेश कर दिया बालक मन्त्र पातेही

विष्णु भगवान् का ध्यान और मन्त्र का जप करने लगा नारदजी भी वहांही रहे थोड़े काल मेंही बालक के तप से संतुष्ट हो गरुड़ पर चढ़ विष्णु भगवान् वहां आये बालक ने उन को नारद के वचन से जाना और भगवान् में दृढ़ भक्ति मांगी भगवान् भी ज्ञान और योग का उपदेश और अपने में दृढ़ भक्ति देकर अन्तर्द्धान भये बालक भी महाज्ञानी होगया एक दिन नारदमुनि से बालक ने पूछा कि महाराज यह किस कर्म का फल है कि मैंने इतना कष्ट उठाया माता पिता का कुछ ठिकानाही नहीं संस्कार भी अनुग्रह कर आपने किये यह नारदजी बालक का वचन सुन बोले कि हे बालक ! शनैश्चरने तुमको इतनी पीड़ा दी और सारा देश उसी दुष्ट ग्रह ने पीड़ित किया वह शनैश्चर आकाश में प्रज्वलित देख पड़ता है यह सुनतेही बालक को बड़ा क्रोध हुआ और शनैश्चर को आकाश से अपने तप के प्रभाव करके गिराया शनैश्चर भी एक पर्वत पर पहिले गिरे जिसमें पैर टूट जाने से पंगु होगये नारदजी शनैश्चर को भूमि पर गिरे देख हर्ष से नाचने लगे और सब देवताओं को बुलालाये और शनैश्चर की दुर्गति सबको दिखाई तब ब्रह्माजीने बालक से कहा कि हे बालक ! तैंने पीपल के फल खाकर तप किया इसलिये तेरा नाम पिप्पलाद होगया जो पुरुष स्थावरवार अर्थात् शनिवार को इस अश्रम में तेरा पूजन करैंगे अथवा पिप्पलाद इस नाम का स्मरण करैंगे उनको सात जन्म पर्यन्त शनिपीड़ा न होगी अब तुम निरपराध शनैश्चर को हमारी आज्ञा से पूर्ववत् आकाश में स्थापन करदो हे पुत्र ! ग्रह पीड़ा की निवृत्ति के लिये शान्ति होम बलि नमस्कार आदि करने चाहिये इस भांति ग्रहों का अनादर नहीं करना शनिपीड़ा निवृत्ति के लिये शनिवार को तैलाभ्यङ्ग करै

और ब्राह्मण को भी अभ्यङ्ग के लिये तैल देवै शनिकी लोह की प्रतिमा बनाय तैलके पात्रमें रक्खै और एक वर्ष पर्यन्त प्रतिशनिवार को पूजन करै अन्त में कृष्णपुष्प कृष्ण दो वस्त्र कृसर तिल भात आदि करके पूजन कर कृष्णगौ काला कम्बल तिलतेल और दक्षिणा सहित शन्नोदेवी इत्यादि वैदिक मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै और ब्राह्मण विना और वर्ण (कूरावलोकनवशाद्भुवनं यो नाशयति तुष्टो धनकनकसुखानि ददात्यसौ शनैश्चरः पातु) यह मन्त्र पढ़ै यह मन्त्र राजानल को शनैश्चरने स्वप्न में आप उपदेश किया है । पीछे (खण्डनीलाञ्जनप्रख्यं नीलवर्णसमप्रभम् । छायामार्त्तण्डसंभूतं नमस्यामि शनैश्चरम्) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को विसर्जन करै जो मनुष्य प्रति स्थावरवार को एक वर्ष व्रत करैं और इस विधि से उद्यापन करैंगे उनको कभी शनैश्चर की पीड़ा न होगी इतना कह सब देवताओं को सङ्ग ले ब्रह्माजी अपने धाम को गये और पिप्पलादमुनि ने भी ब्रह्माजी की आज्ञा मान शनैश्चर को अपने स्थान में पहुँचा दिया इस शनैश्चरोपाख्यान को जो भक्ति से सुनै उसको शनिपीड़ा न होगी लोह की शनिप्रतिमा गढ़ाय तेल से पूर्ण लोह कलश पर स्थापन करै दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै तो कभी शनिपीड़ा न होय ।

एकसौचार का अध्याय !

संक्रांति व्रत का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! संक्रांति के दिन स्थंडिल के ऊपर पद्म बनाय उसमें रक्तचन्दन करवीर पुष्प आदि करके सूर्यनारायण का पूजन कर (नमस्ते विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयम्भुवे । नमो नमस्ते वरद ऋक्सामयजुषां पते) इस मन्त्र से अर्घ्य देवै और ब्राह्मण को जलकुंभ और घृतपात्र सहित सुवर्ण का कमल देवै और नक्तव्रत करै इस

प्रकार एक वर्षपर्यंत प्रतिमास संक्रांतिव्रत और सूर्यनारायण का पूजनकर अन्त में घृत पायस का हवन कर बारह गौ जो सामर्थ्य न होय तो एक गौ सस्ययुक्त भूमि अथवा सोने चांदी तांबा आटा आदि से बनी भूमि और सुवर्ण की सूर्य प्रतिमा ब्राह्मण को देवै इसमें वित्तशाठ्य न करै जो पुरुष इस प्रकार संक्रांति व्रत करै वह प्रलय पर्यंत स्वर्ग में निवास करता है और जन्मान्तर में चक्रवर्ती राजा होय पुत्र उत्तम स्त्री आरोग्य और दीर्घायुष् पाता है जो इस संक्रांतिव्रत विधान को पढ़ै सुनै अथवा औरों को व्रत का उपदेश देवै वह भी स्वर्गवास पाता है।

एकसौपांच का अध्याय।

भद्रा की कथा, भद्राव्रत का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! लोक में भद्रा और विष्टिनाम से प्रसिद्ध है वह कौन है कैसी है किसकी पुत्री है और उसका पूजन किस विधि से किया जाता है यह आप वर्णन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! विष्टि सूर्यनारायण की कन्या है छाया में उत्पन्न भई है और शनैश्चर की सोदर भगिनी है वह कृष्णवर्णा ऊर्ध्वकेशी दीर्घदंष्ट्रा और बड़ी भयंकर स्वरूप है उत्पन्न होतेही भुवन का ग्रास करने दौड़ी यज्ञों में विघ्न और उत्सवों में उपद्रव करने लगी सब जगत् को उसने त्रास दिया तब सूर्यनारायण ने विचार किया कि इस कन्या का विवाह करना चाहिये क्योंकि तरुण कन्या को पिता के घर में रहना उचित नहीं यह शोच सूर्यनारायण ने उसका विवाह ठहराया परन्तु उसने क्षणमात्र में वर के प्राण लिये और विवाह के मण्डप आदि उखाड़ कर फेंक दिये और सारी प्रजा को पीड़न करने लगी सूर्यनारायण विचार करने लगे कि इस

दुष्टा कुरूपा स्वेच्छाविहारिणी अतिक्रूरा कन्या को किसके साथ विवाहैं इसी अवसर में प्रजा की अतिपीड़ा देख ब्रह्माजी सूर्यभगवान् के पास आये और उनकी कन्या की सब दुष्टता कही तब सूर्यनारायण बोले कि हे ब्रह्माजी ! आप जगत् के कर्ता हर्ता होकर हमको क्या कहते हो जो उचित समझ पड़ै सो कीजिये यह सूर्यनारायण का वचन सुन ब्रह्मा जी ने विष्टि को बुलाकर कहा कि हे भद्रे ! बव बालव कौलव आदि करणों के अन्त में तू निवास कर और जो पुरुष खेती व्यापार आदि कर्म तेरे बीच करैं उनको तू भक्षण कर तीन दिन किसी को बाधा न दे चौथे दिन के अर्ध में तेरा भोग होगा उस दिन सुर असुर सब तेरा पूजन करैंगे और जो तेरे को न मानैं उनका तू कार्य विध्वंस कर इतना विष्टि के प्रति उपदेश कर ब्रह्माजी अपने लोक को गये और विष्टि भी भ्रांतचित्त हो देवता दैत्य मनुष्य आदि को त्रास देती हुई बिचरने लगी इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! इस प्रकार भद्रा की उत्पत्ति भई है यह अति दुष्टा है इसलिये अवश्य इसका त्याग करना चाहिये विष्टि का स्वरूप यह है कि अतिकृष्णवर्ण लम्बी नासिका बड़ी २ दंष्ट्रा मोटी पिण्डली ऊँची जंघा फटे कपोल मलिन वस्त्र पहिने मुख से अग्निज्वाला उगलती हुई लोकों का कार्य नाश करने के लिये त्रिभुवन में विचरती है भद्रा के पांच घड़ी मुखमें दो घड़ी कण्ठमें ग्यारह घड़ी हृदय में चार घड़ी नाभिमें पांच घड़ी कटिमें और तीन घड़ी पुच्छमें स्थित हैं (मुखमें कार्य नाश कण्ठमें धन नाश हृदय में प्राणहानि नाभि में कलह कटिमें अर्थभ्रंश और पुच्छ में जय होता है) विष्टि के पुच्छ में जो भले बुरे कार्य करे सब सिद्ध होते हैं (धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरानना । [illegible] कुलपुच्छिका । भैरवी च महाकाली

असुराणां क्षयंकरी) ये बारह भद्रा के नाम जो पुरुष प्रभात उठ पढ़ै उसको व्याधि का भय नहीं होता सब ग्रह अनुकूल रहते हैं युद्ध में द्यूत में और राजकुल में जय पाता है जो विधिपूर्वक नित्य विष्टि का पूजन करै उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं भद्राव्रत करनेहारे पुरुष को प्रेत पिशाच भूत पूतना शाकिनी ग्रह आदि पीड़ा नहीं देते इष्टवियोग नहीं होता और अन्त में वह पुरुष सूर्यलोक को जाता है सूर्य की पुत्री शनिकी भगिनी अतिक्रूरा विष्टिका जो भक्ति से उपवास करै उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं अब हम भद्राके व्रतका विधान कहते हैं रात्रि के समय भद्रा होय तो दो दिन नक्तव्रत करै एक प्रहर के अनन्तर तीन प्रहर दिन में भद्रा होय तो उपवास करै नहीं तो एकभक्त करना चाहिये स्त्री अथवा पुरुष व्रत के दिन सुगन्ध आमलक लगाय सर्वौषधि जल से स्नान करै अथवा नदी आदि पर जाय विधि से स्नान करै पीछे देवता पितरों का तर्पण पूजन आदि कर कुशा की भद्रा की मूर्त्ति बनाय गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से पूजन कर भद्रा के नामों से एक सौ आठ आहुति देकर तिल और पायस ब्राह्मण को भोजन कराय आप भी मौन से तिल सहित कृसर भोजन करै और पूजन के अन्त में (छायासूर्यसुते देवि विष्टे इष्टार्थदायिनि । पूजितासि यथाभक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव) यह मन्त्र पढ़ै इस विधि से सत्रह भद्राव्रत कर अन्त में लोह के पीठ पर भद्रा की मूर्त्ति स्थापन कर कृष्णवस्त्र उढ़ाय गन्ध पुष्प आदि से पूजन कर कृसर नैवेद्य लगावै पीछे लोह तैल तिल सवत्सा कृष्णा गौ काला कंबल और दक्षिणा सहित वह मूर्त्ति ब्राह्मण को देवै इस विधि से जो पुरुष भद्राव्रत और उद्यापन करै उसके किसी कार्य में विघ्न नहीं होता।

एकसौछठा अध्याय।

अगस्त्यमुनि के चरित्रों का वर्णन, अगस्त्यदान का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम सब पाप हरनेहारे अगस्त्यव्रत का विधान कहते हैं राजा युधिष्ठिर ने कहा कि प्रथम आप अगस्त्य मुनि के चरित वर्णन कीजिये तब अर्घ्यदान का विधान और उदय का काल कहना तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! मित्र और वरुण दोनों मुनि मन्दरपर्वत के समीप तप करते थे उनके तप में विघ्न करने के लिये इन्द्र ने उर्वशी नाम अप्सरा को भेजा अप्सरा को देखते ही दोनों मुनियों का वीर्य कुम्भ में गिरा उससे अगस्त्यमुनि उत्पन्न भये अगस्त्यमुनि का लोपामुद्रा से विवाह भया अगस्त्यजी ने बहुत काल बड़ा उग्र तप किया उसी समय बड़े दुराचार और ब्राह्मणों के शत्रु इल्वल और वातापि नाम दो दैत्य थे उनका यह काम था कि एक भाई मेष बनता दूसरा भाई उस मेष को मार उसका मांस रींध श्राद्ध के व्याज से ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे उनको वह मांस खिला देता और पीछे भाई का नाम लेकर पुकारता वह भी सबके उदर विदारण कर निकल आता इस प्रकार सैकड़ों मुनि उनने मार डाले एक दिन इल्वल ने अगस्त्य मुनि को भी श्राद्ध में निमन्त्रण दिया तब अगस्त्य मुनि ने कहा कि हम अकेले ही श्राद्ध में भोजन करैंगे और सम्पूर्ण मांस हमको ही देना इल्वल ने भी यह बात स्वीकार करी और सब मांस अगस्त्य के आगे परोस दिया अगस्त्य जब भोजन कर चुके तब इल्वल पुकारा कि अरे भाई क्यों विलम्ब करता है बाहर निकल आ अगस्त्यमुनि ने कहा कि वह तो अब जीर्ण हुआ कहां से निकलेगा यह सुन इल्वल ने अगस्त्यमुनि पर बड़ा क्रोध किया परन्तु अगस्त्यमुनि ने

उसको भी अपनी क्रूर दृष्टि से भस्म कर डाला इन दोनों दैत्यों का संहार होते ही बाकी के दैत्य भय से समुद्र में जा घुसे और नित्य रात्रि के समय निकल मुनियों को भक्षण कर जाते यज्ञपात्र फोड़ डालते और फिर समुद्र में प्रविष्ट हो-जाते यह दैत्यों का बड़ा उत्पात देख ब्रह्मा विष्णु शिव कुबेर इन्द्र आदि सब देवता सम्मति कर अगस्त्यमुनि के समीप आये और कहा कि हे मुनि ! तुम समुद्र को पान करो मुनि ने भी देवताओं की आज्ञा से समुद्र पान किया तब सूखे समुद्र में सब दैत्यों को देवताओं ने मारा इस प्रकार अगस्त्यमुनि ने सब जगत् निष्कंटक कर दिया पीछे गंगा के प्रवाह से समुद्र पूर्ण भया तब सब देवता और दैत्यों ने मिल कर मन्दराचल को मंथान और वासुकि को रज्जु बनाय समुद्र को मथन किया उसमें से प्रथम तो अमृत कौस्तुभ ऐरावत आदि उत्तम उत्तम पदार्थ निकले और पीछे अति दा-रुण कालकूट विष प्रकट भया जिसके गन्धसे ही देवता और दैत्य मूर्च्छित होने लगे उसमें से कुछ विष शिवजी ने भक्षण किया जिससे वे नीलकण्ठ भये तब ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा कि अब और किसी की सामर्थ्य नहीं है जो इस बाकी के विष का संहार करे इसलिये तुम सब दक्षिण दिशा में लङ्का के समीप अगस्त्यमुनि रहते हैं उनके शरण में जावो यह ब्रह्माजी की आज्ञा पाय सब देव दानव अगस्त्य-मुनि के समीप गये उनने भी सब को व्याकुल देख आश्वा-सन किया और उस विष को अपने तपोबल से हिमालय में प्रविष्ट किया वह विष कन्दरूप से वहां उत्पन्न हुआ और जो कुछ शेष रहा वह धत्तूर करवीर अर्क आदि वृक्षों में बांट दिया उस हिमालय पर्वत के विषयुक्त वायु से मनुष्यों को अनेक प्रकार के रोग होते हैं वह विषवायु वृष संक्रान्ति से लेकर

सिंहात तक रहता है पीछे विष का वेग शान्त होजाता है इस प्रकार विष के संकट से अगस्त्यमुनि ने सबको बचाया पूर्व काल में प्रजा की बहुत वृद्धि भई तब ब्रह्माजी की देह से मृत्यु उत्पन्न हुआ और प्रजा का संहार करने लगा एक दिन अगस्त्यमुनि के समीप भी आया अगस्त्यमुनि ने अपनी क्रोध की दृष्टि से उसी क्षण मृत्यु को भस्म कर दिया तब ब्रह्माजी को दूसरा मृत्यु सिरजना पड़ा श्वेत नाम राजा स्वर्ग से नित्य आकर दण्डकारण्य में अपने पूर्व शरीर का मांस खाता एक दिन उसने निर्विण्ण हो अगस्त्यमुनि से कहा कि महाराज सब दान मैंने किये परन्तु अन्न और जल का दान कभी न किया इसलिये स्वर्गवास पाकर भी नित्य यह शवमांस मुझे खाना पड़ता है अब आप ऐसा अनुग्रह करें कि इस विपत्ति से छूटूँ यह राजा का दीन वचन सुन दयाकर अगस्त्यमुनि ने अन्न करके उसका श्राद्ध किया जिससे राजा को स्वर्ग में ही नित्य भोजन के लिये उत्तम उत्तम पदार्थ मिलने लगे विन्ध्य पर्वत ने विचार किया कि सूर्यनारायण मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते हैं मेरी प्रदक्षिणा नहीं करते इसलिये इनका मार्ग रोकना चाहिये यह मन में ठान विन्ध्य बढ़ने लगा उस को नित्य बढ़ते देख देवता बहुत व्याकुल हुये और अगस्त्यमुनि के समीप जाय कहा कि आप विन्ध्याचल को बढ़ने से रोकें नहीं तो वह सूर्य भगवान् का मार्ग रोध करैगा यह देवताओं का वचन सुन अगस्त्यजी विन्ध्य के पास गये और विन्ध्य से कहा कि हम तीर्थयात्रा को जाते हैं तुम थोड़ासा नीचे होजावो तो हम तुम्हारे पार चले जायँ विन्ध्यमुनि की आज्ञा से नम्र होगया अगस्त्यमुनि ने पर्वत को लंघन कर कहा कि जबतक हम तीर्थयात्रा से न लौटें तबतक ऊँचे मत होना इतना कह अगस्त्यमुनि गये सो अबतक भी नहीं

लौटे और दक्षिण दिशा में आकाश के बीच देदीप्यमान देख पड़ते हैं एक समय वसन्त ऋतु में लोपामुद्रा ने अगस्त्यमुनि से कहा कि आपके साथ विषयों को भोगना चाहती हूं परन्तु हाथी घोड़े दासी दास उत्तम शय्या वस्त्र भूषण आदि सब सामग्री सहित एक रत्नजटित प्रासाद होय यह पत्नी का वचन सुन अगस्त्यमुनि ने कुबेर को बुलाकर आज्ञा दी कुबेर ने भी सब सामग्री सहित महल और रत्नों के भूषण उसी क्षण मुनि को निवेदन किये तब अगस्त्यमुनि ने बहुत काल पर्यन्त लोपामुद्रा के सङ्ग विहार किया इस भांति और भी अनेक चरित अगस्त्यमुनि के हैं अब हम उनके अर्घ्य का विधान कहते हैं कन्या के सूर्य के सात अंश जायँ उस दिन रात्रि के समय शुक्ल तिलों से स्नान कर श्वेत वस्त्र धार माला वस्त्र आदि से भूषित पञ्चरत्न सहित अव्रण कलश स्थापन करै उसके ऊपर अनेक प्रकार के भक्ष्य और सप्तधान्य सहित घृतपात्र स्थापन कर उसमें जटा धारे कमण्डलु हाथ में लिये शिष्य और मृगों करके वेष्टित ऐसी अगस्त्यमुनि की सुवर्णकी प्रतिमा बनाय स्थापन करै पीछे श्वेत चन्दन चमेली के पुष्प उत्तम धूप दीप नैवेद्य आदि से उनका पूजन कर अर्घ्य देवै खजूर नालिकेर कूष्मांड फालसा ककोड़े करेले ककड़ी बीजपूर वृन्ताक दाड़िम नारङ्गी कदलीफल कुश काश दूर्वा के अंकुर कमल उत्पल सप्तधान्य वस्त्र अनेक प्रकार के भक्ष्य ये सब पदार्थ बांस के पात्र में धर सुवर्ण चांदी अथवा ताम्र का अर्घ्यपात्र मस्तक तक उठाय दक्षिणाभिमुख हो दोनों जानु भूमि पर रख प्रसन्नचित्त हो (काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोस्तु ते ॥ विन्ध्यवृद्धिक्षयकर मेघतोयविषापह । रत्नवल्लभ देवर्षे लङ्कावास नमोस्तु ते ॥ वातापिर्भक्षितो येन समुद्रः शोषितः पुरा ।

लोपामुद्रापतिः श्रीमान् योसौ तस्मै नमो नमः॥ येनोदितेन पापानि प्रलयं यान्ति व्याधयः। तस्मै नमोस्त्वगस्त्याय सशिष्याय सुपुत्रिणे) ये मन्त्र पढ़ अर्घ्य देवै और ब्राह्मण (अगस्त्यमृषिं नमाम मित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः। उभौ वर्णावृष्टिरुग्रः पुपोष सत्यादेवेथशिष्मे जगाम) इस वैदिक मन्त्र से अर्घ्य देवै इस प्रकार अर्घ्य देकर (अर्चितस्त्वं यथाशक्त्या मयागस्त्य महामुने। एहिकामुष्मिकीं दत्त्वा कार्यसिद्धिं व्रजस्व मे) इस मन्त्र से अगस्त्यमुनि का विसर्जन करै पीछे सब सामग्री सहित मूर्ति (अगस्त्यो मे मनःस्थश्च अगस्त्योस्मिन् धने स्थितः। अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिगृह्णातु संस्तुतः) यह मन्त्र पढ़ वेदवेत्ता ब्राह्मण को देवै ब्राह्मण भी प्रतिग्रह लेकर (अगस्त्यः सप्तजन्मानि नाशयित्वा तवापदम्। अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छतु महामुनिः) यह मन्त्र पढ़ै इस प्रकार अर्घ्यदान कर कोई फल धान्य अथवा लवण आदि एक रस वर्ष भर त्यागै इस विधि से ब्राह्मण सात वर्ष अर्घ्य देवै तो चारों वेद और सब शास्त्र का जाननेहारा होय क्षत्रिय सब पृथिवी को जीत राजा होय वैश्य धन धान्य और बहुत से पशु पावै शुद्र अर्घ्य देवै तो धन सन्मान और आरोग्य का भागी होय स्त्री बहुत से पुत्र सौभाग्य और सम्पत्ति पावै कन्या को उत्तम वर मिलै विधवा को अनन्त पुण्य की प्राप्ति होय और रोगी अगस्त्यमुनि को अर्घ्य देकर रोग से छूटै जिस देश में इस विधान से अर्घ्य दिया जाय वहां कभी दुर्भिक्ष आदि का भय न होय अर्घ्य देनेहारा पुरुष हंस युक्त विमान में बैठ स्वर्ग को जाता है जो ऐश्वर्य भोग शरीर सौख्य संतान पशु आदि की इच्छा होय तो अवश्यही अगस्त्यमुनि को भक्तिपूर्वक शरद् ऋतु में अर्घ्य देवै।

एकसौसातवां अध्याय ।

नवीन चन्द्रको अर्घ्य देने का विधान ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम नवीन चन्द्रमा को अर्घ्य दान का विधान कहते हैं प्रतिमास की शुक्ल द्वितीया को प्रदोष के समय भूमि पर गोबर का मण्डल बनाय उसमें रोहिणी सहित चन्द्रमा की प्रतिमा स्थापन कर श्वेत चन्दन श्वेत पुष्प अक्षत धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य फल दही श्वेत वस्त्र दूर्वांकुर आदि से पूजन कर इन्हीं पदार्थों करके चन्द्रमा को अर्घ्य देवै जो इस विधि से प्रतिमास चन्द्रमा को अर्घ्य देवै वह पुत्र पौत्र धन पशु आरोग्य आदि पाय सौ वर्ष संसार का सुख भोग अन्त में चन्द्रलोक को जाता है वहां प्रलय पर्यन्त दिव्य स्त्रियों के साथ विहार कर मुक्ति पाता है श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! आप चन्द्र बंश में उत्पन्न भये हैं इसलिये धर्म ऐश्वर्य आरोग्य और उत्तम भोगों की प्राप्ति के लिये आपको अवश्य नवीन चन्द्र को अर्घ्य देना चाहिये ।

एकसौआठवां अध्याय ।

शुक्र और बृहस्पति को अर्घ्य देने का विधान और फल ।

श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! प्रति शुक्र का दोष निवृत्त होने के लिये यात्रा के आरम्भ में यात्रा की समाप्ति में और शुक्रोदय के समय शुक्रपूजा अवश्य करनी चाहिये उसका हम विधान कहते हैं सुवर्ण चांदी अथवा कांस्य के पात्र में चांदी की शुक्र की मूर्ति स्थापन कर सब उपचारों से उसका पूजन करै पीछे (नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन । कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते १) इस मन्त्र से अर्घ्य देकर शुक्ल वस्त्र मोती सवत्सा गौ और दक्षिणा सहित वह मूर्ति ब्राह्मण को देवै पुष्प वटक करका

जल गेहूं चने आदि से जबतक शुक्र का पूजन न कर लेवै तब तक नवान्न भक्षण न करै इस विधि शुक्र का पूजन करने से सब कामना सिद्ध होती हैं इसी विधि से सुवर्ण आदि केपात्र में सुवर्ण की बृहस्पति मूर्ति स्थापन कर पीत वस्त्र उढ़ावे और सर्षप पलाश की त्वचा के क्वाथ और पञ्चगव्य के जल से स्नान कर पीत वस्त्र पहिन सब उपचारों से बृहस्पति का पूजन कर घृत का हवन करै और पूर्वोक्त रीति से अर्घ्य देवै पीछे सवत्सा गौ सहित वह प्रतिमा ब्राह्मण को देवै यात्रा के समय बृहस्पति की संक्रांति और उदय के समय इस विधि से पूजन करै तो सब मनोवाञ्छित फल पावै शुक्र और बृहस्पति की प्रीतिके लिये उत्तम मोतीही देवै तो भी सब मनोरथ सिद्ध होयँ और वह पुरुष कभी कुरूप न होय जो शुक्र की और गुरु की इस विधि से पूजा करै उनके घर में कभी भी शुक्र आदि का दोष नहीं होता।

एकसौनव का अध्याय।

पञ्चाशीति व्रतों का फल सहित विधान।

श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं अब हम अत्यन्त गुप्त पञ्चाशीति व्रत कहते हैं जो भविष्य पद्म मार्कण्डेय और वराहपुराण में कहे हैं अभीष्ट मित्र पुत्र शिष्य और बंधु को धर्म कहना चाहिये इसलिये श्रुति स्मृति और पुराणों से जो हमने धर्म निश्चय किया है वह आपके प्रति कथन करते हैं प्रभात सन्ध्या में स्नान कर अश्वत्थ वृक्ष का पूजन कर ब्राह्मणों को तिल पात्र देवै वह कभी कृत अकृत का शोक नहीं करता यह अत्यन्त गुप्त व्रत सब पापों का हरनेहारा है पर्व दिन में एक कर्ष सुवर्ण ब्राह्मण को देवै यह वाचस्पति व्रत बुद्धि की वृद्धि करता है और बृहस्पति ने कहा है लवण मिर्च जीरा हींग शुंठी आदि सब मसाले चतुर्थी के दिन एकभक्त कर

कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै यह शिलाव्रत लक्ष्मीलोक में वास देता है और मुखकी शुद्धता करता है नक्तव्रत कर गौ वस्त्र और सुवर्ण का त्रिशूल कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै और प्रणामकर (श्री केशवौ प्रीयेताम्) यह वाक्य कहै यह महापातक हरनेहारा व्रत है एक वर्ष पर्यंत एकभक्त व्रत कर अन्त में सुवर्ण के वृष और सब उपस्करों सहित तिल धेनु ब्राह्मण को देवै यह रुद्र व्रत सब प्रकार के शोक हरता है और इसका करनेहारा शिव-लोक को जाता है सर्वौषधि जल से स्नानकर पंचमी के दिन सर्वोपस्कर दान करै ऊखल मूशल सूप चलनी स्थाली चूल्हा और जलकुम्भ ये गृह के उपस्कर हैं इनको गृहस्थ ब्राह्मण के घर में स्थापन करै यह गृहव्रत सब सुख देनेहारा है और अत्रि मुनि ने अनसूया को उपदेश किया है सुवर्ण का नीलोत्पल शर्करापात्र सहित श्रद्धा से कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै यह लीलाव्रत है इसका करनेहारा विष्णुलोक को जाता है आषाढ़ आदि चार महीने तैलाभ्यंग न करै अन्त में तिल तैलपूर्ण नया घट ब्राह्मण को देवै और घृत पायस ब्राह्मण को भोजन करावै यह लोकप्रीतिकर व्रत है इसको भक्ति से करनेहारा पुरुष विष्णुलोक को जाता है चैत्रमास में दही दूध घृत और गुड़ खांड़ आदि इक्षुविकार त्यागै अन्त में ब्राह्मण मिथुन का पूजनकर ये सब पदार्थ और दो उत्तम वस्त्र उनको देकर (गौरी मे प्रीयताम्) यह वाक्य कहै यह गौरी व्रत करने से भगवतीलोक की प्राप्ति होती है पौष कृष्ण त्रयोदशी से नक्तव्रत करै एक वर्ष व्रतकर सप्तधान्य और दो वस्त्रों सहित सुवर्ण का अशोक वृक्ष ब्राह्मण को देकर (प्रद्युम्नः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै यह काम व्रत सब शोक का नाश करनेहारा है इसको जो पुरुष भक्ति से करै वह कल्प भर विष्णुलोक में निवास करता है आषाढ़ आदि चार महीने

नख न कटावै और वृन्ताक न खाय अन्त में कार्त्तिक की पूर्णिमा के दिन घृत और शहद के घट सहित सुवर्ण का वृन्ताक ब्राह्मण को देवै यह शिव व्रत है इसका करनेहारा रुद्रलोक को जाता है पांच पूर्णिमाओं को एकभक्त व्रत कर अन्त में चन्दन से पूर्णिमा की मूर्ति लिख सब उपचारों से पूजन करै पीछे दूध दही घृत शहद और श्वेत शर्करा इन पांचों का एक एक घट भरके (मनोरथान् पूरयस्व सम्पूर्णा पूर्णिमा ह्यसि । पञ्चकुम्भप्रदानेन भूतानां पुष्टिरस्तु मे) यह मन्त्र पढ़ पांच ब्राह्मणों को एक एक कुम्भ देवै यह पञ्च घट व्रत पुष्टि देनेहारा है और इसके करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं हेमन्त और शिशिर ऋतु में पुष्पों का त्याग कर फाल्गुन की पूर्णिमा को सुवर्ण के तीन पुष्प ब्राह्मण को देकर (शिवकेशवौ प्रीयेताम्) यह वाक्य उच्चारण करै यह सौगन्ध्य व्रत सुगन्धि उत्पन्न करता है और इस व्रत के करने से उत्तम लोक की प्राप्ति होती है फाल्गुन कृष्ण आदि तृतीयाओं को लवण न खाय इस प्रकार एक वर्ष व्रत कर अन्त में ब्राह्मण मिथुन का पूजन कर सब उपस्करों सहित घर और उत्तम शय्या उनको देवै और (गोविन्दःप्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस सौभाग्य व्रत का करनेहारा गौरीलोक को जाता है सन्ध्या समय एक वर्ष पर्यंत मौन व्रत करै अन्त में घृत कुम्भ दो वस्त्र और घण्टा ब्राह्मण को देवै यह सारस्वत व्रत विद्या और रूप देनेहारा है इस व्रत के करने से अक्षयवास सरस्वतीलोक में मिलता है एक वर्ष पंचमी को उपवास कर अन्त में सुवर्ण का कमल और उत्तम गौ ब्राह्मण को देवै यह लक्ष्मीव्रत दुःख शोक का हरनेहारा और कान्ति सौभाग्य का करनेहारा है इस व्रत का करनेहारा जन्म जन्म में लक्ष्मीवान् होता है और अन्त में विष्णु लोक को जाता है जो स्त्री इस व्रत

को करै वह सौभाग्य पावै और सपत्नियों का गर्व हरै, गौरी सहित रुद्र लक्ष्मी सहित जनार्दन और राज्ञी सहित सूर्य भगवान् की प्रतिमा विधिपूर्वक स्थापन कर सब उपचारों से पूजन कर वस्त्र घण्टा पात्र और दक्षिणा सहित वे मूर्त्ति ब्राह्मण को देवै यह देवव्रत दिव्य देह देनेहारा है शुक्ल चन्दन आदि से शिव लिंग और विष्णु मूर्त्ति को नित्य एक वर्ष प्रलेपन करै अन्त में जल और घृत के कुंभ सहित उत्तम धेनु ब्राह्मण को देवै यह शुक्ल व्रत सब प्रकार के कल्याण देता है इस व्रत को करनेहारा पुरुष दश हजार जन्म तक राजा होकर अन्त में शिवलोक को जाता है अश्वत्थ सूर्यनारायण और गंगा का नित्य पूजन कर एक वर्ष पर्यंत एकभक्त व्रत करै अन्त में ब्राह्मण मिथुन का पूजनकर तीन गौ और सुवर्ण का वृक्ष ब्राह्मण को देवै यह कीर्त्तिव्रत भूमि और कीर्त्ति का देनेहारा है जो पुरुष इस व्रत को करै वह दिव्य विमान में बैठ स्वर्ग में जाय अप्सराओं के साथ विहार करता है घृत करके शिव विष्णु ब्रह्मा सूर्य गौरी गणपति को स्नान करावै और सब उपचारों से नित्य इनका वर्षभर पूजन करै और सामवेद का गायन करै अन्त में सुवर्ण कमल सहित उत्तम गौ ब्राह्मण को देवै यह सामव्रत करनेहारा पुरुष शिवलोक में निवास करता है नवमी को एकभक्त व्रत करै और अन्त में कंचुकी दो वस्त्र और सुवर्ण का सिंह ब्राह्मण को देवै जो स्त्री इस वीरव्रत को करै वह अनेक जन्म पर्यंत उत्तम रूप सौभाग्य और सुख पावै और अन्त में शिवलोक में जाय निवास करै एकवर्ष पर्यंत दुग्धाहार कर पूर्णिमा व्रत करै और श्राद्ध करै अन्त में श्राद्धकर पांच सवत्सा गौ पिशंगवर्ण के वस्त्र और सौ जलकुम्भ ब्राह्मणों को देवै जो इस पितृव्रत को करै वह अपने सौ पुरुषों का उद्धारकर विष्णुलोक में प्राप्त होता है एक वर्ष ताम्बूल का

त्यागकर अन्त में तीन ताम्बूल सुवर्णके बनाय उनमें चूनेके बदले मोती रख ब्राह्मण को देवै इस पत्र व्रतको जो नारी करै वह दौर्भाग्य और मुख का दौर्गन्ध्य कभी नहीं पाती इस व्रत के करने से मुख में उत्तम सुगन्ध और सौभाग्य प्राप्ति होती है चैत्र आदि चार महीने ज्येष्ठ आषाढ़ में एक मास अथवा पक्षभर ही जलका अयाचित व्रत करै अन्त में जलपूर्ण कलश अन्न वस्त्रं घृत सप्तधान्यं तिलपात्र और सुवर्ण ब्राह्मण को देवै यह वारिव्रत करनेहारा पुरुष कल्प भर ब्रह्मलोक में निवास-कर दूसरे कल्प के प्रारम्भ में चक्रवर्ती राजा होता है एक वर्ष पंचामृत से शिव और विष्णु को स्नान कराय अन्त में गौ शंख और सुवर्ण ब्राह्मण को देवै इस धृतिव्रत का करनेहारा पुरुष बहुत काल शिवलोक में निवास कर राजा होता है एक महीने अथवा वर्षभर मांस न खाय अन्त में सुवर्ण का हरिण और सवत्सा गौ ब्राह्मण को देवै यह अहिंसा व्रत सर्व शान्तिप्रद है इस व्रत को करनेहारा पुरुष अश्वमेधयज्ञ का फल पाता है माघमास में प्रातःकाल स्नान कर अन्त में ब्राह्मण दंपती का वस्त्र भूषण पुष्प माला आदि से पूजन कर उनको उत्तम भोजन करावै इस सूर्य व्रत को करनेहारा पुरुष शरीरारोग्य और सौभाग्य पाता है और कल्प भर सूर्य-लोक में निवास करता है आषाढ़ आदि चार महीने प्रातःकाल स्नान कर कार्त्तिकी पूर्णिमा को घृतकुम्भ और गौ कुटुम्बी ब्राह्मण को देकर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै इस वैष्णव व्रत के करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और विष्णुलोककी प्राप्ति होती है एक अयनसे दूसरे अयन पर्यन्त पुष्प और घृतका त्याग करै अन्त में पुष्प घृत और धेनु ब्राह्मण को देकर घृत और पायस ब्राह्मणों को भोजन करावै इस शील व्रत के करने से शील और आरोग्य की प्राप्ति होती है और इस व्रत का

करनेहारा शिवलोक को जाताहै तैल और मांस का एक वर्ष त्याग कर अन्त में सुवर्ण के दीपक चक्र त्रिशूल और दो वस्त्र ब्राह्मण को देवै इस व्रतके करने से तेजकी वृद्धि होती है वस्त्र भूषण पुष्प कुंकुम कर्पूर अगरु चन्दन ताम्बूल और अनेक प्रकार के भोजनों करके सात दिन सुवासिनी का पूजनकर (कुमुदादेवी प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इसीप्रकार कमला माधवी गौरी पार्वती उमा और काली इन एक एक देवी के नाम से सात सात दिन सुवासिनी पूजन करै प्रत्येक सुवासिनी को बाली अंगूठी दर्पण उत्तम उत्तम वस्त्र और षट्रस भोजन दे सन्तुष्ट करै और एक ब्राह्मण का पूजन भी करै यह सप्तसुन्दरक नाम व्रत उत्तम रूप और सोभाग्य देनेहारा है चैत्र मास में सब सुगन्ध द्रव्य का त्याग करै अन्त में एक सीपी भर सुगन्ध द्रव्य शुक्ल दो वस्त्र और यथाशक्ति दक्षिणा ब्राह्मणों को देवै इस वरुणव्रतके करने से वरुणलोक की प्राप्ति होती है वैशाख मास में लवण का त्यागकर अन्त में सवत्सा गौ ब्राह्मण को देवै यह कान्तिव्रत कीर्त्ति और कान्ति देनेहारा है इस व्रत का करनेहारा पुरुष बहुत काल विष्णुलोक में निवासकर राजा होता है तीन पल से अधिक सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनाय द्रोणभर तिलों के ऊपर स्थापन कर ब्राह्मण मिथुन का पूजन कर उनको देवै और घृत तिलों से हवन कर ब्राह्मण भोजन करावै और (विश्वात्मा प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इस ब्रह्मव्रतके करने से निर्वाणपद मिलता है दुग्धाहार करके व्रत करै और सुवर्ण सहित उभयमुखी धेनु ब्राह्मण को देवै तो परमपद को प्राप्तहो तीन दिन दुग्धाहार रहकर सुवर्ण का कल्पवृक्ष बनाय चावलों के ढेरपर रख उत्तम वस्त्र और पुष्प मालाओं से आच्छादित कर ब्राह्मण को देवै इस कल्पव्रत का करनेहारा कल्प भर स्वर्ग में निवास करता है

अयाचित व्रतसे रह कर उत्तम शकटी वस्त्र भूषण ताम्बूल और मोदक पात्र व्यतीपात दोनों ग्रहण अथवा अयनें संक्रान्ति के दिन ब्राह्मण को देवै यह व्रत परलोक गमन के खेदको हरनेहारा है वर्ष भर अष्टमी को नक्तव्रत कर अन्त में ब्राह्मण को गौ देवै इस सुगति व्रतको करनेहारा पुरुष स्वर्ग को जाता है हेमन्त और शिशिर ऋतु में इन्धन दान करै और अन्त में ब्राह्मण को घृतधेनु देवै यह वैश्वानर व्रत शरीरारोग्य और कान्ति देनेहाराहै इस व्रत को करनेहारा मुक्ति पाता है एकादशी को नक्तव्रत कर चैत्रमास चित्रा नक्षत्र में सुवर्ण का शंख और चक्र ब्राह्मण को देवै इस विष्णु व्रतको करनेहारा पुरुष विष्णुलोक में निवास कर कल्प के आदि में राजा होता है एक वर्ष दुग्धाहार करै अन्त में एक गौ और एक वृक्ष ब्राह्मण को देवै इस लक्ष्मीव्रत का करनेहारा एक कल्प लक्ष्मीलोक में निवास करता है एक वर्ष सप्तमी को नक्तव्रत करै अन्त में दुग्धदेनेहारी गौ ब्राह्मण को देवै इस सूर्य व्रतके करने से सूर्यलोक की प्राप्ति होती है चतुर्थी का एक वर्ष नक्तव्रत कर अन्त में सुवर्ण का हाथी ब्राह्मण को देवै यह वैनायक व्रत करने से सब विघ्न निवृत्त होते हैं चातुर्मास्य में फलों का त्याग करै अन्त में वे फल सुवर्ण के बनाय गौ श्वेत वस्त्र और घृतपूर्ण घट सहित ब्राह्मण को देवै यह फल व्रत करने से सन्तान की वृद्धि होती है एक वर्ष पर्यन्त सप्तमी को उपवास कर अन्त में सुवर्ण का कमल और सब उपकरणों सहित पांच गौ दुग्ध देनेवाली पौराणिक ब्राह्मण को देवै इस सौर व्रत के करने से सूर्यलोककी प्राप्ति होती है बारह द्वादशी उपवास कर अन्त में वस्त्र सहित जलपूर्ण बारह घट ब्राह्मणों को देवै यह गोविन्द व्रत सब कार्य सिद्ध करनेहारा है कार्त्तिकी पूर्णिमा को वृषका दान कर नक्तव्रत करै यह वृष व्रत

करने से गोलोक प्राप्ति होती है कृच्छ्रव्रत के अन्त में गोदान कर यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन करावै यह प्राजापत्य व्रत ब्रह्मलोक प्राप्तिकर्ता है एक वर्ष चतुर्दशी को नक्तव्रत कर अन्त में वृषभ दान करै इस त्र्यम्बक व्रत करने से शिवलोक प्राप्ति होती है सातरात्रि उपवास कर ब्राह्मण को घृतपूर्ण कुम्भ देवै यह ब्रह्मव्रत ब्रह्मलोकदायक है एक वर्ष मघा में नक्तव्रत कर अन्त में दुग्धदेनेहारी गौ ब्राह्मण को देवै इस व्रत का करनेहारा एक कल्प स्वर्ग में निवास करता है कार्त्तिक शुक्ल चतुर्दशी को उपवास कर रात्रि के समय विलक्षण पंचगव्य पान करै अर्थात् कपिला गौ का मूत्र कृष्णा गौ का गोबर श्वेत गौ का दूध लाल गौ का दही और कर्बुर वर्ण गौ का घृत लेकर वेदोक्त मन्त्रों से कुशोदक सहित मिलाकर प्राशन करै दूसरे दिन प्रभात स्नान कर देवता और पितरों का तर्पण आदि कर ब्राह्मण भोजन कराय आप भी मौन से भोजन करै इस ब्रह्मकूर्च व्रत के करने से बाल्य यौवन और वार्द्धक में किये सब प्रकार के पाप क्षय होते हैं एक वर्ष तृतीया को विना अग्नि सिद्ध किया भोजन करै और अन्त में उत्तम गौ ब्राह्मण को देवै इस ऋषिव्रत के करने से शिवलोक में अक्षय वास मिलता है दो पल सुवर्ण का रथ बनाय ब्राह्मण को देवै इस रथव्रत का करनेहारा कल्पभर स्वर्ग में रहता है इसी प्रकार उपवास कर दो पल सुवर्ण का हस्ती ब्राह्मण को देवै इस करिव्रत के करने से स्वर्ग प्राप्ति होती है एकवर्ष ताम्बूल आदि मुखवास का त्याग कर अन्त में ब्राह्मण को गौ देवै इस मुखवास व्रत के करने से कुबेरलोक की प्राप्ति होती है रात्रिभर जल में निवास कर प्रभातही गोदान करै इस वारुणव्रत का करनेहारा पुरुष वरुणलोक में निवास करता है चन्द्र का अयनव्रत करके अन्त में

सुवर्ण का चन्द्र ब्राह्मण को देवै इस चन्द्रव्रत के करने से चन्द्र-लोक प्राप्ति होती हैं ज्येष्ठमास की अष्टमी और चतुर्दशी को पंचाग्नि तपकर सुवर्ण सहित गौ ब्राह्मण को देवै इस रुद्रव्रत के करने से शिवलोक प्राप्ति होती है एक वर्षभर तृतीया को शिवालय में लेपन करै अन्त में गोदान करै इस भवानी व्रत के करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं माघ मास की सप्तमी को उपवास कर ब्राह्मण को गौ देवै इस तपन व्रत का करनेहारा कल्पभर स्वर्ग में निवास करता है तीन रात्रि उपवास कर फाल्गुन पूर्णिमा को गोदान करै इस धामव्रत के करने से सूर्यलोक प्राप्ति होती है पूर्णिमा को उपवास कर तीनों कालों में वस्त्र भूषण भोजन आदि करके ब्राह्मण मिथुन का पूजन करै इस इन्दुव्रत के करने से मोक्ष प्राप्ति होती है शुक्ल द्वितीया को लवणपूर्ण कांस्यपात्र वस्त्र और दक्षिणा एक वर्ष पर्यन्त ब्राह्मण को देता रहै अन्त में गो-दान करै इस सोमव्रत का करनेहारा पुरुष कल्प भर शिवलोक में निवास कर अन्त में राजा होता है वर्ष भर प्रतिपदा को एक-भक्त कर अन्त में कपिला गौ ब्राह्मण को देवै इस आग्नेय व्रत के करने से अग्निलोक प्राप्ति होती है माघ मास में एकादशी चतुर्दशी और अष्टमी को एकभक्त व्रत कर वस्त्र जूता कम्बल चर्म आदि शीत निवारण करनेहारी वस्तु दान करै इस सौख्य व्रत के करने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है एक वर्ष दशमी को एकभक्त व्रत कर अन्त में सुवर्ण की स्त्रीरूप दश दिशाओं की मूर्त्ति द्रोणभर तिलों के ऊपर स्थापन कर धेनु सहित ब्राह्मण को देवै इस महापा-तक हरनेहारे दिग्व्रत के करने से ब्रह्माण्ड का आधिपत्य मि-लता है शुक्ल सप्तमी को सूर्यनारायण का पूजन कर सात धान्य और लवण ब्राह्मण को देवै इस धान्यव्रत के करने से

अपना और सात कुलों का उद्धार होता है एक मास उपवास कर ब्राह्मण को गौ देवै इस विष्णुव्रत के करने से विष्णुलोक प्राप्ति होती है एक पक्ष उपवास कर दो कपिला गौ ब्राह्मण को देवै इस ब्रह्मव्रत का करनेहारा ब्रह्मलोक में निवास करता है बीस पल से अधिक सुवर्ण की कुल पर्वत और समुद्रों सहित भूमि बनाकर तिलों के ढेर पर रख ब्राह्मण को देवै और उस दिन पयोव्रत रहै इस महीव्रत के करने से शिवलोक प्राप्ति होती है माघ अथवा चैत्र की शुक्ल तृतीया को सब उपकरणों सहित गुड़धेनु ब्राह्मण को देवै इस महाव्रत के करनेहारा अप्सराओं करके सेवित गौरीलोक में निवास करता है एक वर्ष एकभक्त व्रतकर अन्त में गोदान करै इस रुद्रव्रत के करनेहारा कल्प भर शिवलोक में निवास कर राजा होता है चैत्र मास में तीन दिन स्नान कर नक्तव्रत करै अन्त में दुग्ध देनेहारी पांच गौ दरिद्री और कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै इस गतिव्रत के करनेहारा सब रोगों से और जन्म-मरण से छूट जाता है जो पुरुष कन्यादान करै वह अपने इक्कीस कुलों सहित ब्रह्मलोक को जाता है कन्यादान से अधिक कोई दान नहीं है इस दान के करने से अक्षय स्वर्गवास मिलता है तिलपिष्ट का हाथी बनाय दो रक्तवस्त्र अंकुश चामर कक्ष्या नक्षत्र माला आदि से उसको भूषित कर ताम्रपात्र में स्थापन करै पीछे वस्त्र भूषण आदि से ब्राह्मण मिथुन का पूजन कर कण्ठ प्रमाण जल में स्थित हो वह हस्ती उनको देवै यह कान्तार तरण व्रत करनेहारा सब प्रकार के सङ्कट और पापों से छूटता है और सद्गति पाता है इसमें कुछ संदेह नहीं जो पुरुष एक दिन भी भक्ति से पौरन्दर व्रत करैं उनको प्रलय पर्यन्त स्वर्ग वास मिलता है पंचमी को पयोव्रत करके सुवर्ण का नाग ब्राह्मण को देवै उसको कभी सर्पभय नहीं होता शुक्लपक्ष की अष्टमी

निवास करते हैं जहां सुवर्ण के प्रासाद अप्सराओं के समान नारी और दही दूध की नदी बहती हैं जिनमें पायसका कर्दम होरहा है तीर्थयात्रा करै तो यतिकी भांति संयम से रहै दुष्टों का संग न करै तो चन्द्र सूर्य के तुल्य उत्तम भोग पाता है पौष फाल्गुन के बीच मकर के सूर्य में तीनदिन माघस्नान करै माघके प्रथम दिनही संकल्पपूर्वक स्नान का नियम करै वस्त्र विना ओढ़े स्नान करने जाय तो पद पद में अश्वमेध का फल पावै तीर्थपर जाय स्नान कर मस्तक में मृत्तिका लगाय सूर्य को अर्घ्य दे पितरों का तर्पण कर जल से बाहर निकल इष्टदेव को प्रणाम कर शंख चक्र धारनेहारे पुरुषोत्तम श्रीमाधवका पूजन करे सामर्थ्य होय तो नित्य हवन एक बार भोजन ब्रह्मचर्य और भूमिपर शयन करै और असमर्थ धनाढ्य जितना होसके उतना करै परन्तु प्रातःस्नान अवश्य करना चाहिये तिलों का उबटना तिलों से स्नान तिलों से पितृतर्पण तिलहोम तिलदान और तिलों का भोजन माघमास में करै तो कभी कष्ट न पावै तीर्थ के ऊपर अग्नि प्रज्वलित करै और स्नान के लिये तैल और आमलक देवै इसप्रकार एक मास स्नान कर अन्त में वस्त्र भूषण भोजन आदि से ब्राह्मण दम्पती का पूजन करै और कम्बल वस्त्र रत्न अनेक प्रकार के अंगरखे रजाई जूता और भी जो शीत हरनेहारी वस्तु हैं यथाशक्ति दान करै और (माधवः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै इसप्रकार माघ स्नान करनेहारा अगम्यागमन सुवर्णस्तेय आदि गुप्त प्रकट जितने पातक कियेहों सबसे छूटजाता है और पिता पितामह प्रपितामह माता मातामह प्रमातामह आदि इक्कीसकुल सहित विष्णुलोक को जाता है जो साधारण रीति से भी सूर्योदय से अरुणावर्णा हुये नदीजल में माघमास में स्नान करैं वेभी अपने सात पुरुषों सहित स्वर्ग को जाते हैं।

एकसौग्यारह का अध्याय ।

नित्य स्नान का विधान और तर्पण की विधि ।

श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! मनकी प्रसन्नता और देहकी शुद्धि स्नान विना नहीं होसक्ती इसलिये स्नान अवश्य करना चाहिये नदी आदि में अथवा घर में शुद्ध जल के बीच (ॐनमो नारायणाय) इस मूल मन्त्र से जलमें तीर्थ कल्पना करै चार हाथ लम्बा चौड़ा तीर्थ कल्पना कर हाथ में कुशा लेकर (विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता । पाहि नश्चैनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥ तिस्रःकोट्योर्द्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत् । दिविभुव्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि ॥ नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च । क्षमा पृथ्वी च विहगा विश्वकाया शिवा स्मृता ॥ विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा लोकप्रसादिनी । हेमाह्वया जाह्नवी च शान्ता शान्तिप्रदायिनी) इन मन्त्रों को सात बार पढ़ गङ्गा का आवाहन करै इस आवाहन से अवश्य गंगा का सान्निध्य होजाता है फिर अञ्जलि में जल लेकर तीन चार पांच अथवा सात बार मस्तक पर डाल (अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे । मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना । नमस्ते सर्वलोकानां वसुधारिणि सुव्रते) इन मन्त्रों से मृत्तिका को अभिमन्त्रण कर शरीर में लगाय स्नान करै पीछे आचमन कर शुक्ल वस्त्र पहिन इन मन्त्रों से तर्पण करै (देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां गणाः । क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च राक्षसा जम्भकाः खगाः ॥ वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः । निराश्रयाश्च ये जीवाः पापकर्मरताश्च ये ॥ तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया) सव्य से देवताओं का अपसव्य से मनुष्यों का और कण्ठ में यज्ञोपवीत धार ऋषियों का तर्पण करै (सनकश्च

सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः । कपिलश्चासुरश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ॥ सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा। मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च । देवब्रह्मऋषीन्सर्वांस्तर्पयामि तिलोदकैः) इन मन्त्रों से तिल जल करके तर्पण कर सव्यजानु भूमि पर रख अपसव्य हो अग्निष्वात्त बर्हिषद हविष्मान् आज्यप सोमप आदि दिव्य पितृगणका तर्पण कर अपने पितरों का तर्पण करै (येबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। ते तृप्तिमखिला यान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा) यह मन्त्र पढ़ आचमन कर अपने आगे अष्टदल पद्म लिख अक्षत पुष्प तिल रक्तचन्दन और जल करके (नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुसखाय वै। सहस्त्ररश्मये नित्यं सप्ताश्वाय नमोनमः ॥ नमस्ते सर्ववपुषे नमस्ते सर्वशक्तये । जगत्स्वामिन्नमस्तेस्तु दिव्यचन्दनभूषित ॥ पद्मनाभ नमस्तेस्तु नमस्ते यजुषां पते) इन मन्त्रों से सूर्यनारायण को अर्घ्य देकर तीन प्रदक्षिणा कर ब्राह्मण गौ और सुवर्ण का स्पर्शकर घर में आय विष्णुभगवान् का पूजन करै इस विधि से नदी तड़ाग आदि में पाप और अलक्ष्मी निवर्त्तक स्नान नित्य करना चाहिये।

एकसौबारह का अध्याय।

रुद्रस्नान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! सर्व दुष्टोपशम और सब प्रकार की शान्ति करनेहारे रुद्रस्नान का विधान आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! एक समय अगस्त्य मुनिने स्वामिकार्त्तिकेय से पूछा कि हे शिवपुत्र ! रुद्र स्नान का क्या विधान है और किसको करना चाहिये यह आप वर्णन करैं तब कार्त्तिकेय कहने लगे कि हे अगस्त्यमुनि ! मृतवत्स

बन्ध्या दुर्भगा और कन्या सन्तानही जिस नारीके होयँ उस को यह स्नान अवश्य करना चाहिये अष्टमी चतुर्दशी रविवार भौमवार अथवा और किसी पर्व में नदी के तटपर महानादियों के संगम में शिवालय में गोष्ठमें अथवा अपने घरमें स्नान करै अग्निहोत्री सदाचार धर्मज्ञ और रुद्रकर्म में निपुण ब्राह्मण को पाहिले निमन्त्रण करै गोबरसे लिपा बन्दनबार आदिसे अलंकृत अति सुन्दर चतुरस्र मण्डप बनाय उसके मध्यमें पंचरंगका कमल लिख कर्णिका के बीच महादेवजी का स्थापन करै उनके दोनों ओर पार्वती और विनायक और आठों दलों में इन्द्रादि लोकपालों को स्थापन कर गन्ध पुष्प धूप दीप और गुड़ोदन से पूजन कर मंडप की चारों दिशाओं में भूतबलि देवै अग्निकोण में कुण्ड बनाय लवण सर्षप घृत और मधु से । मानस्तोकेतनये इत्यादि वैदिक मन्त्र करके हवन करावै और एक ब्राह्मण श्वेत वस्त्र श्वेत चन्दन श्वेत पुष्पों की माला कङ्कण कुण्डल अँगूठी आदि से अलंकृत मण्डल के समीप बैठा ग्यारह २ पाठ का एक एक रुद्र पाठ करै इसी भांति दूसरा मण्डल बनाय श्वेत वस्त्र श्वेत पुष्प आदि से अलंकृत उस नारी को मण्डल में बैठाय रुद्रपूजक आचार्य उसको स्नान करावै और अर्कपत्रके दोने में जल लेकर रुद्रैकादशिनी करके उसका अभिषेक कर सातसौचार पत्र अर्क के बहुत सुन्दर और अच्छिद्र लावै और अश्वस्थान गजस्थान बल्मीक संगम ह्रद वेश्यागण राजद्वार और गोष्ठ इन स्थानों की मृत्तिका सर्वौषधि रोचना अनेक नदी और तीर्थों के जल इन सब पदार्थों को एक कलश में डाल उसको स्नान करावै और आठों दिशाओं में अश्वत्थपत्र फल अक्षत सहित जो आठ कलश स्थापन कर रक्खे हैं उनसे क्रम करके स्नान करावै इसप्रकार

स्थापन कर गौ सुवर्ण वस्त्र आदि सहित सब सामग्री आचार्य को देवै और भी ब्राह्मणों को भोजन दक्षिणा वस्त्र आदि देकर क्षमापन करावै इस विधि से जो स्त्री रुद्रस्नान करै वह सौभाग्य सुख और सन्तान पाती है ब्राह्मणों की सम्मति से चाहे जिस काल में रुद्रस्नान करै उस स्त्री के शरीर के सब दोष निवृत्त होजाते हैं और उसके सन्तान चिरञ्जीव होते हैं।

एकसौतेरह का अध्याय।

ग्रहणारिष्टहर स्नानका विधान।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब हम चन्द्र और सूर्य के ग्रहण में स्नान का विधान सुनना चाहते हैं आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! जिस पुरुष की जन्म राशि में ग्रहणहो उसके कल्याण के अर्थ हम स्नान का विधान कहते हैं ग्रहण से प्रथमही ब्राह्मणों का वरणकर स्वस्तिवाचन कराय शुक्ल वस्त्र आदि से गुरुका पूजनकर चार कलश चार समुद्र मान कर स्थापन करै उनमें अश्वस्थान गजस्थान आदि से मृत्तिका लाकर डाले और प्रत्येक कुम्भ में गोरोचन पञ्चगव्य पञ्चरत्न पद्म शङ्ख स्फटिक श्वेतचन्दन हाथीदांत केशरि उशीर गूगल सर्षप और तीर्थजल डाल उनमें इन मन्त्रों से देवताओं का आवाहन करै (सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदास्तथा । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥ योसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः । सहस्रनयनश्चेन्द्रो पीडामन्तर्व्यपोहतु ॥ मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः । चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु ॥ यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मराजेति विश्रुतः । यमश्चन्द्रोपरागाच्च पीडामत्रव्यपोहतु ॥ रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयाग्निसमप्रभः । खड्गहस्तोतिभीमश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥ नागपाशधरो देवः

नदामकरवाहनः । सजलाधिपतिश्चन्द्र ग्रहपीडां व्यपोहतु ॥ प्राणरूपो हि यो लोकान्याति नित्यं नभोगतिः । वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां पीडां सद्यो व्यपोहतु ॥ योसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः । चन्द्रोपरागकलुषं धनदोत्र व्यपोहतु ॥ योसौ महेश्वरो देवः पिनाकी वृषवाहनः । चन्द्रोपरागपापानि स नाशयतु शङ्करः ॥ त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणीतराणि च । ब्रह्मार्कविष्णुयुक्तानि तानि पापं दहन्तु वै) इन मन्त्रों से कलश में देवावाहनकर इन्हीं मन्त्रों से उनको अभिमन्त्रण करै पीछे तीनों बेद के मन्त्र और इन मन्त्रों से यजमानका अभिषेककर ये सब मन्त्र पत्रोंमें लिख यजमान के शिरपर रख स्नान करावै ग्रहण के अनन्तर शुक्ल वस्त्र माला आदि से भूषित हो गोदान करै सब सामग्री आचार्य को देवै और यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय वस्त्र दक्षिणा गौ आदि ब्राह्मणों को दे सन्तुष्ट करै इस विधि से जो स्नान करै उसको कभी ग्रहणजनित पीड़ा नहीं होती और परम सिद्धि पाताहै सूर्यग्रहण होय तो मन्त्रों में चन्द्रपदके स्थान में सूर्यपद लगालेवै जो इस विधान को नित्य श्रवण करै अथवा सुनावै वह सब पापों से छूट इन्द्रलोक में निवास करता है ।

एकसौचौदह का अध्याय ।

मरण का विधान ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! मरण के समय गृहस्थ पुरुष को किस प्रकार से प्राण त्यागने चाहिये यह आप वर्णन करैं हमको श्रवण करने का बड़ा कुतूहल है यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! जब पुरुष अपना मृत्यु समीप जानै तो गरुड़ध्वज विष्णु भगवान् का चिंतन करै और शुचि हो स्नान कर सब उपचारों से नारायण का पूजन कर अनेक प्रकार

के पुण्य स्तोत्रों से स्तुति कर यथाशक्ति गौ भूमि सुवर्ण वस्त्र घर आदि दान करै और बंधु पुत्र कलत्र क्षेत्र धन धान्य आदि से अपना चित्त निवृत्त करै मित्र शत्रु को समान समझै और सब कर्मोंका त्यागकर ये वाक्य कहै (परित्यजाम्यहं भोगांस्त्यजामि निखिलाञ्जनान् । धनादिकं मयोत्सृष्टनुत्सृष्टं चानुलेपनम् ॥ शुश्रूषणादिकं चैव दानमानादिकं तथा । होमादयः कृता ये ये सदा नित्यक्रिया मया ॥ नैमित्तिकास्तथा काम्याः श्राद्धधर्मा मयेप्सिताः । त्यक्तश्चाश्रमिणां धर्मो वर्णधर्मस्तथा मया। आभ्यां कराभ्यां विहनन् कुर्वन् कर्म सुदुःसहम्। न पापं कस्यचित्कुर्यां प्राणिनः सन्तु निर्भयाः ॥ नभसि प्राणिनो ये च ये जले ये च भूतले । क्षितेर्विवरगा ये च ये च पाषाणसम्पुटे ॥ ये धान्यादिषु वस्त्रेषु शयनेष्वासनेषु च । ते तिष्ठन्तु सुखं नित्यं दत्तं तेभ्योऽभयं मया॥ न मे सुबन्धवः कश्चिद्विष्णुं मुक्त्वा जगद्गुरुम् । मित्रपक्षे च विष्णुर्मे खं चोर्ध्वं च तथा दिशि ॥ पार्श्वतो मूर्ध्नि हृदये वायव्यां वाचि चक्षुषि । श्रोत्रादिषु च सर्वेषु स मे विष्णुः प्रतिष्ठितः) ये मन्त्रपढ़ सबका त्यागकर दक्षिणाग्र कुशा बिछाय पूर्व अथवा उत्तर की ओर शिरकर शयनकर विष्णु भगवान् का चिन्तन करै (विष्णुं कृष्णं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम् । नारायणं नरं सौरिं वासुदेवं जनार्दनम् ॥ वाराहं यज्ञपुरुषं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् । वामनं श्रीधरं कृष्णं सुरेन्द्रमपराजितम् । पद्मनाभं हरिं श्रीदं दामोदरमधोक्षजम् । सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धं प्रभुं वामनमीश्वरम् ॥ चक्रिणं गदिनं शान्तं शाङ्गिनं गरुडध्वजम् । किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्ययम् ॥ अहंमास्मिञ्जगन्नाथे मयि चास्तु जनार्दनः । अनयोरन्तरं मास्तु अग्नियुक्ताशमी इव ॥ अयं विष्णुरयं शौरिरयं कृष्णः पुरो मम। नीलोत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥ एष पुण्यतमो विष्णुं पश्याम्यहमधोक्षजम्) इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ श्रीविष्णु-

भगवान् को प्रणाम करै और (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) इस मन्त्र को निरन्तर जपै और प्रसन्नमुख शंख चक्र गदा पद्मधारे केयूर कटक कुण्डल श्रीवत्स पीताम्बर आदि से भूषित नवीन मेघके समान श्यामवर्ण ऐसा रूप विष्णु भगवान् का ध्यावै अथवा जिस रूपपर अपना मन स्थिर होय उसी का ध्यान करै इस प्रकार जो प्राण त्याग करै वह सब पापों से छूट विष्णु भगवान् में लीन होजाता है इतना सुन राजा युधिष्ठिर बोले कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! यह विधान जो आपने कहा सो स्वस्थचित्त रहने से हो सक्ता है परंतु मरण के समय तरुण और आरोग्य पुरुषों की भी चित्तवृत्ति मोह को प्राप्त हो जाती है वृद्ध और रोगियों की तो कथा ही क्या है अति वृद्ध और रोगग्रस्त क्योंकर कुशा के शयन पर बैठ ध्यान कर सक्ता है इसलिये और कोई उपाय आप कहैं कि जिससे निष्फल मरण न होय यह राजा का वचन सुन श्री कृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! यही मुख्य उपाय है कि जो और कुछ भी न होसके तो सब ओर से चित्तवृत्ति रोक कर गोविन्द स्मरण करता हुआ प्राण त्याग करै क्योंकि जिस २ भाव को स्मरण करता हुआ अन्त में शरीर त्यागै उस २ भाव करके भावित उसीको प्राप्त होता है इसलिये सब प्रकार से वासुदेव का चिन्तन करना चाहिये राज्य उपभोग भोजन वाहन स्त्री गन्ध माल्य मणि वस्त्र भूषण आदि में जो अत्यन्त मोह से इच्छा रहै उसका नाम आर्त्ति ध्यान है दहन हनन ताड़न प्रहार में चित्त जाय दया न उत्पन्न होय और मन तथा इन्द्रिय वश में न रहैं यह रौद्र ध्यान है सूत्रार्थ वेद महाव्रत आदि का भावन इन्द्रियों का उपशम मोक्ष की चिन्ता शम दम और गंगादिकों का स्मरण जिसमें होय उसका नाम धर्म ध्यान है सब इन्द्रिय अपने २ विषयों

से निवृत्त होजायँ हृदय में इष्ट अनिष्ट का कुछ चिन्तन न रहे और आत्मा स्थिर होकर परमेश्वर में निविष्ट होय इसका नाम शुक्लध्यान है आर्त्ति और रौद्र ध्यान से असद्गति होती है धर्मध्यान से स्वर्गवास मिलता है और शुक्लध्यान से मोक्ष प्राप्ति होती है इसलिये ऐसाही प्रयत्न करना चाहिये जिससे शुक्ल ध्यान स्थिर होय सात हजार दिव्य वर्ष जल में सोलह हजार अग्नि में गौओं के घर में साठ हजार वर्ष और युद्धमें प्राण त्यागने करके अस्सी हजार वर्ष स्वर्गवास होता है परन्तु अनशन व्रत करके प्राण त्यागने से अक्षयगति मिलती है।

एकसौपन्द्रह का अध्याय।

तड़ागादिकी प्रतिष्ठा व बनानेका विधान व फल व समुद्रस्नान की विधि।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! तड़ाग वापी कूप आदि जलाशय का उत्सर्ग किस विधि से और किस समय में किया जाता है यह सब आप वर्णन करें यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! आप ने बहुत उत्तम बात पूछी अब हम तड़ागादि का उत्सर्ग विधान कहते हैं प्रथम सुन्दर सोपान अर्थात् पैंड़ियों करके युक्त पक्का तलाव बनावै जिसकी पाल दृढ़ हो और चारों ओर वृक्ष लगावै जब वह तड़ाग कार्त्तिक महीने में जल से पूर्ण होजाय उस समय स्थिर नक्षत्रों में उसका उत्सर्ग करै अश्वत्थ उदुम्बर प्लक्ष और वट के काष्ठ के दण्डों पर दिक्पालों के रंग की पताका लगाय दिशाओं में स्थापन करै मध्य में पंचरंग का बड़ाध्वज स्थापन करै यजमान के चार हाथ अथवा पांच हाथ प्रमाण की वेदी मध्य में यूप करके भूषित बनावै कदम्ब अश्वत्थ पलाश और विकङ्कतवृक्ष के काष्ठ का यूप चारों वर्णों के लिये क्रमसे कहाहै और ब्राह्मणके लिये वट और बिल्वका क्षत्रियको खदिर का वैश्य को उदुम्बर और शूद्र को महुआ के काष्ठ

का यूप भी बनाना योग्य है और विभीतक उदुम्बर शाक और शाल्मलि वृक्ष का यूप शूद्र बनावै अष्ट दिक्पालों की मूर्त्ति रंग करके लिखै और ब्रह्मा सावित्री विष्णु लक्ष्मी और रुद्र पार्वती की मूर्त्ति भी लिखै पीछे उनका सब उपचारों से पूजन कर चारों दिशाओं में हस्त प्रमाण और तीन मेखला करके युक्त कुण्ड बनावै और उत्तम वस्त्र पहिने सुवर्ण के भूषण और पुष्प माला चन्दन आदि से अलंकृत सोलह अथवा आठ होता अर्थात् हवन करनेवाले ब्राह्मण कल्पना करै और वेद वेदांग इतिहास पुराण आदि जाननेहारा शान्तचित्त आचार्य होय ताम्रपात्र मृत्तिका के पात्र होम के लिये समिधा तिल और भी जो सामग्री अपेक्षितहो सब एकत्र कर ग्रह यज्ञ के विधान से वेदी में स्थापन किये देवताओं के नाम से और वारुण मन्त्रों से हवन कर इन्द्रादि लोकपालों को अपनी २ दिशा में बलि देवै मण्डप के द्वारों में सुवर्ण और पल्लवों सहित कलश स्थापन करै अश्वत्थपत्रों की बन्दनमाला बांधे सुवर्ण का कूर्म ताम्र का मकर चांदी का मत्स्य रांग का मेडक शीशे का डुण्डुभ हंस आदि श्वेतपक्षी चांदी के और चक्रवाक आदि पीतवर्ण पक्षी सोने के और चांदी की जलौका बनाय सबको ताम्रपात्र में स्थापन करै नाम मन्त्र से इन सबकी प्रतिष्ठा और पूजा कर वैदिक मन्त्रों से यूपकी प्रतिष्ठा करै कुंकुम चन्दन आदि से यूपको लिप्तकर पुष्प धूप दीप आदि से उसका पूजन करै फिर आचार्य चरुश्रपण कर व्याहृतियों से हवन कर गीत वाद्य आदि से वरुण का आवाहन कर ताम्रपात्र को जल में लेजाय वरुण को निवेदन कर और भी रत्न और अनेक प्रकार के बीज वरुण के निमित्त जल में छोड़ै फिर एक गौ को प्रदक्षिणा कर यजमान उसका पूँछ पकड़ अपनी भार्या सहित जल का

अवगाहन करै फिर जल से निकल वह गौ और यथाशक्ति दक्षिणा ब्राह्मण को देवै और कुद्दाल आदि आयुधों का पूजन कर कर्मकारों का भी सत्कार करै और (सामान्यं सर्वभूतेभ्यो मया दत्तमिदञ्जलम् । तेन मे भगवान्नित्यं वरुणः प्रीयतां मुदा) यह मन्त्र पढ़ थोड़ा जल तड़ाग में डालै पीछे हजार से लेकर एकतक जितनी सामर्थ्य होय उतनी गौ ब्राह्मणों को देवै यह तड़ाग के उत्सर्ग का विधान है अब हम वापी और कूप की प्रतिष्ठा का विधान कहते हैं कुण्ड मण्डप वेदी यूप भूषण वस्त्र आदि सब सामग्री पूर्वोक्तरीति से इसमें भी एकत्र कर वापी के चारों कोणों में तीर्थजल से पूर्ण पुष्प चन्दन श्वेत वस्त्र आदि से भूषित चार कलश स्थापन करै और पूर्व रीति से व्याहृतिहोम और ग्रहहोम कर वरुण और लोकपालों को बलि देकर वरुणसूक्तों का पाठ करै वेदी के मध्य में पञ्चरङ्ग से कमल लिख उसके मध्य में शिव ब्रह्मा और विष्णु का पूजनकर मत्स्य कच्छप मण्डूक आदि का पूर्वरीति से अधिवासन करै (मित्र-मित्रोसि भूतानां धनदो धनकारिणाम् । वैद्यो व्याध्यभिभूतानां शरण्यः शरणार्थिनाम्) इस मन्त्रसे वरुणका विसर्जन करै और पूजा के प्रारम्भ में (नमस्ते विश्वगुप्ताय नमो विष्णो अपांपते । सान्निध्यं कुरु देवेश समुद्रे यद्रदत्र वै) इस मन्त्र से आवाहन करै ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै और एक उत्तम गौ एक ब्राह्मण को देवै इन तड़ाग आदि की प्रतिष्ठाओं में अनिवारित भोजन देना चाहिये इसमें वित्तशाठ्य न करै तड़ागादिकों का जल उत्सर्ग किये विना अशुचि होता है विना मन्त्र कुशाग्र करके भी समुद्र का स्पर्श न करै । अग्निवाचो इत्यादि वैदिक मन्त्र से पहिले अभिमन्त्रण कर समुद्र में स्नान करै । श्रावण मास में शतभिषा नक्षत्र में फल मूल अक्षत आदि करके समुद्र को अर्घ्य देकर पीछे स्नान करै तो हजार जन्मों में किये पाप

क्षणमात्र में नष्ट होजाते हैं विधिपूर्वक कर्म करने से कर्त्ता और कारयिता स्वर्ग को जाते हैं और विधिहीन कर्म से दोनों का नरक में पात होता है तड़ाग आदि बनाकर प्रतिष्ठा न करै तो उसका बनवाना ही निष्फल है तड़ाग आदि बनाने हारा रत्न जटित सुवर्ण के विमान में बैठ दिव्य लोक को जाता है इस रीति से उत्सर्ग कर आठ दिन तक बड़ा उत्सव करै कर्मकार स्थपति शिल्पी सूत्रधार आदि भी जलाशय बनाने से स्वर्गको प्राप्त होते हैं जलाशय खोदने के समय जितने जीव मरैं वें सब उत्तम गति को प्राप्त होते हैं धेनु के शरीर में जितने रोम होयँ उतने दिव्य वर्ष कूप आदि बनानेवाला स्वर्ग में रहता है और तड़ाग बनानेवाला करोड़ों युग पर्यन्त स्वर्ग सुख भोगता है उस के जो कोई पितर दुर्गति को प्राप्त भये हों वे सब स्वर्ग को जाते हैं पितर नाचते हैं कि हमारे कुल में ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जलाशय बनाया छोटासा भी जलाशय बनावे जिसमें एक गौकी भी तृषा निवृत्त होय तो अनन्त फल होता है संसार के स्त्री पुत्र धन आदि सब पदार्थ नश्वर हैं तड़ाग वापी देवालय और सघन छायावाला वृक्ष ये चारों संसार से उद्धार करते हैं इसलिये सर्वस्व करके भी एक जलाशय अवश्य बनाना चाहिये जिस भांति पुत्र के देखने से माता का स्वरूप ज्ञात होता है इसी भांति जलाशय देखने और उसका जल पीने से कर्त्ता का शुभाशुभ ज्ञात होता है इसलिये न्याय से धन उपार्जन कर तड़ाग आदि बनावे जो धूप और गरमी से व्याकुल पान्थ जहां आकर ठंढा जल पान कर तट के उपर वृक्षों की घनी और ठंढी छाया में विश्राम करैं तड़ागादि बनानेहारा अपने दोनों कुलों का उद्धार करताहै इष्टापूर्त्त करनेहारा पुरुष कृतकृत्य होता है इस लोक में जो तड़ाग आदि बनाता है उसी का

जन्म सफल है और वही अजर अमर है जब तक तड़ाग आदि बने रहें और जब तक तड़ाग आदि बनाने की कीर्त्ति रहें तब तक वह कैलास में सुख भोगता है धन्य हैं वे पुरुष कि जो हंस आदि पक्षी और कमल कुवलय आदि पुष्पों करके मण्डित अपने बनाये तड़ाग में लोकों को जल पीते देखते हैं जिसके तलाव में घट अंजलि मुख चंचु आदि करके अनेक जीव जल पीते हैं उसी का जन्म सफल है उत्तम तड़ाग बनाय उस के तट पर देवालय भी बनावै तो उनके पुण्य का कहां तक वर्णन करें देवालय की ईंट जब तक खण्ड २ न होजायँ तब तक देवालय बनानेवाला स्वर्ग में निवास करता है ऐसे स्थान में कूप बनावै जहां बहुत जीव जल पीवैं और स्वादु जल उस में होय तो बनानेवाले के सात कुलोंका उद्धार होजाता है जिस के बनाये कूप का स्वादु जल मनुष्य पीवैं उस ने सब पुण्य किये जो पुरुष तड़ाग बनाय उस के तटपर वृक्षों के बीच उत्तम देवालय बनावै उसकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त होती है और बहुत काल दिव्य भोग भोग कर चक्रवर्ती राजा होता है जिनके बनाये तलाव वापी कूप धर्मशाला आदि हैं जो अन्न दान करते हैं और जिनके वचन अति मधुर हैं यमराज उनका नाम भी नहीं लेते।

एकसौसोलह का अध्याय।

वृक्षलगाने का माहात्म्य और वृक्षोद्यापन का विधान।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आप वृक्ष लगाने का माहात्म्य और वृक्षोद्यापन का विधान वर्णन करें यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! आप ने बहुत उत्तम बात पूछी पांच वृक्ष लगाये बहुत उत्तम और दश पुत्र भी उत्पन्न किये किसी अर्थ नहीं धन्य हैं वृक्ष कि जो अपने पुष्प पत्र फल मूल वल्कल काष्ठ

और छायाकरके किसी अर्थीको निराश नहीं करते पुत्र तो क्या जाने वर्षभर में एक दिन श्राद्ध करैं अथवा न करैं और वृक्ष नित्यही अपने फल पुष्प आदि करके आरोपण करनेहारे का श्राद्ध करते हैं न वह फल अग्निहोत्र आदि कर्मों से होय और न पुत्र उत्पन्न करने से जो वृक्ष लगाने से होताहै सच्छाया सपुष्पा और सफला वृक्ष वाटिका कुल स्त्री की भांति अपने भर्त्ता को दोनों लोकों में सुख देनेहारी होती है अशोक पल्लव हैं कर जिसके तिलकरके भूषित हैं मुख जिसका ऐसी वृक्ष-वाटिका वेश्या की भांति सब के उपभोग के योग्य जो लगावै उसको अवश्य उत्तम लोक प्राप्ति होती है वह पुरुष नित्य गायत्री जपका नित्य दान का और नित्य यज्ञ करने का फल पाता है जो वृक्ष लगाता है एक पीपल एक नींब एक वट दश इमली कैथ बिल्व और आमलक ये तीन और पांच आम्र के वृक्ष जो पुरुष लगादेवै वह कभी नरक नहीं देखता धनाढ्यों के घरमें अतिथि का सत्कार हो वा न हो परन्तु वृक्ष तो फल पुष्प आदि करके अवश्यही सबका सत्कार करता है जिसने जलाशय न बनवाया और एक भी वृक्ष न लगाया उसने संसार में जन्म लेकर क्या किया वृक्षों के तुल्य कोई परोपकारी नहीं है कि आप धूप में खड़े रहकर दूसरे को छाया करते हैं और फल पुष्प आदि से सबकी शुश्रूषा करने में तत्पर रहते हैं पार्वतीजी ने मन्दराचल में अपना पुत्र कल्पना कर शोकनाशन अशोक वृक्ष लगाया और जातकर्म आदि सब संस्कार उसके किये अब हम सब पाप हरनेहारा और कीर्त्तिवर्द्धन वृक्षोद्यापन का विधान कहते हैं कांटोंवाला कुबड़ा कोटर युक्त कीट जिसमें लगें और स्त्रीलिंग जिसका नाम हो ऐसा वृक्ष न लगावै उत्तम वृक्ष आरोपण कर उसके चारों ओर जल के लिये आलवाल छोड़ पक्का चौतरा बांध

उत्तम मुहूर्त्त में उसका उद्यापन करै पहिले दिन वृक्ष को पताकाओं से अलंकृत कर रक्त वस्त्र उढ़ाय रक्त सूत्र से वेष्टित कर उसका अधिवासन करै चारों दिशाओं में श्वेत वस्त्रों से आच्छादित पंचपल्लव भूषित चन्दन और पुष्प माला से अलंकृत रत्नयुक्त चार कलश स्थापन करै और भी जो वृक्ष उसके समीपहों सब को रक्तसूत्र से वेष्टित कर पताका से अलंकृत करै और सबके मूल में एक २ कलश स्थापन करै सुवर्ण के पत्र और फल पन्द्रह अथवा दश बनाकर सब बीजों सहित ताम्रपात्र में रक्खै और वाद्य घोष सहित सब दिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों को बलि देवै इस प्रकार मन्त्रवेत्ता आचार्य अधिवासन करै दूसरे दिन प्रभातही मेखला सहित कुण्ड बनाय ग्रह यज्ञ विधान से शांति कर्म का आरम्भ करै पहिले सुवर्ण वस्त्र आदि करके चार अथवा आठ ब्राह्मणों का पूजन कर उनसे घृत और तिलों का हवन करावै मातृका स्थापन कर पुष्प और अक्षतों करके उनका पूजन करै पीछे पायस और घृत करके परिप्लुत चरु सिद्धकरके होम करै और जातकर्म से लेकर गोदान पर्यन्त सब संस्कार वृक्ष के करै पहिले वृक्ष को स्नान कराय जातकर्म अन्नप्राशन कर सुवर्ण सूची से कर्णबेध करै चूड़ाकरण कर मुञ्जकी मेखला और वस्त्र पहिनावै पीछे गोदान संस्कार करै कोई आचार्य कहते हैं कि माधवीलता मालती अथवा सल्लकी के साथ वृक्ष का विवाह भी करना चाहिये इस प्रकार प्रतिष्ठा कर ब्राह्मण उस वृक्ष को आशीर्वाद देवैं और यजमान पुष्पांजलि लेकर (ये शाखिनः शिखरिणां शिरसो विभूषा ये नन्दनादिषु वनेषु कृतप्रतिष्ठाः । ये कामदाः सुरनरोरगकिन्नराणां ते मे नतस्य दुरितार्त्तिहरा भवन्तु ॥ एतैर्द्विजैर्विविधदत्तहुतैर्हुताशः पश्यत्यसावहिमदीधितिरम्बरस्थः । त्वं वृक्षपुत्र परिकल्पनया

वृतोसि कार्यं सदैव भवता मम पुत्रकार्यम्) ये मन्त्र पढ़ पुष्पाञ्जलि दे घृतमें मुख देख वृक्षको पुत्रकी भांति बार बार लालन कर (अङ्गादङ्गात्संभवति हृदयाच्चाभिजायते । आत्मा वै पुत्र नामासि त्वं जीव शरदां शतम्) यह मन्त्र पढ़ आशीर्वाद देवै ब्राह्मणों को दक्षिणा देवै और आचार्य को उत्तम धेनु देकर बड़ा उत्सव करै दीन अनाथों को अनिवारित भोजन देवै औरों को भी प्रसन्नहो सुरा आसव आदि देवै और दास कर्मकार आदि सब का यथाशक्ति सत्कार करै सायङ्काल के समय अपने भाई बन्धुओं सहित भोजन करै इस विधि से जो वृक्षोंका उत्सव करै वह दोनों लोकों में अभीष्ट फल पाता है पुत्रों के विना मनुष्यों की शुभगति नहीं होती और कुपुत्र होने से दोनों लोकों का नाश होता है यह विचार उत्तम वृक्ष लगाय शास्त्रकी रीति से उनको पुत्र कल्पना करै।

एकसौसत्रह का अध्याय।

देवप्रासाद बनाने का देवप्रतिमा स्थापन का और देवताकी गन्धादि उपचार समर्पण करने का फल।

श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! जो पुरुष अति रमणीय देवालय बनावै उनका यह शरीर नष्ट होजाने पर भी कीर्त्तिमय शरीर स्थिर रहता है जो शुभ्रवर्ण अति ऊँचे और पताकाओं करके अलंकृत देवप्रासाद बनावैं वे संसार में अनेक प्रकारके सुख भोग स्वर्ग को जाते हैं जो उत्तम प्रासाद बनाय उनके बीच सुवर्ण चांदी ताम्र पाषाण अथवा लोह की प्रतिमा स्थापन करते हैं वे अनेक राजाओं करके सेवित चक्रवर्त्ती राजा होते हैं जो मेरु नामक प्रासाद में देवप्रतिमा स्थापन कर पंचामृत से स्नान कराते हैं वे दिव्य कल्प इन्द्र बनके स्वर्ग का राज्यकर चक्रवर्त्ती होते हैं जो उत्तम चन्दन से देवताओं को अनुलेपन करैं वे दिव्य गन्धयुक्त देहधार

नन्दनवन में अप्सराओं के साथ विहार करते हैं जो सुगन्ध युक्त कमल उत्पल आदि दिव्य पुष्पों करके देवताओं का अर्चन करते हैं वे विमान में बैठ स्वर्ग को जाते हैं जो दिव्य धूपों से देवताओं को धूपित करैं वे दिव्य देहधार स्वर्ग में जाय देवांगनाओं के साथ विहार करते हैं जो देवता पर वस्त्र चढ़ाते हैं वे दिव्य भूषण वस्त्र और दिव्य मालाओं करके भूषितहो उत्तम सिंहासन पर बैठते हैं और दिव्यांगना उनके ऊपर सुवर्ण- दण्ड के चामर धूनन करती हैं देवालय में दीप प्रज्वलित करै तो दिव्य देहधार दिव्य नारियों करके वेष्टित रत्नजटित सुवर्ण के विमान में दीप्यमान होता है जो देवालय में जागरण कर नृत्य गीत आदि उत्सव करै उसको अप्सरा और गन्धर्व गीत नृत्य से प्रसन्न करते हैं जो पुरुष देवालय में लेपन आदि करैं वे स्वर्ग में जाय रत्नप्रासादों के बीच निवास करते हैं जो पुरुष देवालय में परमभक्ति से घण्टा वितान छत्र चामर आदि चढ़ावै वह उत्तम रत्नों का स्वामी और चक्रवर्ती होता है जो पुरुष स्तुति वचनरूप पुष्पों से देवताओं का अर्चन करैं और प्रणाम करैं वे दोनों लोकों में उत्तम फल पाते हैं।

एकसौअठारह का अध्याय।

देवालय में दीपदान का विधान फल और ललिता नाम एक रानी की कथा।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! कौन से तप से नियम से व्रत से अथवा दानसे अत्यन्त तेजोयुक्त शरीर इस लोक में होता है यह आप कथन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! एक समय पिंगल नाम तपस्वी मथुरा में आये उनको हमारी पत्नी जाम्बवती ने यही बात पूछी थी जाम्बवती के प्रति

जो उनने कहा वही हम आपको कथन करते हैं संक्रान्ति सूर्य चन्द्रग्रहण वैधृति व्यतीपात उत्तरायण दक्षिणायन विषुव एकादशी शुक्ल चतुर्दशी तिथिक्षय सप्तमी अष्टमी आदि पुण्य दिनों में स्नान कर व्रत रख स्त्री अथवा पुरुष अंगण के बीच घृतकुम्भ और वस्त्र सहित प्रज्वलित दीपक भूमिदेवों को देवै इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि भूमिदेव ब्राह्मण किसको कहते हैं यह हमारा संशय प्रथम आप निवृत्त करैं तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज़ ! पूर्वकाल में सत्ययुग के बीच त्रिशंकु राजा सदेह स्वर्ग को जाना चाहता था उसको वशिष्ठजी ने चण्डाल बना दिया त्रिशंकु ने यह सब वृत्तान्त विश्वामित्रजी से कहा विश्वामित्रजी को बड़ा क्रोध हुआ और दूसरी सृष्टि रचने का आरम्भ किया और सब देवताओं सहित दूसरा स्वर्ग त्रिशंकु के लिये बनाने लगे शृङ्गाटक नालिकेर ऊँट भेड़ वृन्ताक कोद्रव कूष्माण्ड आदि पदार्थ बनाये और नये सप्तर्षि तथा देवताओं की प्रतिमा बनाईं उस समय इन्द्र ने आय प्रार्थना कर विश्वामित्रजी को सृष्टिनिर्माण से रोका वे प्रतिमा जो विश्वामित्रजी ने बनाईं थीं उनमें ब्रह्मा विष्णु आदि देवताओं का सान्निध्य भया वही भूमिदेव कहाये और अपने भक्तों को वर देने लगे उनके सम्मुख दीपदान करना चाहिये चार प्रस्थ घृतका प्रज्वलित दीप रक्तवस्त्र सहित (तद्विष्णोः परमं पदम्) इत्यादि मन्त्र से सूर्यनारायण को निवेदन करै पीत वस्त्र युक्त विष्णु भगवान् को श्वेत वस्त्र युक्त शिवजी जो कौसम्भ वस्त्र युक्त रवि को लाक्षारस रंजित वस्त्र युक्त दुर्गा को नील वस्त्र युक्त कामदेव को खादिर वर्ण वस्त्र युक्त गणेश को नागों को कृष्ण वस्त्र युक्त दीप निवेदन करै और यह विशेष श्रवण करो कि सूर्य को पूर्णवर्ति शिवको ईश्वरवर्ति विष्णु को भोगवर्ति

ब्रह्माको पद्मवर्ति गौरी को सौभाग्यवर्ति काम को अशोकवर्ति दुर्गाको रक्तवर्ति और नागोंको नागवर्ति युक्त दीपक देवै प्रथम देवताका पूजन कर पीछे बड़े पात्र में घृत भरकर दीपदान करै इस विधि से जो दीपदान करै वह देदीप्यमान विमान में बैठ स्वर्ग में जाता है और वहां प्रलय कालपर्यन्त निवास करता है जिस प्रकार दीप प्रकाशित रहता है उसी प्रकार दीपदान करनेहारा भी प्रकाशित होता है और दीपक शिखा की भांति उसकी भी ऊर्ध्वगति होती है घृत से अथवा तैल से दीपदान करै दीप का तैल और किसी काम में न लगावै और दीपका निर्वापण तथा हरण भी न करै दीपतैल से कर्म करनेहारे के नेत्र में फूला पड़ता है दीप बुझा देनेवाला काणा होता है और दीपका हरण करै तो अंधा होय ललिता नाम रानी नित्य दीपदान किया करती उसको सपत्नियों ने पूछा कि हे ललिते! दीपदान का फल तू हमको भी सुनाव तेरी इतनी भक्ति दीपदान में क्योंकर है तब ललिता कहने लगी कि हे सखियो! मुझे तुम्हारे साथ मत्सर और ईर्षा नहीं है इसलिये मैं दीपदान का फल तुमको सुनाती हूँ ब्रह्माजी ने मनुष्यों के उद्धार के लिये साक्षात् पार्वतीजी को देविका नदीरूप से भूमि पर उतारा जिसमें एक बार भी स्नानकर मनुष्य शिवजी का गण होता है जहां नृसिंहजी ने स्नान किया है उस नृसिंह तीर्थ में स्नान करने से सब पाप निवृत्त हो जाते हैं सौवीरक नाम राजा जिसके मैत्रेय पुरोहित थे उसने देविका के तट पर विष्णुमन्दिर बनाया और नित्य पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से वहां पूजन किया करता एक दिन कार्त्तिकी पूर्णिमा को वहां दीपदान किया और बड़ा उत्सव कराया अन्त में सब निद्रावश हो गये उस समय वह दीप निर्वाण होने लगा इसी अवसर में एक मूषिका

जो उसी मन्दिर में रहती थी दीपका घृत चाटने निकली और दीपक की बत्ती को अगली ओर खैंचा इस से वह दीप चैतन्य हो गया और जलने के भय से घृत भी न खासकी वही मूषिका मर कर विदेह राजा की पुत्री मैं भई जो इस धर्मनिष्ठ राजा कीं रानी और तुहारी सपत्नी हूं विना इच्छा भी मैं ने दीपक की बत्ती निकाली उस का यह फल भया जो पुरुष भक्ति से कार्त्तिकी पूर्णिमा को विष्णुमन्दिर में दीपदान करते हैं उनके फल का तो क्या वर्णन करैं मैं दीपदान का फल भली भांति जानती हूं इसीलिये नित्य देवालय में दीप जलाती हूँ यह ललिता का वचन सुन उसकी सब सपत्नी भी दीपदान करने लगीं और बहुत काल राज्य सुख भोग सब की सब अपने पति सहित विष्णुलोक को गईं इस प्रकार और भी जो पुरुष अथवा स्त्री दीपदान करै वह उत्तम तेज और विष्णुलोक में वास पाता है ।

एकसौउन्नीस का अध्याय ।

वृषोत्सर्ग का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! कार्त्तिकी पूर्णिमा अमावास्या अयन संक्रान्ति चैत्र शुक्ल तृतीया अथवा वैशाख की द्वादशी को चार बछियाओं सहित नील वर्ण के उत्तम वृष को छोड़े तो अनन्त पुण्य होता है इस का विधान गर्गमुनि ने हम को इस प्रकार उपदेश किया है कि पहिले मातृकापूजन कर अभ्युदयकारक मातृश्राद्ध करै फिर रुद्र पूजन कर घृत से हवन करै और जीववत्सा और दूध देनेहारी गौ का एक रंग का सर्वांग सुन्दर तरुण बछड़ा लेकर वाम भाग में त्रिशूल और दक्षिण भाग में चक्र से अंकित कर कुंकुम आदि से अनुलिप्त करै और चार तरुण बछियाओं को भी भूषित कर उनके कान में (पतिर्वो बलिनं पुष्टं सुन्दरं तरुणं

शुभम् । ददाति तेन सहिताः क्रीडध्वं हृष्टमानसाः) यह वाक्य कहै फिर उनको वस्त्र उढ़ाय भोजन से सन्तुष्ट कर देवालय में गोष्ठ में अथवा नदी संगम आदि स्थानों में छोड़ै स्वेच्छाचारी गर्जता हुआ बड़े ककुद् अर्थात् थुही करके युक्त और अहंकार से पूर्ण ऐसा वृष छोड़नेवाले पुरुष धन्य हैं इस विधि से जो वृषोत्सर्ग करै उस के दश पुरुष पिछले और दश अगले सद्गति को प्राप्त होते हैं वृष जो नदी में उतरै और जो जल उस के शृंग आदि से उड़ै और जिस जल को वह पुच्छ से स्पर्श करै वह सब उसके पितरों को अक्षय तृप्ति देनेहारा होता है शृंगों करके जो भूमि को खोदता है वह उस छोड़नेवाले के पितरों की तृप्ति के लिये मधुकुल्या बनती है चार हज़ार हाथ लम्बे चौड़े तड़ाग बनाने से जो पितरों को तृप्ति होती है वही एक वृष छोड़ने से होती है मधु और तिल युक्त पिण्डदान से भी वह तृप्ति पितरों को नहीं होती जो एक वृषोत्सर्ग करने से होती है बहुत से पुत्र उत्पन्न करने चाहिये जिनमें से एक भी गयाको जाय पिण्डदान करै अथवा पितरों के निमित्त वृष छोड़ै जो पुरुष अपने पितरों के उद्धार के लिये वृष छोड़ै वह आप भी स्वर्गवास पाता है।

एकसौबीस का अध्याय।

होलिका की उत्पत्ति और फलसहित विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! फाल्गुन पूर्णिमाको ग्राम ग्राम और नगर नगर में क्यों उत्सव होता है बालक क्यों क्रीड़ा करते हैं और घर घर में होली क्यों जलाई जाती है शीतोष्णा और अडाडा उसको क्यों कहते हैं और किस देवताका पूजन उस दिन किया जाता है यह आप वर्णन करैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! सत्ययुग में रघुनाम राजा शूर प्रियवादी सर्वगुण

युक्त और बड़ादानी हुआ वह सब पृथिवीको जीत सब राजाओं को अपने वशमें कर पुत्रों की भांति प्रजाका पालन करता था उसके राज्य में दुर्भिक्ष व्याधि भय अकाल मरण आदि कोई उपद्रव नहीं था और सब प्रजा के लोक धर्म में आसक्त थे एकसमय सब पुरके लोग एकत्र हो राजाके द्वार पर आकर त्राहि त्राहि पुकारने लगे राजा ने उनके त्रासका कारण पूछा तब उन सबने कहा कि महाराज ढोढानाम राक्षसी नित्य हमारे बालकों को पीड़ा देती है और औषध मन्त्र तन्त्र आदि उसपर कुछ भी नहीं चलता यह पौरों का वचन सुन राजा ने अपने पुरोहित श्रीवशिष्ठमुनि से पूछा मुनि ने कहा कि हे राजन्! सुमाली नाम दैत्यकी पुत्री यह ढोढा है इसने बहुत काल उग्र तप कर शिवजी को प्रसन्न किया शिवजी ने प्रसन्न हो इससे कहा कि वर मांग तब इसने यह वर मांगा कि देवता दैत्य मनुष्य आदि कोई मुझे न मारसकें और शस्त्र अस्त्र से वध न होय दिन में रात्रि में शीतकाल उष्णकाल वर्षाकाल में और भीतर बाहर कहीं मुझ को भय न होय शिवजी ने कहा तथास्तु और यह भी कहा कि ऋतुसन्धि के बीच उन्मत्त और बालक तुझे त्रास देंगे इतना कह शिवजी अन्तर्द्धान भये वही राक्षसी नित्य बालकों को और प्रजा को पीड़ा देती है अडाडा शब्द करके कुटुम्बियों का सिद्ध अन्न ग्रहण करती है इसलिये उसको अडाडा कहते हैं यह तो उस राक्षसी का चरित है अब उसके निवारण का उपाय हम कहते हैं फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को सब लोक निःशंक हो क्रीड़ा करें अश्लील भाषण करें नाचैं हँसैं बालक काष्ठ के खड्ग लेकर योधाओं की भांति हर्ष से युद्ध के लिये उत्सुक हो दौड़ते फिरैं बहुतसा सूखा काष्ठ और उपले इकट्ठे कर उनमें रक्षोघ्न मन्त्रों करके अग्नि लगाय उसमें हवन करैं सब लोग किल-

किला शब्द करते ताली बजाते उस अग्नि की तीन प्रदक्षिणा करैं गावैं हँसैं और निःशंक हो जो जिसके मन में आवै सो बोलैं इसप्रकार लोकों के कोलाहल से रक्षोघ्न मन्त्रों करके हवन करने से बालकों के खड्गप्रहार से वह दुष्ट राक्षसी क्षय को प्राप्त होगी यह वशिष्ठजी का वचन सुन राजा ने सम्पूर्ण राज्यमें इसी प्रकार बड़ा उत्सव कराया जिससे वह राक्षसी नाश को प्राप्त भई उसी दिन से यहां ढोंढाका उत्सव लोकमें प्रसिद्ध हुआ सर्व दुष्टापह और सर्व रोगों का शांत करने हारा होम इस दिन किया जाता है इसलिये इस को होलिका कहते हैं सब तिथियों का सार परम आनन्द देनेहारी पूर्णिमा तिथि है सारत्वसेही इसका नाम फल्गु है गोबर से लिपे हुये अंगण में इस रात्रि को बालकों की रक्षा करनी चाहिये बहुत से खड्गहस्त बालक अपने घरमें बुलावै वे घरमें रक्षित बालकों को काष्ठ के खड्गों से स्पर्श करैं हँसैं गावैं पीछे उनको गुड़ और पक्वान्न देकर विसर्जन करैं इस रात्रि को बालकों का अवश्य रक्षण करना चाहिये इस विधि के करने से ढोंढाका दोष शांत होता है इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! दूसरे दिन चैत्रमास और वसन्तऋतु का प्रारम्भ होता है इस दिन क्या करना चाहिये तब श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! होली के दूसरे दिन प्रभात उठ आवश्यक काम कर पितर और देवताओं का तर्पण पूजनकर सर्व दुष्टोपशान्तिके लिये होलिका की विभूतिका वन्दन करै और घरके अंगण में गोबर से लीप रंग और अक्षतों करके चौक पूरै उसमें शुक्लवस्त्र से आच्छादित पीठ रखकर पुष्पमाला आदि से भूषित और सुवर्ण सहित कलश स्थापन करै पीछे उस पीठपर चन्दन रख सौभाग्यवती स्त्री उत्तम वस्त्र भूषण पहिन दही दूर्वा अक्षत

शिरीष पुष्प आदि से उस चन्दन का पूजन करै फिर आम्र के पुष्प सहित उस चन्दनको प्राशन करै और कामदेव का पूजन कर सूत मागध बन्दी और ब्राह्मणों का यथाशक्ति सत्कार कर (कामदेवः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै और भोजन के समय प्रथम पहिले दिन का बासी पक्वान्न थोड़ासा खाकर यथेष्ट भोजन करै इस विधि से जो फाल्गुनोत्सव करै उसके सब मनोरथ अनायास से सिद्ध होते हैं आधि व्याधि नाश को प्राप्त होती हैं पुत्र पौत्र धन आदिकी प्राप्ति होती है यह पूर्णिमा सब विघ्न हरनेहारी जयदा पवित्रा और सब तिथियों में उत्तमहै शिशिरऋतुकी समाप्ति और वसन्त के आरम्भ होते ही चैत्रकृष्ण प्रतिपदा को चन्दन सहित आम्रपुष्प को जो प्राशन करै वह वर्षभर सुखी रहता है।

एकसौइक्कीस का अध्याय।

दमनकोत्सव और दोलोत्सव का फल सहित विधान।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! और भी बहुत उत्तम उत्तम पुष्पहैं उनको छोड़कर दमनक का अर्पण देवताओंको किसकारण करते हैं यह आप वर्णन करैं और दोलोत्सव तथा रथयात्रोत्सवका विधान भी कथन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! प्रथम मन्दराचलमें दमनक वृक्ष उत्पन्न हुआ उसका दिव्य गन्ध आघ्राण कर सब देवांगना कामवश होती थीं और उन्मत्तकी भांति हँसती गाती थीं सब मुनि भी उसका गन्ध सूँघ वेदाध्ययन और तप छोड़ कामवश हुये इस प्रकार सब लोक उसके गन्ध से उन्मत्त हुये देख ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध हुआ और दमनक को कहने लगे कि तू बड़ा दुष्टहै तैंने हमारी सब प्रजा आकुल करदी जो एक जीवपर अपकार करै उसको अधम कहते हैं तैंने तो बहुतों की हानि करी है इसलिये आज

से लेकर दैव पितृकर्म में कोई तुझे ग्रहण न करैगा यह ब्रह्माजी के मुख से शाप सुन दमनक ने कहा कि महाराज मैंने द्वेष से अथवा क्रोध से किसी का अपकार नहीं किया आपने मुझे ऐसाही सुगन्ध दिया कि जिससे सब आपही उन्मत्त होजाते हैं इसमें मेरा क्या दोष है जिसकी जो प्रकृति हो उसको वह क्योंकर त्याग सकता है परन्तु आपने निर-पराध मुझको शाप दिया यह दमनक का युक्तियुक्त वचन सुन प्रसन्न हो ब्रह्माजी बोले कि हे दमनक ! हमने तुझे शाप दिया परन्तु अब वर भी देते हैं कि वसन्तऋतु में तू सब देवताओं के मस्तक पर चढ़ैगा और जो मनुष्य भक्ति से तुझको देवताओं पर चढ़ावेंगे वे सदा सुखी होंगे और चैत्रमास में सब पाप हरनेहारी दमनक चतुर्दशी प्रसिद्ध होगी इतना कह ब्रह्माजी अन्तर्द्धान भये और दमनक भी अपने गन्ध से त्रिभुवन को वासित करता हुआ ब्रह्माजी से शाप और वर पाय शिवजी के निवासस्थान उसी मन्दराचल में रहा उसी दिनसे लोकमें दमनकपूजा प्रसिद्ध भई श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम दोलोत्सव का वर्णन करते हैं एक समय नन्दनवन में दोलोत्सव का प्रारम्भ हुआ वसन्तऋतु में देवांगना और देव मिलकर दोला क्रीड़ा करने लगे कोई देवांगना दोलापर गाती हैं कोई देवता अ-पनी प्रिया को आलिंगन कर माधवीलता की दोलापर झू-लते हैं विद्याधर विहार कररहे हैं गन्धर्व गाते हैं और अप्सरा नाचती हैं नन्दनवनमें यह चमत्कार देख पार्वतीजीने शिवजी से कहा कि हमारे लिये भी एक दोला बनवाइये जिसपर आपके साथ बैठ मैं भी दोलाक्रीड़ा करूँ यह पार्वतीजी का वचन सुन शिवजी ने देवताओं को बुला कर दोला बनाने की आज्ञा दी देवताओं ने आज्ञा पातेही दो उत्तम जड़ाऊ सुवर्ण

के स्तम्भ गाड़ उनपर एक पट्टा रख उसमें वासुकिनाग की दोला बनाई उसका फणाही बैठने के लिये रत्नजटित पीठ कल्पना किया उस फण के ऊपर अति मृदु रुई की गद्दी और रेशमी वस्त्र बिछाये दोला की शोभा के लिये मोतियों के गुच्छे और माला चारों ओर लटकाये इस प्रकार अति उत्तम दोला बनाय देवताओं ने शिवजी से प्रार्थना करी कि हे प्रभु ! दोला सिद्ध होगई है आप आरूढ़ होयँ यह देवताओं की बिनती सुन प्रसन्न हो पार्वतीजी सहित श्रीमहादेवजी दोलापर चढ़े जया और विजया दोनों दोलाको आंदोलन करने लगीं उस समय पार्वतीजी ने मधुरस्वर से ऐसा गीत गाया कि शिवजी आनन्द में मग्न होगये गन्धर्व गाने लगे अप्सरा नाचने लगीं और चारण अनेक प्रकारके बाजे बजाने में प्रवृत्त भये परन्तु शिवजी के दोलाविहार से सब कुल पर्वत कांपउठे समुद्र क्षोभ को प्राप्त भये बड़ा प्रचण्ड पवन चलने लगा और सब लोक त्रस्त होगये इस प्रकार त्रैलोक्य को अति व्याकुल देख इन्द्र आदि सब देवता शिवजी के शरण में गये और प्रणाम कर प्रार्थना करी कि हे नाथ ! अब आप इस दोलालीला को निवृत्त करैं सब भुवन क्षोभ को प्राप्त होरहे हैं यह देवताओं की प्रार्थना सुन भक्तवत्सल श्रीमहादेवजी दोला से उतरे और प्रसन्न होकर यह कहा कि आज से लेकर जो पुरुष इस दोलोत्सव को करेगा वह सब अभीष्ट फल पावैगा श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! दोलोत्सव का विधान हम वर्णन करते हैं प्रथम वसन्तऋतु में उपवन के बीच पुष्करिणी के तटपर अति उत्तम दोला बनावै उसको छत्र दर्पण पुष्प माला सुवर्ण के कलश और अनेक प्रकार के विचित्र वस्त्रों से अलंकृत करै पीछे अग्निहोत्र और दिक्पाल बलि करके मूलमन्त्र से इष्टदेवता को उस

दोला पर चढ़ाय (विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखः) इत्यादि वैदिकमन्त्र पढ़ै और नृत्य गीत वाद्य स्तुति पाठ और अनेक प्रकार के मङ्गल शब्दों करके बड़ा उत्सव करै इसी अवसर से कुंकुमके रंगसे भरी क्रीड़ावापी में उत्तम स्त्री अपने पतियोंसहित प्रवेश कर जलक्रीड़ा करैं और परस्पर पिचकारियों से सिंचन करैं जो पुरुष इस विधि से दोलोत्सव करैं वे पुत्र पौत्र धन आरोग्य आदि पाय सौवर्ष संसार का सुख भोग अन्त में उत्तम गति पाते हैं वसन्तऋतु में भक्तिपूर्वक जो मनुष्य दोलोत्सव करते हैं उनका जन्म सफल है वे अपने कई कुलों का उद्धार कर स्वर्ग को जाते हैं।

एकसौबाईस का अध्याय।

रथयात्रा का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम रथयात्रा का विधान कहते हैं आप प्रीति से श्रवण कीजिये एक समय वसन्तऋतु में भ्रमण करते हुये नारदजी शिवलोक में गये वहां प्रणाम कर शिवजी के समीप बैठे शिवजी ने भी उनको कुशल पूछा और यह भी पूछा कि आप कहां से आये हैं तब नारदजी कहने लगे कि हे देवदेव ! अब हम सुख दुःखरूप मर्त्यलोक से आये हैं वहां कामदेव के मित्र वसन्तऋतु ने सब जगत् वश करलिया है मन्द मन्द मलयपवन बहता है और सहकाररूप मस्तहाथी पर कोकिलरूप डिंडिम को स्थापन कर नगर नगर और ग्राम ग्राम में वसन्तऋतु यह घोषणा करता फिरता है कि कौन शिव है विष्णु कौन है और जड़ ब्रह्मा को कौन जानता है इस जगत् का स्वामी एक कामदेव है सब उसके शासन में रहो और लोग भी यह कामशासन सुनकर सब उन्मत्त होरहे हैं सीमाओं में गोप गीत गाते हैं शस्यरक्षिका युवती बेवश हो गान

करती हैं कुलटा स्त्री विटों में आसक्त हो ताण्डव करती हैं प्रफुल्लित वनमें पशु पक्षी भी काम के वशहो अपनी अपनी प्रिया को संगले विहार करते हैं सबके चित्त उत्कण्ठित होरहे हैं कोकिल पंचमस्वर बोलते हैं उसको सुन विरही जनों के प्राणही जाते हैं मलयानिल से कम्पित वृक्षों के पत्र मानो हर्ष से नृत्यही कर रहेहैं बालक इस सुख के अनभिज्ञ हैं और वृद्धों की इन्द्रिय विकल हैं इसलिये इन दोनों को तो कामकी व्यथा नहीं है और सब जगत् उन्मत्त होरहा है यह विचित्र प्रभाव चैत्र का देख आप को निवेदन करने आये हैं यह नारदजी का वचन सुन वेदमय दिव्य रथके ऊपर चढ़ गन्धर्व अप्सरा मुनिगण और सब देवताओं को संगले शिवजी मर्त्यलोक में आये और नारदजी ने जैसा कहा था वैसाही देखा कि सब जगत् आनन्द में मग्न है शिवजी वसन्त की शोभा देखतेही थे कि उनके साथ जो देवता आदि थे वे भी उन्मत्त भये कोई उत्कण्ठित हो गानेलगे कोई हर्ष से अनेक प्रकार के वीणा आदि वाद्य बजाने लगे कोई प्रसन्नता से नाचनेही लगे देवता भी अलस दृष्टि हो परस्पर नरमालाप करने लगे इस प्रकार शिवजी ने सबको क्षुब्ध हुये देख विचार किया कि यह तो बड़ा अनर्थ हुआ कि ये सब बेवश होगये इसका शीघ्रही उपाय करना चाहिये जो मनुष्य अनर्थ को उठते देख उसके विघात के लिये यत्न नहीं करते वे अवश्य आपदा करके पीड़ित होते हैं अब हम को इन सबकी उन्माद से रक्षा करनी चाहिये और स्वामिभक्त वसन्तऋतु का भी मान रखना चाहिये यह शोच वसन्तऋतु को बुलाकर शिवजीने कहा कि हे वसन्त ! चैत्रमास में तुम अपना सब प्रभाव प्रकट करो और चैत्र शुक्लपक्षमें सब जीवोंको और विशेष करके देवताओं को सुख देनेहारेहो और देवताओं को बुला-

कर स्वस्थ किया और यह भी कहा कि जो पुरुष वसन्तऋतु में रथयात्रोत्सव करेंगे वे दिव्य देह धार स्वर्गसुख भोगेंगे इतना कह सब देवताओं को संग ले शिवजी अपने लोक को गये और बसन्तऋतु भी शिवजी की आज्ञानुसार वन में विहार कर अन्तर्द्धान भया उसी दिन से लोक में रथयात्रोत्संव का प्रचार हुआ है इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि रथयात्रा किस विधि से करनी चाहिये उसमें देवता किस प्रकार चढ़ावै और रथ कैसा बनावै यह आप वर्णन करें तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! बहुत दृढ़ काष्ठ का अथवा बाँसका रथ बनाय उत्तम वस्त्र से वेष्टित कर पंचरंगी पताका और पुष्पमाला आदि से भूषित कर छत्र चामर आदि से सजाय उत्तम श्वेत वर्ण दो बैल उसमें जोड़ देवालय के अंगण में खड़ा करै फिर वैश्वदेव ग्रहशान्ति और शान्तिक पौष्टिक आदि कर्म कर मूलमंत्र से और (रथे तिष्ठन्नयतिवाजिनः) इत्यादि वैदिक मन्त्र से देवता को रथ में विराजमान करै उस समय शंख दुंदुभि काहला आदि बाजे बजें मशाल जलाकर बहुत से मनुष्य रथ के साथ चलैं आगे २ नाच तमाशा होता चले इस प्रकार सूर्यास्त होने के अनन्तर धीरे २ रथ को नगर में घुमावै रथ के साथ जितने मनुष्य हों और तमाशा देखनेवाले जितने हों सबको पुष्पमाला और तम्बूल देवै जो मार्ग में रथका धुरी पाहिया युग आदि कोई अंग टूटजाय तो ब्राह्मणों से तिल और घृत का हवन कराय उस अंग को बनवाय आगे रथयात्रा करै नगर के मध्य में रथ को स्थापन कर वहां गीत नृत्य नाटक दोला चक्रदोला आदि अनेक प्रकार के उत्सव करै इस विधि से जो रथयात्रा करै उस के धन सन्तान और पशु वृद्धि को प्राप्त होते हैं और अन्त में सद्गति पाता है माघ शुक्लपक्ष

में रथसप्तमी होती है उस दिन उपवास कर सूर्यनारायण का पूजन कर सुवर्ण का दिव्य रथ बनाय निवेदन करै वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यंत संसारसुख भोग अन्त में सूर्यलोक को जाता है इस भांति नगर के मध्य में उत्सव कर नगर के पूर्व द्वार पर रथ को लेजाय वहां उत्सव करै दूसरे दिन दक्षिण द्वार पर लेजाय रात्रि को जागरण करै और नट आदि के तमाशे करावै तीसरे दिन पश्चिम द्वार पर चौथे दिन उत्तर द्वार पर और पांचवें दिन फिर नगर के मध्य में रथ को स्थापन कर उत्सव और जागरण करता हुआ छठे दिन अपने स्थान पर देवता को स्थापन कर महापूजा करै और बड़ा उत्सव करावै रथयात्रा प्रसंग से सर्व पापहरा रथसप्तमी का भी हमने वर्णन किया अब और भी विशेष आप श्रवण करैं तृतीया को गौरी का पूजन करै चतुर्थी को गणपति का पंचमी को लक्ष्मी अथवा सरस्वती का षष्ठी को स्कंद का सप्तमी को सूर्य का अष्टमी और चतुर्दशी को शिव का नवमी को चण्डिका का दशमी को वेदव्यास आदि शान्तचित्त ऋषियों का एकादशी को विष्णु भगवान् का द्वादशी को इन्द्र का त्रयोदशी को कामदेव का और पूर्णिमा को सब देवताओं का अर्चन करै इस विधि से दमनकोत्सव आन्दोलनोत्सव और रथयात्रा अपनी २ तिथि में सब देवताओं की करनी चाहिये इस प्रकार वसन्तऋतु में उत्सव करनेहारा पुरुष बहुत काल स्वर्ग सुख भोग चक्रवर्त्ती राजा होता है ।

एकसौतेईस का अध्याय ।

कामदेव का चरित और मदन त्रयोदशी का विधान ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! एक समय हिमालय पर्वत में श्रीमहादेवजी तप करने लगे और उस समय हिमालय ने अपनी पुत्री श्रीपार्वतीजी को उनकी सेवा

के लिये नियत किया ब्रह्मादि देवताओं ने विचार किया कि जो शिवजी पार्वती से विवाह करैं और उनसे पुत्र उत्पन्न होय तो हमारा संकट हरै इसलिये ऐसा उपाय करना चाहिये कि पार्वती के ऊपर शिवजी का अनुराग होय यह विचार कर इस कार्य में कामदेव को नियत किया कामदेव भी रति प्रीति उन्माद वारुणी दर्प शृंगार वसन्त आदि अपने परिवार को संगले शिवजी के आश्रम में पहुँचा प्रथम सब आश्रम में वसन्तऋतु की प्रवृत्ति भई पीछे कामदेव ने प्रवेश किया और उन्मादन नाम बाण धनुष् पर चढ़ाय शिवजी को मारना चाहा इतने में शिवजी ने सब कुटिलता कामदेव की देख क्रोधदृष्टि से उसको देखा देखतेही वह भस्म हुआ और कामदेव की भार्या रति और प्रीति दोनों विलाप करने लगीं तब पार्वतीजी के हृदय में अत्यन्त करुणा उत्पन्न भई और शिवजी से प्रार्थना करी कि महाराज मेरे निमित्त कामदेव की यह दशा भई अब आप कृपा कर इसको फिर भी जीवदान देवैं तब प्रसन्न हो शिवजी ने कहा कि हे पार्वति ! सब जगत् में इसने उपद्रव कर रक्खा था इसलिये हमने इस को दग्ध किया अब इसका फिर जीवन क्योंकर हो सक्ता है परन्तु चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को प्रतिवर्ष एकबार यह जीवित होगा उस दिन जो इसका पूजन करैंगे वे वर्ष भर सुखी रहैंगे इतना कह शिवजी कैलास को गये यह कामदेव का चरित है अब हम पूजाविधान कहते हैं चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को स्नान कर अशोक वृक्ष बनाय उसके नीचे रति प्रीति और वसन्त सहित कामदेव की मूर्त्ति सिंदूर और हल्दी से लिखै अथवा सुवर्ण की मूर्त्ति स्थापन करै ऐसी मूर्त्ति बनावै कि अप्सरा जिसकी सेवा में चारों ओर स्थित हैं विद्याधरी हाथ जोड़े संमुख खड़ी हैं गन्धर्व नृत्य कर रहे हैं इस प्रकार की मूर्त्ति बनाय

मध्याह्न के समय गन्ध पुष्प धूप दीप अनेक प्रकार के नैवेद्य और ताम्बूल आदि उपचारों करके (नमो वामाय कामाय देवदेवाय मूर्त्तये । ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनःक्षोभकराय वै) इस मन्त्र से पूजन करै इस प्रकार स्त्री कामदेव का पूजन कर वस्त्र माला भूषण आदि से अपने पति का पूजन करै और उसको साक्षात् कामदेव जानै रात्रि को जागरण कर उत्सव करै सबको गन्ध ताम्बूल पुष्पमाला आदि देवै और शूद्रों को मद्य देकर बड़ा उत्सव करै इस विधि से जो प्रतिवर्ष कामोत्सव करै वह सुभिक्ष क्षेम आरोग्य यश लक्ष्मी सुख पाता है और विष्णु ब्रह्मा सूर्य चन्द्रआदि ग्रह कामदेव वसंत और सब ब्रह्मर्षि यक्ष गन्धर्व असुर राक्षस सुपर्ण नाग पर्वत आदि उस पर प्रसन्न हो उसको सुख देते हैं कभी उसको शोक नहीं होता वसन्तऋतु में रति प्रीति वसन्त मलयानिल आदि अपने परिवार सहित कामदेव का जो नारी भक्ति से पूजन करै वह सौभाग्य रूप और सुख पाती है ।

एकसौचौबीस का अध्याय ।

भूतमाता के उत्सव का विधान ।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! सब ग्रामों में और नगरों में लोक भूतमाता का उत्सव करते हैं नाचते गाते हैं उन्मत्त की भांति प्रलाप करते हैं भूमिपर लोटते हैं अंग भंग करते हैं यह उत्सव शास्त्रोक्त है कि लौकिकही है आप इस हमारे सन्देह को निवृत्त कीजिये यह राजाका प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! एक समय मन्दराचल में शिवजी पार्वती के संग विहार करते थे उनको एकान्त में उत्तम शय्यापर क्रीड़ा करते दिव्य सौवर्ष व्यतीत हुए एक दिन आवश्यक के लिये पार्वतीजी बाहिर निकलीं उसी क्षण कृष्णवर्ण करालमुख पिंगलनेत्रा मुक्तकेशी मुण्ड-

माला धारे खट्वांग और कपाल हाथों में लिये व्याघ्रचर्म पहिने डमरु बजाती फूत्कार शब्द से आकाश को भरती अति भयङ्कर एकनारी उनके मूत्रसे उत्पन्न भई और हजारों उनकी परिचारिका भी गजचर्म ओढ़े नाचती गाती ताली बजाती हँसती कपाल खट्वांग धारे प्रकट भईं इसी भांति ऐसेही रूप करके युक्त और सिंह शार्दूल आदि समान जिनके मुख ऐसे हजारों भूतों करके सहित अति भयङ्कर एक पुरुष शिवजी से भी उत्पन्न हुआ और वे दोनों स्त्री पुरुष प्रसन्न हो इकट्ठे होगये तब प्रसन्न हो शिवजी ने पार्वती जी से कहा कि हे प्रिये ! ये दोनों हम से और तुम से उत्पन्न मूर्त्तिमान् मानों बीभत्स रसही होयँ हास्य करनेहारे स्त्री पुरुष दोनों सदृश हैं इनमें हम को कुछ भी अन्तर नहीं देख पड़ता भूत-माता भ्रातृभांडा और अन्तकसंविधा ये तीन इन के नाम हैं जो पुरुष भक्तिसे इनका पूजन करेंगे वे पशु आरोग्य और सन्तान पावैंगे उनके घरमें भूत पिशाच शाकिनी राक्षस आदि कभी पीड़ा न करेंगे और उनके बालक आरोग्य रहेंगे इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! भूतमाता की पूजा किस समय में और किस विधान से करनी चाहिये यह आप वर्णन करें तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! नामभेद कालभेद और क्रियाभेद से बालकों के हित करनेहारी इस भगवती का पूजन सर्वत्र होता है ज्येष्ठ प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमातक भगवती का पूजन करे अनेक प्रकार के हास्य और बीभत्स तमाशे भगवती के आगे करावै धनलोभ से विश्वास देकर मार्ग में वेदपाठी ब्राह्मण इसने मारा अब इसको शूलपर चढ़ाते हैं इसने परस्त्री का स्पर्श किया इसलिये इसके हाथ काटे जाते हैं इसने स्वामिद्रोह किया इसलिये यह करोत से चीरा जाता है और रुधिर की

धार शरीर से बहती है इस चोर को राजपुरुष बांधे लिये जाते हैं इस श्वेतकेश और श्वेतवस्त्रधारी ब्राह्मण को लड़के छेड़ते हैं और पत्थर मारते हैं यह विधवा स्त्री गर्भ रहने से पेट बड़ा होजाने से घरके बाहर क्यों नहीं निकलती इस कृपण को देखो कि धन होकर भी अपने कुटुम्ब का भरण पोषण नहीं करता और मरा २ पुकारता है इस वृन्ताक के समान कृष्णवर्ण भीलको देखो कि वृक्ष के कोटरों में से शुंकों के बच्चों को पकड़ २ आगमें भून खण्ड खण्ड कर सहत के साथ खाता है इस स्त्री को देखो कि केश खोले हाथ में छुरी लिये हुंकार शब्द करती हुई काला कम्बल पहिने सूप बजावती योगिनी की भांति नाचती है इस प्रकार के तमाशे भगवती के आगे नित्य करावे नवमी अथवा एकादशी को दीपक प्रज्वलित कर बड़े उत्सव से भगवती के समीप लेजाय रक्षावाले पुरुष साथ जायँ आगे २ सूप बजाते चलें यह सर्वार्थसाधक दीपक वीरचर्या में कहा है इस प्रकार पूर्णिमातक प्रदोष के समय दीप निकालै और द्वादशी के दिन भूतमाता का बड़ा उत्सव करै इस प्रकार अनेक प्रकार के हास्यदायक तमाशे और अनेक प्रकार के उत्सवों से भूतमाता का पूजन करैं वे सपरिवार वर्ष भर प्रसन्न रहते हैं कोई विघ्न उनके घरमें नहीं होता ।

एकसौपच्चीस का अध्याय ।

रक्षाबन्धन का विधान ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! सब पाप और अमङ्गल का नाश करनेहारा रक्षाविधान आप वर्णन करैं जिसके एकबार करने से वर्षभर रक्षा रहै और भूत प्रेत पिशाच आदि धर्षण न करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! इसमें हम प्राचीन

इतिहास वर्णन करते हैं आप श्रवण करें पूर्वकाल में बारह वर्षपर्यंत देवता और दैत्यों का युद्ध भया उसमें देवता पराजित हुये इन्द्र भी अपनी नगरी अमरावती में प्राण बचाने के लिये आय छिपे दानवराजने तीनलोक वश करलिये और यह आज्ञा सब देवता और मनुष्योंको दी कि मेरा यजन करो मेरी स्तुति करो मेरा पूजन करो जो मेरी इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा वही वध्य होगा दैत्यराज की इस आज्ञा से यज्ञउत्सव देवपूजा आदि निवृत्त हुये स्वाहा स्वधा वषट् इत्यादि शब्द कहीं कान में न पड़ते थे सबने वेद पढ़ना छोड़ दिया सब संसारमें अव्यवस्था होगई इससे इन्द्र और भी निर्बल हुये इन्द्रको हीनबल देख दैत्यों ने अमरावती में भी न टिकने दिया तब इन्द्र व्यग्रहो बृहस्पति के समीप गये और उनसे यह कहा कि हे देवगुरो ! अब हम स्वर्ग में ठहर नहीं सकते इसलिये यही विचार है कि फिर दैत्यों के साथ युद्ध करें जय पराजय तो ईश्वर के आधीन है परन्तु उत्साहपूर्वक युद्ध करना अपने आधीन है थोड़ी देर भी प्रज्वलित होना अच्छा और बहुत काल तक सिलगते २ धुआं करना कुछ नहीं दैवैश्वर्य कर्म के आधीन है और कर्म पौरुष को कहते हैं इसलिये अब हम पौरुष करें तो अवश्यही कल्याण होय यह इन्द्र का वचन सुन बृहस्पति बोले कि हे देवराज ! यह पौरुष का समय नहीं है देशकाल का विचार किये बिन जो काम किये जाते हैं वे सफल नहीं होते और उनमें एक प्रकार का अनर्थ उत्पन्न होजाता है तब इन्द्र ने फिर कहा कि आप यथार्थ कहते हैं परन्तु जिस कार्य में उत्साह होय वह अवश्यही सिद्ध होता है जो गुण दोष विचार कर कार्य का आरम्भ करते हैं वे अवश्यही मनोवांछित फल पाते हैं इस प्रकार इन्द्र और बृहस्पति का संवाद देख शचीने इन्द्रसे कहा

कि आज चतुर्दशी है इसलिये आप युद्ध से निवृत्त रहैं कल मैं आपके रक्षा बाधूँगी जिससे अवश्य आपका जय होगा इन्द्रने भी यह शची का वचन अङ्गीकार किया दूसरे दिन शचीने इन्द्र के हाथ में रक्षापोटली बांधी और बड़ा उत्सव किया ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराय ऐरावत हाथीपर चढ़ इन्द्र युद्ध के लिये निकले और दैत्यसेना में जाय अपना नाम सुनाय बाणों से शत्रुओं के शिर काटने लगे दैत्य भी सन्नद्ध हो युद्ध करने लगे परन्तु रक्षा के प्रभाव से इन्द्र के आगे न ठहर सके कोई समुद्र में घुसे कोई पाताल को गये कई वहां हीं मारेगये इस प्रकार दानवों को पराजय दे फिर इन्द्र ने राज्य पाया और देवताओं सहित त्रैलोक्य का पालन करने लगा दानवराज भी युद्ध में हार के शुक्र के समीप गये और उनसे कहा कि हे दैत्यगुरो ! बड़े आश्चर्य की बात हैं कि इन्द्र ने हमको जीतलिया इससे यह जाना कि दैव ही बलवान् है बल पौरुष आदि सब वृथा हैं यह दानवेन्द्र का वाक्य सुन शुक्राचार्य ने कहा कि हे दैत्यराज ! इसमें आप विषाद न करें युद्ध में जय पराजय होत ही रहते हैं अब तुम इन्द्र के साथ सन्धि करलो शची की रक्षा के प्रभाव से इस समय इन्द्र को कोई नहीं जीतसक्ता एक वर्ष व्यतीत करो पीछे सब कल्याण होगा यह शुक्र का वचन सुन शोक त्यागकर सब दानव कालप्रतीक्षा करने लगे यह हमने पुत्र आरोग्य धन सुख और विजय को देनेहारा रक्षा का प्रभाव संक्षेप से वर्णन किया है इतनी कथा सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! किस तिथि को और किस विधि से रक्षाबन्धन करना चाहिये यह आप वर्णन करें आप के मुख से अति विचित्र और बहुत अर्थ करके युक्त कथा सुनते २ हमको तृप्ति नहीं होती है यह राजा का वचन सुन

श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! श्रावणी पूर्णिमा को प्रभात उठ शौच दन्तधावन आदि कर श्रुतिस्मृति विधान से स्नान करै देवता और पितरों का तर्पण कर उपाकर्म विधान से ऋषितर्पण करै शूद्र होय तो मन्त्ररहित स्नान दान आदि कर्म करै पीछे मध्याह्न के अनन्तर कर्पास के अथवा अलसी के वस्त्र में अक्षत श्वेत सर्षप और सुवर्ण की रक्षापोटली बनाय अँगण में गोबर का चौका लगाय उसके बीच मण्डल रच मण्डल में पीठ रख पीठ के ऊपर उत्तम पात्र में पोटली स्थापन करै वहां ही मन्त्री पुरोहित आदि सहित राजा बैठे वेश्या नृत्य करैं अनेक प्रकार के बाजे बजें फिर हवन और शान्ति कर (येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः। तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल) इस मन्त्र से रक्षापोटली को पुरोहित राजा के दक्षिण हाथ में बांधे पीछे राजा वस्त्र भोजन और दक्षिणा से ब्राह्मणों का पूजन करै यह रक्षाबन्धन चारों वर्णों को करना चाहिये इस विधि से जो रक्षाबन्धन करावै वह वर्ष भर सुखी रहता है और पुत्र पौत्र धन आदि सब पदार्थ पाता है।

एकसौछब्बीस का अध्याय।

महानवमी का विधान।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! सब तिथियों में उत्तम महानवमी तिथि है वर्ष भर के सुख के लिये भूत प्रेत पिशाचों की निवृत्ति के अर्थ सब प्रकार के मङ्गल मिलने के लिये और भगवती की प्रसन्नता के हेतु सब मनुष्यों को और विशेष करके राजाओं को महानवमी का उत्सव करना चाहिये इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! यह महानवमी कबसे प्रवृत्त भई है यशोदा के गर्भ से भगवती उत्पन्न भई तबसे ही इसकी प्रवृत्ति है कि पहिले सत्ययुग आदि में

भी थी और इस तिथि को जो बहुत जीव मारे जाते हैं उनकी क्या गति होती है और मारनेवाला किस गतिको प्राप्त होता है यह सब आप वर्णन करें यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! वह परम शक्ति सर्वव्यापिनी भावगम्या अनंता और लोकविश्रुता है कला काली सुषुम्णा सर्वमङ्गला माया कात्यायिनी दुर्गा चामुंडा शङ्करप्रिया देवी परमेश्वरी भवानी शिवा इत्यादि नामों से और अनेक रूपों से सर्वत्र पूजन करी जाती है देव दानव राक्षस गंधर्व नाग यक्ष किन्नर नर आदि सब प्रतिनवमी को उसका पूजन करते हैं और सृष्टि के आरम्भ से उसका पूजन चला आया है आ-श्विन के शुक्लपक्ष में अष्टमी को मूल नक्षत्र होय उस दिन नवमी आजाय उसका नाम महानवमी है कन्या के सूर्य में मूल न-क्षत्र युक्त शुक्लाष्टमी को नवमी होय वह महानवमी त्रैलोक्य में दुर्लभ है आश्विन शुक्ल की अष्टमी और नवमी को जग-न्माता श्रीभगवती का पूजन करने से सब शत्रुओं को जी-तता है वह तिथि पुण्या पवित्रा धर्म और सुखको देनेहारी है उस दिन मुण्डमालिनी चामुण्डा का अवश्य पूजन करना चाहिये उस दिन जो महिष मेष आदि जीव बलि दिये जाते हैं वे सब स्वर्ग को जाते हैं और बलिदेनेहारे को पाप नहीं होता जैसी प्रसन्नता महिष मेष आदि की बलिसे विंध्यवासिनी श्रीभगवती की होती है ऐसी पुष्प धूप दीप विलेपन नै-वेद्य आदि से नहीं होती भवानी के आंगन में जो महिष आदि मारे जाते हैं वे स्वर्ग में जाय अप्सराओं के प्रिय वीर होते हैं सब कल्प और मन्वंतरों में इस नवमीके दिन सब देवता दैत्य आदि अनेक प्रकार के उपचार और उपहारों करके भगवती का पूजन करते हैं और तीनों लोकों में अवतार ले लेकर मर्यादा का पालन भगवती करती है वही भगवती

यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हो कंस के मस्तक पर पांव रख आकाश को गई हमने उस भगवती को विंध्याचल में स्थापने कर फिर पूजा का प्रचार किया यह भगवती का उत्सव पहिले से ही प्रसिद्ध था परन्तु सब जीवों के उपकार के अर्थ और सब उपद्रव शान्त होने के लिये हमने अपनी भगिनी भगवती की महिमा विशेष करके प्रसिद्ध करी विंध्यवासिनी भगवती के स्थान में नवरात्र तीन रात्र एक रात्र उपवास अथवा नक्तव्रत कर अनेक प्रकार के उपयाचितों से भगवती का आराधन करै ग्राम २ में नगर २ में घर २ में और वन २ में स्नान कर प्रसन्न हो भक्तिपूर्वक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री आदि सब भगवती का पूजन करैं और विशेष करके राजाओं को यह उत्सव करना चाहिये अब हम इस का विधान कहते हैं जय की इच्छावाला राजा प्रतिपदा से अष्टमी पर्यंत लोहाभिसार कर्म करै पहिले पूर्वोत्तर प्रणवभूमि में नौ अथवा सात हाथ लम्बा चौड़ा पताकाओं से अलंकृत मण्डप बनाय तीन मेखला और अश्वत्थ पत्राकार योनि से भूषित अग्निकोण में अतिसुन्दर एक हाथ का कुण्ड बनावै पीछे राज्य के अंग छत्र चामर आदि और सब शस्त्र अस्त्र मण्डप में लाकर अधिवासन करै शुचि ब्राह्मण स्नान कर शुक्ल वस्त्र पहिन सबका पूजन करै पूर्वकाल में बड़ा बलवान् लोह नाम दानव हुआ उसको देवताओं ने मार खंड २ किया पृथिवी में जितना लोह देख पड़ता है सब उसके अंगों से उत्पन्न हुआ है तबसेही यह लोहाभिसार कर्म राजाओं को विजय प्राप्त होने के अर्थ ऋषियों ने प्रवृत्त किया है घृतसंयुक्त पायस का हवन कर हवन शेष हाथी और घोड़ों को खिलाय सब को अलंकृत कर नगर में घुमावै राजा भी स्नान कर राजचिह्नों का नित्य पूजन करै हाथी घोड़ों के आगे

वाद्य बजते चलें अब हम पुराणोक्त पूजामन्त्र कहते हैं जिन करके पूजन करने से कीर्त्ति आयु यश और बलकी प्राप्ति होती है (यथाम्बुदश्छादयति शिवायेमां वसुन्धराम् । तथाच्छादय राजानं विजयारोग्यवृद्धये) छत्रमन्त्रः (शशाङ्ककरसंकाशक्षीरडिण्डीरपाण्डुर । प्रोत्सारयाशु दुरितं चामरामरदुर्लभ) चामरमन्त्रः (असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः । श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मधारस्तथैव च ॥ इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा । नक्षत्रं कृत्तिकान्ते तु गुरुर्देवो महेश्वरः ॥ हिरण्यं च शरीरं ते धाता देवो जनार्दनः । पितामहो महादेवस्त्वां पालयतु सर्वदा) खड्गमन्त्रः (शर्मप्रदस्त्वं समरे धर्मकामयशोऽर्थदः । रथिनामर्थनीयोऽसि चर्मानघ नमोऽस्तु ते) चर्ममन्त्रः (सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन । चाप मां सर्वदा रक्ष साकं शायकसत्तमैः) चापमन्त्रः (सर्वायुधानां प्रथमं निर्मितासि पिनाकिना । शूलायुधाद्विनिष्कृष्य कृत्वा मुष्टिग्रहं शुभम् ॥ चण्डिकायाः प्रदत्तासि सर्वदुष्टनिबर्हिणि । तया विस्तारिता चासि देवानां प्रतिपादिता ॥ सर्वसत्त्वाङ्गभूतासि सर्वासुरनिबर्हिणी । छुरिके रक्ष मां नित्यं शान्तिं यच्छ नमोऽस्तु ते) छुरिकामन्त्रः (हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः । नागकिन्नरगन्धर्वयक्षभूतगणा ग्रहाः ॥ प्रमथस्तु सहादित्यैर्भूतेशो मातृभिः सह । शक्रः सेनापतिः स्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्त्वयि ॥ प्रदहन्तु रिपून्सर्वान् राजा विजयमृच्छतु । यानि प्रयुक्तान्यरिभिरायुधानि समन्ततः ॥ पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा । हिरण्यकशिपोर्युद्धे युद्धे देवासुरे तथा ॥ कालनेमिवधे युद्धे युद्धे त्रिपुरघातने । शोभितासि तथैवाद्य शोभयास्मांश्च संस्मर ॥ नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्वाशु नृपारयः । व्याधिभिर्विविधैर्घोरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ॥ सद्यः स्वस्था भवन्तिस्म त्वद्वातेनायमार्जिताः । पूतना

रेवतीनाम्ना कालरात्रीति सा स्मृता ॥ दहत्वाशु रिपून्सर्वान् पताके त्वं मयार्चिता) पताकामन्त्रः (प्रोत्सारणाय दुष्टानां साधुसंरक्षणाय च । ब्रह्मणा निर्मितश्चासि व्यवहारप्रसिद्धये ॥ यशो देहि सुखं देहि जयदो भव भूपतेः । ताडयस्व रिपून्सर्वान् हेमदण्ड नमोऽस्तु ते) कनकदण्डमन्त्रः (दुन्दुभे त्वं सपत्नानां घोरो हृदयकम्पनः । भव भूमिपसैन्यानां तथा विजयवर्द्धनः ॥ यथा जीमूतघोषेण प्रहृष्यन्ति च बर्हिणः । तथास्तु तव शब्देन हर्षोऽस्माकं मुदावहः ॥ तथा जीमूतशब्देन स्त्रीणां त्रासोऽभिजायते । तथैव तव शब्देन त्रस्यन्त्वस्मद्द्विषो रणे) दुन्दुभिमन्त्रः (विजयो जयदो जेता रिपुहन्ता शुभङ्करः । दुःखहा धर्मदः शान्तः सर्वारिष्टविनाशनः ॥ एतेऽष्टौ सन्निधौ यस्मात्तव सिंहा महाबलाः । तेन सिंहासनेति त्वं वेदैर्मन्त्रैश्च मीयसे ॥ त्वयि स्थितः शिवः शान्तस्त्वयि शक्रःसुरेश्वरः । त्वयि स्थितो हरिर्देवस्त्वदर्थं तप्यते तपः ॥ नमस्ते सर्वतोभद्र भद्रदो भव भूपतेः । त्रैलोक्यजयसर्वस्व सिंहासन नमोऽस्तु ते) सिंहासनमन्त्रः (कुलाभिजनजात्या च लक्षणैर्व्यञ्जनोत्तमैः । भर्त्तारमभिरक्ष त्वं शिवं तव भवेदिति ॥ कशाघातमधिष्ठानं क्षमस्व तुरगोत्तम । गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूयाः कुलदूषकः ॥ ब्राह्मणः सत्यवाक्येन सोमस्य वरुणस्य च । प्रभावाच्च हुताशस्य वर्द्धस्व त्वं तुरङ्गम ॥ तेजसा चैव सूर्यस्य मुनीनां तपसा तथा । रुद्रस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बलेन च ॥ स्मर त्वं राजपुत्रं च कौस्तुभं च मणिं स्मर । सुरासुरैर्मथ्यमानक्षीरोदादमृतादिभिः ॥ जात उच्चैःश्रवाः पूर्वं तेन जातोऽसि तत्स्मर । या गतिं ब्रह्महा गच्छेन्मातृहा पितृहा तथा ॥ भूमिहानृतवादी च क्षत्रियश्च पराङ्मुखः । सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्यन्ति दुष्कृतम् ॥ व्रज त्वं तां गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव । विकृतिं यदि गच्छेथा युद्धाध्वनि तुरङ्गम । रिपुं विजित्य समरे सह भर्त्रा सुखी भव) अश्वमन्त्रः

(शक्रकेतो महावीर्य सुपर्णस्त्वय्युपाश्रितः । पतत्रिराड्वैनतेयो तथा नारायणध्वजः ॥ काश्यपेयोरुणभ्राता नागारिर्विष्णुवाहनः । अप्रमेयो दुराधर्षो रणे देवारिसूदनः ॥ गरुत्मान्मारुतगतिस्त्वयि सन्निहितो यतः । सासिचर्मायुधान्योधान् रक्ष त्वं च रिपून् दह) ध्वजमन्त्रः (कुमुदैरावणौ पद्मः पुष्पदन्तोथ वामनः । सुप्रतीकोञ्जनो नील एतेष्टौ देवयोनयः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वनांन्येते समाश्रिताः । भद्रो मन्दो मृगश्चैव गजः संकीर्ण एव च ॥ वनें वने प्रसूतास्ते स्मर योनिं महागज । पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्याः समरुद्गणाः । भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समूहः प्रतिपाल्यताम् । अवाप्नुहि जयं युद्धे गमने स्वस्ति ते व्रज । श्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याज्जवोनिलात् ॥ स्थैर्य्यं मेरोर्जयं रुद्राद्यशो देवात्पुरन्दरात् । युद्धे रक्षन्तु नागाश्वा दिशश्च सहदैवतैः ॥ अश्विनौ सहगन्धर्वैः पान्तु त्वां सर्वतः सदा) हस्तिमन्त्रः इन मंत्रों से गन्ध पुष्पादि करके सब राजचिह्न और शस्त्रों का पूजन करै अष्टमी के दिन पूर्वाह्ण में स्नानकर नियम ग्रहण करै और सुवर्ण चांदी मृत्तिका पाषाण काष्ठ आदि किसी वस्तु की दुर्गामूर्त्ति बनाकर उत्तम स्थान के बीच सिंहासन के ऊपर स्थापन करै कुंकुम चन्दन सिन्दूर आदि से उस मूर्ति को चर्चित कर कुमुद कमल आदि पुष्प चढ़ाय धूप दीप नैवेद्य मांस सुरा बलि आदि निवेदन करै उस समय सब प्रकार के बाजे बजैं बन्दीजन स्तुति पढ़ैं बहुत से मनुष्य छत्र चामर आदि राजचिह्न लेकर चारों ओर खड़े होयँ दाक्षयुक्त राजा पुरोहित सहित (जयन्ती मङ्गलाकाली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोस्तु ते ॥ अमृतोद्भवं श्रीवृक्षं महादेवप्रियं सदा । बिल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं तेम्बिके मुदा) इस मन्त्र से बिल्वपत्रयुक्त अर्घ्य देवै और भगवती को उस दिन द्रोणपुष्प भी चढ़ावै असुरों के साथ युद्ध करने से जो क्षत भगवती के

अंग में भये थे वे सब द्रोणपुष्प से अच्छे हुये इसलिये द्रोणपुष्प भगवती को प्रिय है फिर शत्रुओं के वधके लिये खड्ग को प्रणाम कर सुभिक्ष राज्य और अपना विजय मांगे और हृदयमें इस प्रकार भगवती का ध्यान करे बहुत भुजाओं करके युक्त महिषासुरका वध करनेहारी कुमारी स्वरूप सिंहपर चढ़ी खड्ग उठाये घण्टा ध्वनि करती युद्ध के मध्य में विराजमान है पीछे जय २ शब्द कर यह स्तुति पढ़ै (सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। उमे त्रियम्बके गौरि नारायणि नमोस्तु ते॥ कुंकुमेन समालब्धे चन्दनेन विलेपिते। विल्वपत्रकृतापीडे दुर्गेहं शरणं गतः) इस भांति अष्टमी को सब पूजा आदि कर रात्रि को जागरण करै नट वेश्या आदि का बड़ा उत्सव करावै इस प्रकार रात्रि व्यतीत कर प्रभात होतेही सौ पचास अथवा पचीस महिष और मेषकी बलि देवै और सुरा आसव के कुम्भों से परमेश्वरी का तर्पण करै वह सब कापालिकों को देवै और दासी दास बन्धु और भगवती के भक्तों को सब बांट कर नवमी के अपराह्न समय में रथके बीच भगवती की प्रतिमा स्थापन कर सारे राज्य में भ्रमण करावे अपनी सेनासहित राजा साथ रहै दीपवृक्ष जलते चलैं नंगे खड्ग और धनुषधारे बड़े बड़े वीरपुरुष रथ के ओर पास चलैं शङ्ख पटह आदि बाजे बजैं वेश्या चारण आदि नृत्य करते चलैं और एकवीर खड्गधारी उपवास कर मांस रक्त जल अन्न गन्ध पुष्प अक्षत आदि सहित बलि दिशा और विदिशाओं में (बलिं गृह्णन्त्विमं देवा आदित्या वसवस्तथा। मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः॥ असुरा यातुधानाश्च पिशाचोरगराक्षसाः। डाकिन्यो यक्षवेतालाः योगिन्यः पूतनाः शिवः॥ जम्भकाः सिद्धगन्धर्वा माला विद्याधरा नगाः। दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः॥ जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः। मा विघ्नं मा च मे

पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ॥ सौम्या भवन्तु तृप्ताश्च भूतप्रेताः सुखावहाः) इस मन्त्र से देवै इस विधि से रथ में अथवा पालकी में भगवती की प्रतिमा स्थापन कर सब राज्य में घुमावै और सब विघ्न निवृत्ति के लिये भूतशांति करै जिससे यात्रा निर्विघ्न होय इस विधि से जो राजा अथवा और पुरुष भगवती की यात्रा करैं वे सब पापों से छूट भगवतीलोक को जाते हैं और कभी उनको शत्रु चोर ग्रह विघ्न आदि का भय नहीं होता भगवती के भक्त सदा आरोग्य सुखी भोगी और निर्भय होते हैं जो यह भगवती के उत्सव का विधान पढ़ै अथवा सुनै उसके भी सब अमंगल निवृत्त होजाते हैं महिषासुर के मस्तक पर चरण रक्खे सिंहपर चढ़ी नंगी खड्ग हाथ में लिये सब भूषणों से भूषित श्रीदुर्गा का पूजन करनेहारे मनुष्य बड़े बड़े संकटों से भी उत्तीर्ण होजाते हैं ।

एकसौसत्ताईस का अध्याय ।

इन्द्रध्वज का विधान ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! पूर्वकालमें देवासुरसंग्राम के बीच इन्द्र के विजय के लिये ध्वजयष्टि बनाई और उसको सब देवता सिद्ध विद्याधर नाग आदिकों ने मेरु पर्वतपर स्थापन कर सब उपचारों से उसका पूजन किया अनेक प्रकार के भूषण छत्र घण्टा किंकिणी आदि से उसको अलंकृत किया उसको देखतेही दैत्य त्रस्त होगये और देवताओं ने उनको पराजित कर स्वर्ग का राज्य पाया और दैत्य पाताल को गये उस दिन से देवता उस इन्द्रध्वजयष्टि का पूजन और उत्सव करते थे उसी अवसर में राजा उपरिचरवसु स्वर्ग में गया उसको प्रसन्न हो इन्द्र ने वह ध्वज दिया और कहा कि इसका तुम पूजन करो जिससे तुम्हारे राज्य के सब दोष निवृत्त होयँ और भी जो राजा प्रतिवर्ष इसका पूजन करेंगे उनके राज्य

में क्षेम और सुभिक्ष रहैगा किसी प्रकार का उपद्रव न होगा यह इन्द्र का वचन सुन इन्द्रध्वज को ले राजा उपरिचरवसु अपने नगर में आया और प्रतिवर्ष इन्द्रध्वज का बड़ा उत्सव करने लगा अब हम इन्द्रध्वज के उत्सव का विधान कहते हैं बीसहाथ लम्बी दृढ़ और उत्तम काष्ठ की यष्टि बनावै और उसको विचित्र वस्त्रों से वेष्टित कर पीठों के ऊपर स्थापन करै पहिला पीठ श्वेतवर्ण कर्णिकायुक्त चतुरस्र इन्द्र यम वरुण और कुबेर करके युक्त बनावै दूसरा रक्तचूर्ण करके वृत्तयुक्त षडस्र तीसरा श्वेतवर्ण अष्टास्र चौथा अति अरुण वर्ण वृत्त पांचवां शुक्लवर्ण अष्टकोण छठा कृष्णवर्ण बुद्बुद शोभितवृत्त सातवां शुक्लवर्ण अष्टकोण विद्याधरों करके युक्त आठवां पीतवर्ण वृत्त वेष्टित चतुरस्र नवां लम्बा रक्तवर्ण और नवग्रहों युक्त दशवां शुक्लवर्ण और गणेश चन्द्रिका ब्रह्मा विष्णु और शिव सहित ग्यारहवां कृष्णवर्ण वृत्त यमराजयुक्त बारहवां छत्राकार शुक्लवर्ण तेरहवां पीठ ध्वजा के तुल्य दीर्घ कुशा पुष्पमाला घण्टा चामर आदि सहित बनाय उनके ऊपर ध्वजको स्थापन करै पीछे हवन कराय गुड़के अपूप और पायस ब्राह्मणों को भोजन कराय दक्षिणा दे धीरे धीरे उस ध्वजको खड़ा करै और नौ दिन अथवा सात दिन राजा बड़ा उत्सव करावै अनेक प्रकार के नाच तमासे होयँ मल्लयुद्ध और कुक्कुट मेष आदि जीवों का युद्ध करावै और वस्त्र भूषण आदि देकर सब का सम्मान करै रात्रि को जागरण करै ध्वजकी भलीभांति रक्षा करै जो ध्वज पर काक बैठजाय तो दुर्भिक्ष होय उलूक बैठे तो राजा का मरण होय और ध्वजके ऊपर कपोत बैठे तो दुर्भिक्ष पड़ै इस प्रकार इन्द्रध्वज का बड़ा उत्सव करै जो एकवर्ष करके दूसरे वर्ष न करसकै तो फिर बारहवें वर्ष करै ध्वजके अंग भंग होने से

बड़ा उपद्रव होता है इसलिये सावधान हो उसकी रक्षा करै इन्द्रध्वज का उत्थान कर भक्ति से उसका पूजन करै जो प्रमाद से ध्वज गिर पड़ै अथवा टूट जाय तो सोने अथवा चांदी का ध्वज बनाय उसका उत्थापन और अर्चन कर शान्तिक पौष्टिक आदि कराय वह ध्वज ब्राह्मण को देवै फालसा ककड़ी नालिकेर कैथ बीजपूर नारङ्गी आदि फल और अनेक प्रकार के नैवेद्यों से इन्द्रध्वज का पूजन कर (वज्रहस्त सुरारिघ्न देवराज पुरन्दर। क्षेमार्थं सर्वलोकस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम्) यह मन्त्र पढ़ै और श्रवण से भरणीपर्यंत पूजन कर रात्रि के समय (सार्द्धं सुरासुरगणैः पुरन्दर शतक्रतो। उपहारं गृहीत्वेमं महेन्द्रध्वज गम्यताम्) इस मन्त्र से विसर्जन करै इस विधिसे जो राजा इन्द्रध्वज की यात्रा करै उसके राज्यमें यथेष्ट वृष्टि होती है मृत्यु और ईतियों का भय नहीं होता और वह राजा शत्रुओं को जीत चिरकाल राज्य भोग स्वर्ग में जाता है और उसके देश में कभी परचक्र भय नहीं होता।

एकसौअट्ठाईस का अध्याय।

दीपमाला की कथा और विधान।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महराज ! पूर्वकाल में विष्णु भगवान् ने वामनरूप धार बलि को छला और इन्द्र को राज्य दिलाय बलि को पाताल में स्थापन किया और एक दिन उसके राज्यका नियत किया कार्त्तिक की अमावास्या को दैत्य यथेष्ट चेष्टा करते हैं और महीतल में उनका राज्य होता है राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! कौमुदी तिथि का विधान विशेष करके आप वर्णन करें कि उस दिन दान क्यों देते हैं किस देवता का पूजन करते हैं और क्या क्रीड़ा करते हैं यह राजा का प्रश्न सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! कार्त्तिक कृष्णचतुर्दशी को प्रभात के

समय नरक का भय निवृत्त होने के लिये अवश्यही स्नान करना चाहिये अपामार्ग के पत्र शिर के ऊपर भ्रामण कर धर्मराज के नामों से तर्पण करै यम धर्मराज मृत्यु और अन्तक का तर्पण कर देवताओं का पूजन कर नरक को दीप देवै और प्रदोष के समय शिव विष्णु ब्रह्मा आदि के मन्दिरों में कोष्ठागार चैत्य सभा नदी तट तड़ाग उद्यान वापी रथ्यों बगीचे हस्तिशाला अश्वशाला आदि स्थानों में और चामुण्डा बुद्ध भैरवआदि देवताओं के आलयों में दीपक प्रज्वलित करै अमावास्या के दिन प्रभात समय स्नान कर देवता और पितरों का पूजन तर्पण आदि कर पार्वण श्राद्ध करै और दही दुग्ध घृत और अनेक प्रकार के पक्वान्न ब्राह्मणों को भोजन कराय दक्षिणा देवै पीछे मध्याह्न के अनन्तर राजा अपने नगर में यह घोषणा करादेवै कि आज लोक में बलिका राज्य है सब यथेष्ट चेष्टा करो नगर के लोग कली से अपने घरों को शुभ्र कर वृक्ष पुष्प और वन्दनमाला आदिसे और नानाप्रकारके खिलौनों से भूषित करैं नगरके सब नर नारी उत्तम उत्तम वस्त्र भूषण पहिने कुंकुम का लेपन करैं ताम्बूल चर्वण करैं द्यूतक्रीड़ा और पान करैं परस्पर प्रेमसे ताली देकर हँसैं नृत्य गीत आदि बड़ा उत्सव होय प्रदोष के समय बड़ी दीपमाला प्रज्वलित करैं अनेक प्रकार के दीपवृक्ष खड़े किये जावें उस समय योजना नाम राक्षसी लोक में विचरती है उसका भय निवृत्त होने के लिये नीराजन करैं इस प्रकार अति शोभित नगर की शोभा देखने के लिये आधीरात्रि के समय अपने मित्र और मन्त्री आदि सहित राजा निकलै और नगर की और बाजार की शोभा देखता देखता धीरे धीरे पैरों से ही फिरै सारे नगर की रमणीयता देख और अपने ऊपर बलिराजा को सन्तुष्ट हुये मान अपने महल में आवै उसी समय सब स्त्री

अपने अपने घरसे मरु डिंडिम आदि बाजे बजाकर प्रसन्न हो अलक्ष्मी को निकालैं सारीरात्रि लोक उत्सवमें जगते रहैं वेश्या आदि मार्गोंमें घूमैं ब्राह्मण आशीर्वाद देवैं और बड़ाभारी उत्सव नगर भर में सम्पूर्ण रात्रि रहै प्रभात होतेही वस्त्र भूषण आदिसे ब्राह्मणों को सन्तुष्ट कर औरों को भोजन पान आदि दिलाय मीठे वचनों से पण्डितों का सत्कार कर सामन्त आदिकों को ताम्बूल सिपाहियों को कण्ठभूषण और कङ्कण और अपने समीपवर्ती सेवकों को अपने नामांकित भूषण देकर सन्तुष्ट करै और मंचके ऊपर बैठ महिष वृष हाथी मल्ल आदिका युद्ध और नट नर्तक चारण आदि के तमाशे राजा देखै गौ महिषी आदि को भूषित करैं मध्याह्न के अनन्तर नगर से पूर्वदिशा में ऊँचे स्तम्भ अथवा वृक्षोंपर कुश और काश की बनी मार्गपाली बांधे फिर हवन कराय अपनी प्रजाके हजार दो हजार मनुष्यों को भोजन करावै उस समय राजाका नीराजन करैं पीछे गौ वृष हाथी घोड़े राजा राजपुत्र ब्राह्मण शूद्र आदि सब उस मार्गपाली का उल्लंघन करैं इस मार्गपाली को बँधवानेवाला अपने दोनों कुलों का उद्धार करता है और इसको लंघन करनेवाले वर्ष भर सुखी रहते हैं फिर भूमिपर पंचरंग से मण्डल लिख उसके बीच प्रसन्न मुख द्विभुज किरीट कुण्डल धारे कूष्माण्ड बाण जम्भ मुर आदि दैत्यों करके वेष्टित और अपनी रानी विन्ध्यावली सहित राजा बलिकी मूर्ति स्थापन कर उसका पूजन करै पहिले अर्घ्य देकर कमल कुमुद गन्ध धूप अक्षत गुड़के अपूप मद्य मांस लेह्य दीप बलि आदिसे पूजन कर (बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो । भविष्येन्द्र सुराराते पूजेयं प्रतिगृह्यताम्) यह मन्त्र पढ़ै इस प्रकार पूजन कर रात्रि को जागरण और नट नर्तक आदि का तमाशा करावै

और भी नगर के लोग अपने अपने घर शय्या में श्वेत तण्डुलों करके बलिका स्थापन कर फल पुष्प आदिसे पूजन करें इस दिन बलिराजा के निमित्त जो कुछ दान देवै वह अक्षय होताहै और विष्णु भगवान् की प्रीति होतीहै यह तिथि विष्णु भगवान् ने प्रसन्न हो बलि को दी है उसी दिन से यह कौमुदीका उत्सव प्रवृत्त हुआ है यह तिथि सब उपद्रव विघ्न शोक आदि हरनेहारी है और धन पुष्टि सुख आदि देती है कु नाम भूमि का है और मुद हर्षको कहते हैं भूमिपर सबको हर्ष देनेसे इसका नाम कौमुदी हुआ जो राजा वर्ष भर में एकदिन बलिराजा का उत्सव करै उसके राज्य में रोग शत्रु मारी और दुर्भिक्ष का भय नहीं होता सुभिक्ष क्षेम आरोग्य और सम्पत्ति की वृद्धि होती है इस कौमुदी तिथिको जो जिस भाव में रहै वह वर्ष उसको उसी भावमें बीतताहै रोवै तो रोदन करतारहै भोगसे भोग हर्षसे हर्ष स्वस्थता से स्वस्थता और इस दिन दीन रहने से वर्षभर दीनता रहती है इसलिये इस तिथिको हृष्ट और तुष्ट रहना चाहिये यह तिथि वैष्णवी है और दानवी भी है दीपमाला के दिन जो पुरुष भक्ति से राजा बलिका पूजन करैं उनको वह वर्ष आनन्द से व्यतीत होता है और सब मनोरथ उनके सिद्ध होते हैं।

एकसौउनतीस का अध्याय।

ग्रहयज्ञ, अयुतहोम और लक्षहोम का विधान।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं हे श्रीकृष्णचन्द्र! आप सर्वज्ञ हैं इसलिये सर्वकार्य सिद्ध होने के अर्थ शान्तिक और पौष्टिक विधान कहैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! धन आयुष पुष्टि और शान्ति की इच्छा होय तो ग्रहयज्ञ करना चाहिये अब हम सब पुराणों का सार ग्रहशान्ति का विधान संक्षेप से कहते हैं उत्तम

दिन में ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन आदि कराय ग्रह और ग्रहों के अधिदेवताओं को स्थापन कर होम का आरम्भ करै ग्रह यज्ञ में तीन प्रकार का होम होता है अयुत हामे लक्ष होम और सब कामना सिद्ध करनेहारा कोटि होम। अब हम अयुत होम युक्त नवग्रह यज्ञ का विधान कहते हैं। प्रथम ईशान कोण में उत्तम वेदी बनाय उसमें बत्तीस देवताओं का स्थापन करै सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह हैं मध्य में सूर्य दक्षिण में भौम उत्तर में गुरु ईशान में बुध पूर्व में शुक्र आग्नेय में सोम पश्चिम में शनि नैर्ऋत्य में राहु और वायव्यकोण में केतु का शुक्ल तंडुलों करके स्थापन करै शिव पार्वती स्कन्द हरि ब्रह्मा इन्द्र यम काल ये ग्रहों के अधिदेवता हैं शहद घृत दही अथवा पायस करके अष्टोत्तर-शत अथवा अट्ठाईस अट्ठाईस आहुति प्रत्येक देवता के नाम से देवै एक एक प्रादेश लम्बी सीधी और अव्रण समिधा सब कर्मों में उत्तम होती हैं अपने अपने मन्त्र से समिधा होम करै आकृष्णेन० इमंदेवा० अग्निर्मूर्द्धा० उद्बुध्यस्व० बृहस्पते० अन्नात्० शन्नोदेवी० कयानः० केतुं कृण्वन्न० इत्यादि नवग्रहों के मन्त्र हैं प्रजापति सर्प ब्रह्मा विनायक वायु आकाश सावित्री लक्ष्मी उमा ये ग्रहों के प्रत्यधिदेवता हैं इन सब का और अश्विनीकुमारों का आवाहन कर पूजन करै सूर्य भौम का रक्तवर्ण सोम शुक्र का श्वेत बुध गुरु का पिङ्गल शनि राहु का कृष्ण और केतु का धूम्रवर्ण ध्यान करै इसी रङ्ग के वस्त्र और पुष्प ग्रहों को अर्पण करै गन्ध बलि और गुग्गुल का धूप सबको निवेदन करै गुड़ोदन घृत पायस संयाव घृत क्षीर दहीभात घृतोदन कृसर मांस और चित्रोदन क्रम करके सब ग्रहों को नैवेद्य लगावै ईशान कोण में दही अक्षत पञ्चपल्लव पञ्चरत्न और दो वस्त्रों करके

भूषित अव्रण कुम्भ स्थापन कर उसमें गंगा आदि नदी समुद्र और सरोवरोंयुक्त वरुण का आवाहन करै गज अश्व रथ बल्मीक संगम ह्रद गोकुल इन स्थानों की मृत्तिका सर्वौषधि और भी सब सामग्री वहां स्थापन करै (सर्वे समुद्राः सरितः सरः प्रस्रवणानि च । आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः) इस मन्त्र से कलश में आवाहन करै इस प्रकार आवाहन कर घृत यव तिल और धानों करके हवन का आरम्भ करै अर्क पलाश खदिर अपामार्ग पिप्पल उदुम्बर शमी दूर्वा और कुश ये ग्रहों की समिधा हैं इन से ग्रह ग्रहदेवता और ग्रहों के प्रत्यधिदेवताओं के मंत्रों करके हवन करै हवनके अन्तमें अनेक प्रकारके वाद्यों के शब्द और मंगल गीतों सहित नये कुम्भों करके यजमान को स्नान करावै और (स्कन्दो गणेशो गिरिजा रमा वाणी शची तथा । सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ वासुदेवो जगन्नाथस्तथा सङ्कर्षणो विभुः । प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते ॥ आखण्डलोग्निर्भयदस्तथा पुण्यजनेश्वरः । वरुणः पवनश्चैव धनदश्च तथा शिवः ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मनवो देवाः सिद्धा विद्याधरास्तथा ॥ देवपत्न्यो ध्रुवो नागा दैत्याश्चाप्सरसाङ्गणाः । अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च ॥ अष्टधा यानि रत्नानि कालश्च ऋतवस्तथा । सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः ॥ एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये) इन मन्त्रों से स्नान कर शुक्लवस्त्र गन्ध मालाआदि से अलंकृत हो पत्नी सहित आसन पर बैठ ग्रहोंका पूजन कर कपिला गौ शंख अरुण वृष सुवर्णपीत वस्त्र श्वेत अश्व कृष्णा गौ लोह और अज ये नवग्रहों को दक्षिणा चढ़ावै और क्रम से ये मन्त्र पढ़ै (कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणि । तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्ति

प्रयच्छ मे ॥ शङ्ख त्वं निजशब्देन दैत्यविद्रावणः सदा । विष्णोः प्रियोसि त्वमतः सदा शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारकः । अष्टमूर्त्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ हिरण्यगर्भस्त्वमसि तथा बीजं विभावसोः॥अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ पीतवस्त्रयुगं यस्माद्वासुदेवस्य वल्लभम् । प्रसादात्तस्य विष्णोस्तदतः शान्तिं प्रयच्छतु ॥ कपिलासोमयुक्तस्त्वं यस्मादमृतसम्भवः । चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ यस्मात्त्वं पृथिवीरूपा धेनुर्वै कृष्णसञ्ज्ञिता । सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ यस्मादायसकर्माणि तवायत्तानि सर्वदा । लाङ्गलान्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ यस्मात्त्वं छागयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः । योनिर्विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे) ये मन्त्र पढ़ै पीछे हाथ जोड़कर (गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिह लोके परत्र च ॥ यथान शून्यं शयनं केशवस्य शिवस्य च । शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथा जन्मनि जन्मनि ॥ यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवा व्यवस्थिताः ॥ तथा शान्तिं प्रयच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः । यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ दानान्यन्यानि मे शान्तिं तथा भूमिः प्रयच्छतु) ये मन्त्र पढ़ गन्ध पुष्पमाला धूप दीप नैवेद्य वस्त्र सुवर्ण रत्न आदि करके भक्तिपूर्वक ग्रहों का पूजन करै इसमें कभी वित्तशाठ्य न करै अब हम नवग्रहों के ध्यान कहते हैं (पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः। सप्ताश्वरथयुक्तश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः ॥ श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतभूषणः । गदापाणिर्द्विबाहुश्च वरदः स्यात्सदा शशी ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तः शक्तिगदाधरः। चतुर्भुजो मेषगमो वरदः स्याद्धरासुतः ॥ पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः । खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः ॥

पीताम्बरः पीतवपुः कुञ्जरस्थश्चतुर्भुजः। कमण्डलुधरो दण्डी वरदः स्यात्सदा गुरुः॥श्वेताम्बरः श्वेतवपुस्तुरगस्थश्चतुर्भुजः। अक्षस्रक्कुण्डिकाधारी वरदः स्यात्सदा भृगुः॥ इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः। बाणबाणासनधरो ध्यातव्योर्कसुतः सदा॥ सदा शार्दूलवदनः खड्गी शूली वरप्रदः। नीलसिंहासनस्थश्च राहुर्ध्येयः सदा बुधैः धूमादिवाहनाः सर्वे गादिनो विकृताननाः गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः) यह ग्रहों का स्वरूप है इसके अनुसार ध्यान करै और ऐसीही मूर्ति बनाकर उनका पूजन करै हवनके लिये कुण्ड उत्तम लक्षणों करके युक्त और यथार्थ बनाना चाहिये मानहीन कुंड अनर्थ करनेहारा होता है अयुत होमसे दशगुण आहुति और दक्षिणा लक्ष होम में होती है तीन मेखला और योनि करके भूषित चतुरस्र कुण्ड लक्ष होम के लिये ईशानकोण में बनावै और देवता स्थापन के लिये तीन वप्रों करके वेष्टित स्थंडिल बनावै उसके ऊपर तण्डुलों करके पूर्वोक्त रीति से आदित्याभिमुख सब देवता स्थापन करै कुम्भस्थापन और हवन पूर्ववत् करै अग्नि में वसुधारा का पातन करै और अग्नेय वैष्णव रौद्र महावैश्वानर आदि सूक्त साम और ज्येष्ठसाम का पाठ करावै यजमान को स्नान पूर्ववत् करावै वेही मन्त्र पढ़ै यजमान भी काम क्रोध त्याग शान्तचित्त हो ऋत्विजों को दक्षिणा देवै नवग्रह यज्ञ के अयुत होम करने के लिये वेदवेत्ता चार ब्राह्मणों का अथवा दो का वरण करै लक्ष होम में दश अथवा आठ ऋत्विक् हवन करने के लिये नियत करने चाहिये अयुत होम से लक्ष होम में दक्षिणा आदि सब दशगुण होनी चाहिये सब ऋत्विजों को भूषण शय्या वस्त्र कटक कुण्डल आदि वित्तानुसार देवे वित्तशाठ्य न करै जो समर्थ होकर न देवै उसका कुल क्षय होता है अन्नदान भी यथाशक्ति करै

अन्नहीन यज्ञ दुर्भिक्ष करनेहारा होता है अल्प धन मनुष्य कभी लक्ष होम न करै क्योंकि धन के संकोच से विपरीत फल होता है एकही ब्राह्मण का भली भांति पूजन कर अयुत होम करावै अथवा दो चार ब्राह्मणों का वरण करै जो घर में धन होय तो लक्ष होम करै लक्ष होम करनेहारे पुरुष के सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और आठसौ कल्पपर्यन्त देवताओं करके पूजित वह पुरुष शिवलोक में निवास करता है जिस कार्य के उद्देश से लक्ष होम करै वही कार्य सिद्ध होता है पुत्रार्थी पुत्र धनार्थी धन भार्यार्थी उत्तम भार्या और राज्यार्थी पुरुष लक्ष होम करने से राज्य पाता है और जो निष्काम होकर लक्ष हवन करै तो मुक्ति पावै जो राजा विधिपूर्वक ब्राह्मणों से नवग्रह शांति करावै वह ऐश्वर्य सन्तान और विजय पाता है और उसके राज्य में दुर्भिक्ष मारी परचक्र आदि कोई उपद्रव नहीं होते ।

एकसौतीस का अध्याय ।

कोटि होम का विधान ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! पूर्वकाल में प्रतिष्ठाननगर के बीच बड़ा प्रतापी शस्त्रास्त्र में निपुण ब्रह्मण्य पितृभक्त देव ब्राह्मणपूजक राजा संवरण नाम हुआ एक समय ब्रह्माजी के पुत्र सनकऋषि राजा संवरण के पास आये राजा ने उनको आसन पर बैठाय प्रणाम किया और पाद्य अर्घ्य आदि देकर सब राज्य और आत्मा उनके आगे निवेदन किया मुनि ने भी राजा का सत्कार अंगीकार किया पीछे अनेक प्रकार के प्राचीन राजाओं के चरित और इतिहास पुराण आदि की मनोहर कथा कहते सुनते रहे इसी अवसर में जगत् के और अपने हित के लिये बड़े विनय से राजा संवरण ने सनकऋषि से प्रार्थना करी कि हे देवर्षे ! भूकंप

पांशुवृष्टि ग्रहयुद्ध अनावृष्टि राज्योपद्रव आदि उत्पातों की शान्ति के लिये कोई उपाय धन आरोग्य और स्वर्ग देनेहारा आप वर्णन करें। यह राजा की प्रार्थना सुन सनक मुनि बोले कि हे राजन्! सब कार्य सिद्ध करनेहारा और शान्तिप्रद कोटि होम का विधान हम वर्णन करते हैं जिसके करते ही ब्रह्महत्यादि पातक निवृत्त होते हैं सब उत्पात शान्त हो जाते हैं और बड़ा सुख उत्पन्न होता है प्रथम उत्तम मुहूर्त्त देख देवालय में नदी के तट पर अथवा वनमें कोटि होम करावै पहिले वेदवेत्ता ब्राह्मण का वरण कर गन्ध पुष्प माला वस्त्र भूषण आदि से उसका पूजन कर (त्वं नो मातिः पिता माता त्वं गतिस्त्वं परायणम् । त्वत्प्रसादेन विप्रर्षे सर्वं मे स्यान्मनोगतम् ॥ आपद्विमोक्षाय च मे कुरु यज्ञमनुत्तमम् । कोटिहोमाख्यमतुलं शान्त्यर्थं सर्वकामिकम्) यह मन्त्र पढ़ प्रार्थना करै आचार्य भी शुक्लवस्त्र आदि से शोभित हो उत्तम ब्राह्मणों सहित पुण्याहवाचन कर समभूमि में मण्डप बनावै सौ हाथ विस्तार का मण्डप उत्तम पचास हाथ का मध्यम और पचीस हाथ का लम्बा चौड़ा निकृष्ट होता है शक्ति और समय के अनुसार मण्डप बनाय उसके मध्य में चार हाथ लम्बा और चार हाथ ही चौड़ा तीन मेखलाओं करके युक्त और द्वादशाङ्गुल विस्तृत योनि करके भूषित चतुरस्र कुण्ड बनावै कुण्ड के पूर्वभाग में चार हाथ लम्बी चौड़ी और एक हाथ ऊँची वेदी बनावै वही सब देवता स्थापन करने का स्थान है मण्डप की चारों दिशाओं में भूमि को लेपन कर उसमें पंचपल्लवों करके शोभित जलपूर्ण चार कलश स्थापन करै मंडप के ऊपर वितान और सब दिशाओं में तोरण स्थापन करै इस भांति सब संभार एकत्र कर पुण्यांहवाचन और जयशब्दपूर्वक उत्तम दिन से पुरोहित होम का आरम्भ करै

पूर्व में ब्रह्मा मध्यमें विष्णु पश्चिम में रुद्र उत्तर में वसु ईशान में ग्रह अग्निकोण में मरुत् और बाकी दिशाओं में लोकपालों का स्थापन कर गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्यादि से वैदिक और पौराणिक मन्त्रों से उनका अलग २ पूजन कर (आदित्या वसवो रुद्रा मरुतो लोकपास्तथा । ब्रह्मा जनार्दनश्चैव शूलपाणिर्भगाक्षिहा ॥ सत्रे सन्निहिताः सर्वे भवन्तु मखभागिनः । पूजां गृह्णन्तु सर्वत्र मया भक्त्योपपादिताम् ॥ कुर्वन्तु च शुभं सर्वे यज्ञकर्तुः समाहिताः) इन मन्त्रों से प्रार्थना करै पीछे वेदपाठी ब्राह्मणों सहित कुण्ड का संस्कार कर उसमें अग्नि प्रज्वलित कर घृतार्चिष् उस अग्नि का नाम रक्खै विद्यावृद्ध वयोवृद्ध गृहस्थ जितेन्द्रिय स्वकर्मनिष्ठ शुद्ध और ज्ञानशील सौ ब्राह्मणों को हवनके लिये नियुक्त करै अथवा जितने ब्राह्मण उत्तम मिलैं उनकाही वरण करै अग्नि को पंचमुख ध्यान करै जिसमें चार मुख तो सात सात जिह्वाओं करके युक्त और पांचवां सर्व कामदमुख एकजिह्वा युक्त ध्यावै प्रज्वलित अग्नि में हवन करै धूमायमान अग्नि में वृथा होम न करै ऋग्वेदी ब्राह्मण पूर्वाभिमुख यजुर्वेदी उत्तराभिमुख सामवेदी पश्चिमाभिमुख और अथर्वणवेदी ब्राह्मण दक्षिणाभिमुख बैठ कर हवन करै प्रथम ब्रह्मा का स्थापन कर इस कर्म का आरम्भ करै प्रणवादि स्वाहान्त व्याहृतियों से यह होम करना चाहिये घृत कृष्णतिल और थोड़े से यव मिला कर होम करै पलाश की समिधाओं से कोटि होम करै और हजार आहुति पूरी होने पर पूर्णाहुति देता जाय इस विधिसे कोटि हवन करै परन्तु सब ब्राह्मण और यजमान काम क्रोध आदि दोषों से बचैं इतना सुन राजा संवरण ने कहा कि महाराज यह कोटि होम बहुत काल में होता है इतने दिन संयम से रहना अति कठिन है इसलिये कोई संक्षेप उपाय कोटिहोम का कथन करैं जिस से थोड़े से

समय में निर्विघ्न यह यज्ञ हो जाय यह राजा का वचन सुन सनक मुनि कहने लगे कि हे राजन्! कोटिहोम चार प्रकार का है शनातन दशानन द्विमुख और चौथा एकमुख समयानुसार इन चारों में से जौन सा बन पड़े वही करना उत्तम सौ कुण्ड बना कर एक २ कुण्ड पर दश २ ब्राह्मणों को हवन के लिये नियत करै एक कुण्ड में अग्नि का संस्कार कर उसी अग्नि को सब कुण्डों में प्रज्वलित करै इस विधि करने से वह एकही कोटिहोम होता है यह शतमुख होम कार्यगौरव से और समय के संकोच से कहा है यह थोड़े दिनों में हो जाता है जो अधिक अवसर होय तो दश कुण्ड बना कर प्रत्येक कुण्ड पर बीस २ ब्राह्मण हवन के लिये नियुक्त करै यह दशमुख हवन है जो महीने दो महीने का अवसर होय तो दो कुण्ड बना कर पचास २ ब्राह्मण एक २ कुण्ड पर हवन के लिये नियुक्त करै यह द्विमुख होम है और जो काल का संकोच न होय तो एक कुण्ड में अग्नि स्थापन कर उत्तम कुलोत्पन्न सदाचार और वेदवेत्ता ब्राह्मणों से हवन करावे इस में ब्राह्मणों की संख्या का नियम नहीं है और काल का भी नियम नहीं यह एकमुख होम स्वस्थयज्ञ कहाता है परन्तु यह बहु काल साध्य है और बीच में अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं धन और शरीर की स्थिरता का कुछ भरोसा नहीं इसलिये संक्षेप से ही यह यज्ञ करना चाहिये इस विधि यज्ञ समाप्त कर बड़ा उत्सव करावै सब ऋत्विजों को कटक कुण्डल वस्त्र दक्षिणा देवै सौ गौ सौ घोड़े और हजार मोहर ब्राह्मणों को देवै हाथी और घोड़ों का पूजन करै दीन अन्ध कृपण आदि को भोजन देकै अन्त में अवभृथ स्नान करै और लक्ष होमोक्त मंत्रों से ब्राह्मण यजमान का अभिषेक करैं इस विधि से जो राजा कोटिहोम करै वह आरोग्य पुत्र राज्य वृद्धि और ऐश्वर्य पाता है

कभी उसको ग्रहपीड़ा नहीं होती उसके राज्य में अनावृष्टि उत्पात मारी दुर्भिक्ष आदि कभी नहीं होते सब उपसर्ग पाप और ग्रहपीड़ा का शमन करनेहारा यह हवन है इसको करनेहारे स्वर्ग को जाते हैं।

एकसौइकतीस का अध्याय।

महाशान्ति का विधान।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! राजाओं के हित के लिये सब उपद्रव शान्त करनेहारा महादेवजी का कहा महाशान्ति विधान हम वर्णन करते हैं राज्याभिषेक के समय में राजा के यात्राकाल में दुःस्वप्न में दुर्निमित्त में ग्रह-पीड़ा में उल्कापात निर्घात भूकम्प केतु का उदय छत्र ध्वज आदि का अपने स्थान से गिरना अथवा टूटना घरमें काक कपोत उलूक आदि का प्रवेश होना ग्रहयुद्ध जन्मराशि से अनिष्ट स्थान में ग्रहोंकी स्थिति सूर्यमण्डल में तामस की-लकों का देख पड़ना वस्त्र शस्त्र मणि शय्या आदि में अग्नि का देख पड़ना अश्वतरी आदि का गर्भ धारण इत्यादि अनेक प्रकार के उत्पातों की शान्ति के लिये महाशान्ति करनी चा-हिये उत्तम कुलमें उत्पन्न शुचि शीलवान् चार वेद तीन वेद दो वेद अथवा एक अथर्वण वेद जाननेहारे कृच्छ्र पाराक चान्द्रायण आदि व्रतों में तत्पर पांच ब्राह्मण इस शान्ति के लिये वरण करे दश हाथ अथवा बारह हाथ लम्बा चौड़ा मण्डप बनाय उसके मध्य में चार हाथ की वेदी बनावे अग्नि-कोण में तीन मेखला और योनि करके भूषित एक हस्त प्र-माण कुण्ड बनावे मण्डप को गोबर से लीप तोरण और वन्दन-माला से अलंकृत करै फिर आचार्य स्नान कर शुक्ल वस्त्र माला चन्दन आदि से अलंकृत हो पांच कलश वेदी के ऊपर स्थापन करै मध्य का कलश अष्टदल कमल बनाय उसके

ऊपर स्थापन करै सब कलशों को पञ्चपल्लव और वस्त्र आदि से भूषित करै ब्रह्मकूर्च के विधान से पञ्चगव्य सर्वौषधि गोरोचन चन्दन पञ्चरत्न श्वेत सर्षप शमी दूर्वा कुश धान जौ अपामार्ग वट उदुम्बर प्लक्ष अश्वत्थ कपित्थ प्रियंगु और आम्र के पत्र हाथी के दांत से उखाड़ी मृत्तिका तीर्थजल ये सब वस्तु कुम्भों में डालै वाचमिति आसिञ्चेति न देवा इति ईशावास्येति इत्यादि चार वैदिक मन्त्रों से आग्नेयादि कोणों में स्थित चारों कुम्भों को अभिमन्त्रण करै और मध्य के कुम्भ को भवोद्भवाति मन्त्र से मन्त्रित कर गन्ध पुष्प अक्षत वस्त्र घृतपक्क नैवेद्य दीपक और नालिकेर आदि फलों करके प्रत्येक कुम्भ का पूजन कर स्वस्तिवाचन कराय अग्नि कार्य का आरम्भ करै अग्निदूतं इत्यादि मन्त्र करके अग्निको स्थापन करै हिरण्यगर्भः इत्यादि मन्त्रसे ब्रह्मासनका नियोजन करै कपोतसुप्रणीतेन इस मन्त्र से ब्रह्मा का स्थापन करै। पीछे आज्य संस्कार कर और भी हवन सामग्री एकत्र करै पुरुषसूक्त करके पायस सिद्धकर भूमिपर स्थापन करै अठारह समिधा शमी की और सात समिधा पलाश की स्थापन करै घृत के दो भागकर पूर्वक्रम से जातवेदसे इत्यादि मन्त्र करके सात आहुतिं देकर उसी मन्त्र से स्थालीपाक की सात आहुति देवै दीर्घसूक्त करके चार आहुति यमाय स्वाहा इस मन्त्र करके सात आहुति इदं विष्णुः इत्यादि मन्त्र से सात आहुति नक्षत्रेभ्यः स्वाहा इस मन्त्र से सत्ताईस आहुति देकर स्विष्टकृत होम करके घृतप्लुत समिधाओं से ग्रह होम कर प्रायश्चित्त के लिये आहुति देवै इसप्रकार हवन कर काश्मरी वृक्ष के काष्ठका पीठ बनवाय उसपर यजमान को बैठाय पांचों कलशों के जलसे वेदोक्त और पुराणोक्त मन्त्रों करके सब अरिष्ट निवृत्त होने के लिये ब्राह्मण अभिषेक करैं

पीछे पुण्याहवाचन कर शान्तिकर्म समाप्त करैं भूमि सुवर्ण वस्त्र शय्या आसन दक्षिणा आदि देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करै दीन अनाथों को निरन्तर भोजन देवै इस विधि से शान्ति करने करके दीर्घ आयुष् और शत्रुओं से जय प्राप्त होता है दुर्घट कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं कुल की वृद्धि होती है जिस भांति कवच पहिन लेने से देह में शस्त्रप्रहार नहीं लगता इसी भांति इस महाशान्ति के करने से दैवीउपद्रव पीड़ा नहीं दे सकते अहिंसक जितेन्द्रिय धर्म से धन उपार्जन करनेहारा और दया दाक्षिण्य आदि गुणों करके जो पुरुष युक्त होय उस पर सब ग्रह अनुग्रह करते हैं इस शान्ति के करने से पाप का क्षय धर्म की वृद्धि मनोरथों की सिद्धि उत्पातों की शान्ति और उत्तम लोक की प्राप्ति होती है ।

एकसौबत्तीस का अध्याय ।

दान की प्रशंसा गोदान का विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब हम दान का माहात्म्य सुनना चाहते हैं आपके मुख से पुण्य का विषय व्रतों का विस्तार और संसार की असारता दिखानेहारा ज्ञान श्रवण किया अब आप यह वर्णन करैं कि क्या दान किस समय में किसको देना चाहिये हमारे विचार में भूमिदान से अधिक कोई दान नहीं है कि जिसको चोर आदि नहीं हर सकै यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! ब्राह्मण को दिया धन विना ब्याज बढ़ता है और विना भूमि में गाड़ी निधि है बड़ा पुष्ट बलवान् और चिरस्थायी शरीर पाकर क्या फल है जो किसी के ऊपर उपकार न बनपड़ा उपकार हीन जीवन ही व्यर्थ है ग्रास से आधा अथवा उससे भी आधा अर्थीपुरुषों को क्यों नहीं देते इच्छानुसार धन कब किसी को मिलता है

दान नहीं दिया जाता परन्तु धन को चोर लेजाय तो रोते फिरते हैं धर्म अर्थ और काम से रहित जिनके दिन व्यतीत होते हैं वे पुरुष लुहार की खाल की भांति श्वास लेते हुये भी मरेही पड़े हैं जिनने दान न दिया हवन न किया तीर्थ में प्राण न त्यागे सुवर्ण वस्त्र अन्न जल आदि से ब्राह्मणों का सत्कार नहीं किया वे पुरुष जन्म जन्म में नङ्गे भूखे रोगी और कपाल हाथ में लिये माँगते फिरते हैं अनेक कष्टों से अर्जित और प्राणों से भी प्यारे धन को दान देना यही धन की सद्गति है और सब धन के लिये विपत्ति हैं उपभोग से और दान से कभी सम्पत्ति का क्षय नहीं होता केवल पूर्व पुण्य के क्षीण होने से सम्पत्ति क्षय को प्राप्त होती है मरने के अनन्तर धन पर अपना स्वत्त्व नहीं रहता इसलिये अपने ही हाथ से पात्र में धन का विनियोग करै जन्मरूप वृक्ष के यही फल हैं कि दान देना तप करना और परमेश्वर में भक्ति रखना इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने कहा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! विष्णु भगवान् की प्रसन्नता के लिये जो दान जिस विधान से ब्राह्मणों को देने चाहियें और जिनके देने से दोनों लोक में उत्तम सिद्धि प्राप्त होय उनका आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! व्यास वाल्मीकि और मनु के कहे दान हम आपके प्रति कथन करते हैं गौ भूमि और सरस्वती ये तीन दान सब दानों में उत्कृष्ट और मुख्य हैं ये सात कुल का उद्धार करते हैं इनमें प्रथम हम गोदान का विधान कहते हैं राजा युधिष्ठिर ने कहा कि प्रथम आप गौ के लक्षण और दान लेनेहारे ब्राह्मण के लक्षण कथन करैं पीछे विधान कहैं तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! तरुणी रूपयुक्त सुशीला सवत्सा दूध देनेहारी और न्याय से अर्जित उत्तम गौ

श्रोत्रिय अर्थात् वेदवेत्ता ब्राह्मण को देनी चाहिये वृद्धा रोगिणी वन्ध्या हीनाङ्गी मृतप्रजा दुःशीला और दुग्धरहित गौ का कभी दान न करै कुटुम्बी वेदवेत्ता दरिद्री आहिताग्नि और अतिथियों के सत्कार में प्रवृत्त ब्राह्मण को उत्तम गुणों करके युक्त गौ देवै अकुलीन मूर्ख लोभी पिशुन और हव्यकव्य से हीन ब्राह्मण को कभी गौ न देवै पुण्यदिन में स्नान कर पितरों का तर्पण कर शिव और विष्णु का घृत और दुग्धसे अभिषेक करै पीछे सुवर्णशृङ्गी रौप्यखुरी कांस्य के दोहनपात्रमें सहित गौ का पुष्पादिकों से पूजन कर दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै और (गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः। गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्) यह मन्त्र पढ़ै और गौकी प्रदक्षिणा करै ब्राह्मण जब गौ को लेकर चलै उसके पीछे आठ कदम जाय इस विधि से जो ब्राह्मण को गौ देवै वह सब अभीष्ट फल पाय स्वर्ग को जाता है सात जन्मों में किये पाप तत्क्षण नष्ट होजाते हैं पद पद में अश्वमेध का और गोशत का फल पाता है यह दक्ष के प्रति विष्णु भगवान् ने कहा है गोदान करनेहारा चौदह इन्द्र व्यतीत होयँ तब तक स्वर्ग में रहता है सब पातक निवृत्त करनेहारा गोदान से अधिक कोई प्रायश्चित्त नहीं चारों वर्ण इस दान के करने से उत्तम लोकों को प्राप्त होते हैं. शास्त्रवेत्ता ऋषि यह कहते हैं कि गोदान से बढ़कर कोई दान नहीं है इसलिये स्वर्ग की कामनावाले पुरुषों को अवश्यही ब्राह्मण को गौ देनी चाहिये।

एकसौतेंतीस का अध्याय।

तिलधेनु का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम वराह नारायण का कहा तिलधेनु दान का विधान कहते हैं जिस दान के करने से ब्रह्महा गोघ्न पितृहा गुरुदारगामी विष देने-

हारा अग्नि लगानेवाला और भी बड़े बड़े पातकों करके युक्त पुरुष सब पापों से छूट स्वर्ग को जाता है भूमिको गोबर से लीपं वस्त्र और अजिन बिछाय उसके ऊपर श्वेत और कृष्ण तिल स्थापन करै एक द्रोण तिलका वत्स और चारद्रोण तिलों की गौ कल्पना करै सुवर्ण के शृंग चांदी के खुर शर्करा की जिह्वा गुड़का मुख गन्ध द्रव्य के प्राण इक्षु के पाद ताम्रका पृष्ठ माला का पुच्छ नवनीत के स्तन और रेशम के रोम उस धेनुके कल्पना कर उत्तम वस्त्र से आच्छादन कर फल दक्षिणा मोती और वस्त्रसहित वह धेनु पर्वदिन में ब्राह्मणको देवै और उसके साथ कांस्य का दोहनपात्र देवै और (या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देहे व्यवस्थिता। धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु) यह मन्त्र पढ़ प्रणाम और प्रदक्षिणा कर विसर्जन करै इस विधिसे जो तिलधेनु का दान करै वह सब पापों से छूट ब्रह्मलोक को जाता है जो पुरुष दान का अनुमोदन करैं प्रसन्नचित्त हो प्रशंसा करैं और विधिपूर्वक किये इस दान को जो ब्राह्मण ग्रहण करैं वे सब ब्रह्मलोक को जाते हैं प्रशान्त सुशील वेदव्रत में निष्ठ ब्राह्मण को तिलधेनु देनेहारा पुरुष कृत अकृत का शोक नहीं करता तिलधेनुदान करनेहारा पुरुष तीन दिन अथवा एक दिन तिलही भोजन करै दान करके विशुद्ध पाप उस पुरुष को तिल भक्षण चान्द्रायण व्रत के तुल्य है बाल्य यौवन वार्धक में मन वचन कर्म से जो पाप किये होयँ अभक्ष्य भक्षण अगम्यागमन अपेयपान आदि जो पातक महापातक और उपपातक किये होयँ वे सब तिलधेनु दान से नाशको प्राप्त होते हैं यमलोक के मार्ग में महाघोर वैतरणी नदी है जिसके बालू में पापी दग्ध होते हैं लोह मुख काक और बड़े भयङ्कर श्वान जहां पापियों का मांस नोच नोच खाते हैं जहां असिपत्रवन और लोह का कण्टकयुक्त शाल्मलि वन

है इन सबको उल्लंघन कर सुवर्ण के विमान में बैठाहुआ तिल-धेनु देनेहारा पुरुष उत्तम लोकको जाता है गुणहीन धनाढ्य कुण्ड गोल और लोभी ब्राह्मण को कभी तिलधेनु न देवै एक गौ एक ब्राह्मण को देनी चाहिये नैमिषारण्य में कथा प्रसंग के बीच यह विधान मुनियों ने कहा और हम को नारदमुनि ने उपदेश किया वही हमने आपको श्रवण कराया यह पवित्र पुण्य मांगल्य और कीर्तिवर्धन विधान श्राद्धकाल में ब्राह्मणों को श्रवण कराने से अनन्त पुण्य होता है गौ घर शय्या और स्त्री इनको दानकर बहुत ब्राह्मणों को न देवै इनका विभाग होने से दाता अधोगति को प्राप्त होता है और विक्रय होने से सात कुल दुर्गतिको प्राप्त होते हैं इसलिये एक वस्तु एक ब्राह्मण कोही देनी चाहिये इस दान के प्रभाव से उत्तम विमान में बैठ साक्षात् विष्णु भगवान् के समीप पहुँचता है माघ अथवा कार्त्तिक की पौर्णमासी अमावास्या चन्द्र सूर्यग्रहण अयन सक्रांति विषुव षडशीतिमुख संक्रांति वैशाख अथवा मार्गशीर्ष की पूर्णिमा व्यतीपात और गजच्छाया योग में तिलधेनु का दान करै धेनु के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने हजार वर्ष दान करनेहारा स्वर्ग में निवास करता है दान को जो ग्रहण करै दान करने को भक्ति से देखैं और दानका अनमोदन करैं वेभी स्वर्ग को जाते हैं ।

एकसौचौंतीस का अध्याय ।

जलधेनुका विधान फल और मुद्गलमुनि की कथा ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम जल-धेनुदान का विधान कहते हैं जिस दान के करने से देवदेव विष्णु भगवान् प्रसन्न होते हैं उत्तम जल से पूर्ण कलश स्थापन कर रत्न धान्य दूर्वा पंचपल्लव कूट मांसी मुरा नेत्र-बाला खस और आमलक उस कुम्भ में डाल श्वेत दो वस्त्र

यज्ञोपवीत और पुष्प माला से उसको अलंकृत करै उसके पास दोहनपात्र स्थापन कर सब उपचारों से विष्णु भगवान् का पूजन कर दक्षिणासहित वह कुम्भ ब्राह्मण को देवै पहिले (विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः । सोमशक्रार्कशक्तिर्या धेनुरूपेण सास्तु मे) इस मन्त्र से कुम्भ को अभिमन्त्रण करै और दान करके (शेषपर्यङ्कशयने श्रीमाञ्छार्ङ्गविभूषितः । जलशायी जगद्योनिः प्रीयतां मम केशवः) यह मन्त्र पढ़े दान करके उस दिन उपवास रक्खै इस विधि से जलधेनु दान करनेहारा पुरुष दिव्य और मानुष सब प्रकार के सुख भोगता है इस दान से शरीरारोग्य और सब मनोरथों की सिद्धि प्राप्त होती है इसमें हम मुद्गल ऋषि का वृत्तान्त वर्णन करते हैं एक समय मुद्गल ऋषि यमलोक में गये वहां देखा पापी जीव अनेक प्रकार के कुम्भीपाक आदि दारुण नरकों में पड़े चिल्लाते हैं और यम के भयङ्कर दूत उनको अनेक प्रकार के त्रास दे रहे हैं किसीको तेल के कड़ाहमें पकाते हैं किसी के शरीर में घावकर उनमें क्षार डालते हैं किसी को विष्ठा के कुण्ड में डुबोते हैं उन नरकके जीवों को मुद्गल के दर्शनसे कुछ आह्लाद हुआ और यत्किञ्चित् सुखी भये इस भांति नरक के जीवोंको सुखी देख मुनि ने धर्मराज से इसका कारण पूछा तब धर्मराज कहने लगे कि हे मुनि ! तुम्हारे दर्शनसे इतना आह्लाद इनको हुआ है तुमने तीन जन्म पहिले जलधेनु दान किया था उस दान के प्रभाव से तुम्हारा दर्शन सब को आह्लाद देता है जलधेनु दान करनेहारा पुरुष इक्कीस जन्मतक आह्लाद युक्त रहता है इससे अधिक आह्लाददायक कोई कर्म नहीं है जलधेनु दान करनेहारे पुरुष को हजारों जन्मतक दाहज्वर आर्ति श्रम आदि नहीं होते हे मुद्गल ! अब आप हमारा किया अर्घ्यपाद्य आदि सत्कार ग्रहण कर अपने धाम को

जावैं कृष्ण के भक्तों का हम भी सत्कार करते हैं जो कृष्ण का पूजन करैं कृष्णप्रीत्यर्थ व्रत करैं नित्य कृष्ण का ध्यान करैं दान देकर (अच्युतः प्रीयताम्) यह वाक्य कहैं चलते फिरते कृष्ण का स्मरण करैं सदा कृष्ण अच्युत अनन्त वासुदेव इत्यादि नामों का उच्चारण करते रहैं वे हमारे लोक में नहीं आते वह कृष्ण जगत्का प्रभु है और हम सब उसके आज्ञाकारी हैं लोकोंका संयमन हम करते हैं और हमारा संयमन करनेहारा कृष्ण है यमराज का यह वचन सुन अग्नि शस्त्र आदि करके पीड़ित सब नरक के जीव इस विधि पुकारने लगे कि (नमः कृष्णाय हरये विष्णवे जिष्णवे नमः। देवाय हृषीकेशाय जगद्धात्रेऽच्युतात्मने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नृसिंहाय निनादिने। शार्ङ्गिणे शितखड्गाय शङ्खचक्रगदाभृते ॥ नमो वामनरूपाय दैत्यलोकवधाय च। वराहरूपाय तथा नमो यज्ञाङ्गधारिणे ॥ व्याप्ताशेषदिगन्ताय शान्ताय परमात्मने। वासुदेव नमस्तुभ्यं नमः केशिनिषूदन ॥ केशवाय नमो नित्यं नमस्तेस्तु महीधर) इस प्रकार विष्णु भगवान् का स्मरण करतेही नरक का अग्नि शीतल होगया शस्त्र कुण्ठित भये कण्टकयुक्त शाल्मलि वृक्ष टूटगया क्षारनदी सूख गई लोहमुख पक्षी गिरपड़े अन्धकार निवृत्त होगया ऐसा प्रचण्ड पवन चला कि असिपत्र वन जड़ से उखड़ गया यमदूत मूर्च्छित होकर भूमिपर गिरे पूय औरं रुधिर की नदियों में उत्तम जल बहने लगा सुगन्ध और शीतल मन्द मन्द पवन चलने लगा और सब नरक के जीव दुःख से मुक्त उत्तम वस्त्र भूषण माला लेपन आदि से भूषित तेज करके जाज्वल्यमान और (नमो नमोस्तु कृष्णाय गोविन्दायाव्ययात्मने। वासुदेवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे) यह वारंवार उच्चारण करते देख पड़े यमराज ने पाद्यअर्घ्य आदि से सबका पूजन किया और एकाग्र-

चित्त हो हाथ जोड़ यह स्तुति करने लगे (विष्णोर्देवाधिदेवस्य जगद्धातुः प्रजापतेः। प्रमाणं ये च कुर्वन्ति तेषामपि नमो नमः॥ तस्य यज्ञवराहस्य विष्णोरमिततेजसः। प्रमाणं ये च कुर्वन्ति तेषामपि नमोनमः॥ अच्युतस्याप्रमेयस्य मायावामनरूपिणः। प्रमाणं ये च कुर्वन्ति तेषामपि नमोनमः) यमराज इस प्रकार स्तुति करतेही थे कि उनके देखते देखतेही सब नरक के जीव दिव्य विमानों में बैठ स्वर्ग को गये मुद्गल भी यह सब चरित्र देख अपने स्थान में आये और विष्णु भगवान् का प्रभाव और उनके नामों का माहात्म्य वारंवार स्मरण कर अपने जीव को इस विधि समझानेलगे कि हे जीव! विष्णु भगवान् की माया बड़ी दुस्तर और गह्वर है जिस करके मोहित हुआ तू परमेश्वर को नहीं पहिंचानता हे जीव! तू कीट जूका मत्कुण वृक्ष लता पक्षी पशु मनुष्यआदि अनेक योनियों में भटकता फिरता है और मुक्तिके लिये यत्न नहीं करता बड़ा आश्चर्य है कि माया करके मोहित मनुष्य अपना हित नहीं पहिंचानते विष्णुमाया यद्यपि दुस्तर है तौभी विष्णुभक्त उसको सुख से छेदन करसक्के हैं धर्म के अविरोध से विषयों को भोगता हुआ पुरुष भी विष्णु भगवान् में दृढ़ भक्ति रक्खै तो उसकी माया का पार पाता है जो मनुष्य जन्म पाय भगवान् का आराधन नहीं करते उनका जन्मही वृथा है थोड़े परिश्रम सेही जो दोनों लोकों में कल्याण देनेहारा है ऐसे विष्णु भगवान् का आराधन कौन पुरुष न करै वे वर्ष मास दिन विषयान्ध पुरुषों के व्यर्थ हैं जिनमें भगवान् का आराधन नहीं किया जो भगवान् धन वस्त्र भूषण आदि कुछ नहीं चाहता केवल हृदय की भक्तिही चाहता है हे जीव! उस से तू दूर दूर क्यों फिरता है हजारों जन्मों के अनन्तर इस कर्मभूमि में मनुष्य जन्म पाकर जो पुरुष विष्णु भगवान् का

आराधन और जलधेनु दान नहीं करते उनका जन्म भ्रष्ट है और वेही माया करके वञ्चित होते हैं हम ऊपर को भुजा उठाय पुकारते हैं कि हे मनुष्यो ! दोनों लोकों में कल्याण प्राप्ति के लिये विष्णु भगवान् का आराधन और जलधेनु का दान करो नरक की यातना अति दुःसह है और मैंने अपने नेत्रों से देखी है उनसे बचने के लिये विष्णु भगवान् को भजो सैकड़ों यज्ञ और क्लेशदायक अनेक व्रत करने से कुछ प्रयोजन नहीं यमराज का भय निवृत्त करने के लिये एक जलधेनु का दानही बहुत है ।

एकसौपैंतीस का अध्याय ।

घृतधेनु का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम घृतधेनु का विधान वर्णन करते हैं आप प्रीति से श्रवण करैं गौ के घृत से पूर्ण एक कुम्भ स्थापन कर गन्ध माला आदि से उसको अलंकृत कर श्वेत वस्त्र से आच्छादन करै और इक्षु के पाद चांदी के खुर सुवर्ण के नेत्र अगुरु काष्ठ के शृङ्ग सप्त धान्य के पार्श्व सिह्लक और कपूर के प्राण फलों के स्तन सब रसों की जिह्वा गुड़ और क्षीर का मुख क्षौम सूत्र का पुच्छ श्वेत सर्षप के रोम और ताम्र का पृष्ठ घृतधेनु का बनावै और इसी प्रकार वत्स बनाकर (आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् । आज्यं सुराणामाहारः सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम् ॥ त्वं वै घृतमया देवी कल्पितासि मया किल । सर्वपापप्रणोदाय सुखाय भव भाविनि) इस मन्त्र से उसका पूजन कर दक्षिणा सहित घृतधेनु ब्राह्मण को देवै और (दक्षिणासहिता धेनुः कल्पिताज्यमयी शुभा । एतां ममोपकाराय गृहाण त्वं द्विजोत्तम) यह मन्त्र पढ़ै उस दिन घृत का ही आहार करै इसी विधान से नवनीतधेनु का भी दान करै घृतधेनु दान करनेहारा पुरुष उस लोक

में निवास करता है जहां घृत क्षीर की नदी बहती हैं और पायस का जिनमें कर्दम है और उस पुरुष की सात पीढ़ी उसी लोक में निवास करती हैं जो निष्काम होकर घृतधेनु दान करै तो निष्कल्मष पद को प्राप्त होता है घृत अग्नि है घृत सोम है और सर्व देवमय घृत है इसलिये घृत के दान से सब देवतां प्रसन्न होते हैं मायारूप जिसमें जल है पुत्र कलत्र आदि जिसके तरङ्ग हैं लोभ जिसमें बड़ा भारी नक्र है ऐसे संसारसागर का पार घृतधेनु दान से प्राप्त होता है ।

एकसौछत्तीस का अध्याय ।

लवणधेनु का विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब आप ऐसा दान वर्णन करैं जिसके करने से सब दानों का फल प्राप्त होय सब पाप निवृत्त होयँ और सब मनोरथ सिद्ध होयँ यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! सब द्रव्यों में लवण उत्तम है जिसके दान करने से ब्रह्महा गोघ्न पितृहा गुरुतल्पग विश्वासघाती क्रूरात्मा और भी सब प्रकार के पाप करनेहारा पुरुष निष्पाप हो जाता है और धन धान्य पशु दीर्घायुष् और संतान पाकर बहुत दिन संसारसुख भोग शिवलोक को जाता है अब हम लवणधेनु का विधान कहते हैं गोबर से भूमि को लेपन कर उसके ऊपर मेषका चर्म और वस्त्र बिछाय उसके ऊपर एक आढक अर्थात् चार सेर लवण रक्खै उसी को धेनु कल्पना करै सुवर्ण के शृङ्ग चांदी के खुर इक्षु के पाद फलों के स्तन सब रसों की जिह्वा गन्ध के प्राण शुक्ति के कर्ण चन्दन काष्ठ के शृङ्ग और मोतियों के नेत्र कल्पना कर उस के कपाल में सक्तुपिण्ड मुख में यव दोनों पार्श्वों में तिल और गेहूं इस भांति सप्तधान्य उसके अंगों में स्थापन कर ग्रीवा

में कम्बल पृष्ठमें ताम्र अपान में गुड़का पिण्ड पुच्छ में कम्बल दुग्ध के स्थान में द्राक्षा योनि में मधु और सब अंगों में फलों का निवेश करै ये सब वस्तु लवण के चतुर्थांश के समान रक्खै इस विधि धेनु बनाय वस्त्र भूषण आदि से उसका पूजन कर दक्षिणासहित सुशील ब्राह्मण को देवै और (लवणे वै रसाः सर्वे लवणे सर्वदेवताः। सर्वदेवमये देवि लवणाख्ये नमोऽस्तु ते) यह मन्त्र पढ़े पीछे उसकी प्रदक्षिणा कर विसर्जन करै लवणधेनु की प्रदक्षिणा करने से सब पृथिवी की परिक्रमा का फल होता है और सब यज्ञ तथा दान करनेका पुण्य भी प्राप्त होता है इस विधि से जो पुरुष लवणधेनु दान करै वह सौभाग्य आरोग्य सब सम्पत्ति और प्रलयपर्यन्त स्वर्गमें बास पाता है।

एकसौसैंतीस का अध्याय।

सुवर्णधेनु दान का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम सुवर्णधेनु दान का विधान कहते हैं पचास पल पचीस पल अथवा जितना सामर्थ्य हो उतना सुवर्ण लेकर अति सुन्दर रत्नों से जड़ी धेनु बनावै पीछे से ऊँची बड़ी कुक्षि और मोटे स्तनों करके युक्त कपिला धेनु बनाय हीरे के दांत वैडूर्य का गल कम्बल तांबड़े के शृंग मोती के नेत्र और मूँगे की जिह्वा उसकी बनावै कृष्णाजिन के ऊपर प्रस्थ भर गुड़ रख कर उसके ऊपर धेनुको स्थापन करै और अनेक प्रकारके फल आठ कुम्भ अठारह प्रकार के धान्य छतुरी जूता आसन भोजन ताम्रका दोहनपात्र दीपक लवण शर्करा आदि सब पदार्थ उसके पास स्थापन कर गुड़धेनु के विधान से उसका पूजन कर (त्वं सर्वदेवगणमन्दिरभूषणासि विश्वेश्वरत्रिपथगोदधिपञ्चजानाम्। श्रद्धाम्बुतीक्ष्णशकलीकृतपातकौघैः प्राप्नोति निर्वृतिमतीव परां नमामि॥ लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वामासाद्य

को हि भवभाग्भवतीह मर्त्यः । संसारदुःखशमनाय विमुक्तिहेतो-स्त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति) यह मन्त्र पढ़ सब उप-स्कर और दक्षिणा सहित वह धेनु ब्राह्मण को देवै पीछे प्रदक्षिणा और प्रणाम कर क्षमापन करावै दानकाल में जो देवता और तीर्थ धेनु के अंग में निवास करते हैं उनको सुनो नेत्रों में चन्द्र सूर्य जिह्वा में सरस्वती दन्तों में मरुत् कर्णों में अश्विनीकुमार शृंगों में रुद्र और ब्रह्मा ककुदमें गन्धर्व और अप्सरा कुक्षि में चारों समुद्र योनिमें गङ्गा रोमकूपों में ऋषि अपानं में पृथिवी आंत्रों में नदी अस्थियों में पर्वत पादों में धर्मादिक हुङ्कार में चारों वेद कंठ में रुद्र पृष्ठवंश में मेरु और सब शरीर में विष्णु भगवान् स्थित हैं इस भांति सुवर्ण-धेनु सर्वदेवमयी है इसलिये अवश्य यह दान करना चाहिये जिसने यह दान किया उसने सब दान किये कर्मभूमि में यह दान होना बहुत दुर्लभ है इस दान का करनेहारा पुरुष अथवा स्त्री दिव्य विमान में बैठ गन्धर्व और अप्सराओं करके सेवित स्वर्ग को जाता है वहां सौ कोटि वर्ष से भी अधिक काल सुख भोगकर मनुष्य लोक में जन्म ले आधिव्याधिरहित रूपवान् और ऐश्वर्यवान् होता है और सब मनोरथ उसके अनायास से सिद्ध होते हैं और अन्त में फिर शिवलोक को जाता है ।

एकसौअड़तीस का अध्याय ।

रत्नधेनु के दान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम अतिदुर्लभ रत्नधेनु के दान का विधान कहते हैं जिसके करने से गोलोक की प्राप्ति होती है पर्वदिनों में गोबर से भूमि पर लेपन कर कृष्णाजिन बिछाय उसके ऊपर एक द्रोण अर्थात् सोलह सेर लवण रख लवण के ऊपर रत्नधेनु स्थापन करै

इकासी पद्मराग मुख में इकासी पुखराज नासिका में मुक्तावली पुच्छ में सौ गारुत्मत रत्न अपान में स्फटिक दांतों में और भी सब रत्न अङ्गों में स्थापन कर सुवर्ण के खुर शर्करा की जिह्वा गुड़ का गोबर घृत का गोमूत्र और दही दूध प्रत्यक्षही रख-कर चामर उसके पुच्छ में लगाय ताम्र का दोहनपात्र उस के समीप स्थापन करै इसके चतुर्थांश तुल्य वत्स बनावै अनेक प्रकार के फल और भोजन उसके समीप रख गुड़धेनु विधान से उसका पूजन कर (त्वं सर्वदेवगणवासमिति ब्रुवन्ति रुद्रेन्द्रचन्द्र-कमलासनवासुदेवाः । तस्मात्समस्तभुवनत्रयहेतुयुक्ता मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम्) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को वह धेनु देवै पीछे दक्षिणा दे प्रदक्षिणा कर क्षमापन करावै इस विधि से जो पुरुष रत्नधेनु दान करै वह सौकरोड़ कल्पपर्यन्त शिवलोक में सुख भोग अन्त में सब काम समृद्ध और शत्रुओं को क्षय करनेहारा राजा होता है।

एकसौउनतालीस का अध्याय।

उभयमुखी धेनुके दान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! उभयमुखी अर्थात् प्रसव होती हुई गौ किस विधि से दान करै और उसके दान से क्या फल होता है यह आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! उभयमुखी धेनु बड़े पुण्यवान् मनुष्यों को प्राप्त होसक्ती है जब तक बछड़े के पैर भीतरही होयँ केवल शिरही बाहर निकला हो तबतक वह धेनु साक्षात् सप्तद्वीपवती पृथिवी है उभयमुखी धेनु के दान फल का एक मुख से वर्णन नहीं करसक्ते बहुत यज्ञ और दान करने से क्या प्रयोजन है केवल उभयमुखी दानसेही अनन्त पुण्य प्राप्त होता है गौ और वत्स के शरीर में जितने रोम होयँ उतने हजार दिव्यवर्ष स्वर्ग में निवास

करता है उसके पितर नरक से निकल विमान में बैठ उस लोक को जाते हैं जहां के वृक्ष कल्पवृक्ष हैं और पायस कर्दमयुक्त घृत क्षीर की नदी बहती हैं जो सुवर्ण सहित उभयमुखी दान करै वह गोलोक में निवास कर ब्रह्मलोक को जाता है दुर्बला और दक्षिणा रहित धेनु दान न करै क्योंकि यह काम्य विधि है स्त्री भी इस दानको कर चन्द्रके समान मुख तप्तसुवर्ण के समान वर्ण कमलसे नेत्र और बड़ा सौभाग्य पाती है।

एकसौचालीस का अध्याय।

वृषभदान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आपका वचनरूप अमृत पान करते करते मुझे तृप्ति नहीं होती और श्रवण करने का बड़ा कुतूहल है इसलिये और भी दान माहात्म्य आप वर्णन करैं यह राजा का बचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! सबदानों में उत्तम और पावन वृषभदान का विधान हम वर्णन करते हैं दश धेनुदान से भी एक वृषके दान करने से अधिक फल प्राप्त होता है हृष्ट पुष्ट युवा सुशील रूपवान् और धुरंधर एकही वृषभ के दान करने से सब कुलका उद्धार होजाता है पर्व दिन में वृषभ को भूषितकर उसके पुच्छ में चांदी लगाय दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै और (धर्मो वृषभरूपेण जगदानन्दकारकः। अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन) यह मन्त्र पढ़ प्रणाम कर उसका विसर्जन करै इस विधि वृषभदान करने से सात जन्म तक किये सब प्रकार के पाप उसी क्षण नष्ट होजाते हैं अन्त में वह पुरुष दिव्य वृषभ युक्त देदीप्यमान विमान में बैठ गोलोक में जाता है वृषभ के शरीर में जितने रोम होयँ उतने हजारवर्ष वहां सुखभोग उत्तम ब्राह्मण के घर में जन्म लेता है और यज्ञ करनेहारा तथा बड़ा तेजस्वी होता है शान्त

जितेन्द्रिय वेदवेत्ता अहिंसक और प्रतिग्रहसे डरनेवाले ब्राह्मण मनुष्यों का उद्धार करने को समर्थ होते हैं दृढ़ पुष्ट बलवान् भार उठाने में समर्थ और सब गुणों करके भूषित उत्तम वृषभ जो पुरुष दान करते हैं वे दश धेनुदान के फलसे भी अधिक उत्तम फल पाते हैं ।

एकसौइकतालीस का अध्याय ।

महिषीदान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! पुण्य पवित्र आयुष् और सुख देनेहारा महिषीदान माहात्म्य हम कहते हैं ग्रहण अयन संक्रान्ति शुक्ल चतुर्दशी आदि पर्वदिनों में अथवा जब होसकें तबहीं संसाररोग निवृत्ति के लिये महिषीदान करै बहुत दूध देनेहारी तरुण पुष्ट सुशील महिषी उत्तम ब्राह्मण को देवै वेदरहित और दाम्भिक को दान न देना चाहिये दान के समय यह पौराणिक मन्त्र पढ़ै (इन्द्रादिलोकपालानां या राजमहिषी शुभा ॥ महिषीदानमाहात्म्यं सास्तु मे सर्वकामदा ॥ धर्मराजस्य साहाय्ये यस्य पुत्रः प्रतिष्ठितः । महिषासुरस्य जननी या सास्तु वरदा मम) यह मन्त्र पढ़ प्रदक्षिणा कर पृष्ठभाग से महिषी का दान करै वस्त्र भूषण और दक्षिणा सहित महिषी ब्राह्मण को देकर क्षमापन करावै इस विधिसे जो पुरुष महिषीदान करै वह इसलोक में और परलोक में मनोवाञ्छित फल पाता है और राजा बनता है जो नारी महिषी दान करै वह राजमहिषी अर्थात् राजा की पट्टरानी होती है ब्राह्मण इस दान को करै तो यज्ञ करनेहारा होय क्षत्रिय विजय पावै वैश्य धन धान्य करके युक्त होय शूद्र इस दान के करने से सब प्रकार की सम्पत्तिं पाता है इसलिये अपने और अपने कुटुम्ब के कल्याण के अर्थ धनवान् पुरुष को अवश्य ही महिषी दान करना चाहिये दश धेनुदान के समान

महिषीदान का फल होता है यह नारदमुनि कहते हैं और बीस धेनुदान के समान वेदव्यासजी बताते हैं सगर काकुत्स्थ धुन्धुमार गाधि आदि बड़े बड़े राजाओं ने यह दान किया है महिषीदान माहात्म्य को जो पुरुष सदा श्रवण करै वह सब पापों से छूट शिवलोक को जाता है नवीन मेघके समान नील-वर्ण पुष्ट मनोहर और दुग्ध का मानों समुद्र ऐसी महिषी सुवर्ण और तिलोंसहित ब्राह्मण को देने से दोनों लोक जीतता है।

एकसौबयालीस का अध्याय।

मेषीदान का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम और भी उत्तम दान कहते हैं जिसके करने से सब पाप निवृत्त होयँ सौ मोहर की मेषी अर्थात् भेड़ बनावै उसको उत्तम भूषण रेशमी वस्त्र चन्दन पुष्प माला आदि से अलंकृत करै अथवा प्रत्यक्ष मेषी कोही भूषित कर सब धातु सब रस सप्तधान्य फल पुष्प आदि सब सामग्री उसके समीप रक्खै वित्तशाठ्य न करै ग्रहण विषुव अयन आदि पर्वकालों में दुःस्वप्न होने पर ग्रहपीड़ा में अथवा जब श्रद्धा उत्पन्न होय तबहीं यह दान करै प्रथम तिल और घृत से हवन कर वस्त्र भूषण आदि से ब्राह्मण का पूजन करै पीछे तिलके कुम्भ पर उसको स्थापन कर उसके सम्मुख लवण रख विधिपूर्वक उसका पूजन कर (रोमत्वङ्मांसमेदाद्यैः सर्वोपकरणैस्तथा । जगतो हितयुक्ताऽसि सततं पार्थिवोत्थिता ॥ वाङ्मनःकायजनितं यत्किञ्चिन्मम दुष्कृतम् । तत्सर्वं विलयं यातु तव दानोपसेवनात्) यह मन्त्र पढ़ कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै पीछे उस ब्राह्मण के साथ सम्भाषण न करै और उसका मुख भी न देखै प्रतिग्रह करके वह ब्राह्मण पातकी होजाता है पूर्वकाल में यह दान पार्वतीजी ने किया जिसके प्रभाव से शिवजी

पति मिले इन्द्राणी ने सुवर्ण के रोमों करके युक्त सौ मेषी दान करने से सब देवताओं का राजा इन्द्र पति पाया नल को गया राज्य मिला इसी दान के करने से रुक्मिणी को हम पति प्राप्त भये अपुत्र को पुत्र और निर्धन को धन इस दान के प्रभाव से मिलता है जो इस दानविधान को सुनै वह भी अहोरात्रकृत पाप से छूट जाता है।

एकसौतैंतालीस का अध्याय।

भूमिदान का विधान और फल।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! अब हम सब पाप हरनेहारे भूमिदान का विधान कहते हैं जो पुरुष अग्निहोत्री दरिद्र कुटुम्बी वैदिक ब्राह्मण को दक्षिणासहित भूमि देवै वह बहुत काल सब ऐश्वर्य का भोग कर अन्त में दिव्य विमान में बैठ विष्णुलोक को जाता है और वहां प्रलयपर्यन्त दिव्यांगनाओं के साथ विहार करता है धन धान्य सुवर्ण रत्न भूषण आदि सब दान का फल भूमि देनेहारा पाताहै समुद्र नदी पर्वत सम विषम स्थल सब गन्ध और रस क्षीर युक्त ओषधी पुष्प फल कमल उत्पल आदि के समूह सब उसने दिये जिसने भूमिदान किया भूमिदान करने से जो पुण्य होता है वह दक्षिणायुक्त अग्निष्टोम आदि यज्ञ करने से भी नहीं प्राप्त होता है वेदवेत्ता ब्राह्मण को भूमि देकर फिर न हरै तो जब तक लोक हैं तब तक स्वर्ग में निवास करता है और प्रलय पर्यन्त उसके पितर सन्तुष्ट रहते हैं वृत्ति के निमित्त जो पाप पुरुष से बन पड़ते हैं गोचर्ममात्र भूमि देने से वे सब पाप निवृत्त हो जाते हैं हजार मोहर देने से जो फल होता है उतना ही गोचर्म प्रमाण भूमिदान से भी होता है एक हजार कपिला गोदान करने के समान पुण्य गोचर्ममात्र भूमि देने से होता है मध्यम अर्थात् न बहुत लम्बे और न ठिंगने

पुरुष के व्याम अर्थात् सीधी फैलाई दोनों भुजाओं के समान एक दण्ड होता है तीस दण्ड का गोचर्म और चार गोचर्म के तुल्य एक निवर्तन होता है सगर आदि अनेक राजाओं ने इस भूमि का उपभोग किया है परन्तु अपने २ आधिपत्य में जिस २ ने भूमिदान किया सब को फल हुआ यमदूत मृत्यु दण्ड असिपत्रवन वरुण के घोर पाश रौरव आदि अनेक नरक और उनकी दारुण यातना कोई भी भूमिदान करनेवाले के समीप नहीं आतीं चित्रगुप्त मृत्यु काल यम आदि सब उसका पूजन करते हैं षट्कर्म करनेहारा वेदवेत्ता आहिताग्नि दरिद्र सदाचार और अतिथि सत्कार में तत्पर ब्राह्मण को भूमि देनी चाहिये जिस भांति गौ अपने वत्स का पालन करती है इसी विधि भूमिदान करनेहारे का भूमि भी पालन करती है जिस भांति जल के सेचन से बीज अंकुरित हो जाते हैं इसी प्रकार भूमि के देने से सब मनोरथ अंकुरित हो सुफल होते हैं जिस भांति सूर्य सब अन्धकार को हरता है इसी भांति भूमिदान सब पाप हरनेहारा है और की दान करी भूमि को जो हरै उसको वारुणपाशों से बांध यमदूत रुधिर और राद के कुण्ड में डालते हैं अपनी दी अथवा और की दी भूमि जो पुरुष हरै वह प्रलयपर्यन्त नरकाग्नि में जलता है भूमि हरी जाने से ब्राह्मण के जो अश्रुबिन्दु गिरते हैं वे हरनेहारे पुरुष की तीन पीढ़ी को नरक में पहुँचाते हैं ब्राह्मण को भूमि देकर फिर हरै उसको उलटा लटकाय कुम्भीपाकनाम नरक में पकाते हैं दिव्य हजार वर्षके अनन्तर कुम्भीपाक से निकल भूमि पर जन्म लेता है और सात जन्मपर्यन्त अनेक क्लेश भोगता है आप भूमिदान करने से दूसरे की दी भूमि को न हरने में अधिक पुण्य है ब्राह्मण का धन हरनेहारे पुरुष निर्जल अरण्य में सूखे वृक्ष के कोटर के बीच कृष्णसर्प

बनते हैं जो प्रसन्नचित्त होकर ब्राह्मण को भूमि देवै उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं भूमिदान से अधिक कोई पुण्य नहीं और भूमिहरण से बढ़कर कोई पातक नहीं भूमिदान करने हारे पुरुष प्रलयपर्यन्त स्वर्गसुख भोगते हैं।

एकसौचवालीस का अध्याय।

सुवर्णभूमिदान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! भूमिदान क्षत्रिय कर सकते हैं औरों से न तो भूमिदान हो सके न दी भूमिका पालन होय इसलिये सब के कल्याण के अर्थ ऐसा दान आप कहें जिसके करने से भूमिदान के समान फल होय यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! जो प्रत्यक्ष भूमि न देसके तो सुवर्ण की भूमि बनाय ब्राह्मण को देवै तौ भी वही फल होता है अब हम इस दान का विधान कहते हैं ग्रहण संक्रान्ति युगादि तिथि व्यतिपात आदि पुण्य समयों में पापक्षय के और यश प्राप्ति के अर्थ यह दान करै सौ पल से और पांच पलतक सामर्थ्यानुसार सुवर्ण की भूमि बनावै जम्बूद्वीप आदि द्वीप मेरु आदि पर्वत नदी अनेक प्रकार की खेती और रत्नादिकों से उसको अलंकृत कर दश अथवा बारह हाथ लम्बा चौड़ा मण्डप बनाय उसमें चार हाथ की वेदी बनावै ईशानकोण में देवता स्थापन करै और अग्निकोण में कुण्ड बनाके पताका आदि से मण्डप को शोभित कर लोकपाल और ग्रहों का सब उपचारों से पूजन करै पीछे ब्राह्मणों से हवन करावै ब्राह्मण भी वस्त्र भूषण चन्दन आदि से अलंकृत प्रसन्नचित्त हो हवन करैं शंख तूर्यआदि अनेक प्रकार के बाजे बजैं वेदी के ऊपर अष्टादश धान्य, लवण आदि सब रस आठ पूर्ण कलश रेशमी वितान अनेक प्रकार के फल नाना भांति के वस्त्र चन्दन के

टुकड़े और भी सब सामग्री को स्थापन कर सबका अधिवासन करै फिर होम के अन्त में यजमान श्वेतवस्त्र माला आदि से अलंकृत हो सुवर्ण की बनाई भूमि की प्रदक्षिणा कर पुष्पांजलि लेकर (नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव रचना यतः । धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुन्धरे ॥ वसु धारय से यस्मात्सर्वसौख्यप्रदायकम् । वसुन्धरा ततो जाता तस्मात्पाहि भयादलम् ॥ चतुर्मुखोपि नो गच्छेद्यस्मादन्तन्तवाचले । अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्दमात् ॥ त्वमेव लक्ष्मीर्गोविन्दे शिवे गौरीति संस्थिता । गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा ॥ बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता । विश्वं प्राप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा मता ॥ धृतिः क्षितिः क्षमा क्षोणी पृथिवी वसुधा मही । एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात्) ये मन्त्र पढ़ पृथ्वी पर पुष्पांजलि चढ़ावै पीछे उसको दान कर ब्राह्मण को देवै और अपने धन का अर्ध अथवा चतुर्थांश गुरु के अर्पण करै इस विधि से जो पुरुष पर्व दिन में सुवर्णभूमि का दान करै वह अति प्रकाशमान विमान में बैठ विष्णुलोक को जाता है वहां तीन कल्पपर्यन्त उत्तम भोग भोग कर भूमि पर जन्म लेकर सात जन्मपर्यन्त विजयी धर्मनिष्ठ शतकोटि धनका स्वामी चक्रवर्त्ती राजा होता है ।

एकसौपैंतालीस का अध्याय ।

हलपंक्ति दान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम सर्व पाप हरनेहारा और सर्व सौख्यप्रदायक ऐसा दान कहते हैं जिस एक दान के करनेसेही सब दानों का फल प्राप्त होय चार बैलों करके युक्त एक हल होता है ऐसे दश हल होने से एक पंक्ति होती है प्रथम उत्तम दृढ़ काष्ठ के दश हल बनवाय सुवर्ण के पट्ट और रत्नों से भूषित कर तरुण सुन्दर बली अव्यंग

ऊँचे वस्त्र भूषण आदि से अलंकृत उत्तम वृष उन हलों में जोतै और उत्तम खेती करके युक्त बड़ा ग्राम छोटा ग्राम अथवा सौ निवर्त्तन परिमित भूमिदान के लिये नियत करै जो इतना सामर्थ्य न होय तो पचास निवर्त्तनही देवै पीछे वेदवेत्ता सदाचार सम्पूर्णाङ्ग अलंकृत सपत्नीक दश ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवै दश हाथ का मण्डप बनाय उस में अति सुन्दर हस्तप्रमाण कुण्ड बनावै उसमें वे सब ब्राह्मण पलाश की समिधा घृत कृष्णतिल और पायस करके व्याहृतियों से पर्जन्यसूक्त से और रुद्रमंत्रों से हवन करैं फिर पर्वकाल में यजमान स्नानकर शुक्लवस्त्र आदि से अलंकृत हो सप्तधान्य के ऊपर हलपंक्ति को स्थापन कर उसमें वृषभ जोड़ै उस समय अनेक प्रकार के बाजे बजैं और वेदध्वनि होय और यजमान पुष्पांजलि ग्रहण कर ये मन्त्र पढ़ै (यस्माद्देवगणाः सर्वे हले तिष्ठन्ति सर्वदा । वृषस्कन्धे सुनिहितास्तस्माद्भक्तिः शिवेस्तु मे ॥ यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । दानान्यन्यान्यतो भक्तिर्ममैवास्तु सदा दृढा) फिर ब्राह्मण उन हलों को धीरे २ चलावै और यजमान रत्नों सहित सब बीज सुवर्ण और चांदी ब्राह्मणों के हाथ से निर्वपन करावै अर्थात् बुवावै पीछे भूमि और वे सब हल उन ब्राह्मणों को अर्पण करै इस प्रकार जो पुरुष हलपंक्ति का दान करै वह अपने इक्कीस कुलों सहित स्वर्ग को जाता है सात जन्म पर्यंत उस पुरुष को दारिद्र्य दौर्भाग्य और व्याधि नहीं होती है और सेना का अधिपति बनता है जो भक्ति से इस दान को देखै वह भी जन्म भर किये पापों से छूटता है यह दान दिलीप ययाति शिबि भरत आदि सब राजाओं ने किया है इसी के प्रभाव से वे आज तक स्वर्गसुख भोगते हैं इसलिये भक्तिपूर्वक सब स्त्री पुरुष को यह दान करना चाहिये जो हल-

पंक्ति का दान करने का सामर्थ्य न होय तो पांच चार अथवा एक ही हलदान करै हल से जितने रेणु उठैं और वृषभों के शरीर में जितने रोम होयँ उतने हजार वर्ष शिवलोक में निवास कर अन्त में वह पुरुष राजा होता है।

एकसौछियालीस का अध्याय।

राजा बभ्रुवाहनकी कथा और अपाकदान का विधान।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! आप ऐसा कोई दान कहैं जिसके करने से मनुष्य बहुपुत्र बहुधन और बहुभाग्य होजाय यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! इसमें एक इतिहास हम कहते हैं आप प्रीति से श्रवण कीजिये पूर्व काल में इसी भरतवंश के बीच बभ्रुवाहन नाम एक राजा हुआ वह बड़ा प्रतापी आरोग्य बली और शत्रुओं को जीतनेहारा था परन्तु न तो उसके कोई ऐसा मंत्री था जो राज्य भार उठा सकै न पुत्र न मित्र और न कोई सुख देनेहारा बन्धु था इस कारण वह राजा सदा व्यग्र रहता एक दिन महायोगी पिप्पलाद मुनि वहां आये राजा की रानी शुभावती ने पाद्यार्घ्य आदि से उसका पूजन किया और आसन पर बैठाय प्रार्थना करी कि महाराज यह निष्कंटक राज्य पाया परन्तु मन्त्री मित्र पुत्र आदि हमको क्यों नहीं प्राप्त होते इसका आप कारण कथन करैं यह रानी का वचन सुन पिप्पलाद मुनि कहने लगे कि हे रानी! यह कर्मभूमि है इसमें जितना कर्म करो उतना ही फल प्राप्त होता है जो पदार्थ पूर्व जन्म में मनुष्य ने संपादन नहीं किया होय वह पदार्थ शत्रु मित्र बांधव राजा आदि कोई भी नहीं दे सकते पूर्व जन्म में तुमने राज्य का अर्जन किया सो पाया विना संपादन किये पुत्र मित्र आदि अब कहां से मिल जायँ यह मुनि का वचन सुन रानी शुभावती ने कहा कि महाराज

पीछे की बात गई सो गई अब भी कोई व्रत दान उपवास मन्त्र अथवा सिद्ध योग आप ऐसा बतावैं जिससे हम बहुत पुत्र बहुत भृत्य मित्र और धन पावें यह रानी का वचन सुन पिप्पलाद मुनि ने उनको अपाकदान का विधान उपदेश किया जिसके करने से राजा बभ्रुवाहन ने बहुत पुत्र भृत्य मन्त्री और मित्र पाये इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे महाराज ! सर्वकामप्रद उस दान का विधान हम आपके प्रति कथन करते हैं अच्छे मुहूर्त में अगुरु चन्दन धूप पुष्प वस्त्र भूषण नैवेद्य आदि से शुक्र का पूजन करै और (त्वं मे भाण्डानि चित्राणि गुरूणि च लघूनि च । माणिक्यादीनि शुभ्राणि हारांश्च सुमनोहरान् ॥ संपादय महाभाग विश्वकर्मा त्वमेव हि । भार्गव त्वं प्रसन्नेन मनसा पांहि मां सदा) यह मन्त्र पढ़ै फिर अपाक अर्थात् विना अग्नि सिद्ध किये पदार्थों सहित एक हजार भाण्ड अर्थात् पात्र वहां स्थापन करै सायङ्काल के समय हवन कर रात्रिको जागरण और गीत वाद्य आदि का उत्सव करै प्रभात होतेही यजमान स्नान कर श्वेत वस्त्र पहिने उन भाण्डों के ऊपर यथाशक्ति सोने चांदी ताम्र अथवा लोह के सोलह भाण्ड स्थापन कर सब को रक्तवस्त्र से ढक पुष्प मालाओं से उनका अर्चन करै ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन आदि करवाय शुक्र का पूजन करै सौभाग्यवती नारियों का पूजन कर भाण्डों की प्रदक्षिणा करै और (भाण्डरूपाणि यान्यत्र कल्पितानि मया किल । भूत्वा सत्पात्ररूपाणि उपातिष्ठन्तु तानि मे) यह मन्त्र पढ़ उन सब भाण्डों को बांट देवै अथवा लुटा देवै जिसकी इच्छा होय सो आप ही लेलेवे इस विधि से जो पुरुष अथवा स्त्री यह दान करै उसके ऊपर तीन जन्म तक विश्वकर्मा सन्तुष्ट रहते हैं और पुत्र मित्र भृत्य घर आदि सब पदार्थ मिलते हैं जो स्त्री इस दान

को भक्ति से करै वह सौभाग्य पति के साथ अवियोग पुत्र पौत्र आदि सब पदार्थ पाती है और अन्त में अपने पति सहित स्वर्ग को जाती है।

एकसौसैंतालीस का अध्याय।

गृहदान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आप सब शास्त्र का तत्त्व जानते हैं इसलिये गृहदान का माहात्म्य वर्णन करैं तब श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! गृहस्थ धर्म से अधिक कोई धर्म नहीं असत्य से अधिक पाप नहीं ब्राह्मण से बढ़कर कोई पूज्य नहीं और गृहदान से उत्तम कोई दान नहीं धन धान्य पुत्र स्त्री हाथी घोड़े गौ भृत्य आदि से परिपूर्ण घर स्वर्ग से भी अधिक सुख देनेहारा है जिस भांति सब जीव माता के आश्रय से जीते हैं इसी विधि सब आश्रम गृहस्थ के आश्रय से जीते हैं अपने घर में रात्रि के समय पैर पसारकर सुखपूर्वक सोने में जो आनन्द है वह स्वर्ग में भी नहीं जो पुरुष शैव वैष्णव योगी दीन अनाथ अभ्यागत आदि के लिये धर्मशाला बनाते हैं उनको सब व्रत और दानों का फल प्राप्त होता है पक्की ईंटोंका बहुतदृढ़ ऊँचा शुभ्रवर्ण जाली झरोखे स्तम्भ कपाट अर्गल आदि युक्त जलाशय और पुष्पवाटिका से भूषित उत्तम आंगन करके शोभित बहुत रमणीय घर बनाय लोहे सोने चांदी पीतल ताम्र काष्ठ मृत्तिका आदि के सब उपस्कर वस्त्र चर्म बल्कल तृण पाषाण अजिन सातों धातुओं के पात्र रत्न भूषण गौ भैंस घोड़े वृषभ सब धान्य घृत तैल गुड़ तिल चावल धान्य इक्षु मूंग गोधूम सर्षप मटर अरहर चने मंसूर कँगुनी उड़द लवण खजूर द्राक्षा जीरा धनियां चूल्हा चक्की चलनी छाज ऊखल मूसल हांड़ी मथानी मार्जनी जलकुम्भ इत्यादि सब छोटे बड़े

गृहस्थ के उपकरण उस घर में स्थापन करे फिर अच्छे मुहूर्त में कुलशीलयुक्त और वेदशास्त्र जाननेहारे सपत्नीक ब्राह्मणों को बुलाय वस्त्र भूषण आदि से उनका पूजन कर शान्तिकर्म में उनको नियुक्त करे घरके आंगन में मेखला सहित कुण्ड बनाय ब्राह्मण उसमें हवन करें और रक्षोघ्न सूक्त पढ़ें पीछे वास्तु पूजाकर दिशाओं में भूतबलि देवै इस विधि शान्ति कर्मकर वह गृह उन ब्राह्मणों को देवै जो शक्ति होय तो एक २ गृह एक २ ब्राह्मण को देवै अथवा एक गृह ही सर्वोपस्कर सहित एक सत्पात्र ब्राह्मण के अर्पण करै शीत वायु और धूप की हरनेहारी तृणकी कुटी भी ब्राह्मण को देवै तो स्वर्ग को जाता है फिर उत्तम घर देने का तो पुण्य कहां तक कहैं गौ भूमि सुवर्ण आदि के दान और अनेक प्रकार के यम नियम गृहदान की षोड़शीकला की भी तुल्यता नहीं कर सके सब सामग्री सहित बहुतदृढ़ और सुन्दर गृह उत्तम ब्राह्मण को जो पुरुष देवै वह उत्तम विमान में बैठ शिवलोक को जाता है और वहां बहुत काल दिव्य अप्सराओं के साथ विहार करता है।

एकसौअड़तालीस का अध्याय।

अन्नदान का माहात्म्य राजा श्वेत की कथा और एक वैश्य की कथा।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज! पूर्वकाल में मुनियों ने जो अन्नदान माहात्म्य कहा है वह हम कहते हैं आप एकाग्रचित्त हो श्रवण करें हे महाराज! अन्न दीजिये अन्न दीजिये अन्न दीजिये जिससे सद्यः सब को सन्तोष होता है और दानों से क्या प्रयोजन है वनके बीच रामचन्द्रजी ने निर्वेद से यह कहा कि हे लक्ष्मण! सम्पूर्ण पृथिवी अन्न से पूर्ण है परन्तु हमको अन्न नहीं प्राप्त होता इससे यही जानते हैं कि हमने अन्नदान नहीं किया जो कर्मबीज मनुष्य

बोते हैं उसी का फल खाते हैं हमने ब्राह्मणों के मुख में अन्न का हवन नहीं किया विना दिया कोई पदार्थ नहीं मिलता यह लोकप्रवाद सत्य है सत्य से परे पुण्य नहीं बुद्धि से अधिक लाभ नहीं सन्तोष से परे सुख नहीं और अन्नदान से बढ़कर कोई दान नहीं स्नान अनुलेपन भूषण वस्त्र आदि चाहे जितने पदार्थ मिलें परन्तु अन्न विना सुख और सन्तोष नहीं होता अर्थात् भूखे को ये कोई पदार्थ अच्छे नहीं लगते पूर्वकाल में श्वेतनामक चक्रवर्ती राजा हुआ है जिसने बहुत यज्ञ किये अनेक संग्रामों में जय पाया दान दिये धर्म से राज्य किया वह राजा अनेक उत्तम भोग बहुत काल भोगकर राज्य को त्याग वानप्रस्थ हुआ और बहुत काल तप करके अन्त में दिव्य विमान पर बैठ स्वर्ग को गया वहां विद्याधर किन्नर आदि उसके साथ विहार करते अप्सरा उसकी सेवा में रहतीं गन्धर्व उसको गीत सुनाकर रिझाते इन्द्र भी उसका बहुत सत्कार करते और सदा दिव्य वस्त्र भूषण माला आदि पहिनने को मिलते परन्तु भोजन के समय विमान पर बैठ भूलोक में आता और वहां अपने पूर्व शरीर का मांस नित्य खाता और वह शरीर नित्य भक्षण करने पर भी न घटता इससे अत्यन्त व्याकुल हो राजा ने एक दिन ब्रह्माजी से प्रार्थना करी कि महाराज स्वर्ग में मेरा निवास सब देवता मेरा सत्कार करें और सब उपभोग मेरे लिये उपस्थित रहते हैं परन्तु यह पापिनी क्षुधा मुझे निरन्तर सताती है और अपने पूर्व शरीर का मांस खाते मुझे अत्यन्त घृणा होती है मैंने ऐसा कौन पाप किया कि जिससे उत्तम भोजन नहीं मिलता अब आप कृपाकर ऐसा उपाय बतावें जिससे यह कष्ट निवृत्त होय यह राजा का वचन सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे राजन्! तुमने सब दान किये परन्तु ब्राह्मणों को उत्तम २

भोजनों से सन्तुष्ट नहीं किया उसीका फल अब भोगतेहो अन्न के विना दूसरा कोई संजीवन औषध नहीं है इससे इसीको अमृत जानना चाहिये इसलिये अब तुम भूमिपर जाय वेदशास्त्र जाननेहारे तपोनिष्ठ और जितेन्द्रिय ब्राह्मण को भोजन करावो तो तुम्हारा यह क्लेश निवृत्त हो यह ब्रह्माजीका वचन सुन राजा श्वेत भूमिपर आया और वहां परमभक्ति से अगस्त्य मुनिको भोजन कराय अपने कण्ठ से दिव्य मोतियों की एकावली उतार उनको दक्षिणा दी अगस्त्यजी को भोजन कराते ही राजा सन्तुष्ट होगया और सब देवता वहां आय बड़े आदरसे राजा को विमान में बैठाय स्वर्ग को लेगये रामचन्द्रजी ने जब रावण को मारदिया तब वह एकावली अगस्त्यजी ने रामचन्द्र जी को दी यह अन्नदान का माहात्म्य है हमारा वचन सत्य मानो कि अन्नसे बढ़कर कोई उत्तम पदार्थ नहीं अन्न जीवों का प्राण है अन्नही तेज बल और सुख है इस कारण अन्न देनेहारा प्राणदायक होता है भूखे मनुष्य दूसरे जिसके घर आशा करके आवें और तृप्त होकर वहां से जायँ वह पुरुष धन्य है जो भूखे को अन्न न देसके उसका गृहस्थाडम्बर वृथा है अन्न के विना कोई जी नहीं सक्ता जैसा अन्न खाकर पुरुष मैथुन में प्रवृत्त होय वैसेही पुत्र उत्पन्न होते हैं मनुष्यों का दुष्कृत अन्न में रहता है इसलिये जो जिसका अन्न खाय वह उसका दुष्कृत भक्षण करता है चन्द्रमा जब वनस्पतियों में प्राप्त होता है उस दिन जो परान्न भोजन करै उसका एक महीने का किया पुण्य अन्नदाता को प्राप्त होजाता है इसलिये उस दिन परान्न भोजन न करै जिस अन्न के देने का इतना फल है फिर क्यों न अन्नदान करैं ब्राह्मण को भिक्षाहंतकार अथवा तृप्तिपूर्वक भोजन दिये विना जो पुरुष भोजन करते हैं वे केवल किल्बिषही भक्षण करते हैं जिसने

दश हजार अथवा हजारही ब्राह्मणों को भोजन कराया उसने ब्रह्मलोक को जाने के लिये मानो कमर बांधी पूर्वकालमें काशी के बीच प्राणिजीवी वैश्यों में देव ब्राह्मण पूजक धनेश्वर नाम एक वैश्य था उसके घर में सर्पिणी एक अण्डा छोड़गई वैश्य ने उस अण्डे को देखा और दया से उसका रक्षण किया कुछ दिनके अनन्तर अण्डे को फोड़कर कृष्ण सर्पका बच्चा निकला वैश्य भी उसको नित्य दूध पिलाने लगा वह सर्प कभी वैश्य के अंग को चाटता कभी पैरों में लोटता और सारे घरमें फिरता वैश्य उसकी भली भांति रक्षा करता कुछ काल में वह बड़ा भयंकर सर्प होगया एक दिन वैश्य गंगास्नान को गया था और उसका पुत्र दुकान पर सौदा बेचता था उस समय वह सर्प चंचलता से वणिक्पुत्रके पैरोंके बीच से निकला इससे उसको त्रास हुआ और सर्पको उसने तर्जन किया तर्जन करते ही उछलकर सर्प वैश्यपुत्रके मस्तक पर जा बैठा और क्रोध कर बोला कि रे मूर्ख! तेरे पिता के मैं शरण में हूँ उसी ने मेरा पालन पोषण किया इसलिये मैं तेरा भी भलाही चाहता था परन्तु तैंने मुझे विना अपराध ताड़न किया इसलिये अब तुझे जीता न छोडूँगा यह सर्प का वचन सुनतेही उसके घर में रोना पीटना मच गया इतने में अच्युत अनन्त गोविन्द आदि नाम उच्चारण करता धनेश्वर भी स्नान करके घर आया और पुत्रको देखा सर्पने कहा कि हे धनेश्वर! तेरे पुत्रने निरपराध मुझको ताड़न किया इसलिये तेरे सम्मुख ही मैं इसके प्राण हरता हूँ जिससे फिर कोई पुरुष ऐसा काम न करै यह सुन धनेश्वर बोला कि हे सर्प! जो उपकार भक्ति स्नेह आदि सब को भूलकर उत्पथ में चलै उसको कौन रोक सक्ता है परन्तु क्षणमात्र तू इस बालक को दंश मतकर जब तक यह अपना और्ध्वदैहिक अपने हाथ करलेवै सर्प ने यह बात स्वीकार

करली वैश्यने भी वेदवेत्ता और जितेन्द्रिय एक हजार ब्राह्मणों को घृत पायस भोजन कराया और सबको दक्षिणा दी ब्राह्मणों ने प्रसन्न हो (हे वैश्यपुत्र! तू चिरंजीव हो तेरे सब शत्रु नष्ट होयँ और सब मनोरथ सिद्ध होयँ) ये वाक्य कहकर अक्षत और पुष्प वैश्यपुत्र के मस्तकपर डाले अक्षत गिरते ही ब्राह्मणों के वाग्वज्र से ताड़ित पर्वत की भांति वह सर्प गिरा और मरगया सर्प को मरे देख धनेश्वर को बड़ा पश्चात्ताप हुआ और शोचने लगा कि यह सर्प मैंने पुत्र की भांति पाला और बहुत इसका लालन किया अब यह मेरेही दोषसे मृत्युवश हुआ यह बड़ाही अनुचित कर्म बन पड़ा उपकार करनेहारे में जो साधुता करै उसकी साधुता प्रशंसा योग्य नहीं होती अपकारियों में जो साधुत्व रक्खै उसकी साधुता सराहिये इस भांति अनेक प्रकार के पश्चात्ताप वैश्यने किया और दुःख के मारे नतो भोजन किया और न रात्रि को सोया प्रभात होते ही गङ्गा में स्नानकर देवता पितरों का पूजन तर्पण आदि कर घर आय एक हजार सदाचार ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के उत्तम उत्तम भोजनों से सन्तुष्ट किया और दक्षिणा दी ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर कहा कि हे धनेश्वर! हम बहुत सन्तुष्ट हुये तू भी वर मांग तब वैश्य ने यही वर मांगा कि महाराज यह सर्प जी उठै यही वर चाहता हूँ यह वैश्य का वचन सुन ब्राह्मणोंने अभिमन्त्रित जलसे उस सर्पको प्रोक्षण किया प्रोक्षण करतेही पर्वत की भांति वह सर्प उठा और दोनों जीभ लपलपाने लगा उसको देख धनेश्वर बड़ा प्रसन्न हुआ और सब नगर के लोग धनेश्वर की प्रशंसा करने लगे यह सहस्र ब्राह्मण भोजन का संक्षेप से माहात्म्य वर्णन किया है जो पुरुष ब्राह्मणों को और अभ्यागतों को अन्न देते हैं वे बहुत दिन संसारसुख भोगकर विष्णुलोक को जाते हैं।

एकसौउनचास का अध्याय।

स्थालीदान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आपके मुख से अन्नदान माहात्म्य सुन एक बात हमारे भी स्मरण आई वह अपने नेत्रों से देखी आपको सुनाते हैं जब द्यूत के छलसे दुर्योधन कर्ण शकुनि आदि ने हमारा राज्य और धन हरलिया और हम वल्कल पहिन वन को गये उस समय सब नगर के लोग और सदाचार ब्राह्मण स्नेह से हमारे साथ चले उनको देख हमको बड़ा निर्वेद हुआ और यह शोचा कि जो पुरुष ब्राह्मण मित्र भृत्य आदिका पोषण करै उसका जीवन सफल है अपना पेट तो सबही भरते हैं अभ्यागत सुहृद्वर्ग और कुटुम्ब को छोड़ जो अपनाही पेट भरै वह पापी जीताही मराहै यह मनमें शोच उन ब्राह्मणों से हमने कहा कि आप सब त्रिकालज्ञ और ज्ञानविज्ञान के पारगामी मेरे स्नेह से आये हैं अब कुछ अपने भोजन के लिये उपाय कहैं जिससे भाई भृत्य बन्धु और आप सहित हमारा बारहवर्ष निर्जन वन में निर्वाह होय यह हमारा वचन सुन मैत्रेय मुनि बोले कि हे महाराज ! एक प्राचीन वृत्तान्त हमने दिव्य-दृष्टि से देखा है वह हम कहते हैं आप श्रवण करें पूर्वकाल में तपोवन के बीच दुर्भगा और दरिद्रा एक ब्रह्मचारिणी थी वह इस दशा में भी नित्य ब्राह्मणों का पूजन किया करती उसका शम दम और श्रद्धा देख एक दिन प्रसन्न हो ब्राह्मणों ने कहा कि हे ब्राह्मणि ! हम तुझ से बहुत प्रसन्न हैं वर मांग तब ब्राह्मणी ने कहा कि महाराज कोई व्रत अथवा दान ऐसा बताइये जिसके करने से पतिकी प्रिया बहुपुत्रा धनाढ्या लोक में प्रशंसा योग्य और त्रिवर्गभागिनी होजाऊँ यह ब्राह्मणी का वचन सुन वशिष्ठजी कहने लगे कि हे

ब्राह्मणि ! सब मनोरथ सिद्ध करनेहारा दान हम तेरे को बताते हैं वह तू कर पचीस पल बारह पल अथवा छः पल तांम्र की एक हांड़ी बनावै जो सामर्थ्य न होय तो मृत्तिका की उत्तम हांड़ी लेकर उसको चावलों से भर चन्दन से चर्चित कर मण्डल के बीच स्थापन करै उसके समीप सब प्रकार की तरकारी शाक और घृत का पात्र स्थापन कर पुष्प धूप दीप वस्त्र आदि से उसका पूजन कर (ज्वलज्ज्वलनपार्श्वस्थतण्डुलैरपि पूरिते । त्वया विना न संसिद्धिर्भूतानां सिद्धिकामिनाम् ॥ अतस्त्वां प्रणमे नित्यं सत्यं कुरु वचो मम । अक्षयान्नप्रदा नित्यं तथा भव वरप्रदा) यह मन्त्र पढ़ वह हण्डिका आचार्य के अर्पण करै यह दान रविवार संक्रांति चतुर्दशी अष्टमी एकादशी अथवा तृतीया को करै यह वशिष्ठजी का उपदेश मान वह ब्राह्मणी नित्य ब्राह्मणों को स्थाली देने लगी उस पुण्य के प्रभाव से जन्मान्तर में वह तुम्हारी भार्या द्रौपदी भई इतना कह मैत्रेय मुनि ने कहा कि हे महाराज ! अब जो द्रौपदी अपनी स्थाली से अन्न देवै तो सम्पूर्ण जगत् को तृप्त कर सकती है यह मैत्रेय का वचन सुन हमने भी वैसा ही किया और सब ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराने लगे इतना कह राजा युधिष्ठिर बोले कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अन्नदान के प्रसंग से यह स्थाली दान विधान हमने कहा सो आप क्षमा करना जो पुरुष सुन्दर तांम्र की स्थाली बनाय तण्डुलों से पूर्णकर पर्व दिनों में इस विधान से ब्राह्मण को देवै उनके घर में सुहृद् सम्बन्धी बान्धव मित्र भृत्य और अतिथि नित्य भोजन करैं तौ भी भोजन का संकोच नहीं होता ।

एकसौपचास का अध्याय ।

दासीदान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम भक्ति

से और स्नेह से आपको दासीदान का विधान कहते हैं जो आज तक किसी ने न कहा होगा चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सब से उत्तम है गृहस्थ में गृह और गृह में उत्तम स्त्री सार हैं जिसमें पूर्णचन्द्रमुखी और पीनोन्नतस्तनी नारी होयँ उसी को घर कहना चाहिये जिस घर में स्त्रियों का आदर होय वहां सब देवता निवास करते हैं और जहां इनका अनादर होय वे गृह नाश को प्राप्त होते हैं अनादर करी हुई नारी जिन घरों को शाप देती है वे घर मानों कृत्या करके हत होजायँ शीघ्रही पराभव को प्राप्त होते हैं अमृत के मानों कुण्ड सुख की मानों राशि रति के मानों निधान ऐसी नारी किसने रची हैं श्यामा मन्थरगामिनी घनपीन पयोधरा ऐसी नारी और महिषी घर घर में नहीं होती हैं अर्थात् कोई पुण्यवान् ही पाता है जिस घर में सुवर्ण दासी बालक और दही दूध आदि न होयँ वह घर साक्षात् नरक ही जानो अधिपति विना ग्राम दासी विना घर और घृत विना भोजन ये तीनों वृथा हैं रूपलावण्ययुक्त दासी जिस घर में होयँ वहां साक्षात् कमलहस्ता लक्ष्मी निवास करती हैं जिस घर में शौच आचार होय व्यवहार शुद्ध होय और दासी दासों का भली भांति पोषण होय वहां लक्ष्मी का निवास होता है बहुत लोकों करके आकुल ग्राम दासी दासों करके आकुल घर और धर्म करके आकुल बुद्धि उत्तम होती है जिस घर में भार्या गृहस्थ व्यवहार में चतुर होय दासी अपने २ काम में तत्पर होयँ और सेवक सदा उद्यमी होयँ वहां त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम का निवास होता है वेद में लिखा है कि जो २ पदार्थ अपने को प्रिय होयँ सो सब ब्राह्मणों को देने चाहिये यह बात मन में विचार ब्राह्मण को उत्तम दासी देनी चाहिये स्थिर नक्षत्र में और सौम्यग्रहान्वित लग्न में वस्त्र भूषण आदि से

यथाशक्ति दासी को अलंकृत कर (इयं दासी मया तुभ्यं भगवन् प्रतिपादिता । सर्वकर्मसु योज्येयं यथेष्टं भद्रमस्तु मे) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै पीछे सुवर्ण वस्त्र सुगन्ध द्रव्य आदि ब्राह्मण को देकर क्षमापन करावै इसी विधि से देवालयमें भी दासी अर्पण करै इसप्रकार जो पुरुष दासीदान करै वह विद्याधरों करके सेवित अप्सरालोक में निवास करता है ।

एकसौइक्यावन का अध्याय ।

प्रपादान और जलदान का विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब आप प्रपा अर्थात् जलशाला का विधान कहैं किस काल में और किस विधि से जलशालादान होता है और उसके दानसे क्या फल है यह सब आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्णभगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! चैत्र महीने के आरम्भ में उत्तम मुहूर्त देख नगरके मध्य में रस्ते के किनारे देवालय में चैत्य वृक्षके नीचे अथवा निर्जल वन में सुन्दर मंडप घनी और ठण्ढी छाया युक्त बनावै उसके बीच ठण्ढे जलसे पूर्ण गीले वस्त्रसे वेष्टित बड़े २ मटके और शीतल जल जिन में रहै ऐसी सुराही रक्खै और सुशील कुटुम्बी ब्राह्मण को उसमें नियुक्त करै जो निरन्तर सबको जल पिलाया करै उस ब्राह्मण के निर्वाह योग्य जीविका कल्पना करदेवै इसप्रकार उत्तम मुहूर्त में प्रपा बनवाय यथाशक्ति ब्राह्मण भोजन कराय (प्रपेयं सर्वसामान्या भूतेभ्यः प्रतिपादिता । अस्याः प्रदानात्पितरस्तृप्यन्तु च पितामहाः) यह मन्त्र पढ़ प्रपा का दान करै उस दिन से लेकर चार अथवा तीन मास तक निरन्तर जल पिलावै और यथाशक्ति अन्नभी देवै सुगन्ध शीतल सुस्वादु और उत्तम पात्र में स्थित जल सबको पिलावै और यथाशक्ति नित्यहीं ब्राह्मण भोजन करावै इस विधि से जो पुरुष

ग्रीष्म ऋतु में जलदान करै वह सौ कपिला गोदान का फल पाता है और अन्त में दिव्यकुम्भाकार विमान पर बैठ स्वर्ग में जाय तीसकल्प पर्यंत सुख भोगताहै और यक्ष गन्धर्व आदि उस का सेवन करते हैं फिर भूमिपर जन्म ले चतुर्वेदवेत्ता ब्राह्मण होता है और उत्तम कर्मकर मुक्ति पाता है प्रपादान की सामर्थ्य न होय तो ठण्ढे जलसे पूर्ण घट जिसका मुख वस्त्र से ढकाहो नित्य ब्राह्मण के घर देवै और प्रतिमास उसका उद्यापन करै अनेक प्रकार के पक्वान्न और वस्त्र दक्षिणादि से शिव अथवा विष्णु का उद्देश कर ब्राह्मण का पूजन करै और (एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । अस्य प्रदानात्सकला मम सन्तु मनोरथाः) यह मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को जल पूर्ण घट अर्पण करै इस विधान से जो धर्मघटदान करै वह प्रपादान के फल को प्राप्त होता है जो धर्मघट भी न देसकै नित्य अश्वत्थ का सेवन करै नमस्कार और प्रदक्षिणा कर (अनेनाश्वत्थसेवनेन मे जनार्दनः प्रीयंताम्) यह वाक्य उच्चारण करै अश्वत्थ वृक्षके नीचे जो सत्कर्म करै वह अनन्त फलदायक होता है और अश्वत्थ सेवन से सब पाप नाशको प्राप्त होते हैं स्वादु और शीतल जलकी प्रपा जो पुरुष ऐसे स्थान में लगावे जहां बहुत मनुष्य जल पीवैं वह इस मृत्युलोक में धन्य है।

एकसौबावन का अध्याय।

शीतकाल में अङ्गीठीदान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर पूछते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! शीतकाल में दयालु पुरुष अग्निष्ठिका अर्थात् अङ्गीठीका दान किस विधि से करते हैं यह आप वर्णन करैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! सब जीवों के सुखदेनेहारे अग्निष्ठिका दानका विधान हम कहते हैं आप प्रीति से श्रवण कीजिये मार्गशीर्ष के आरम्भ में उत्तम मुहूर्त

देख देवालय मठ घर अथवा बड़े चौक में प्रभात और साय-ङ्काल बहुतसा सूखा काष्ठ एकत्रकर अग्नि प्रज्वलित करै इसी विधि से शीतकाल भर दोनों वक़ अग्नि जलावै और सब दीन अनाथ वस्त्रहीन वहां सेकैं जो उनमें कोई भूखा होय उसको भोजन देवै किसीको निषेध न करै इस विधि से जो पुरुष अग्निदान करै वह दिव्य विमान में बैठ ब्रह्मलोक को जाता है वहां साठ हजारवर्ष सुख भोगकर भूमिपर जन्म लेता है और चतुर्वेदवेत्ता यज्ञ करनेहारा आरोग्य धनवान् और तेजस्वी ब्राह्मण होता है जो पुरुष चैत्य देवालय सभा-घर आदि में हेमन्त और शिशिर ऋतु के बीच जीवों के सुखदेनेहारी अङ्गीठी दोनों काल देते हैं वे सब सुख भोग कर स्वर्गको जाते हैं।

एकसौतिरपन का अध्याय।

पुस्तक दान और विद्यादान का विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! अनेक प्रकार के गोदान और भूमिदान के विधान माहात्म्य सहित आपके मुखसे श्रवण किये अब हम विद्यादान का माहात्म्य श्रवण किया चाहते हैं आप कथन करैं यह राजाका वचन सुन श्री-कृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! जिस प्रकार विद्या-दान करना चाहिये और दानसे जो फल होता है वह हम वर्णन करते हैं शुभ मुहूर्त में स्वस्तिकादि भूषित चतुरस्त्र मण्डल बनाय उसके मध्य में पुस्तक को स्थापन कर गन्ध पुष्प आदि से उसका पूजन करै पीछे लेखक का पूजन कर सुवर्ण की कलम और चांदीकी दवात उसको देवै वह सुशील और अप्रमादी लेखक पुस्तक लिखने का आरम्भ करै मात्रा अनुस्वार संयुक्त पदच्छेद सहित लिखै और एकाग्र चित्त होकर समवर्तुल न बहुत मोटे न अतिसूक्ष्म जिनके शिर

समान होयँ ऐसे अक्षर लिखे इस विधि शैव अथवा वैष्णव शास्त्र लिखवाय अन्त में वस्त्र भूषण आदि से लेखक का पूजन करै फिर उस पुस्तक को दो वस्त्रों से वेष्टन कर दक्षिणा सहित व्युत्पन्न प्रियंवद और उत्तम वाचक ब्राह्मण को देवै अथवा सर्व सामान्य देवालय आदि में उस पुस्तक को रक्खै और जिसकी इच्छाहोय सो बांचै इस विधिसे जो पुरुष पुस्तक दान करै वह तीर्थयात्रा करने और यज्ञ करने से भी कोटिगुण अधिक फल पाता है हजार कपिला गौ का विधिपूर्वक दान करनेसे जो फल होताहै वह एक पुस्तक के देनेसे प्राप्त होता है पुराण रामायण और महाभारत देने से जो फल प्राप्त होता है उसका कौन वर्णन करसक्ता है प्रभात उठ जो पुरुष शिष्यों को वेद शास्त्र नृत्य गीत वेदाङ्ग आदि पढ़ावै वह धन्य है जो उपाध्याय को वृत्ति देकर विद्यार्थियों को पढ़ावै उसने कौन दान न किया विद्यार्थियों को भोजन वस्त्र भिक्षा पुस्तक आदि के देने से मनुष्यों के सब मनोरथ सिद्ध होते हैं विद्या देनेहारा विवेक दीर्घजीवित धर्म अर्थ काम और सम्पत्ति सब कुछ देता है शास्त्र शस्त्रविद्या कला आदि जो पुरुष सीखना चाहै उनका यथाशक्ति सहाय करना और उनके ऊपर सदा उपकार करनेकी इच्छा रखनी हजार वाजपेय यज्ञ विधिपूर्वक करने से जो फल प्राप्त होता है वही विद्यादान से भी होता है शिव अथवा सूर्य के भवन में जो पुरुष नृत्य पुस्तक बँचवावै वह गौ भूमि सुवर्ण और वस्त्रके दान का नित्य फल पाता है विद्याहीन पुरुष धर्म अधर्म नहीं जानसक्ता इसलिये सदा विद्यादान में तत्पर रहना चाहिये तीनलोक चारवर्ण चारआश्रम और ब्रह्मादिक देवता सब विद्यादान में प्रतिष्ठित हैं विद्यादान करनेहारा पुरुष एककल्प विष्णुलोक में निवास कर भूलोक में जन्मलेकर दाता भोगी रूप सौभाग्य युक्त दीर्घायु नीरोग

पुत्र पौत्र युक्त और धर्मात्मा राजा होता है और सौवर्ष राज्य करता है विद्यादान से अधिक कोई दान जगत् में नहीं विद्या-दान करनेहारा पुरुष गौ भूमि सुवर्ण हाथी घोड़े रथ आदि सब दानों का फल पाता है ।

एकसौचौवन का अध्याय ।

तुलादान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! पूर्वकाल में प्रियव्रत नाम राजा बड़ा प्रतापी और धर्मात्मा हुआ जो तीस हजार वर्ष राज्य कर सातों द्वीप अपने सात पुत्रों को दे विषयों से चित्तको खैंच तप करने के लिये वन में गमन किया राजाको तपोवन में प्राप्त हुये सुन बड़े २ महात्मा और तपस्वी मुनि राजा को मिलने आये राजा ने भी विधिपूर्वक पाद्यार्घ्य आचमन आदि से पूजन कर मधुर वचनों से कुशल प्रश्न पूछ उन सबको आसन पर बैठाया इसी अवसर में ब्रह्माजी के पुत्र बड़े तेजस्वी मानो दूसरे सूर्य पुलस्त्यमुनि वहां आये उनको देख राजा सहित सब मुनि उठे और बड़े सत्कार से उनको बैठाया पाद्यादिकों से उनका पूजन किया पीछे अनेक प्रकार की कथा कहने लगे उस समय मुनियों ने पूछा कि हे पुलस्त्यमुनि ! किस दान व्रत नियम आदि से पुरुष और स्त्रियों को सद्गति प्राप्त होती है यह आप वर्णन करें आप के मधुर वचन श्रवण करने की हमको और इस राजा प्रियव्रत को बड़ी अभिलाषा है यह मुनियों का वचन सुन पुलस्त्य मुनि कहने लगे कि हे मुनीश्वरो ! अति रहस्य सब दानों में उत्तम और सब पाप हरनेहारा दान हम कहते हैं जिसके करने से ब्रह्महा गोघ्न पितृघ्न गुरुदारगामी झूठा साक्षी आदि अनेक पापी मनुष्य सब पापों से छूट दिव्य देहधारी होते हैं ब्रह्मलोक की इच्छा होय तो कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत

करै परन्तु ये काय क्लेश ब्राह्मण भिक्षु और विधवा नारियों के लिये कहे हैं राजा और धनवान् गृहस्थ इस कृच्छ्रसाध्य धर्म को नहीं सम्पादन कर सकते हैं मनुष्यों के बहिश्चर प्राण धन हैं इसलिये धनाढ्य पुरुषों को धन करके धर्म का अर्जन करना चाहिये सब द्रव्यों में श्रेष्ठ और देवताओं में मुख्य अग्नि का सन्तान सुवर्ण है सुवर्ण दान से सब पाप दूर होते हैं और दिव्यदेह प्राप्त होती है इतनाकह पुलस्त्य मुनिने ऋषियों के और राजा के प्रति तुलादान का विधान कहा श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! वही विधान ऋषीश्वरों ने हमको कहा और हम आपको श्रवण कराते हैं आप सावधान होकर सुनैं व्यतीपात अयन विषुव ग्रहण ग्रहपीड़ा दुःस्वप्न दर्शन कार्त्तिकी अथवा माघी पूर्णिमा इत्यादि पर्व दिनों में अथवा जब धन होय उसी समय यह दान करना चाहिये धर्म के समय तो यही विचारै कि मृत्यु ने हमारे केश पकड़ रक्खे हैं जो कुछ करलेवैं वही हमारा है जब श्रद्धा होय उसी समय दान आदि करने चाहिये श्रद्धा से ही फल होता है अपने घरके अथवा देवालय के अङ्गन में सोलह हाथ लम्बा चौड़ा और पताका तोरण आदि से अलंकृत मण्डप बनाय उसके मध्य में सात हाथ लम्बी चौड़ी और एक हाथ ऊँची चतुरस्त्रवेदी बनाय वेदी के मध्य में विधिपूर्वक तुलाको स्थापन करै दोहाथ भूमि में गाड़ै और चार हाथ स्तम्भ ऊपर रक्खै चन्दन खदिर बिल्व शाक इंगुदी तिन्दुक देवदारु और श्रीपर्णी इन आठ वृक्षों में से किसी के काष्ठ का स्तम्भ बनावे अथवा और किसी दृढ़ काष्ठवाले याज्ञिक वृक्षका स्तम्भ रचै उनके ऊपर उसी काष्ठ का चार हाथ लम्बा तिर्यक् काष्ठ रक्खै उसमें छियानबे अंगुल लम्बे लोहपाश लगावै और मध्य में तुला पुरुष बनाय रत्न वस्त्र

चन्दन आदि से तुलाको भूषितकर स्तम्भों को भी पुष्पमाला और वस्त्रों करके अलंकृत करै तीन तीन मेखला और योनि करके युक्त हस्त प्रमाण चार कुण्ड बनावै ईशान कोण में हस्त प्रमाण वेदी बनाय उसके ऊपर ग्रह और दिक्पालों का पूजन करै और गन्ध पुष्प अक्षत फल वस्त्र आदि करके शिवजी का पूजन करै क्षीरवृक्ष के तोरण बनावै मण्डप के चारों द्वारों में पुष्पमाला रत्न पल्लव आदि से शोभित कुम्भ सप्तधान्य के ऊपर स्थापन करै ऋग्वेद आदि जाननेहारे ब्राह्मणों को क्रम से पूर्वादि दिशाओं के कुण्डपर हवन के लिये नियुक्त करै कई ऋषीश्वरों का मत है कि सोलह ऋत्विक् हवन के लिये नियुक्त करने चाहिये प्रत्येक ऋत्विक् को दो दो ताम्रपात्र और एक एक आसन देवै तिल घृत समिधा विष्टर पुष्प कुश स्रुक् स्रुव आदि सब हवनकी सामग्री एकत्र करै लोकपालों के रङ्ग की पताका दिशाओं में लगावै और बीच में पंचरङ्ग का महाध्वज खड़ा करै इस प्रकार सब सामग्री सम्पादन कर ब्राह्मण वर्धकी अर्थात् बढ़ई और कारीगर का वस्त्र भूषण आदि से सत्कार करै पीछे पूर्व दिन में यजमान स्नान कर शुक्ल वस्त्र पहिन दिक्पालों को बलि देवै उस समय अनेक प्रकार के शङ्ख तूर्य आदि बाजे बजैं और वेदध्वनि होय अब हम बलि मन्त्र कहते हैं (एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश । गन्धर्वयक्षाप्सरसाङ्गणेन रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते) ॐमिन्द्राय नमः (एह्येहि सर्वामरहव्यवाह मुनिप्रवीरैरभितोभिजुष्ट । तेजोवतां लोकगणेन सार्धं ममाध्वरं रक्षक ते नमस्ते) ॐमग्नये नमः (एह्येहि वैवस्वत धर्मराज सर्वामरैरर्चितदिव्यमूर्ते । शुभाशुभानां च कृतामधीश शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते) ॐ यमाय नमः (एह्येहि रक्षोगणनायक स्वं विशालवेतालपिशाचसङ्घैः । ममाध्वरं

पाहि पिशाचनाथ लोकेश्वरस्त्वं भगवन्नमस्ते) ॐनिर्ऋतये नमः (एह्येहि यादोगणवारिधीनां गणेन पर्जन्यसहाप्सरोभिः । विद्याधरेन्द्रामरगीयमान पाहि त्वमस्मान्भगवन्नमस्ते) ॐ वरुणाय नमः (एह्येहि वायो मम रक्षणाय मृगाधिरूढः सहसिद्धसङ्घैः । प्राणाधिपः कृष्णगतेः सहायो गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते). ॐ वायवे नमः (एह्येहि यक्षाधिपराजराज सुयक्षरक्षोगणपूज्यमान । धनादिनाथो नरवाहनस्त्वं गृहाण पूजां भगवन्नमस्ते) ॐकुबेराय नमः (एह्येहि गङ्गाधर भूतनाथ सुरासुरैः पूजितपादपद्म । देवेश दक्षाध्वरनाशकारिन् रक्षाध्वरं नो भगवन्नमस्ते) ॐमीशानाय नमः (एह्येहि पातालधराहिनाथ नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान । रक्षोनरेन्द्रामरलोकनाथ नागेश रक्षाध्वरमस्मदीयम्) ॐमनन्ताय नमः (एह्येहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः । विभो भव त्वं सततं शिवाय पितामहं त्वां सततं नतोऽस्मि) ॐब्रह्मणे नमः (त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः । ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च ॥ सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः) इन मन्त्रों से सब देवताओंका और दिक्पालों का पूजन कर बलि देवै कटक कुंडल कण्ठभूषण अंगुलीयक और अनेक प्रकार के विचित्र वस्त्र ब्राह्मणों को देवै और ब्राह्मणों से द्विगुण वस्त्र भूषण आदि करके गुरुका पूजन करै फिर ब्राह्मण आघार और आज्य भाग करके प्रणवादि स्वाहान्त नाम मन्त्रों से हवन करैं यहां जो देवता स्थापन किये होयँ उनके नाम से और ग्रह लोकपाल वनस्पति ब्रह्मा विष्णु शिव आदि के नाम से होम करैं होम के अन्त में अनेक प्रकार के मङ्गल शब्द होयँ और शुक्ल वस्त्र पहिन तुलाकी तीन प्रदक्षिणा कर यजमान पुष्पांजलि

लेकर (नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं शक्तिमास्थिता । साक्षी-भूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना ॥ एकतः सर्वसत्यानि तथानृतशतानि च । धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते ॥ त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता । मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोस्तु ते । योसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः । स एषोधिष्ठितो देवस्त्वयि तस्मान्नमोन्नमः ॥ नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक । त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात्संसारकर्दमात्) ये मन्त्र पढ़ पुष्पांजलि देवै पीछे पुण्य-कालके बीच परमात्माको प्रणाम कर भूषण वस्त्र आदि से अलंकृतहो खड्ग कवच ढाल आदि धारण कर तुला के ऊपर चढ़े और दूसरे ओर अन्न दधि सुवर्ण आदि चढ़ावै इतना तुलाद्रव्य चढ़ावै कि वह पलड़ा भूमिपर टिक जाय क्षणमात्र बैठ (नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि । पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना ॥ त्वया धृतं जगत्सर्वं सह स्थावरजङ्गमम् । सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि) ये मन्त्र पढ़े पीछे तुला से उतर आधा तुलाद्रव्य गुरु को और चतुर्थांश ऋत्विजों को देकर शेष चतुर्थांश दीन अनाथ और ब्राह्मणों को बांट देवै तुलाद्रव्य को बहुत काल घर में न रक्खे घर में रखने से शोक भय और व्याधि होती हैं इसी विधान से चांदी और कर्पूरकी भी तुला करते हैं सौभाग्य की इच्छावाली स्त्री केसर लवण और गुड़की तुला करती हैं इस विधि से अन्न आदि करके जो स्त्री पुरुष तुलादान करैं वे उत्तम अप्सराओं करके युक्त गन्धर्वनगर के समान अनेक पुष्प फलयुक्त वृक्षों से भूषित शय्या आसन पताका घण्टा आदि से अलंकृत सब ऋतुओं में सुख देनेहारे जिसमें मोतियों की झालर लटकती हैं ऐसे मनोहर विमान में बैठ सूर्य-लोक को जाते हैं वहां एक कल्प सुख भोगकर विष्णुलोक

विश्वेदेवों के लोक इन्द्रलोक धर्मराजलोक वरुणलोक कुबेर-लोक आदि में करोड़ों कल्प निवास कर मनुष्यलोक में जन्म ले बड़ा धर्मात्मा दानी और शत्रुओं का क्षय करनेहारा राजा होता है जो इस दानमाहात्म्य को भक्ति से श्रवण करै वह भी त्रिविध पाप से छूटता है ब्रह्मा विष्णु और शिव से उत्तम कोई पूजनीय देवता नहीं अश्वमेध के समान यज्ञ नहीं गङ्गा सम तीर्थ नहीं और तुलापुरुष के तुल्य दान नहीं है।

एकसौपचपन का अध्याय।

हिरण्यगर्भ दानका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! कोई और भी ऐसा दान अथवा व्रत कहैं जिसके करने से आयुष् यश और ऐश्वर्य की वृद्धि होय यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! लोकों के हित के लिये हम वह उपाय कहते हैं कि जिसके करने से हमारे समान मनुष्य होजाय व्रत उपवास तीर्थयात्रा महादान यज्ञ वेदाध्ययन आदि से विष्णुलोक प्राप्त होता है जो देवताओं को भी दुर्लभ है जो पुरुष गो ब्राह्मण के निमित्त प्राण त्यागै प्रयाग में अनशन व्रत करै अथवा शिवाराधन करै वह ब्रह्मलोक को जाता है यह सनातनी श्रुति है अब हम आपके स्नेह से हिरण्यगर्भ नामक दान का विधान कहते हैं जिसके करनेसे इन कर्मों के समान फल प्राप्त होय अग्निका सन्तान सुवर्ण है सब धातुओं में श्रेष्ठ और पवित्र है उसीका पर्याय नाम हिरण्य है जो पुरुष भक्ति से ब्राह्मण को सुवर्ण देवै वह हमारे तुल्य होता है अयन विषुव ग्रहण व्यतीपात कार्त्तिकी पूर्णिमा जन्मनक्षत्र ग्रहपीड़ा दुःस्वप्न दर्शन आदि कालों में प्रयाग पुष्कर नैमिष अर्बुदाचल गंगा यमुना गंगा-सागर संगम और भी पुण्य नदियों के तटपर यह दान देना

चाहिये अथवा घर देवालय बाग तड़ाग आदि पवित्र स्थलमें यह दान करै प्रथम भूमिशोधन कर बारह हाथ लम्बा चौड़ा मण्डप बनावे उसको स्तम्भ पताका आदि से अलंकृत कर मध्यमें पांच हाथकी वेदी बनाय मध्यमें हिरण्यगर्भ रचै अब हम उसका विधान कहते हैं ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराय वस्त्र भूषण आदि से शिल्पी अर्थात् कारीगर का पूजन कर कर्मका आरम्भ करै उत्तम सुवर्ण से हिरण्यगर्भ बनावे चौंसठ अंगुल उसका दैर्घ्य कहा है मूल में उसका विस्तार त्रिभाग हीन करना चाहिये मध्य में वर्तुलकर्णिका दशपत्र और ग्रंथिवर्जित नाल बनाय नीचे ताम्रका पीठ रचै उसके समीप सुवर्ण का कमण्डलु छत्र जड़ाऊ पादुकादि सब उपकरण स्थापन करै फिर वेदघोष करतेहुये ब्राह्मण उसको मण्डप में लाकर वेदीमें एक द्रोण तिलोंके ऊपर स्थापन करैं पीछे सबको कुंकुम से लिप्तकर रेशमी वस्त्रों से ढक पुष्पमालाओं से अलंकृत कर धूप दीप आदि से पूजन कर (भूलोकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः । ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते भुवनोद्भव ॥ नमस्ते भुवनाधार नमो वै भुवनेश्वर । नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः) यह मन्त्र पढ़ पूजन कर एक रात्रि उसका अधिवासन करै वेदी के चारों ओर चतुरस्र चार कुण्ड बनावै जिनमें चार वेद जाननेहारे सुशील ब्राह्मण क्रमसे मौनपूर्वक हवन करैं ब्रह्मस्थान में भी उतनेही ब्राह्मण नियुक्त करै वेभी उत्तम भूषण और नये वस्त्र पहिने होयँ गन्ध धूप आदि सहित दो २ ताम्रपात्र सबको देवै वेदी के ईशान कोण में ग्रहवेदी बनाय उसके ऊपर ग्रह दिक्पाल और ब्रह्मा विष्णु महेश्वर की सुवर्ण की मूर्ति स्थापन कर गन्ध पुष्प वस्त्र आदि से उनका पूजन कर पताका तोरण आदि से मण्डप को अलंकृत करै और

द्वारों में रत्नयुक्त दो २ कलश स्थापन करै तुलादानोक्त रीति से दिक्पालबलि देवै पलाश की समिधा हवन के लिये उत्तम होती हैं तिल गौ के घृत और समिधाओं करके व्याहृतियों से और नाम मंत्रों से दशहजार अथवा पांच हजार आहुति देवै फिर पर्व के समय यजमान स्नान कर श्वेतवस्त्र पहिन हिरण्यगर्भ का पूजन करै और (नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः । चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः ॥ मात्राहं जनितपूर्वेण मर्त्यधर्मा सुरोत्तमः । तद्गर्भसम्भवा नद्यो देवदेव्यो भवाम्यहम्) यह मन्त्र पढ़ भक्ति से उसकी प्रदक्षिणा करै वामहस्त में सुवर्ण का धर्मराज और दहिने में सूर्य लेकर दोनों जानुओं के बीच शिर करके हिरण्यगर्भ को उठावै पीछे ब्राह्मण गर्भाधान पुंसवन सीमन्तोन्नयन और जातकर्म संस्कार हिरण्यगर्भ का करैं इतना काल यजमान किसी का मुख न देखै फिर उठ प्रदक्षिणा कर बेदघोषपूर्वक हिरण्यगर्भको स्नान करावैं सुवर्ण चांदी ताम्र अथवा मृत्तिका के आठ कलश दही अक्षत पुष्प पल्लव आदि से भूषित लेकर (देवस्यत्वा) इत्यादि मन्त्र से आठ ब्राह्मण उसका अभिषेक करैं और (आद्यजातस्य तेङ्गानि अभिषिंच्यामहे वयम् । दिव्येनान्नेन चायुष्मन् चिरजीवी भवेत्ततः) यह मन्त्र पढ़ैं फिर यजमान संकल्पपूर्वक वह हिरण्यगर्भ ब्राह्मणों को देवै यज्ञ के सब उपकरण गुरु के अर्पण करै पादुका छत्र जूता वस्त्र आसन भोजन आदि सब सभासद ब्राह्मणों को देवै दीन अन्ध कृपण आदि को अनिवारित भोजन देवै इस विधि से जो यह दान करै वह अपने कुल का उद्धार करता है और आप भी स्वर्ग को जाता है भक्ति से इस दानका करनेहारा पुरुष पांच योजन लंबे चौड़े बापी कूप तड़ाग बाग सरोवर प्रासाद आदि से शोभित सैकड़ों उत्तम नारियों

करके सेवित वेणु वीणा मृदंग आदि के मनोहर शब्दों से पूरित मणिमय भूमि का और जड़ाऊ वेदियों करके अलंकृत हज़ार स्तम्भ और विचित्र पताकाओं करके भूषित सूर्य के समान प्रकाशवान् विश्वकर्मा के बनाये विमान में विराजमान हो विद्याधरों करके सेवित स्वर्ग को जाता है वहां सौ मन्वन्तरपर्यंत इन्द्र के समान सुख भोगकर भूलोक में जन्म ले पराक्रमी धार्मिक सत्यवादी ब्रह्मण्य गुरुभक्त और शत्रुओं को जीतनेहारा दश जन्मतक सम्पूर्ण जम्बूद्वीप का राजा होता है जो पुरुष इस विधान को श्रवण करै वह सौ वर्ष से भी अधिक स्वर्गसुख भोगता है इस विधि हिरण्यगर्भ बनाय सब संस्कार कर उसके बीच से निकल ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक देवै तो मार्कंडेय की भांति दिव्य देह धार स्वर्ग में निवास करता है ।

एकसौछप्पन का अध्याय ।

ब्रह्मांडदान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम अगस्त्यजी का कहा ब्रह्मांडदान कहते हैं जिस दान के करने से तीन प्रकार के पाप निवृत्त होते हैं और धन यश आयुष् मंगल और सद्गतिकी प्राप्ति होती है आप प्रीतिपूर्वक श्रवण कीजिये एक वितस्ति से सौ अंगुल पर्यन्त लम्बा चौड़ा यथाशक्ति सुवर्ण का ब्रह्माण्ड बनावै उसमें देवता असुर मनुष्य गन्धर्व नाग राक्षस नदी समुद्र पर्वत सरोवर विमान आदि बनावै और बीच में मेरुपर्वत जिसके तीनों शिखरों पर ब्रह्मा विष्णु और शिवकी पुरी रचै आठों दिग्गज बनावै और चौदह भुवन कल्पना करै दो कलशों करके युक्त और सम्पुटाकार ब्रह्माण्ड बीसपल सुवर्ण से अधिक सुवर्ण करके बनवावै फिर अयन विषुव ग्रहण आदि कालों में

पुष्पमंडपिका बनाय उसमें द्रोणभर तिल के ऊपर ब्रह्माण्ड को स्थापन करै और केसर चन्दन से चर्चितकर दो वस्त्रों से ढक गन्ध धूप आदि से उसका पूजन करै उसके चारों ओर पूर्ण कलश स्थापन करै अठारह प्रकार के धान्य एक २ द्रोण वहां रक्खै खड़ाऊं जूता छतरी पात्र दर्पण भोजन आदि सब सामग्री भी उसके समीप स्थापन करै इस विधि घरमें अथवा मण्डपमें ब्रह्माण्ड स्थापनकर हस्त प्रमाण चतुरस्र कुंड बनावै उसमें चारों वेद जाननेहारे चार ब्राह्मण वस्त्र भूषण आदि से अलंकृत होकर हवन करैं और उपाध्याय तथा राजा का पुरोहित भी हवन करैं ग्रहयज्ञ विधान से हवन करैं विष्णु शिव ब्रह्मा आदि देवताओं के नाम मन्त्रों से तिलों की आहुति देकर दशहजार आहुति व्याहृतियों करके देवैं और ब्राह्मण रुद्रपाठभी करैं फिर यजमान स्नानकर श्वेत वस्त्र पहिन सब उपचारों से ब्रह्मांड का पूजन कर पुष्पांजलि ले (नमो जगत्प्रतिष्ठाय विश्वधाम्ने नमोस्तु ते । वाङ्मनोतीतरूपाय ब्रह्माण्डशुभकृद्भव ॥ ब्रह्माण्डोदरवर्त्तीनि यानि भूतानि कानिचित् । तानि सर्वाणि मे तुष्टिं प्रयच्छन्त्वतुलां सदा ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च लोकपालास्तथा ग्रहाः । नक्षत्राणि तथा नागा ऋषयो मरुतस्तथा ॥ सर्वे भवन्तु सुप्रीताः सप्तजन्मान्तराणि मे) ये मन्त्र पढ़ पुष्पांजलि देवै और दक्षिणा सहित वह ब्रह्मांड ब्राह्मण के अर्पण करै ।

सत्ययुग के बीच बड़ा ऐश्वर्यवान् और दशहज़ार हाथियों का बल धारण करनेहारा सुद्युम्न नाम राजा हुआ वह तीसहजार वर्ष निष्कण्टक राज्य कर विरक्त हो वन में गया वहां बहुत काल उग्र तप कर अन्त समय दिव्य विमान पर आरूढ़ हो इन्द्रादि लोकों को उल्लंघन करता हुआ ब्रह्मलोक में प्राप्त हुआ ब्रह्माजीने भी राजा का बड़ा सत्कार किया और

आसन पर बैठाया राजा भी सुखपूर्वक वहां निवास करने लगा एक दिन राजा ने ब्रह्माजी से पूछा कि महाराज मैंने कौन ऐसा शुभकर्म किया कि जो आपके समीप निवास पाया यह आप कृपाकर मुझे बतावैं तब ब्रह्माजी कहने लगे कि हे राजन् ! तुमने सुवर्ण का ब्रह्मांड दान कर ब्राह्मण को दिया उस दान के प्रभाव से तुम हमारे लोक में प्राप्त भये ब्रह्माण्ड दान विना और किसीप्रकार से हमारा लोक नहीं प्राप्त होता अब तुम कल्पान्त में हमारे साथ मुक्ति को प्राप्त होगे धन यश आयुष् और सर्वप्रकार के सुख देनेहारा ब्रह्मांड दान जिसने किया उसने सब दान किये ।

एकसौसत्तावन का अध्याय ।

भुवनप्रतिष्ठा का विधान और फल ।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब आप भुवनप्रतिष्ठा का विधान कहैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! लोकों के उपकार के लिये आपने बहुत उत्तम बात पूछी अब हम परम रहस्य भुवनप्रतिष्ठा का विधान संक्षेप से कहते हैं भुवनप्रतिष्ठा करने से देव असुर नाग गन्धर्व यक्ष राक्षस प्रेत पिशाच भूत आदि सबकी प्रतिष्ठा होजाती है पहिले उत्तम मुहूर्त्त देख सात हाथ लम्बा चौड़ा दृढ़ स्वच्छ श्वेत वर्ण पट बनवाय उसमें चित्रकार से सब भुवन लिखवावै तरुण आरोग्य रूपवान् और चतुर चित्रकार को बुलाय वस्त्र भूषण लेपन पुष्प आदि से उसका पूजन कर चित्रकर्म में नियुक्त करै उस समय सब ब्राह्मण और आचार्य का भी वस्त्र भूषण आदि से अर्चन करै ब्राह्मण वेदध्वनि और पुण्याहवाचन करैं और शंख भेरी आदि के अनेक मंगल शब्द होयँ इस विधि से आरम्भ कर पुराणोक्त विधि से सब भुवन लिखवावै मध्य में

जम्बूद्वीप उसके मध्य में मेरु पर्वत जिसके तीनों शिखरों पर ब्रह्मा विष्णु शिवकी पुरी और दिशाओं में अष्ट दिक्पालपुरी लिखवावै सात द्वीपों करके युक्त पृथ्वी सात कुलाचल सात समुद्र नदी नद सरोवर सप्त पाताल भूर्भुव आदि सात लोक ब्रह्मादि देवताओंके लोक ध्रुव मार्ग ग्रह और तारागणों करके वेष्टित सूर्य देव दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस नाग ऋषि मुनि गौ वेदमाता गरुड़ आदि पक्षी और ऐरावत आदि आठ दिग्गज उसमें लिखै और उसको जल तेज वायु आकाश अहंकार महत्तत्त्व अव्यक्त मन तमोगुण रजोगुण सत्त्वगुण करके उत्तरोत्तर वेष्टित कल्पना कर सब को पुरुष करके भीतर बाहर आवृत मानै इस भांति चित्रपट बनवावै फिर अति मनोहर मण्डप बनाय उसके मध्य में उसको स्थापन करै और चतुरस्र हस्त प्रमाण चार कुंड बनवाय उनमें दो २ ब्राह्मणों को हवनके लिये नियुक्त करै ब्राह्मण भी वस्त्र भूषण आदि से अलंकृत हो चित्रपटस्थ देवताओं के नाम मन्त्रों से हवन करैं यजमान भी स्नान कर श्वेत वस्त्र पहिन आचार्य सहित गन्ध पुष्पादि करके पटका पूजन कर (ब्रह्माण्डोदरवर्त्तीनि भुवनानि चतुर्दश । तानि सन्निहितान्यत्र पूजितानि भवन्तु मे ॥ ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो ह्यादित्या वसवस्तथा । पूजिताः सुप्रतिष्ठाश्च भवन्तु सततं मम) ये मन्त्र पढ़ै और प्रदक्षिणा कर अनेक प्रकार के भक्ष्य भोज्य नैवेद्य लगाय रात्रि को जागरण करै अनेक प्रकार के बाजे बजैं वेदध्वनि होय गीत नृत्य आदि करके बड़ा उत्सव करावै प्रभात होतेही स्नान कर वस्त्र भूषण पहिन पर्वोक्त रीति से चित्रपट का पूजनकर सौ गौ ऋत्विजों को देवै फिर सुन्दर दृढ़ रथ लाकर पताका ध्वज आदि से उसको अलंकृत कर दो हाथी उसमें जोतै हाथी न होयँ तो घोड़े ही रथ में लगावै उस पर चित्र-

पट को रख हजार मोहर ब्राह्मणों को बांट देवालय के बीच चित्र-पट को पहुँचावे वहां उसको स्थापन कर महापूजा करै और बड़ा उत्सव करै उत्तम छत्र घंटा ध्वज चामर आदि उपकरण चढ़ावे गुरु और ब्राह्मणों को यथाशक्ति दक्षिणा देवै दीन अंध कृपण आदि को अनिवारित भोजन दिलावै और अपने मित्र स्वजन बन्धु आदि को भी भोजन करावे इस विधान से जो पुरुष अथवा स्त्री सार्वलौकिकी प्रतिष्ठा करै उसने सचराचर त्रैलोक्य स्थापन किया और अपने कुलका उद्धार भी किया जब तक वह चित्रपट वहां स्थापित रहै तब तक उसकी अक्षय कीर्त्ति त्रैलोक्य में फैलती है और जितने दिन लोक में कीर्त्ति रहे उतने हजार वर्ष भुवनप्रतिष्ठा करनेहारा स्वर्ग में निवास करता है गन्धर्व और अप्सरा उसकी सेवा में रहते हैं बहुत काल स्वर्गसुख भोग पुण्य क्षय होने पर भूमि पर जन्म ले धर्मात्मा दीर्घायु ऐश्वर्यवान् प्रतापी और पुत्र पौत्र आदि करके युक्त दश जन्मपर्यन्त राजा होता है पूर्व काल में बड़ा प्रतापी रघु नाम चक्रवर्ती राजा हुआ है जिसने सब भूमि को जीता और दैत्यों को मार स्वर्ग में इन्द्र का राज्य जमाया एक दिन वह राजा अपनी सभा में बैठा था उसी अवसर में ब्रह्माजी के पुत्र पुलस्त्यमुनि वेद वेदांग के पार-गामी अपने शिष्यों सहित वहां आये राजा ने उनको बड़ी भक्ति से पाद्य अर्घ्य मधुपर्क आदि से पूजन कर आसन पर बैठाया और बड़े विनय से यह पूछा कि महाराज इतना ऐश्वर्य ऐसा अव्याहत तेज बल पुष्टि धन धान्य पुत्र पौत्र आदि सब पदार्थ मैंने किस दान तप अथवा नियम के प्रभाव से पाये यह आप कृपाकर वर्णन करैं आप त्रिकालज्ञ हैं यह राजा का वचन सुन पुलस्त्यमुनि कहने लगे कि हे राजन्! सात जन्म पहिले बड़े धनाढ्य पुत्र भृत्य आदि सहित सत्यवादी

और धर्मात्मा वैश्य तुम थे तुम ने पुराण श्रवण किया और अनेक दान दिये और भुवनप्रतिष्ठा करी उसी के प्रभाव से तुम सात जन्म से राजा होते आते हो और आगे भी सात जन्म राजा होगे और अन्त में मुक्ति पावोगे जो तुमने पूछा वह सब हमने कहा जो पुरुष अथवा स्त्री भुवनप्रतिष्ठा करैं वे कृतकृत्य होते हैं इतना कह पुलस्त्यमुनि अपने धाम को गये हे महाराज ! धर्म की वृद्धि अभीष्ट की सिद्धि और पाप का क्षय इस भुवनप्रतिष्ठा से होता है ऐसा कोई कार्य नहीं जो इस भुवनप्रतिष्ठा के करने से सिद्ध न होय इसलिये यह अवश्य करनी चाहिये।

एकसौअट्ठावन का अध्याय।

नक्षत्रदान का फलसहित विधान।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! और तो सब दानों का विधान आपके मुख से श्रवण किया अब आप नक्षत्रों का दानकल्प वर्णन कीजिये यह राजा का बचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! एक समय देवर्षि नारद द्वारका में आये थे उनको हमारी माता देवकी ने यही बात पूछी उस समय नारदजी ने जो नक्षत्रदान कहा वह हम वर्णन करते हैं कृत्तिका नक्षत्र में घृत पायस करके साधु ब्राह्मणों को संतुष्ट करै तो उत्तम लोक पावै रोहिणी नक्षत्र में घृत दुग्ध और रत्न अनृण होने के लिये ब्राह्मण को देवै मृगशिरा नक्षत्र में सवत्सा दूध देनेहारी गौ ब्राह्मण को देवै तो विमान में बैठ स्वर्ग को जाय आर्द्रा नक्षत्र में तिलों सहित कृसर देने से मनुष्य सब प्रकार के संकटों से छूटता है पुनर्वसु नक्षत्र में घृतपक्क अपूप ब्राह्मण को देवै तो उत्तम कुल में जन्म पाकर यश लक्ष्मी और रूप पावै पुष्य नक्षत्र में सुवर्ण देवै तो कृतकृत्य होकर दिव्य लोक में चन्द्रमा की भांति विराज-

मान होय आश्लेषा नक्षत्र में ब्राह्मणों को चांदी देवै तो निर्भय और शास्त्रवेत्ता होय मघा नक्षत्र में तिलपूर्ण शरावं अर्थात् सकोरे देवै तो पशुमान् और पुत्रवान् होय पूर्वाफाल्गुनी में खण्ड का पात्र ब्राह्मण को देवै तो पुण्यलोकों में जाय निवास करै उत्तराफाल्गुनी में सुवर्ण का कमल देवै तो सब बाधाओं से छूट सूर्यलोक को जाता है हस्त नक्षत्र में सुवर्ण का हाथी बनाय ब्राह्मणको देवै तो दिव्य हस्ती पर आरूढ़ हो इन्द्रलोक को जाय चित्रा नक्षत्र में उत्तम वृषभ और अनेक प्रकार के सुगन्धद्रव्य देवै तो अप्सराओं के साथ नन्दन वन में विहार करै स्वाती में जो पदार्थ अपने को अतिप्रिय होयँ उनका दान करै तो बहुत यश और अन्त में सद्गति पावै विशाखा में उत्तम वृषों करके युक्त और धान्य वस्त्र सहित शकट दान करै तो सूर्य भगवान् सन्तुष्ट होते हैं और दान करनेहारा पुरुष सब पापों से छूट उत्तम गति पाता है अनुराधा नक्षत्र में कम्बल और वस्त्र ब्राह्मणों को देवै तो दिव्य सौ वर्ष से भी अधिक स्वर्ग में देवताओं के समीप निवास करता है ज्येष्ठा नक्षत्र में फल और शाक ब्राह्मण को देवै तो अभीष्ट गति पावै मूल नक्षत्र में ब्राह्मणों को फल मूल आदि देवै तो अपने पितरों को प्रसन्न करै और उत्तम गति पावै पूर्वाषाढ़ा में दधिपात्र कुलीन और वेदवेत्ता ब्राह्मण को देवै तो पुत्र पौत्र पशु धन और ऐश्वर्य पावै उत्तराषाढ़ा में घृत शहद और फाणित अर्थात् बताशे ब्राह्मणों को देवै तो सब काम पावै अभिजित् में घृत मधु सहित दुग्ध देवै तो स्वर्ग में निवास करै श्रवण नक्षत्र में पुस्तक दान करै तो विमान में बैठ अपनी इच्छा से सब लोकों में बिचरै धनिष्ठा नक्षत्र में गोयुग देवै तो अनेक जन्मोंतक सुखी होय शतभिषा में अगुरु और चन्दन देवै तो अप्सराओं के लोकमें जाय पूर्वाभाद्रपदा में राजमाष देवै तो

सब प्रकार के भक्ष्यभोज्य पावै और जन्मान्तर में सुखी होय उत्तराभाद्रपदा में वस्त्रसहित जलपात्र ब्राह्मणको देवै तो पितरों को सन्तुष्ट करै और सद्गति पावै कांस्यदोहनयुक्त धेनु रेवती नक्षत्र में ब्राह्मण को देवै तो उसके सब मनोरथ सिद्ध होयँ और जन्मान्तर में सद्गति पावै अश्विनी नक्षत्र में उत्तम अश्वों करके युक्त रथ ब्राह्मण को देवै तो हाथी घोड़े रथ आदि पावै और तेजस्वी होय भरणी नक्षत्र में ब्राह्मण को तिलधेनु देवै तो उत्तम गौ यश और सद्गति पावै इतना कह श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा कि हे महाराज! यह नारदजी का कहा नक्षत्रकल्प आपको कथन किया इसके करने से सब पाप और उपद्रव निवृत्त होते हैं दान में वारका और कालका कुछ नियम नहीं श्रद्धाही मुख्य है सब वेदों को देख यह दान-विधान ब्रह्माजी के पुत्र नारद ने कहा है जो इस दान को देवै वह सब दानों का फल पाता है।

एकसौउनसठ का अध्याय।

तिथिदान का फल सहित विधान।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! सब पाप और विघ्न हरनेहारे तिथिदान का विधान हम कहते हैं जिस दान के करने से मानस वाचिक और कायिक पाप उसी क्षण कट जाते हैं श्रावण कार्त्तिक वैशाख अथवा फाल्गुन के शुक्ल पक्ष के आरम्भ से यह दान देना चाहिये वृत्त श्रद्धा सहाय और सत्पात्र की प्राप्ति जब होय वही उत्तम दानकाल है तीर्थ देवालय गोष्ठ अथवा घर में ही श्रद्धापूर्वक दान देवै तो अनन्त फल पावै प्रतिपदा के दिन ब्राह्मण और ब्रह्मा का [illegible]कर सुवर्ण का अष्टदल कमल बनवाय सुगन्ध घृत से पू[illegible]ताम्रपात्रपर उसको रख पुष्प धूपादि से उसका पूजन कर ब्राह्मणको देवै तो अभीष्ट लक्ष्मी पावै और निष्कामहो

यह दान करै तो मुक्तिभागी होय द्वितीया के दिन सुवर्ण की अग्नि की प्रतिमा बनाय गुड़ घृत से पूरित ताम्रपात्र में रक्खै और उस पात्र को जलपूर्ण कलश के ऊपर स्थापन करै फिर व्याहृतियों से अष्टोत्तरशत आहुति घृत और तिलों करके दे पूर्णाहुति देवै और वस्त्र माला अनेक प्रकारके भक्ष्य भोज्यों करके उस मूर्त्ति का पूजन कर ब्राह्मण को देवै और (वह्निर्मे प्रीयताम्) यह वाक्य उच्चारण करै तो जन्म भर किये पापों से छूट वह्निलोक में निवास करै यह नारद मुनि ने कहा है तृतीया के दिन सुवर्ण की गोधा बनाय ताम्रपात्र में रख लवण के ऊपर स्थापन करै और दो रक्त वस्त्रों से उसको आच्छादन कर जीरा कुटकी के टुकड़े और गुड़ उसके पास रख गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य आदि से उसका पूजन कर ब्राह्मण को देवै तो इतना फल होता है कि जिसका वर्णन नहीं करसकते सुवर्ण के जहां प्रासाद हैं पायस के कर्दमयुक्त जहां नदी हैं और गन्धर्व अप्सरा जहां बसते हैं उन लोकों में वह पुरुष बहुतकाल सुख भोगकर मर्त्यलोक में जन्म ले सुरूप सुभग दाता भोगी धनाढ्य और पुत्र पौत्रयुक्त होता है और स्त्री भी इस दानको करै तो ये सब फल पावै चतुर्थी के दिन सुवर्णका हस्ती बनाय कुशा सहित द्रोणभर तिलों के ऊपर स्थापन कर वस्त्र पुष्प नैवेद्य आदि से उसका पूजनकर ब्राह्मण को देवै और (गणेशः प्रीयताम्) यह वाक्य कहै जो पुरुष यह दान करै उसके किसी कार्य में विघ्न नहीं होता और सात जन्मतक मत्त हस्तियों का स्वामी होता है और गजेन्द्रपर चढ़ सब लोक को जीतता है पंचमी के दिन एक कर्षभर सुवर्ण का नाग बनाय घृत दुग्ध पूर्णपात्र में उसको स्थापनकर विधिपूर्वक पूजन करै और ब्राह्मणको देकर प्रणामकर क्षमापन करावै यह दान नागों के उपद्रवको दूर करता है और दोनों

लोकों में सुख देता है और सर्पके काटने से जो पुरुष मृत हुआ होय उसके उद्धार के लिये शिवजीने यह प्रायश्चित्त कहा है षष्ठी के दिन मयूर पर चढ़े शक्तिहस्त सुवर्णमाला पहिने ऐसी कार्त्तिकेयकी सुवर्णकी प्रतिमा बनाय द्रोणभर चावलों के ऊपर स्थापन कर सब उपचारों से उसका पूजन कर कुटुम्बी ब्राह्मणको देवै इस दानका करनेहारा पुरुष बहुत ऐश्वर्य पाय अन्त में स्वर्गको जाता है और शूद्र इस दानको करै तो जन्मान्तर में ब्राह्मण होय सप्तमी को सुवर्णकी सूर्यप्रतिमा बनाय सब उपचारों से उसका पूजन कर दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै तो गन्धर्व सन्तुष्ट होते हैं और वह पुरुष सूर्यलोक में निवास करता है अष्टमी के दिन धुरन्धर वृषको दो श्वेत वस्त्र उढ़ाय उसके गलेमें घण्टा बांध पूजनकर ब्राह्मण को देवै और (वृषध्वजः प्रीयताम्) यह वाक्य उच्चारण करै और प्रदक्षिणा कर द्वारतक उसके साथ जाय इस दान के करनेहारे को शिवलोक प्राप्ति होती है वृष के स्कन्ध में चौदह भुवन निवास करते हैं इसलिये वृषदान करने से चौदह भुवन दान करनेका फल प्राप्त होता है नवमी के दिन सुवर्ण का सिंह बनाय नीलवस्त्र से आच्छादितकर दुष्ट दैत्यनिबर्हणी भगवतीका स्मरणकर मोती के आठ पानों सहित उत्तम ब्राह्मणको देवै तो सब उत्तम फल पावै और वनदुर्ग कान्तार आदि में चोर व्याल आदि हिंसक जीवोंका कभी उसको भय नहीं होता और अन्त समय सुरासुरों करके पूज्यमान देवीलोक को जाता है वहां बहुतकाल सुख भोगकर पुण्य क्षीण होने से मर्त्यलोक में जन्म ले धर्मात्मा राजा होता है दशमी के दिन शालि के दश पिंड बनाय उनका पूजन कर लवण गुड़ जीरा निष्पाव तिल चावल उड़द दूध दही और घृत सहित जो पुरुष ब्राह्मण को देवै उसके सब मनोरथ

सिद्ध होते हैं और बहुत काल स्वर्ग सुख भोग उत्तम कुल में जन्म पाताहै एकादशी के दिन सुवर्ण की विश्वेदेवं प्रतिमा बनाय ताम्रपात्र में रख घृत पूर्ण कलश के ऊपर स्थापन कर सब उपचारों से उसका पूजन करै पीछे पौराणिक ब्राह्मण को देवै तो विष्णुलोक पावै द्वादशी के दिन गौ वृष महिषी अश्व सुवर्ण सप्तधान्य गुड़ पुष्प फल रस घृत और अनेक प्रकार के रस ये बारह पदार्थ यथाशक्ति एकत्र कर सबको वस्त्र से आच्छादित कर उनका पूजन करै पीछे सत्पात्र ब्राह्मणों को देवै वह पुरुष बहुत कीर्ति और ऐश्वर्य पाय अंत में विष्णुलोक को जाताहै वहां बहुत काल निवास कर पुण्य क्षय होने से भूमिपर जन्म ले यज्ञ करनेहारा दानी और प्रतापी राजा होता है और सौ वर्ष जीता है त्रयोदशी के दिन सत्पात्र ब्राह्मण को स्नान कराय उत्तम वस्त्र पहिनाय गन्ध पुष्प आदि से अलंकृत कर उत्तम भोजन करावै और दक्षिणा देकर प्रेतनाथ रौद्र वैवस्वत महिषवाहन यम आदि धर्मराज के नाम उच्चारण कर प्रणामपूर्वक उसको विसर्जन करै इस विधि से जो पुरुष यमराज का अर्चन करै वह सब रोगों से छूटताहै और यममार्ग में कष्ट नहीं पाता और पितृलोक में बहुत काल निवास कर मर्त्यलोक में जन्म ले सुखी और पुत्रवान् होताहै चतुर्दशी के दिन उत्तम कुम्भ सुवर्ण वस्त्र और घंटा आदि से भूषित वृष कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै तो शिवलोक को जाय वहां बहुत काल सुख भोग तीनसौ जन्म तक आरोग्य धन और उत्तम कुल में जन्म पाताहै पूर्णमासी के दिन चांदीकी चन्द्र प्रतिमा बनाय गन्ध पुष्प नैवेद्य आदि से उसका पूजनकर वस्त्र भूषण सहित ब्राह्मण को देवै और (क्षीरोदार्णवसम्भूत गगनांगणदीपक । उमापतिशिरोरत्न शिवनेत्र नमोनमः) यह मन्त्र पढ़ै पीछे विधिपूर्वक वृषोत्सर्ग

करै इस दानका करनेहारा प्रलयपर्यन्त अप्सराओं के साथ विहार करताहै और चन्द्रमा के समान कान्तिमान् होता है जो पुरुष इस क्रम से प्रतिपदा आदि तिथियों में दान करै वह ब्रह्मलोक विष्णुलोक आदि में बहुत काल विहार कर अन्त में शिवजी के साथ एकताको प्राप्त होताहै ।

एकसौसाठ का अध्याय ।

वराहदान का विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम सब पाप हरनेहारे पवित्र और सब दानों में उत्तम वराहदान का विधान कहते हैं जो वराह भगवान् ने भूमि के प्रति कहा है संक्रान्ति ग्रहण द्वादशी यज्ञोत्सव विवाह दुःस्वप्नदर्शन आदि कालों में अथवा जब श्रद्धा होय तबहीं यह दान करै कुरुक्षेत्र आदि तीर्थ गङ्गा आदि नदी गोष्ठ देवालय अथवा अपने घरके अङ्गन में यह दान विधिपूर्वक कुटुम्बी ब्राह्मण को देवै परन्तु वह ब्राह्मण वेद वेदांग जाननेहारा सुशील और सम्पूर्णाङ्ग होना चाहिये ये देशकाल और पात्र हमने कहे अब दानविधान कहते हैं ईशान कोण में गोबर से लेपन कर उसपर कुशा बिछाय उसके ऊपर चार द्रोण तिलों करके वराह की मूर्ति कल्पना करै जो चार द्रोण का सामर्थ्य न होय तो एक द्रोण अथवा आढ़क अर्थात् चारसेर तिलोंकी ही बनावै सुवर्ण का उसका मुख चांदी की दंष्ट्रा बनाय पद्मराग मणिसे भूषित करै सुवर्ण की वनमाला शंख और चक्र उसके पास स्थापन करै सुवर्ण की भूमि बनाय सब धान्य वस्त्र भूषण आदि से शोभितकर उसकी दंष्ट्रा के ऊपर स्थापन करै चांदी के खुर और कुशाके रोम बनाय वराह भगवान् को वस्त्रों से आच्छादित करै फिर नवग्रह यज्ञ और तिलों से होम करके (वराहाशेषदुःखानि सर्वपापफलानि च । त्वं मर्दय महादंष्ट्र

भास्वत्कनककुण्डल॥शंखचक्रासिहस्ताय हिरण्यकान्तिकाय च। दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्त्तें नमोनमः) ये मन्त्र पढ़ विधिपूर्वक पूजनकर प्रदक्षिणा और नमस्कार करै पीछे वस्त्र भूषण और दक्षिणा सहित ब्राह्मण को देवै इसका दान चरण में करै इस विधि से आचार्य को यह दान दे कुछ दूरतक पहुँचाने के लिये अनुगमन करै और क्षमापन करावै इस दान के करने से जो पुण्य प्राप्त होता है उसका वर्णन कौन करसक्ता है. सब यज्ञ और सब दान करने से जो फल प्राप्त होताहै वह इस एक दान से ही मिलता है वराह भगवान् ने जिस प्रकार भूमिका उद्धार किया उसी भांति यह दान करनेहारा पुरुष अपने कुलका उद्धार करता है और विष्णुलोक को जाता है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री शैव वैष्णव योगी आदि सब को यह दान करना चाहिये वेदवेत्ता ब्राह्मण को जो पुरुष तिलोंका वराह बनाय सुवर्ण वस्त्र सहित देवै वह अपने पूर्वपुरुषों का उद्धारकर मित्र कलत्र सहित स्वर्ग को जाता है।

एकसौइकसठ का अध्याय।

धान्याचलके दानका विधान और फल।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र! आपके मुख से हम और भी दानों का माहात्म्य श्रवण किया चाहते हैं आप कथन करैं जिनके करने से अक्षय पदकी प्राप्ति होय यह राजाका वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज! जो दानमाहात्म्य रुद्र ने नारद को और मत्स्यरूप भगवान् ने मनुको कथन किया है वह दश प्रकार का पर्वत दान हम आप को श्रवण कराते हैं जिसके करने से सब मनोरथ सिद्ध होते हैं और उत्तम लोककी प्राप्ति होती है धान्याचल लवणाचल गुड़ाचल सुवर्णाचल तिलपर्वत कर्पासपर्वत घृतपर्वत रत्नपर्वत रजतपर्वत और शर्कराचल ये दशप्रकार

के पर्वतदान हैं अब इनका क्रमपूर्वक हम विधान कहते हैं अयन विषुव व्यतीपात अवम् दिन शुक्ल तृतीया ग्रहण अमावास्या विवाहोत्सव यज्ञ द्वादशी पूर्णिमा और भी पुण्य दिनों में ये दान विधिपूर्वक करने चाहिये तीर्थ देवालय गोष्ठ नदी संगम आदि स्थानों में उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख चतुरस्र मण्डप बनाय गोबर से लेपनकर कुशा बिछाय उसके ऊपर धान्यपर्वत बनावै हजार द्रोण धान्य का उत्तम पांचसौ द्रोणका मध्यम और तीनसौ द्रोण धान्य का निकृष्ट पर्वत होता है इस प्रकार पर्वत बनाय सुवर्ण के तीन वृक्ष उस पर लगावै पूर्वमें मोती हीरे दक्षिण में गोमेद पुखराज पश्चिम में पन्ना नीलम और पर्वत के उत्तरमें वैदूर्य और पद्मराग रक्खै चन्दन के टुकड़े और मूंगे उसमें स्थापन कर शुक्तिकी शिला कल्पना करै ब्रह्मा विष्णु शिव और सूर्य की सुवर्ण की मूर्ति उस के ऊपर स्थापन करै सुवर्ण रजत आदि धातु उस में रक्खै घृत के झरने और वस्त्रों के मेघ कल्पना करै पूर्वादि दिशाओं में क्रम से श्वेत कृष्ण कर्बुर और रक्तवस्त्र रक्खै चांदी के इन्द्र आदि अष्टदिक्पाल स्थापन करै अनेक प्रकार के फल पुष्प पर्वत में रख पंचरंग का वितान उसके ऊपर लगावै और उसको पुष्प मालाओं से भूषित करै इस प्रकार धान्य का मेरुपर्वत बनाय पूर्वदिशा में अनेक फल सुवर्ण के कदम्ब वृक्ष और अनेक वस्त्रादिकों से भूषित सर्वान्न का मन्दराचल स्थापन करै दक्षिण में चांदी का अथवा गोधूम का गन्धमादन पर्वत बनाय सुवर्ण का जम्बूवृक्ष चांदी वस्त्र आदि से उसको अलंकृत करै पश्चिम में तिलों का विपुलाचल स्थापन करै और उसको सुवर्ण के अश्वत्थवृक्ष सुवर्ण के हार वस्त्र आदि से भूषित करै उत्तर में उड़दों का सुपार्श्व पर्वत स्थापन कर सुवर्ण के वटवृक्ष सुवर्ण की धेनु सुवर्ण रत्न

वस्त्र सब रस फल पुष्प आदि से उसको अलंकृत करै इस प्रकार सब पर्वत बनाय पूर्वादि दिशाओं में हस्त प्रमाण चतुरस्र कुण्ड बनावै उनमें चार वेदवेत्ता ब्राह्मण तिल घृत समिधा और कुशाओं से होम करें पीछे यजमान स्नान आदि कर उन पर्वतों का पूजन करै और हाथ जोड़ (त्वं सर्वदेवगणधामविधिं विरुद्धमस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु । क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां मे सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि ॥ त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः । मूर्तामूर्त परं बीजमतः पाहि सनातन ॥ यस्मात्त्वं लोकपालानां विश्वमूर्त्तिश्च मण्डलम् । केशवार्कवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे ॥ यस्मान्नशून्यममरैर्नारीभिश्च शिरस्तव । तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ यस्माच्चैव रथेन त्वं भद्राश्ववर्षेण च । शोभसे मन्दरक्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव ॥ यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन । गन्धर्ववरशोभावानतः कीर्त्तिर्दृढास्तु मे यस्मात्त्वं केतुमान्मौलौ वैभ्राजेन वनेन च । हिरण्यजाश्वत्थशिखस्तस्मात्तुष्टिं विधत्स्व मे ॥ उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात्सावित्रेण बनेन च । सुपार्श्वे राजसे नित्यमतःश्रीरक्षयास्तु मे) ये मन्त्र पढ़ उन सबको अभिमन्त्रण करै दूसरे दिन स्नान कर मध्यका मुख्य पर्वत गुरु के अर्पण करै और वे चारों दिशाओं के पर्वत उन चारों ब्राह्मणों को देवै फिर चौबीस दश सात छः पांच अथवा एकही कपिला गौ दुग्ध देनेहारी गुरु को देवै यही विधान सब पर्वतों के दान का है ग्रह लोकपाल पर्वत और ब्रह्मादि देवताओं के नाम मंत्रों से हवन करै उस दिन उपवास अथवा नक्तव्रत करै और (अन्नं ब्रह्म यतः प्रोक्तमन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः । अन्नाद्भवन्ति भूतानि जगदन्नेन वर्द्धते ॥ अन्नमेव यतो लक्ष्मीरन्नमेव जनार्दनः । धान्यपर्वतरूपेण पाहि तस्मान्नगोत्तम) ये मन्त्र पढ़े इस विधान से

जो पुरुष धान्याचल दान करै वह सौ मन्वन्तरपर्यन्त स्वर्ग में निवास करता है और गन्धर्व अप्सरा आदि उसकी सेवा में रहते हैं और पुण्य क्षय होने पर राजा होता है जो पुरुष सुवर्ण वृक्षों करके शोभित और चार विष्कम्भ पर्वतों सहित धान्याचल भक्ति से ब्राह्मण को देते हैं वे ब्रह्मलोक को जाते हैं।

एकसौबासठ का अध्याय।

लवणाचल के दान का विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब हम लवणाचल दान विधान कहते हैं जिसके करने से मनुष्य को शिवलोक प्राप्त होता है सोलह द्रोण लवण का उत्तम आठ द्रोण का मध्यम और चार द्रोण लवण का लवणाचल अधम होता है इनमें यथाशक्ति लवणाचल बनाय उसके चतुर्थांश के तुल्य चार विष्कम्भ पर्वत बनावै ब्रह्मादि देवता वृक्ष सरोवर लोकपाल धेनु आदि सब पूर्व रीति से बनाय विधिपूर्वक उसका पूजन कर (सौभाग्यरससम्पूर्णः सम्भूतो लवणो रसः। दानात्मकत्वेन नमः पाहि पापान्नगोत्तम ॥ यस्मादन्नरसाः सर्वेनोत्कृष्टा लवणं विना। प्रियं च शिवयोर्नित्यं तस्माच्छान्तिप्रदो भव ॥ विष्णुदेहसमुद्भूतो यस्मादारोग्यवर्द्धनः। तस्मात्पर्वतरूपेण पाहि संसारसागरात्) ये मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै इस विधि से जो पुरुष लवणाचल का दान करै वह एक कल्प उमालोक में निवास कर पुण्यक्षय होने से धर्मात्मा और पुत्र पौत्रयुक्त राजा होता है और सौ वर्ष आयुष् भोगता है जो भक्ति से लवणाचल दान करैं वे विमान पर बैठ स्वर्ग को जायँ और वहां गन्धर्व अप्सराओं करके सेवित बहुत काल सुख भोग करैं।

एकसौतिरसठ का अध्याय।

गुड़पर्वत के दानका विधान और फल।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज! अब हम गुड़-पर्वत के दानका विधान कहते हैं जिसके करने से स्वर्ग प्राप्ति होती है दशभार गुड़का उत्तम पांच भारका मध्यम और तीन भार गुड़का निकृष्ट होता है इसमें धान्याचल के विधान से विष्कम्भ पर्वत वृक्ष देवता लोकपाल आदि बनावै और उसी विधि से होम पूजन आदि कर (यथा देवेषु विश्वात्मा प्रवरोयं जनार्दनः । सामवेदस्तु वेदानां महादेवस्तु योगिनाम् ॥ प्रणवः सर्वमन्त्राणां नारीणां पार्वती यथा। तथा रसानां प्रवरः सदैवेक्षुरसो मतः ॥ मम तस्मात्पुरा लक्ष्मीं प्रयच्छ गुडपर्वत । सुरासुराणां सर्वेषां नागयक्षर्क्षपत्रिणाम् ॥ निवासश्चासि पार्वत्यास्तस्मान्मां पाहि सर्वदा) ये मन्त्र पढ़ ब्राह्मण को देवै इस विधि से जो पुरुष गुड़पर्वत दान करै वह गन्धर्वों करके पूजित गौरीलोक को प्राप्त होता है और सौ कल्पपर्यन्त वहां सुख भोगकर दीर्घायुष् बड़ा प्रतापी और चक्रवर्ती राजा होता है पूर्वकाल में मरुत्त राजाकी सुलभा नाम बड़ी पतिव्रता और सुशीला रानी थी राजा मरुत्त का भी उसमें बहुत अनुराग था एक समय वहां दुर्वासा मुनि आये उनका राजा और रानी ने बड़ा सत्कार किया और पाद्य अर्घ्य दे आसन पर बैठाये बड़े विनय से रानी ने पूछा कि महाराज किस पुण्य के प्रभाव से मेरे पतिका मुझमें इतना अनुराग है और सब सपत्नी भी मेरा हित चाहती हैं आप कृपाकर कथन कीजिये यह रानी का वचन सुन दुर्वासा मुनि कहने लगे कि हे सुलभे! हम तेरे पूर्वजन्म का वृत्तान्त कहते हैं सावधान होकर श्रवण कर पूर्वजन्म में गिरिव्रज पुरके बीच रहनेवाले वैश्यकी तू भार्या थी सदा पतिकी सेवा में तत्पर रहती एक

समय तैंने ब्राह्मणों के मुख से दानमाहात्म्य श्रवण किया उसमें विशेष करके गुड़पर्वत दान का माहात्म्य सुना और विधिपूर्वक गुड़ाचल का दान किया उस दान के प्रभाव से रूप सौभाग्य और आरोग्य पाया चार जन्म रानी होते व्यतीत होचुके और अभी सात जन्मपर्यन्त आगे भी राजमहिषी होगी और उत्तम सन्तान पावेगी इतना कथन कर दुर्वासा मुनि अपने धाम को गये और रानी ने भी दान के प्रभाव से मनोवाञ्छित फल पाये यह दान नारियों के लिये विशेष करके फलदायक है जो स्त्री अथवा पुरुष इस दान को विधान से करैं उनपर गौरी भगवती प्रसन्न होती हैं ।

एकसौचौंसठ का अध्याय ।

सुवर्णपर्वतके दान का विधान और फल ।

श्रीकृष्णचन्द्र कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम सुवर्ण पर्वत के दान का विधान कहते हैं जिसके करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है हजार पल सुवर्ण का पर्वत उत्तम पांचसौ का मध्यम और अढ़ाईसौ का निकृष्ट होता है परन्तु सामर्थ्य के अनुसार एक पल सुवर्ण पर्यंत भी होसक्ता है इस का सब विधान धान्य पर्वत की भांति है पर्वत का पूजनादि कर (नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय वै नमः । यस्मादनन्तफलदस्तस्मात्पाहि शिलोच्चय ॥ यस्मादग्नेरपत्यं त्वं यस्माद्गुल्वं जगत्पतेः । हेमपर्वतरूपेण तस्मात्पाहि नगोत्तम) यह मन्त्र पढ़े इस विधि से जो पुरुष सुवर्ण पर्वत दान करै वह स्वर्ग को जाता है वहां दिव्य सौ वर्ष निवास कर परम गति को प्राप्त होता है सुवर्णाचल से बढ़कर कोई दान नहीं है मणि के शृङ्गों से भूषित और अष्टलोकपालों सहित सुवर्णाचल का जो पुरुष भक्तिपूर्वक दान करै वह एक कल्प पर्यन्त अग्निलोक में निवास करता है ।

एकसौपैंसठ का अध्याय।

तिलपर्वतके दानका विधान और फल और तिलोंकी उत्पत्ति सहित प्रशंसा।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम तिलपर्वत दान का विधान कहते हैं जिस के करनेहारा पुरुष विष्णुलोक को जाता है सब पदार्थों में तिल पवित्र हैं और विष्णुभगवान् के देह से उत्पन्न हुये हैं इसलिये उत्तम गिने जाते हैं पूर्वकाल में मधुकैटभ नाम दो दैत्य भये मधु के साथ एक हजार वर्ष भगवान् ने युद्ध किया तब परिश्रम होने से भगवान् के शरीर से प्रस्वेद भूमिपर गिरा उससे तिल और कुश उत्पन्न भये और वह दैत्य भी भगवान् ने मारा जिस के मेद से सब भूमि प्लुत होगई इसी से मेदिनी कहाई उस दैत्य के मरने से देवता बहुत प्रसन्न भये और विष्णुभगवान् की स्तुति करने लगे कि हे भगवन् ! यह जगत् आपने ही उत्पन्न किया और आपही इसका पालन करते हैं ये तिल आपके अंग से उत्पन्न हुये हैं ये सदा हव्य कव्य का पालन करें और देव पितृ कर्म में मनुष्य इनको लगावें और जहां तिल प्रयुक्त किये जायँ वहां दैत्य पिशाच आदि कोई विघ्न न करैं यह देवताओं का वचन सुन विष्णु भगवान् ने कहा कि ये तिल तीनों लोकों की रक्षा के लिये होंगे जो पुरुष स्नान करके श्रद्धायुक्त शुक्लपक्ष में देवताओं को और कृष्णपक्ष में पितरों को तिलोदक देवेंगे अथवा सात आठ तिलों सहित जलांजलि देवेंगे उनके देवता और पितर सन्तुष्ट होंगे श्वान काक पतित आदि के संग से जो पाप हुआ होय वह तिलतर्पण-मात्र से निवृत्त होजाता है ऐसे उत्तम तिलों करके पर्वत बनाय ब्राह्मण को देना चाहिये दश द्रोण तिलों का उत्तम पांच का मध्यम और तीन द्रोण तिलों का निकृष्ट होता है तिल

पर्वत का भी पूजन आदि पूर्वरीति से करके (यस्माद्दै मधुना युद्धे विष्णोः स्वेदसमुद्भवाः । तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छन्नो भवन्त्विह ॥ हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिमन्त्रणम् । तस्मादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोस्तु ते) यह मन्त्र पढ़े इस विधि से जो पुरुष तिलपर्वत का दान करै वह दीर्घ आयुष् भोग कर देवता और पितरों करके पूज्यमान स्वर्ग को जाता है और पुण्यक्षय होनेपर मृत्युलोक में जन्म ले धार्मिक राजा होता है नारी इस दान को करै तो रूप सौभाग्य धन और पुत्र पौत्र पाती है निर्धन पुरुष भी इस विधान के श्रवण करने से कपिला दान के तुल्य फल पाता है तिलपर्वत समान कोई दान नहीं है जिन तिलों से देवता और पितर तृप्त होते हैं उनके पर्वत के दान का पुण्य तो कौन वर्णन करसके ।

एकसौछियासठ का अध्याय ।

कर्पासाचल दानका विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम कर्पास पर्वत के दानका विधान कहते हैं जो सब देवताओं को प्रिय है और सब दानों में उत्तम है बीसभार कर्पास का उत्तम दश का मध्यम और पांचभार कर्पास का पर्वत अधम होता है पूर्व रीति से कर्पासाचल बनाकर धान्यपर्वत की रीति से जागरण और अधिवासन करै फिर दूसरे दिन पूजन आदि कर सत्पात्र ब्राह्मण को देवै कर्पासाचल दान जो पुरुष श्रद्धा से विधिपूर्वक करै वह एक कल्प रुद्रलोक में निवास कर भूमिपर जन्म ले राजा होय रूप धन विद्या लक्ष्मी और पराक्रम पावै इसी प्रकार पांच जन्म पर्यन्त राजा होय नारी इस दान को करै तो रूप सौभाग्य सन्तान और धन पावै ।

एकसौसरसठ का अध्याय ।

घृताचल दानका विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि हे महाराज ! अब हम सर्व पाप हरनेहारे घृताचल का विधान कहते हैं पचास घृतकुंभ का उत्तम पचीस का मध्यम और इससे भी अर्द्ध निकृष्ट होता है इस प्रकार घृतपर्वत बनाय चार भार घृतके विष्कम्भ पर्वत बनावै उनके ऊपर चावलों से पूर्ण कलश रक्खै इक्षु केला आदि अनेक प्रकार के फल उनके समीप स्थापन करै और उसको वस्त्र से वेष्टित कर धान्यपर्वत के विधान से अधिवासन होम देवार्चन आदि करै दूसरे दिन पूजन आदि कर (संयोगाद्घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः । तस्माद्घृतोर्चिविश्वात्मा प्रीयतां मम शङ्करः ॥ यस्मात्तेजोमयं ब्रह्म घृते चैव व्यवस्थितम्। घृतपर्वतरूपेण तस्मान्नःपाहि शङ्कर) ये मन्त्र पढ़ मुख्य पर्वत गुरु को निवेदन करै और विष्कम्भ पर्वत ऋत्विजों को देवै इस विधि से जो पुरुष घृताचल दान करै वह चाहै महापातक करनेहारा भी होय परन्तु सब पातकों से छूट शिवलोक को जाता है हंस सारस आदि पक्षियों करके शोभित किंकिणी मालाओं करके भूषित दिव्यविमान में बैठ अप्सरा गन्धर्व सिद्ध विद्याधर आदि करके सेवित प्रलय पर्यन्त पितरों के साथ विहार करता है ।

एकसौअरसठ का अध्याय ।

रत्नाचल दानका विधान और फल ।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि अब हम रत्नाचल दान का विधान व माहात्म्य कहते हैं जिस दान के करने से सप्तर्षि लोक की प्राप्ति होती है हजार मोती का पर्वत उत्तम पांच सौ का मध्यम और तीन सौ का निकृष्ट होता है मोतियों का

पर्वत बनाय उसके चतुर्थांश के समान विष्कम्भ पर्वत बनावै इन्द्र नील और गोमेद का पूर्व में पुखराज और पन्ने का दक्षिण में पद्मराग और सुवर्णका पश्चिममें और विद्रुम सहित वैदूर्य का पर्वत उत्तर में बनावै सुवर्ण के वृक्ष और देवता स्थापन करै आवाहन पूजन आदि सब विधान धान्यपर्वत की रीति से कर (यथादेवगणास्सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः। पञ्चरत्नमयो नित्यमतः पाहि महाचल ॥ यस्माद्रत्नप्रदानेन तुष्टिमेति ज़नार्दनः। स रत्नाचलदानेन प्रीतो भवतु मे सदा) ये मन्त्र पढ़ मुख्य पर्वत गुरुको और विष्कम्भ पर्वत ऋत्विजों को देवै इस विधान से जो पुरुष रत्नाचल दान करै वह विष्णुलोक को जाय वहां दिव्य सौवर्ष पर्यन्त सुख भोगकर मर्त्यलोक में जन्म ले रूप आरोग्य बल आदि करके युक्त चक्रवर्ती राजा होय इस दानके करने से अनेक जन्मों में किये हुये ब्रह्महत्या आदि पाप निवृत्त होजाते हैं।

एकसौउनहत्तर का अध्याय।

रजताचलदान का विधान और फल एक राजाकी कथा।

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि अब हम रजताचल दान का विधान कहते हैं जिसके करने से मनुष्य सोमलोक को जाता है हजार पल चांदीका उत्तम पांचसौ पलका मध्यम और अढ़ाईसौ पल चांदी का निकृष्ट होता है सामर्थ्य के अनुसार बीसपलतक भी रजताचल बनाकर दान करै इसके चतुर्थांश के तुल्य विष्कम्भ पर्वत बनावै उनके ऊपर चांदी के लोकपाल और ब्रह्मा, विष्णु, शिव बनाकर स्थापन करै सुवर्ण का पर्वत और वृक्ष आदि बनावै पूर्ववत् होम जागरण पूजनादि कर (पितृणां वल्लभं यस्माद्धर्मो दानंकरस्य च। तस्माद्रजत मां पाहि घोरात्संसारसागरात्) यह मन्त्र पढ़ मध्य पर्वत

गुरुको और चारों के पर्वत ऋत्विजों को देवै इस विधि से जो रौप्याचल का दान करै वह दशहजार गोदान का फल पाता है पूर्वकाल में एक बड़ा प्रतापी सूर्यवंश में सोमप्रभ राजा हुआ जिसकी सोमवती नाम अतिरूपवती और पतिव्रता रानी थी जो दशहजार नारियों में मुख्य और राजा की अतिप्रिया थी एक दिन सभाके बीच अपने पुरोहित श्रीवशिष्ठमुनि से राजा ने विनयपूर्वक पूछा कि हे भगवन्! किस पुण्य से उत्तम तेज और ऐश्वर्य मैंने पाया यह आप कृपाकर कथन कीजिये यह राजा का प्रश्न सुन वशिष्ठजी कहने लगे कि हे राजन्! पूर्व-काल में परम शिवभक्ता लीलावती नाम एक वेश्या थी उसने चतुर्दशी के दिन सुवर्ण वृक्षों सहित लवणाचल दानकर अपने गुरुको दिया वहां एक शौण्डनाम सुनार था उसने सुवर्ण के वृक्ष और देवता श्रद्धा से बहुत सुन्दर बनाये और धर्म का काम समझ भृतिं अर्थात् गढ़ाई भी नहीं ली वृक्ष आदि ऐसे उजलाये कि अति मनोहर होगये और सुवर्ण-कार की स्त्री ने भी उन वृक्ष और मूर्तियों को प्रीति से स्वच्छ किया और दोनों स्त्री पुरुषों ने दान के काम में भली भांति शुश्रूषा करी लीलावती वेश्या ने दानकर अपने गुरुको दिया कुछ काल के अनन्तर वेश्या मृत्युवश भई और सब पापों से छूट शिवलोक को गई सुवर्णकार जिसने दरिद्री होकर भी गढ़ाई न ली वह सप्तद्वीप के स्वामी चक्रवर्त्ती तुम भये और उत्तम तेज पाया और वह सुवर्णकार की स्त्री देवप्रतिमाओं के उजलाने से अति रूपवती तुम्हारी रानी बनी दरिद्र हो-कर भी सुवर्णकार और उसकी भार्या ने लवणाचल का सब काम भृतिके विना श्रद्धा से किया उसके प्रभाव से यह उत्तम फल पाया हे राजन्! अब तुम श्रद्धा से धान्याचल आदि दश पर्वतों का दान कीजिये यह वशिष्ठजी का वचन सुन

राजा ने धान्याचल आदि सब पर्वतों का दान किया और बहुतकाल राज्यभोग अन्त में देवताओं करके सेवित शिवलोक को गया जो निर्धन पुरुष इस मेरुदान को श्रद्धासे देखै इसके विधान को प्रीति से श्रवण करै अथवा दान करने के लिये किसी को बुद्धि देवै वह भी स्वर्ग को जाता है इन धान्याचल आदि दानों के विधान को श्रवण करनेहाराही दिव्य विमान में बैठ स्वर्ग को जाताहै फिर श्रद्धा से दान करनेका तो पुण्य कहां तक वर्णन करैं।

एकसौसत्तर का अध्याय।

सदाचारनिरूपण।

राजा युधिष्ठिर कहते हैं कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! आप के मुखसे प्रतिपदा आदि तिथियों के व्रतरहस्य मन्त्र सहित व्रतोद्यापन नवग्रह यज्ञविधान हवन विधान देवताओं के अनेक उत्सव अनेक प्रकार के दान धर्म तड़ाग वृक्ष आदि का उत्सर्ग इत्यादि हमने और इन महर्षियों ने श्रवण किये परन्तु हमारा मन मोहको ही प्राप्त हुआ आपने अनेक देवता और भांति भांति के व्रत कहे तिथिक्रम से पूजा मन्त्र उपवास आदि का वर्णन किया ध्यानयोग में निष्ठ मुनीश्वर एक परमात्मा को ही सर्वव्यापी और सब का प्रभु कहते हैं यह सब आपने वर्णन किया परन्तु वर्णआश्रमों के धर्म और सदाचार का आपने कथन न किया इसलिये अब आप वर्णाश्रम धर्म वर्णन कीजिये ये सब मुनीश्वर भी आपके वचन श्रवण करने को उत्सुक होरहे हैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! व्रत और दानों का लेशमात्र हमने वर्णन किया है सम्पूर्ण तो कौन वर्णन कर सकता है अब हम वर्णाश्रम धर्म कथन करते हैं संसार के सब

जावै दुःखों से छूट कल्याण के भागी होयँ सब आरोग्य रहैं कोई दुःखभागी न होय हमने व्रतों में अनेक देवताओं का पूजन आदि कहा परन्तु वास्तव में कुछ भेद नहीं जो ब्रह्मा सो विष्णु जो विष्णु सो शिव जो शिव सो सूर्य जो सूर्य सो अग्नि जो अग्नि सो कार्त्तिकेय जो कार्त्तिकेय सो गणपति इनमें कुछ भेद नहीं है इसी प्रकार गौरी लक्ष्मी सावित्री आदि शक्तियों में भी भेदका लेश नहीं चाहे जिस देवी देवता के उद्देश से व्रत करै परन्तु भेदबुद्धि न रक्खै क्योंकि सब जगत् शिव शक्तिमय है जगत् अनेक प्रकार का भासता है परन्तु परमार्थवेत्ता इस भेद को नहीं मानते किसी देवता का आश्रय लेकर नियम व्रत आदि करै केवल त्रयीधर्म का आचरण करना चाहिये यही इसमें मुख्य कारण है परन्तु जितने हमने व्रत दान आदि कहे वे सब आचारयुक्त पुरुष के सफल होते हैं आचारहीन पुरुष को वेद पवित्र नहीं करते चाहे छहों अङ्गों सहित पढ़े होयँ जिस भांति पंख जमने पर पक्षियों के बच्चे घोंसले को छोड़कर उड़जाते हैं इसी भांति आचारहीन पुरुष को वेद भी मृत्यु के समय त्याग देते हैं बुरे पात्र में जल अथवा श्वान के चर्म में दुग्ध रहने से जिस भांति अपवित्र होजाता है इसी प्रकार आचारहीन में स्थित शास्त्र भी व्यर्थ है वृत्त अर्थात् आचरण का यत्नसे रक्षण करै वित्त अर्थात् धन तो कभी आता है और कभी जाता है वित्तहीन जीता और वृत्तहीन नहीं जीसकता आचारही धर्म और कुल का मूल है आचार से हीन पुरुष धर्म और कुल से भी हीन होजाताहै दुष्ट पुरुषों के कुलसे भी क्या उपयोगहै क्या सुगन्धयुक्त उत्तम पुष्पों में कृमि नहीं उत्पन्न होते हैं हीन कुल में भी उत्पन्न पुरुष जो शौच आचार सहित होय तो सैकड़ों कुलीनों से वह एक उत्तम है कुलको कुल नहीं कहते आचार

को कुल कहते हैं आचारहीन पुरुष न इस लोक में और न परलोक में सुख पाता है इतना सुन राजा युधिष्ठिर ने पूछा कि हे श्रीकृष्णचन्द्र ! अब हम सदाचार श्रवण किया चाहते हैं कि सर्व धर्ममय सदाचार किसको कहते हैं यह राजा का वचन सुन श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि हे महाराज ! आचारही प्रथम धर्म है और जिन में आचार होय वे सत्पुरुष कहाते हैं सत्पुरुषों का जो आचरण उसीका नाम सदाचार है जो पुरुष अपना हित चाहै उसको अवश्यही आचारनिष्ठ होना चाहिये पुरुष में पाप आदि जितने लक्षण हैं वे सब आचार से निवृत्त होजाते हैं धर्मनिष्ठ परनिन्दा से रहित सत्कर्म में प्रवृत्त और शौचआचार में परायण पुरुष सब का प्रिय होता है नास्तिक क्रियाहीन अधर्मी गुरु की आज्ञा लंघन करनेहारे और आचारभ्रष्ट पुरुष अल्पायुष् होजाते हैं सब लक्षणों से हीन भी पुरुष श्रद्धावान् असूयारहित और सदाचारयुक्त होय तो अपने सब मनोरथ पाता है ब्राह्ममुहूर्त में उठ धर्म और अर्थ का चिन्तन करै और आचमन स्नान आदि कर प्रातःसन्ध्या करै इसीभांति मौन से सायंसन्ध्यावन्दन भी करै सूर्य को उदय और अस्त होते न देखै तो दीर्घआयुष् पाता है जो ब्राह्मण दोनों कालका सन्ध्यावन्दन नहीं करते उनको राजा शूद्र कर्मों में नियुक्त करै दिन में उत्तराभिमुख और रात्रि के समय दक्षिणाभिमुख होकर मूत्र पुरीषका त्याग करै जो ऐसा स्थान न होय तो यथेच्छ त्यागै भूमिको तृणों से आच्छादितकर अपने शिरको वस्त्र से ढक पुरीषोत्सर्ग करै ग्राम आवसथ तीर्थ क्षेत्र गोष्ठ आदि में शौच न करै जल के भीतर से आवसथ से मूषक के बिल से बल्मीक से मृत्तिका लेकर शौच न करै और शौचशेष मृत्तिका से भी शौच न करै देवार्चन आदि क्रिया और भोजन सदा